अष्टपाहुड
अमृत
भाग २

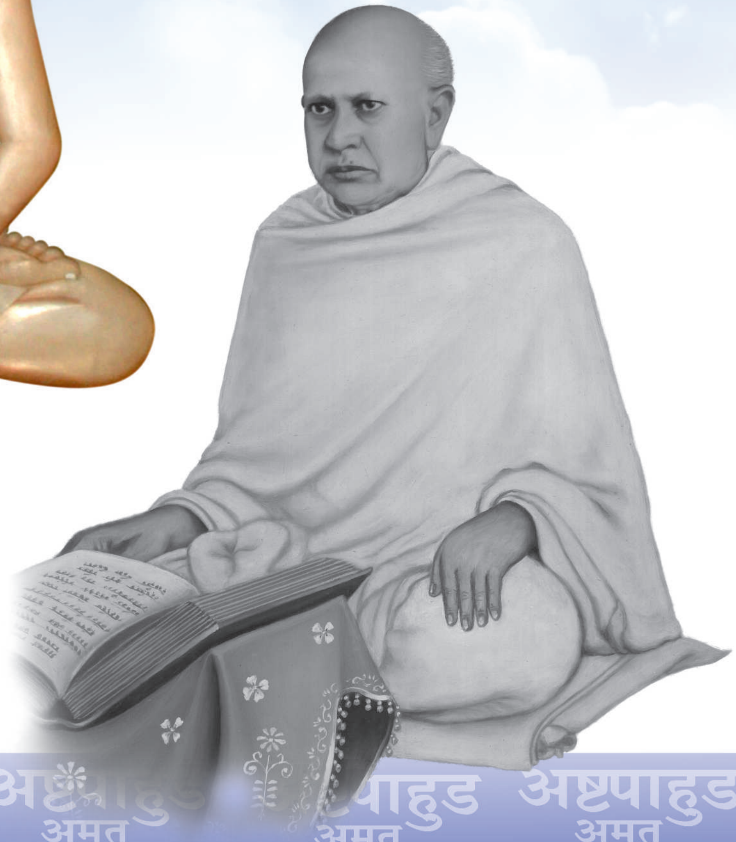

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-2)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम श्री अष्टपाहुड़
पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1973-74 में हुए शब्दशः प्रवचन
सूत्रपाहुड़, गाथा 1 से 27; चारित्रपाहुड़, गाथा 1 से 45
प्रवचन नं. 32 से 61

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2080	2550	2024

—: प्रकाशन :—

वीरशासन जयन्ती के अवसर पर

श्रावण कृष्ण 1, दिनांक, 22 जुलाई 2024

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर पर नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। वर्तमान जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव से सुचारूरूप से परिचित है ही, तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रह जा सकता।

आपश्री ने स्वयं की अनुभवगर्भित कलम द्वारा निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा होता है, उसे भाववाहीरूप से अनेक परमागमों में प्रसिद्ध किया है। जंगल में रहकर स्वरूप आराधना में लीन रहते-रहते, केवलज्ञान की तलहटी में पहुँचकर, स्वसंवेदनमयी प्रचुर स्वसंवेदन में रहकर पवित्र मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। अनुभवप्रमाण वह सबसे बलवान प्रमाण गिनने में आया है, जो आपके प्रत्येक वचन में प्रसिद्ध हो रहा है। अनेक महान आचार्यों ने भी आपका उपकार व्यक्त करके कहा है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यदि इस काल में मोक्षमार्ग को प्रसिद्ध न किया होता तो हम मोक्षमार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकते?

संवत् 49 में विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्य देशना को प्रत्यक्ष सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर आपने अनेक परमागमों की रचना की है। पंच परमागम वर्तमान जैनसमाज में प्रसिद्ध हैं। उसमें अष्टपाहुड़ ग्रन्थ भी समाविष्ट है। अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की रचना देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ दार्शनिक दृष्टिकोण से रचा गया है। आठ अधिकार (पाहुड़) की रचना में प्रत्येक में भिन्न-भिन्न विषयानुसार सूत्रों की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकार में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करके विपरीत अभिप्राय किस प्रकार के होते हैं और उनका क्या फल आता है तथा सम्यक् अभिप्राय का फल क्या आता है, उसका स्पष्ट चित्रण कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने चित्रित किया है।

शास्त्रों में तो आचार्य भगवन्तों ने निष्कारण करुणा से भव्य जीवों के हित के लिये रचना तो की है परन्तु वर्तमान दुषमकाल में उसका भाव समझना अत्यन्त विकट हो गया था और विपरीत अभिप्रायों की प्रचलितता और रूढ़िवाद में समाज जब डूबा हुआ था, ऐसे कलिकाल में, विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना को साक्षात् सुनकर भरतक्षेत्र में पधारनेवाले भावितीर्थाधिनाथ परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सूर्य समान अवतार, मुमुक्षु जीवों के मिथ्यात्व-अन्धकार को मिटाने के लिये हुआ। अनेक रूढ़िचुस्तता, मिथ्या अभिप्राय, क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग समझकर, मानकर उसकी आराधना चलती थी, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने निष्कारण करुणा से शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की अन्तरखोज द्वारा तथा श्रुतज्ञान की लब्धि द्वारा सत्य मोक्षमार्ग का स्वरूप खुल्ला किया। पूज्य गुरुदेवश्री ने 45 वर्ष तक अनेक परमागमों पर प्रवचन किये, जिसमें अनेकानेक सिद्धान्तों को प्रसिद्ध करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रसिद्ध किया। प्रत्येक प्रवचनों में आत्मा का मूलभूत स्वरूप, निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप, मुमुक्षुता, सिद्धान्तिक वस्तु का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप, निमित्त-उपादान का स्वरूप, सर्वज्ञ का स्वरूप इत्यादि अनेक विषयों को स्पष्ट करके कहीं भ्रान्ति न रहे, इस प्रकार से प्रकाशित किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरशः प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्द भरपूर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टपाहुड़ परमागम पर, ई.स. 1973-74 में हुए प्रवचनों को प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन शृंखला के द्वितीय भाग में सूत्रपाहुड़ की गाथा - 1 से 27 तथा चारित्रपाहुड़ की गाथा- 1 से 45 तक के प्रवचन क्रमांक- 32 से 61 तक का समावेश किया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसी अष्टपाहुड़ परमागम पर ई.स. 1970-71 में हुए प्रवचनों का शब्दशः प्रकाशन 'अष्टपाहुड़ प्रवचन' भाग 1 से 7 तक पूर्व में गुजराती एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा चुका है। तथा सन् 1952 में हुए प्रवचन दैनिक 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में उपलब्ध हैं, जिसका पहला भाग संकलित प्रवचन के रूप में 'अष्टपाहुड़ प्रवचन, भाग-1' पूर्व में इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में संग्रहित करने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उसके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट

(vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् विद्यमान रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्‌भक्त प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारूलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत तथा vitragvani (app) पर भी उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

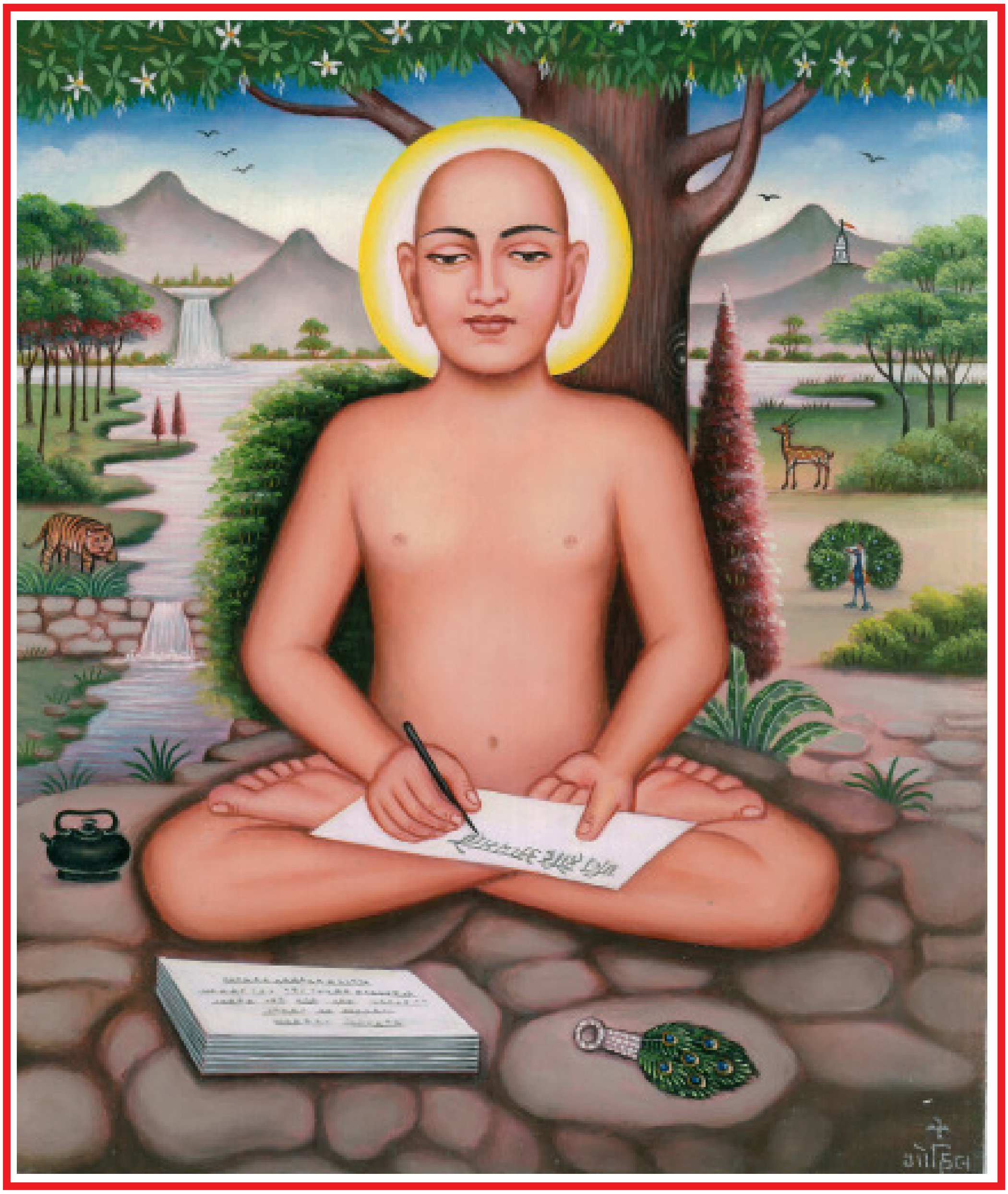

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — '**सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।**' इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
३२	२१-१०-१९७३	सूत्रपाहुड़ १, २	१
३३	२२-१०-१९७३	३ से ५	१७
३५	२४-१०-१९७३	६	४४
३६	२५-१०-१९७३	६	६१
३७	२६-१०-१९७३	६	७८
३८	२७-१०-१९७३	समयसार, कलश-२६८	९५
३९	२८-१०-१९७३	६ से ८	११२
४०	२९-१०-१९७३	८ से १०	१२९
४१	१४-११-१९७३	११ से १५	१४७
४२	१५-११-१९७३	१६ से १८	१६५
४३	१५-११-१९७३	१८ से २१	१८३
४४	१८-११-१९७३	२१ से २५	२००
४५	१९-११-१९७३	२६, २७ चारित्रपाहुड़, १ से ३	२१७
४६	२०-११-१९७३	४, ५	२३३
४७	२१-११-१९७३	५, ६	२५०
४८	२२-११-१९७३	६	२६५
४९	२३-११-१९७३	६, ७	२८४
५०	२५-११-१९७३	७, ८	३०१
५१	२६-११-१९७३	९ से १२	३१८
५२	२७-११-१९७३	१३ से १५	३३४

५३	२८-११-१९७३	१५ से १८	३५२
५४	२९-११-१९७३	१८, १९	३७०
५५	३०-११-१९७३	१९ से २२	३८८
४३	२३-०७-१९७०	२३ से २५	४०५
५७	०२-१२-१९७३	२३ से २६	४२२
५८	०४-१२-१९७३	३०, ३१	४४२
५९	०५-१२-१९७३	३२ से ३९	४४८
६०	०६-१२-१९७३	३९ से ४२	४६७
६१	०७-१२-१९७३	४३ से ४५	४८१

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ईस्वी सन् १९७३-७४ के प्रवचन)

—२—

सूत्रपाहुड़

आसोज कृष्ण १०, रविवार, दिनांक-२१-१०-१९७३
गाथा - १,२, प्रवचन-३२

यह सूत्रपाहुड़ है, सूत्रपाहुड़ है दूसरा। दर्शनपाहुड़ पूरा हो गया। देखो यह।

वीर जिनेश्वर को नमूं गौतम गणधर लार।
काल पंचमा आदि मैं भए सूत्रकरतार॥१॥

...वचनिकाकार कहते हैं कि मैं '**वीर जिनेश्वर को नमूं...**' जिनका शासन चलता है, ऐसे वीर भगवान को मैं नमस्कार करके '**गौतम गणधर लार।**' गौतम गणधर को साथ में लेकर नमन करता हूँ। '**काल पंचमा आदि मैं भए सूत्रकरतार।**' सूत्र के करनेवाले—सूत्र के रचनेवाले पंचम काल की शुरुआत में सन्त हुए, सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार मंगल करके श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथाबद्ध सूत्रपाहुड की देशभाषामय वचनिका लिखते हैं - प्रचलित भाषा में लिखा है, ऐसा कहते हैं। **प्रथम ही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्र की महिमागर्भित सूत्र का स्वरूप बताते हैं :-**

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥१ ॥

अरिहन्त भगवान ने कहा हुआ भावश्रुत। समझ में आया? अरिहन्त ने कहा हुआ अर्थ। भगवान के श्रीमुख से अर्थ अर्थात् भावश्रुत निकले। **जो गणधरदेवों ने सम्यक् प्रकार...** '**सम्मं**' शब्द है न '**सम्मं**'? **सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूंथा (रचना की)...** उसे सूत्र कहते हैं। **वह सूत्र है। वह सूत्र कैसा है?—सूत्र का जो कुछ अर्थ है उसको मार्गण अर्थात् ढूंढ़ने-जानने का जिसमें प्रयोजन हैं...** सूत्र के अर्थ में क्या कहना है? मोक्ष का उपाय, मोक्ष का साधन, यह शास्त्र में क्या कहना है? वह जिसका ढूंढ़ने का प्रयोजन है। समझ में आया? भगवान ने कहे हुए भावश्रुत से रचित द्रव्यश्रुत गणधरों ने, उस द्रव्यश्रुत में मोक्ष का प्रयोजन क्या सिद्ध किया है? कि जिसकी शोधने की दृष्टि है, ऐसे साधु। '**सवणा**' है न शब्द? '**सवणा**'।

सूत्र का जो कुछ अर्थ है... सूत्र में जो प्रयोजन कहना है। प्रयोजन, वह मोक्ष का मार्ग कहना है, वीतरागता (कहनी है)। समझ में आया? सब अच्छे सूत्र में वीतरागता बतलानी है, उसे **ढूंढ़ने-जानने का जिसमें प्रयोजन है और ऐसे ही सूत्र के द्वारा श्रमण (मुनि) परमार्थ अर्थात् उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन (उत्कृष्ट अर्थ मोक्ष) जो अविनाशी मोक्ष को साधते हैं। यहाँ गाथा में सूत्र इस प्रकार विशेष्य पद नहीं कहा...** किसमें? '**गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।**' वहाँ सूत्र शब्द नहीं। यह लिया है। फिर तो आता है, '**सुत्तत्थमग्गणत्थं**' यह तो बाद में। परन्तु उसमें अर्थ का शोधना जिसमें है वह। तीसरे पद में है यह। सूत्र के अर्थ का प्रयोजन सिद्ध करना वह है। परन्तु यहाँ शब्द नहीं न। '**गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं सुत्त**' यह शब्द नहीं। यह शब्द यहाँ ऊपर से ले लेना, ऐसा कहते हैं।

विशेष्य पद नहीं कहा तो भी विशेषणों की सामर्थ्य से लिया है। विशेष अर्थात् '**गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं**' है न? गणधरों ने गूँथा, यह विशेषण है। इससे वहाँ... द्रव्यश्रुत, भावश्रुत भगवान की वाणी में आया। भगवान ने भावश्रुत कहा और गूँथा द्रव्यश्रुत। सिद्धान्त... आशय ऐसा है कि जो भगवान ने कहे हुए भाव, अर्थ, तात्पर्य, उसमें से गणधरों ने रचना की, उनकी परम्परा से जो मार्ग चला आता है सूत्र का, उसे सूत्र

कहा जाता है। भगवान के पश्चात् यह श्वेताम्बरों ने नये कल्पित शास्त्र बनाये, वे शास्त्र नहीं, ऐसा कहते हैं। ...भाई! इसमें भी विवाद आयेगा उसे तो। ऐई! जयन्तीभाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य का यह कहना है। भगवान के श्रीमुख से जो वाणी निकली, भावश्रुत, अर्थ; अर्थ अर्थात् यह भावश्रुत है और गणधरों ने सूत्र की रचना की, वह द्रव्यश्रुत है। भावश्रुत और द्रव्यश्रुत दोनों आये इसमें।

और उस सूत्र में सर्व साधुओं ने... मुख्य (रूप से) साधु की बात है न? **'सुत्तत्थमग्गणत्थं'** उसमें शोधना-शोधना। फिर वीतरागता कैसी कहते हैं। वीतराग कैसा कहा है? वीतरागभाव कैसा सिद्ध किया है, वह शोधना। समझ में आया? यह परम्परा वीतराग के शास्त्रों में से ही वीतरागता निकलेगी। समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! यह सब विवाद उठे हैं यह। मार्ग तो ऐसा है, भाई! तीर्थंकर के श्रीमुख से निकला हुआ अर्थ भावश्रुत और गणधरों ने रचा द्रव्यश्रुत, उसकी परम्परा से आचार्यों ने जो शास्त्र कहे, उसमें प्रयोजन मुनि को सिद्ध करने के लिये मोक्ष का मार्ग, वह उसमें से खोजना। आहाहा! कोई वार्ता, कथा आदि कही हो, परन्तु उसमें से वीतरागता का प्रयोजन है, वह शोधना। समझ में आया?

भावार्थः—जो अरहन्त सर्वज्ञ द्वारा भाषित है... यह अर्थ में नहीं था। रह गया होगा या क्या होगा? **अरहन्त सर्वज्ञ द्वारा भाषित है...** मूल तो पाठ यह है। **'अरहंतभासियत्थं'** सर्वज्ञ परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि अर्थात् भावश्रुत अर्थात् अर्थ। समझ में आया? आहाहा। .... गाथा में लेंगे परम्परा दूसरी (गाथा)। परम्परा का लेते हैं न? दूसरी में लेंगे। अलग बात है, भाई! दिगम्बर सन्तों ने जो सूत्र की रचना गणधरों ने की, उनकी परम्परा, गणधरों की परम्परा का भाव, वह दिगम्बर आचार्यों में रह गया है। उनकी परम्परा में जो सूत्र रहे, उसमें यह मोक्ष का मार्ग शोधने का, ऐसा वे शोध सकते हैं। दूसरे प्रकार से राग और निमित्त की मुख्यता देकर वे कोई शास्त्र नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अरहन्त सर्वज्ञ द्वारा भाषित है तथा गणधरदेवों ने अक्षर पद वाक्यमयी गूंथा है... यह सूत्र कहा है, यह सूत्र... वह भाव। भगवान ने कहा भाव—अर्थ। धवल में

आता है न भाई! कि भगवान ने केवलज्ञान प्ररूपित नहीं किया, भावश्रुत प्ररूपित किया है। दूसरी बात है। धवल में आता है। भगवान ने केवलज्ञान की प्ररूपणा नहीं की, भावश्रुत की प्ररूपणा की है। आहाहा! क्यों?—कि भावश्रुत के प्राप्त करनेवालों को निमित्त यह है, इससे भावश्रुत कहा है। समझ में आया? आहाहा! भगवान के श्रीमुख से वाणी जो आयी, उसे भावश्रुत कहा है। क्यों? वह सुननेवाले भावश्रुत परिणमते हैं, उसमें निमित्त है, इसलिए उसे भावश्रुत कहा है। आहाहा! वह वाणी दिगम्बर परम्परा में रही है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया?

सूत्र के अर्थ को जानने का ही जिसमें अर्थ-प्रयोजन है... देखा! सूत्र का अर्थ जानना। भाव क्या है सूत्र का। सूत्र को कहने का तात्पर्य क्या है? ऐसा जो प्रयोजन है। **ऐसे सूत्र से मुनि परमार्थ जो मोक्ष उसको साधते हैं।** आहाहा! गजब ... है। ओहोहो! आत्मा की मुख्यदशा... संसारदशा चौरासी के अवतार। नरक और निगोद अनन्त... अनन्त अवतार, यह उसका... परिभ्रमण का अभाव और मोक्ष की प्राप्ति, ऐसा सूत्र के अर्थ में शोधने का जिसका प्रयोजन है, उसे यह गणधरों की परम्परा से शास्त्र रचे हुए, उनमें से उसे मिला हुआ है। ऐसा कहा जाता है। अमरचन्दभाई! इसके अतिरिक्त दूसरों ने जो सूत्र रचे हैं, उसमें भगवान के कहे हुए भाव और प्रयोजन वीतरागता का उसमें से नहीं मिलता। ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

जिसमें से वीतरागता निकलती है और जिसे प्रयोजन वीतराग साधने का है। क्योंकि मोक्ष साधना है। ऐसी वीतरागता तो भगवान ने कहे हुए भावश्रुत द्वारा जिसने सूत्र रचे, ऐसी परम्परा में जो भाव रहा, सन्तों ने उसमें से वीतरागता शोधकर अपना उपकार किया। आहाहा! समझ में आया? बहुत गाथा... पहली गाथा है न मांगलिक की? मांगलिक है न यह। कुन्दकुन्दाचार्य... यही मांगलिक है। आहाहा! कितना परन्तु! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की वाणी में आया, इससे उसे द्रव्यश्रुत न कहकर, उसे भावश्रुत कहा। है तो वाणी द्रव्यश्रुत। परन्तु उसमें भाव कहना है और अर्थ कहना है। अर्थ कहना है। सूत्र रचना के बाद अर्थ में से सूत्र की रचना करते हैं। समझ में आया?

ऐसे सूत्र से मुनि परमार्थ जो मोक्ष उसको साधते हैं। आहाहा! यह शास्त्र में से

भगवान ने कहीं हुई वाणी की रचना जो हुई, उसमें से मोक्ष का प्रयोजन सिद्ध होता है, ऐसा इसे शोधना और उसमें यह कहा है। समझ में आया? आहाहा! स्वर्ग मिले और व्यवहार करने से यह मिले, ऐसा यह नहीं है। वीतराग की वाणी के प्रयोजन में यह प्रयोजन नहीं है। समझ में आया? **अन्य जो अक्षपाद,...** दूसरे अन्यमतियों ने। **जैमिनि, कपिल, सुगत (बौद्ध) आदि...** श्वेताम्बरादि ले लेना इसमें। **छद्मस्थों के द्वारा रचे हुए कल्पित सूत्र हैं,...** बहुत कठिन पड़ता है। ऐई!

मुमुक्षु : अब नहीं पड़ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब क्या पड़े? यह नये हों, उन्हें पहले पड़े न! आहाहा!

यहाँ जो शास्त्र में साक्षात् वीतराग की वाणी आयी है और उसमें मोक्ष का प्रयोजन सिद्ध किया है। उसका पूर्वापर विरोधरहित जहाँ देखो वहाँ वीतरागता जिसमें प्रयोजन है। ऐसे मुनि उसमें से वीतरागता शोध निकालते हैं। उसमें वह भरी है, यह कहना है। उसमें से शोध लेंगे। समझ में आया? और छद्मस्थों ने रचित जो कल्पित शास्त्र, वे शास्त्र ही नहीं। आहाहा! कठिन बातें है, भाई! कहो, ...भाई! श्वेताम्बरों ने तो भगवान की वाणी परम्परा थी, उससे विरुद्ध हो गये। जगत में (यह बात कठिन पड़े) इससे कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। दर्शनपाहुड़ के बाद यह लिया न। और यही ... आहाहा!

भाई! परम्परा से वीतराग की वाणी के भाव सूत्र में जो आये हैं, उस सूत्र की परम्परा दिगम्बर में ही है। अन्यत्र है नहीं। आहाहा! उसमें (श्रोता में) तो बहुत तो श्वेताम्बर स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी होंगे। यहाँ तो मार्ग यह है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की ध्वनि जो आयी, उसमें से सूत्र गूँथे, उस सूत्र की रचना परम्परा में रही, उसमें वीतरागता का शोधने का साधन शोधकर अपना मोक्ष साधते हैं। आहाहा! बाबूभाई! आहाहा! ऐसा है। ...भाई! यह कोई पक्ष की बात नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र ऐसे हों कि जिसमें से वीतरागता प्रयोजन सिद्ध हो और उसमें यह प्रयोजन, यह सिद्ध किया है। व्यवहार और राग से लाभ होता है, ऐसा इसमें नहीं है। समझ में आया? वे कहते हैं न कि व्यवहार अर्थात् समकिती। वह शास्त्र का

प्रयोजन और शास्त्र ... ही नहीं। ...व्यवहार, वह समकित। शास्त्र ही नहीं जिसमें से यह शोधा। आहाहा! बहुत कठिन बातें हैं। कठिन नहीं परन्तु है तो ऐसी सूक्ष्म। ऐई! चिमनभाई! यह सब वाड़ा (सम्प्रदाय) के ऊपर तो सब शून्य लगाया है। आहाहा!

छद्मस्थों के द्वारा... और प्रवचनसार में तो कहा है न कि छद्मस्थ ने कहे हुए व्रतादि में से कोई ऐसा .... अक्षर ... ऐसा है। आहाहा! गजब वाणी है। वस्तु की स्थिति चारों ओर से शास्त्र खोजने से एक धारा निकलती है। आहाहा! जिसमें से आत्मा का मोक्ष का प्रयोजन सिद्ध हो, वह वीतराग की वाणी के सार में यह आया है। उन गणधरों के रचित शास्त्र में यह बात है। कल्पित साधुओं ने रचित, उसमें यह बात है ही नहीं। ... भारी कठिन पड़े। दिगम्बर और श्वेताम्बर में तो ... सनातन धर्म। ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर ... वस्तु वह नहीं। आहाहा! ... रात्रि को प्रश्न किया था। ... कहते हैं। ८३। दामनगर में। महाराज! एक कहता है कि मेरा पिता स्त्री थी और एक कहता है कि मेरा पिता आदमी था, उसका क्या? ऐसा प्रश्न किया था। वनेचन्द सेठ। ... है। ....भाई! मनुष्य बहुत खानदानी। .... बहिन थे... उसने प्रश्न किया था तर्क का। ... अभी .... ऐसा कि उसमें एक मल्लिनाथ तीर्थंकर को स्त्री सिद्ध करते हैं, एक मल्लिनाथ को आदमी (पुरुष) ठहराते हैं। वह कहे कि मेरा बाप स्त्री थी। ....भाई! कठिन... क्या करना इसमें? ... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह तो कठिन ही है न! आहाहा!

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव श्री वीर परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई वाणी, उसमें से गणधरों ने रचित शास्त्र, उनकी परम्परा में दिगम्बरों में यह परम्परा शास्त्र रहे हैं। समझ में आया? यह **छद्मस्थों के द्वारा रचे हुए कल्पित सूत्र हैं,...** आहाहा! अभी तो सूत्रों का निर्णय करने में भी अभी समय चाहिए कि किसे सूत्र कहना और किसे सूत्र नहीं कहना? कहो, चिमनभाई! ऐसा है यह तो सब। **उससे परमार्थ की सिद्धि नहीं है,....** भगवान के कहे हुए परम्परा के शास्त्र हैं, उसमें परमार्थ की सिद्धि

होती है, ऐसा है। समझ में आया? यह नास्ति से बात की है, भाई! उसमें परमार्थ की सिद्धि भगवान की वाणी में और दिगम्बरों के परम्परा शास्त्रों में परमार्थ सिद्धि हो, ऐसी वस्तु है। आहाहा! कहो, ...चन्दभाई! क्या इसमें समझना? सब ... चढ़ा देना है?

मार्ग तो ऐसा है, भाई! इसे ठीक लगे, न लगे। किसी के साथ वैर-विरोध नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं, व्यक्ति के प्रति अप्रेम नहीं। समझ में आया? परन्तु मार्ग तो यह है। यह उतरे (जँचे) उसे कहते हैं। वनेचन्दभाई! सूत्र उसे कहते हैं। जो परम्परा गणधरों से कुन्दकुन्दाचार्य से। पहले कह गये हैं न? 'पंचमा आदि मैं भये सूत्र करतार।' आचार्यों ने किये। समझ में आया? झांझरीजी! यह सूत्रों का निर्णय करना पड़ेगा पहले तो। तुम भी पहले दिगम्बर थे। दिगम्बर, जन्म दिगम्बर था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! विचारो तो सही, भाई! कहाँ भगवान तीर्थंकर और स्त्री? कहाँ भगवान प्रभु कितना अन्तर! राजा विवाह करने आये मल्लिनाथ को। यह वह कहीं बातें हैं? भगवान तीर्थंकर को विवाह करने आये राजा। पहले से... की। स्वयं प्रतिदिन उसमें डाले ग्रास। ...ऐसा ... ...राजा को ऐसा ... ऊपर से खोपरी ... डालते। ढक्कन... छहों व्यक्ति। आहाहा! ऐसा! ऐसा शरीर है यह। उसके... लो ऐसा करना पड़ा। ऐसा नहीं होता। किसकी चिन्ता करना, बापू! उसे तो... पाप के संक्रमण कर-करके पुण्य अकेला रखा है। धर्म तो वीतरागता रखा, परन्तु उसमें पुण्य बहुत रहा है। स्त्री का अवतार उसे हो नहीं सकता। भगवान को दो माता और दो पिता, यह तीर्थंकर को नहीं हो सकता। यह तो कहा जाता है अन्यमति में लिया है। अन्यमति में आता है न? 'दो माँ के दो पिता के...' ...में आता है। वहाँ के भक्त हों वे कहें। कृष्ण है न? 'दो माँ के दो पिता के...' एक यशोदा माँ और उनकी क्या कहलाती है माँ? कैसी? देवकी। दो माँ, ऐसा आता है। 'दो माँ के, दो पिता के... बाल, महिमा...'

मुमुक्षु : ....का काल।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... का वह काल। ऐसा आता है। उसमें सब आता है। यह तो बहुत वर्ष पहले का सुना हुआ है। ऐसा करके बुलाते हैं। पधारो, यह कौन हो तुम? हम

तुम्हारे भगत हैं। यह यहाँ ले लिया। दो इनको माता और दो पिता। वह सूत्र नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात है।

इस प्रकार आशय जानना। लो! **उनसे परमार्थ की सिद्धि नहीं है,....** छद्मस्थों ने कथित शास्त्रों से मोक्षमार्ग की यथार्थ सिद्धि कभी नहीं होती। कभी .... नहीं हो सकती। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार सूत्र का अर्थ आचार्यों की परम्परा से.... देखो! **प्रवर्तता है, उसको जानकर मोक्षमार्ग को साधते हैं, वे भव्य हैं :—** आहाहा! ठीक, अब इस अष्टपाहुड़ में आया। यहाँ सब २५०० वर्ष ... यहाँ २५०० वर्ष...

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं, आइरियपरंपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं, वट्ठदि सिवमग्ग जो भव्वो ॥२॥

वापस आचार्यों को यही कहना है।

अर्थ :— सर्वज्ञभाषित सूत्र में जो कुछ भले प्रकार कहा है.... वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो वाणी में सूत्र अर्थ द्वारा कहा है। **भले प्रकार कहा है, उसको आचार्यों की परम्परारूप मार्ग से....** भाई देखी इसमें। '**सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं**' है न पाठ? वह सर्वज्ञभाषित सूत्र का अर्थ यह। भावसूत्र। और गूँथा है, वह द्रव्यश्रुत है। है न? '**दुविह सुत्तं**' है न? '**दुविह**' है न? दो प्रकार का कहा। देखो! **सूत्र को शब्दमय और अर्थमय....** बराबर है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वरदेव ने जो अर्थ कहा और गणधरों ने रचा, ऐसा जो भावश्रुत और द्रव्यश्रुत, दोनों ले लेना।

उसको आचार्यों की परम्परारूप मार्ग से दो प्रकार के सूत्र को शब्दमय और अर्थमय.... शब्दमय द्रव्यश्रुत, अर्थमय-भावश्रुत। यह आ गया न '**अरहंतभासियत्थं**' यह आया था तीसरा, ऐसा। आहाहा! आचार्यों की परम्परा। आहाहा! वह दिगम्बर सन्तों की परम्परा, वह भगवान का मार्ग है। ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा!

समझ में आया? **जानकर सूत्र को शब्दमय... द्रव्यश्रुत और अर्थमय....** भाव जानकर **मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है....** आहाहा! ...छूटने के मार्ग में प्रवर्तते हैं। आहाहा! भगवान ने छूटने का मार्ग ही कहा है।

उसमें आया है न, भाई ने रखा है न, नहीं? 'देह शुद्धाथी...' टोडरमल। टुकड़े में रखा है। पहले पृष्ठ पर। इस ओर। पुस्तक नहीं? पुस्मक में। पहला भाग। ...नहीं। पहला और अन्तिम वह... प्रस्तावना में पहला और वह लेखन के बाद। 'ताते बहुत कहा कहिये जैसे रागादि मिटाने का श्रद्धान हो, वही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।' सूत्र में यह कहना है। बहुत क्या कहिये—'राग द्वेष वासना मिटाने का श्रद्धान हो वही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। जैसे रागादि मिटाने का जानना हो, वही जानना सम्यग्ज्ञान है, वही जैसे रागादि मिटे, वही आचरण सम्यक्चारित्र, ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।' समझ में आया? और द्रव्यसूत्र में यही कहा है। भावसूत्र में यह कहा था भगवान ने। ऐसा द्रव्यसूत्र में यह कहा है। रागादि घटाने की श्रद्धा, रागादि घटाने का ज्ञान और रागादि रहित होने का आचरण चारित्र—यह प्रयोजन द्रव्यश्रुत में सिद्ध होगा। कल्पित अज्ञानियों ने माने, उसमें से किसी प्रकार से सिद्ध नहीं होगा। आहाहा! कहो, रतिभाई!

मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है, वह भव्यजीव है,.... पाठ है न देखो! **'जो भव्वो'** वह भव्य जीव है। आहाहा! वह भगवान ने कहा मोक्ष का मार्ग भावश्रुत द्वारा, द्रव्यश्रुत की रचना में गणधरों ने कहा, उसमें से आत्मा में प्रयोजन वीतरागभाव का शोधकर और उसमें जो वर्ते, वह भव्य जीव है। आहाहा! समझ में आया? यह कहीं वाद-विवाद और झगड़े से कहीं पार आवे ऐसा नहीं है। ऐसी सब बात है, हों! उस मेघविजय की। बनारसीदास की ... मेघविजय। ... ... नाम वाँचा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ...पुस्तक आयी है। यहाँ है। वह नहीं।

अर्थमय जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है.... आहाहा! जिससे आत्मा मुक्ति—मुक्त के मार्ग को प्राप्त करे, ऐसा मार्ग द्रव्यश्रुत में कहा है, उसे शोधकर वर्ते, वह भव्यजीव है। आहाहा! ऐसे पैसेवाले हों और ऐसे इज्जत वाले हों, शास्त्र में से खोज ले और बड़े चमत्कारवाले हों, ऐसा यहाँ है नहीं।

मुमुक्षु : उसमें से रुपया निकाल दे, ऐसा कुछ नहीं निकले इसमें से?

पूज्य गुरुदेवश्री : अँगूठी, हाँ। साँईंबाबा। गप्प... गप्प। अरर! जैन में जन्मे ऐसे जहाँ-तहाँ लगे हैं। अँगूठी ऐसे करे। अँगूठी पहनकर क्या... वह ... दूसरा नहीं होता वापस। चमत्कार थोड़ा हो, ऐसा वापस जवाब दिया है। रखा हो अन्दर में तो ऐसा... वह सब ... उसे भगवान कहा। तुम्हारे रजनीश। रजनीश—रजनीश नहीं? 'भगवान' तो बहुतों के नाम होते हैं, कोली के, किसान के, नहीं ढेढ के?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। आहाहा!

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञदेव परमेश्वर हाजरा-हजूर, जिनकी वीतरागता और केवलज्ञान है। उन्होंने जो शास्त्र कहे और गणधरों ने रचे। आहाहा! उसमें से मोक्ष पाने का शोध लेना चाहिए। वह भव्यजीव। उसमें से कोई चमत्कार होगा, ढींकणा होगा, पैसे मिलेंगे, यह मिले ऐसा शास्त्र में नहीं है। समझ में आया? वीतराग के शास्त्र में तो वीतरागता प्रगट करके मोक्ष हो, वह साधन कहा है। चारों ओर से देखे तो यह बात वहाँ साबित होती है। दूसरे पंथ में अनेक बातें करके जगत को भरमाया है। समझ में आया?

भावार्थ :— यहाँ कोई कहे—अरहंत द्वारा भाषित और गणधर देवों से गूंथा हुआ सूत्र तो द्वादशांगरूप है,.... वह तो बाहर अंगरूप की रचना। **तो इस काल में दिखता नहीं है,....** बारह अंग तो इस काल में दिखते नहीं। **तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसे सधे?** देखो! **इसका समाधान करने के लिये यह गाथा है, अरिहन्त भाषित, गणधर रचित सूत्र में जो उपदेश है....** अरिहन्त का कहा हुआ और गणधर का रचा हुआ। आहाहा! **सूत्र में जो उपदेश है, उसको आचार्यों की परम्परा से जानते हैं,....** यह बात है। '**आइरियपरंपरेण**' एक भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, सच्चे आचार्य हुए, वहाँ तक यह मार्ग चला आता है। आहाहा! समझ में आया?

अरिहन्त भाषित, गणधर रचित सूत्र में जो उपदेश है, उसको आचार्यों की परम्परा से जानते हैं, उसको शब्द और अर्थ के द्वारा जानकर.... वाणी और उसके भाव। उसे जानकर भी भाव क्या, ऐसा जानना चाहिए। वाणी तो अमुक प्रकार की कहे,

परन्तु उसका आशय क्या है ? प्रयोजन क्या है ? ऐसा जानकर **जो मोक्षमार्ग को साधता है....** राग से भिन्न करके आत्मा की सम्यग्दर्शन की साधना करता है, राग से भिन्न करके आत्मा के ज्ञान को साधता है और राग को टालकर शीलता को करके जो साधता है। आहाहा! समझ में आया ? **वह मोक्ष होनेयोग्य भव्य है।** आहाहा! वह अल्प काल में उसे केवलज्ञान होनेवाला है, मुक्ति पानेवाला है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ फिर कोई पूछे कि—आचार्यों की परम्परा क्या है ? अन्य ग्रन्थों में आचार्यों की परम्परा निम्न प्रकार से कही गयी है :— श्री वर्धमान तीर्थंकर सर्वज्ञदेव के पीछे.... त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा। सर्वज्ञदेव के पश्चात् देखो न कितने विवाद। वे कहते हैं कि महावीर भगवान ने विवाह किया था। दूसरा कहे विवाह नहीं किया था।

मुमुक्षु : पुत्री और दामाद थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुत्री और दामाद थे। यह तीनों तीर्थंकर बालब्रह्मचारी थे। २२, २३ और २४(वें)। बीच में दो थे मल्लिनाथ और वासुपूज्य। वह तो बहुत आयुष्य थोड़ा और काम बहुत करने का है, ऐसी स्थिति ही होती है उसे। आहाहा! समझ में आया ? वह कहे भगवान ने विवाह किया था, उन्हें पुत्री थी। उन्हें दामाद था। यह कहे, बालब्रह्मचारी। इसमें कहाँ मेल करना ? ऐसी बातें हैं। बहुत कल्पित बातें हैं। अरे! क्या हो ? ...प्रभु का जो दिगम्बर आचार्यों ने बनाये रखा। धर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ। केवलज्ञान के पथानुगामी, उन्होंने भगवान के कहे हुए भावों-सूत्रों को बनाये रखा है। और वह सूत्र की रचना और सूत्र का कथन उन्होंने किया है। ओहोहो! दिगम्बर आचार्यों की करुणा और टीका और उपकार अथाग... अथाग है। समझ में आया ? ऐसे हलाहल काल में। देखो न, चिल्लाहट मचाते हैं। ...कितने देखो न .... अनाज नहीं मिलता पन्द्रह दिन तक मुम्बई में। पन्द्रह दिन का अनाज। या दस दिन का।

मुमुक्षु : इतना....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई ऐसा कहता था।

मुमुक्षु : सरकार अधिक .... करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भी दूसरी .... बड़ी।

मुमुक्षु : खाने का नहीं मिलता यह बात ही क्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही नहीं थी यह। दस दिन का अनाज, पन्द्रह दिन का अनाज। बाहर से लायेंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : अनाज .... कहलाये नहीं। घर में .... लाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है न, यह तो वे माँगने आवे न आटा। मुझे खबर है। ना नहीं कहे। आज आटा अधिक है, ऐसा कहे। आटा माँगने आवे न ब्राह्मण? ... आते थे। फिर आटा न हो तो... ऐसा कहे कि....

मुमुक्षु : बुलावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : घर से बुलावे। हाँ.. हाँ... सब खबर है छोटी उम्र से। ऐसा कैसे बोलता है यह? कहे, ऐसा नहीं बोला जाता है। आटा (समाप्त) हो गया, ऐसा नहीं बोला जाता। वरना गरीबी आ जायेगी। यह सब बातें हैं। परन्तु दूसरे प्रकार की।

यहाँ **तीर्थंकर सर्वज्ञदेव के पीछे तीन केवलज्ञानी हुए—१. गौतम, २. सुधर्म, ३. जंबु। इनके पीछे पाँच श्रुतकेवली हुए; इनको द्वादशांग सूत्र का ज्ञान था,....** बारह अंग का ज्ञान था। **१. विष्णु, २. नंदिमित्र, ३. अपराजित, ४. गोवर्धन, ५. भद्रबाहु। इनके पीछे दस पूर्व के ज्ञाता ग्यारह हुए;....** ग्यारह। **१. विशाख, २. प्रौष्ठिल, ३. क्षत्रिय, ४. जयसेन, ५. नागसेन, ६. सिद्धार्थ, ७. धृतिषेण, ८. विजय, ९. बुद्धिल, १०. गंगदेव, ११. धर्मसेन। इनके पीछे पाँच ग्यारह अंगों के धारक हुए; १. नक्षत्र, २. जयपाल, ३. पांडु, ४. ध्रुवसेन, ५. कंस। इनके पीछे एक अंग के धारक चार हुए;...** एक अंग ही। आचारांग का बस एक अंग।

१. सुभद्र, २. यशोभद्र, ३. भद्रबाहु, ४. लोहाचार्य। इनके पीछे एक अंग के पूर्णज्ञानी की तो व्युच्छित्ति.... आहाहा! **और अंग के एकदेश अर्थ के ज्ञाता आचार्य हुए।** आचारांग आदि एकदेश का भाव, उनके जाननेवाले। **इनमें से कुछ के नाम ये हैं—अर्हद्बलि, माघनन्दि, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्त, भूतबलि, जिनचन्द्र,....** कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु। **कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन....** भगवती (सूत्र के रचयिता) **पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र इत्यादि।** लो! गोम्मटसार के कर्ता

नेमिचन्द्र। परम्परा की वाणी....

इनके पीछे इनकी परिपाटी में आचार्य हुए, इनसे अर्थ का व्युच्छेद नहीं हुआ, ऐसी दिगम्बरों के सम्प्रदाय में प्ररूपणा यथार्थ है। समझ में आया? दिगम्बरों के सम्प्रदाय में कथन की प्ररूपणा यथार्थ। भगवान से चली आयी हुई बात इनमें है। अन्यत्र है नहीं। आहाहा! **अन्य श्वेताम्बरादिक वर्धमानस्वामी से परम्परा मिलाते हैं...** सब मिलाते हैं कि उसमें होगी। ... है न? आहाहा! देखो न! खोटी-खोटी बातें सब। तेरापंथी ऐसा कहे कि... शिष्य का है। आहाहा! तीर्थंकर परमेश्वर वीतरागदेव ने जो मार्ग कहा, सूत्र, वे सूत्र दिगम्बर सम्प्रदाय में ही चले आते हैं। यह बात अन्यत्र है नहीं। आहाहा! ...भाई! ऐसी बात है, भाई! शान्ति से, धीरज से विचारने की चीज़ है। ... यह बात नहीं।

अन्य श्वेताम्बरादि.... श्वेताम्बर, स्थानकवासी या अन्यमति आदि दूसरे सब **वर्धमानस्वामी से परम्परा मिलाते हैं,....** स्थानकवासी मिलाते हैं या नहीं? अभी पूछता था मुझे। **वह कल्पित है....** ... नहीं आवे स्थानकवासी। ... थे कब? .... श्वेताम्बर में से स्थानकवासी निकले हैं और दिगम्बर में से श्वेताम्बर दो हजार वर्ष से निकले और स्थानकवासी में से तेरापंथी अभी २०० वर्ष में निकले। आहाहा!

मुमुक्षु : ....स्थानकवासी की पुस्तक में कुन्दकुन्दाचार्य हमारे में से, ऐसा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहे। ...उसमें गप्प मारे सब। अच्छा ... नहीं। आहाहा!

दिगम्बरमार्ग कोई सम्प्रदाय नहीं। दिगम्बरमार्ग, वह वस्तु का स्वरूप है। सर्वज्ञ ने कहा हुआ ऐसा वस्तु का स्वरूप है, वह दिगम्बरमार्ग है। आहाहा! उसमें आ गया नहीं? जिनदर्शन किसे कहना? जैनदर्शन किसे कहना? यह चौदहवीं गाथा में आ गया। कि जिसे बाह्य—अभ्यन्तर त्याग हो, चारित्र अन्दर हो, जिसे दर्शन और ज्ञान हो, जिसे खड़े-खड़े आहार हो, संयमधर हो। खड़े-खड़े आहार लेता हो, जिसे तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हो, जिसे अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रतादि का विकल्प हो, जिसकी दशा नग्न हो, उसे जैनदर्शन कहते हैं।

(दर्शनपाहुड़ की गाथा) १४वीं में है। १४वीं। १४वी-१४वीं। १४वीं गाथा में।...

घूमने गये थे सब। घूमने क्या? रुपये लेने यह माल। चौदह-चौदह। पृष्ठ २०। '**दुविहं पि गंथचायं**' है? '**तीसु वि जोएसु संजमो ठादि। णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥**' उसे जैनदर्शन कहते हैं। अर्थ— **बाह्यान्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग....** अन्दर में राग का त्याग और बाह्य में वस्त्रादि का त्याग। **और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों, वह ज्ञान....** ज्ञान में कुछ भी खोटे ज्ञान का अनुमोदन या कराना हो नहीं।

निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा, खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे, इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है। उसे जैनदर्शन कहा जाता है। आहाहा! ऐई! बलुभाई! उसे जैनदर्शन कहते हैं। जिसे-तिसे सिर फोड़े (नमन करे)। यह ... ऐसे हैं, ऐसे हैं, दूसरे हैं, बड़े हैं, ढींकणा है। आहाहा! मार्ग तो ऐसा अनादि का है। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा हुआ वीतराग का मार्ग है। परन्तु वह इतना, खबर नहीं कि यह पूरी लाईन छोड़कर बैठे होंगे तो कुछ कारण होगा या नहीं? परन्तु स्पष्ट तो अब करने लगे। समझ में आया? आहाहा! मार्ग ही वह नहीं। मार्ग ही यह है। समझ में आया? दिगम्बर सन्तों ने... उसे अभी सम्प्रदाय में कहाँ खबर है न यह? बाह्य-अभ्यन्तर निर्ग्रन्थदशा हो, संयम हो, मन, वचन, काया से कृत, कारित, अनुमोदन से मन शुद्ध हो। कहीं ज्ञान में करना, कराना, अनुमोदन में दोष न हो और अकेला खड़े आहार हो। अच्छा न हो तो खड़े रखकर पानी दे, यह मार्ग नहीं है। उसे यहाँ जैनदर्शन... ऐसा सब निश्चय, व्यवहार और निमित्त, इस दशा को जैनदर्शन का व्यवहार और निश्चय कहा जाता है। ऐसा जैनदर्शन का अनादि का स्वरूप है। आहाहा! धीरुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुम्हारे भाई को बैठे नहीं इसमें। उसका प्रमुख है न। वह भी व्यक्ति सज्जन है, हों! ... बहुत मिले। आहाहा! यहाँ आये थे। वहाँ भी बहुत नरम से बोले। परन्तु वह श्वेताम्बर का प्रमुख है जामनगर में। ...परन्तु यह मार्ग, बापू! पूरा सम्प्रदाय को पलटाना।

मुमुक्षु : .... बिना की...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...चुनीभाई को। आहाहा! बड़े भाई कौन थे नहीं? मूलचन्दभाई। मूलचन्दभाई... पहले आते थे ७८ में ... निकल गये। यहाँ कुछ होता था। पहले ७८ में आये थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह द्वादशांग परम्परा से चला आता है। कहो, समझ में आया? **इनके पीछे इनकी परिपाटी में आचार्य हुए,....** लो! है? **नेमिचन्द इत्यादि। इनके पीछे इनकी परिपाटी में आचार्य हुए,.... इनके पीछे इनकी परिपाटी में, इनसे अर्थ का विच्छेद नहीं हुआ,....** भाव का विच्छेद हुआ नहीं। **ऐसी दिगम्बरों के सम्प्रदाय में प्ररूपणा यथार्थ है।** आहाहा! **अन्य श्वेताम्बरादिक वर्धमानस्वामी से परम्परा मिलाते हैं, वह कल्पित है क्योंकि भद्रबाहुस्वामी के पीछे कई मुनि अवस्था से भ्रष्ट हुए....** बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। कुछ मुनि भ्रष्ट हुए, वस्त्र रखने लगे और भ्रष्ट हो गये (मूलमार्ग) से। आहाहा! वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि मनवाना जैनदर्शन से भ्रष्ट हो गये। ऐसी बात है। वीतराग त्रिलोकनाथ परम्परा का तो यह मार्ग है।

ये अर्धफालक कहलाये। देखो! अर्धफालक। फाडिया आधा रखना। वह अर्धफालक कहलाते थे। उसमें लिखा हुआ है, हों! वह चम्पक। चम्पक साधु है न मन्दिरमार्गी, वह मिला था वहाँ। ... ऐसा कि अर्धफालक में से १०८ ... तक आये हैं अभी। भगवान जाने क्या होगा अभी तो। वह साधु है मन्दिरमार्गी। उसने यहाँ का वाँचा हुआ, उसे जँचा। बात तो सच्ची लगती है। ... वे थे साधु। अर्धफालक। कैसे? यह? अर्धफालक वस्त्र में से वक्रित विकार। एक अर्धफालक लिया था साधु ने मन्दिरमार्गी में। वक्रित विकार कहाँ जाकर रुकेगा, वह तो प्रभु जाने। १०८। १०८। १११। १११ है, लो।

वर्तमानकाल में विचरते श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनियों को जीवन में ... आदि प्राय: १०८ साधु... ११९ जितनी संख्या है। उनको गुणी गिनो या अवगुणी कहो। वह सामने व्यक्ति की... बनती है। फिर सब लिखा... ...लोग। इतने कपड़े और इतने यह। अर्धफालक में से १११ तक आये १५ तक। आहाहा! अभी तो कहाँ जायेंगे। ... रखे। ... परन्तु ...

यहाँ यह कहते हैं, देखो! मुनि भ्रष्ट हुए। **अवस्था से भ्रष्ट हुए, ये अर्धफालक कहलाये।** देखो! उसने यहाँ का बहुत वाँचा था। मन्दिरमार्गी साधु है। चम्पक सागर है। **इनकी सम्प्रदाय में श्वेताम्बर हुए, इनमें देवर्धिगणी नामक साधु इनकी सम्प्रदाय में हुआ है, इसने सूत्र बनाये हैं....** लो! यह ८४ सूत्र देवर्धिगणी वहाँ... **सो इनमें शिथिलाचार को पुष्ट करने के लिये कल्पित कथा तथा कल्पित आचरण का कथन किया है, वह प्रमाणभूत नहीं है। पंचम काल में जैनाभासों के शिथिलाचार की अधिकता है, सो युक्त है,....** इस काल में ऐसा ही होता है। **इस काल में सच्चे मोक्षमार्ग की विरलता है, इसलिए शिथिलाचारियों के सच्चा मोक्षमार्ग कहाँ से हो—इस प्रकार जानना।** लो! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक-२२-१०-१९७३
गाथा - ३,४, ५ प्रवचन-३३

... ऐसा है दूसरा पद है। संसार में गया होने पर भी। अर्थात् ऐसे नरक और पशु में कोई भूला पड़ा, परन्तु स्वसंवेदन भावश्रुतज्ञान साथ में है। आहाहा! यह उसकी लक्ष्मी हाथ में है, कहते हैं। यह धूल की लक्ष्मी तो पड़ी। अरे! हाय... हाय... अकस्मात वापस। क्या कहलाता है तुम्हारे... क्या कहलाता है वह? वसीयत-वसीयत। विल कहते हैं और क्या कहते हैं? वसीयत की न हो कुछ। हमारे तो छोटी उम्र है। अभी कुछ अपने रोग नहीं और यह इतनी आमदनी और यह सब। वसीयत भी की न हो। उसमें अकस्मात आवे। आहाहा! जाओ संसार में। आहाहा! परन्तु सम्यग्ज्ञानी, कहते हैं कि उसे कदाचित् नरक और पशु में जाना पड़ा। गति हो। 'गत' है न? संसार। **'गओ वि संसारे'** संसार में गया और यह गति ... इस प्रकार मनुष्यगति, पशुगति में गया। संसार है न इतना?

परन्तु '**सच्चेदणपच्चक्खं**' आहाहा! भाषा देखो! **संसार में गत हो रहा है, अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है तो भी सूत्रसहित हो तो उसके आत्मा सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आती है.... अपने दृष्टिगोचर नहीं है....** का अर्थ? पूर्ण पूरी चीज़ की दृष्टि नहीं। असंख्य प्रदेशी केवलज्ञानी देखे, ऐसी दृष्टि नहीं। समझ में आया? परन्तु सम्यग्ज्ञानसहित है। **अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है....** अर्थात्? केवलज्ञान से जैसा स्वरूप दिखता है अन्तर आत्मा का, वैसा ज्ञान नहीं है।

तो भी सूत्रसहित हो.... सम्यग्ज्ञानसहित हो, **उसके आत्मा सत्तारूप....** आत्मा का अस्तित्व सत्ता, सत्ता मौजूदगी अस्ति। वह **चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदन से....** चैतन्य चमत्कारमयी **स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आती है....** भले ऐसे प्रत्यक्ष वह भी स्वसंवेदन से **स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आती है....** समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम, ऐसा प्रत्यक्ष कदाचित् न हो

केवलज्ञान, परन्तु यह पूर्ण देखने को परोक्ष (और) वेदन में प्रत्यक्ष। समझ में आया? आहाहा! आचार्य का यह है। भले पूर्ण न हो। परन्तु उनकी सत्ता का चैतन्य चमत्कार, जिसका काल अल्प और ज्ञात हो तीन काल—तीन लोक, ऐसा चमत्कारस्वरूप भगवान आत्मा का। नीचे, हों! श्रुतज्ञान में। चैतन्य चमत्कार जिसके ज्ञान में। 'सब आगम भेद उर वसे।' आहाहा! चारों अनुयोग में क्या कहना है? क्या तात्पर्य है?

ऐसा **चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष....** हो जाता है उसे। आत्मा ऐसा प्रत्यक्ष हो गया अर्थात् उसे सब दूसरी बात परोक्ष हो जाती है। समझ में आया? उसे ख्याल में यह बात रहती नहीं। आहाहा! '**सच्चेदणपच्चक्खं**' ऐसा शब्द है न पाठ? सच्चेतन प्रत्यक्ष। सत् चैतन्य प्रत्यक्ष। च डबल है न। सत्। सत् चेतन प्रत्यक्ष, ऐसा। सत् चेतन प्रत्यक्ष। सत्। चेतन सत्, ऐसा। सत् चेतन सत्। और प्रत्यक्ष। आहाहा! आत्मा सत् है, सत् है, वह चेतन है। सत्, वह चेतन है। परमाणु आदि सत् तो है, परन्तु वे अचेतन हैं। यह (आत्मा) सत् है, वह चेतन है। उसका प्रत्यक्ष। आहाहा!

आत्मा सत्तारूप चैतन्य.... किया है न, देखो न। यह सत् का सत्ता किया। **चैतन्य चमत्कारमयी....** ऐसा वापस। चैतन्य का चमत्कार निकाला। ऐसे तो सत् चेतन। परन्तु सत् चेतन। है—ऐसा चैतन्य चमत्कारमयी तत्त्व है। समझ में आया? यह चमत्कार है। जगत के माने हुए, कल्पित चमत्कार... आहाहा! जिस ज्ञान का भान होने पर चमत्कार ऐसा है कि जिसे तीन काल—तीन लोक का अस्तित्व क्या है, उसका उसे ज्ञान हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! और यह सूत्र में—द्रव्यसूत्र में यह कहा है। भावश्रुतरूप से परिणमना, यह कहा है। सूत्रपाहुड़ है न?

(समयसार गाथा) १५ में यह आया न? '**अपदेससंतमज्झं**' द्रव्यश्रुत में भी यह कहना है कि ज्ञान का वेदन। और भावश्रुत स्वयं जैनशासन है। जैनशासन की पर्याय लेनी है न। यहाँ कहीं द्रव्य नहीं। आहाहा! लो, यह पर्याय जैनशासन आया। ऐई! चेतनजी! अनुभव तो यह पर्याय का आवे न! आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! '**सच्चेदणपच्चक्खं**' '**सच्चेदणपच्चक्खं**' गजब बात करते हैं। जिसे भावश्रुतज्ञान में अन्तर के सम्यक् स्वसंवेदन ज्ञान में सत् चेतन का प्रत्यक्षपना चैतन्य चमत्कार का होता है। आहाहा! यह बात है।

इस सूत्र में कहना हो तो प्रथम यह है। ऐसा सूत्र में से निकाला है न, पहले आया था ... नहीं? शोधकर ऐसा निकाला। प्रयोजन मोक्ष का मार्ग, उसमें है वह शोधा है। आहाहा! यह बात तो सर्वज्ञ के शास्त्रों में कहने में है। समझ में आया? यह बात ...भव में आया था न कुछ। भवनाशनं। ऐसे अर्थ में किया है। सर्वज्ञ का कहा हुआ। ऐसा निकाला है कुछ। देखो! यह टीकाकार ने। तीसरी है न? सूत्र की तीसरी। 'मनुष्य यथार्थ में सर्वज्ञदेव के शास्त्र को जानता है।' ऐसा कहा। 'वह संसार का नाश करता है।' गाथा। 'भव अर्थात् पुनर्जन्म से रहित है। अभव सर्वज्ञ जिनेन्द्र।' ऐसा निकाला है उसमें से। भवसिन्धु है न? 'सर्वज्ञ जिनेन्द्र वह कहलाते हैं। सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्र के सूत्र आगम को जो जानता है, वह भवसंसार का नाश करता है।' आहाहा! ऐसा अर्थ किया है। भव का जिसने नाश किया है, उनके कहे हुए जो सूत्र उनमें से उसने समझे उसके भव का नाश होता है, ऐसा। ऐसा कहा। भव का जिसने नाश किया है, भवनाशनं। भव का जिसने नाश किया है। जितभयं। आता है न पंचास्तिकाय में भाई? जिसने भव को जीता है। आहाहा!

जिसे भव ही नहीं, ऐसे जो सर्वज्ञदेव, उन्होंने कहे हुए जो सूत्र, उसमें से जो भावश्रुतरूप परिणमता है, उसे भव का नाश होता है। भव के नाश किये हुए सर्वज्ञों ने कहे हुए शास्त्र, उसमें से द्रव्यश्रुत में से भावश्रुत निकालकर अपने आश्रय से अवलम्बकर वह भव का नाश करनेवाला होता है। समझ में आया? आहाहा! अकेला सूत्र का लिखा हो तो ठीक कुछ। ऐई! चेतनजी! और उसमें स्वसंवेदन प्रत्यक्ष डाला। कहो, समझ में आया? कहो अब '**सच्चेदणपच्चक्खं**' डाला इसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अकेले द्रव्यश्रुत में उस द्रव्यश्रुत का ज्ञान होता है। द्रव्यश्रुत बराबर जाना हो। परन्तु द्रव्यश्रुत बराबर जानने का अर्थ ही भावश्रुत हुआ। आहाहा! उस द्रव्यश्रुत में यह कहा है। यह १५वीं (गाथा समयसार में) आया। '**अपदेससंतमज्झं**' और भावश्रुत तो यह शुद्ध उपयोगरूपी जैनशासन है। वह यहाँ कहते हैं। भावश्रुतज्ञानरूपी परिणमन है, वह जैनशासन है। और वह जीव जैनशासन... उसने अज्ञान और राग को

जीता, एकत्वबुद्धि छोड़ दी। उसे अब भव के नाश करनेवाले ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा ने, भव का नाश करने की बात जो शास्त्र में कही है। नाश करने की कही है ? आहाहा! भव का नाश करनेवाले सर्वज्ञ परमात्मा के मुख में से वाणी निकली, वह भव के नाश करने की वाणी है। और उसका भाव वाणी में भी भव का नाश करनेवाला भाव है। आहाहा!

वाणी में भी यह है और भावश्रुत में भी यह है। आहाहा! क्या उसकी रचना! श्रीमद् में नहीं आता! श्रीमद् में कुछ आता है। वीतरागवाणी की क्या उसकी रचना! क्या उसकी वीतरागता! दूसरा आता है कुछ। है वह आता है। ऐसा आता है। ...भव नहीं... श्वेत-सफेदरूप से वेश... ऐसा कुछ शब्द है। यह वीतराग की वाणी! आहाहा! उसमें ऐसा निर्मल सम्यग्ज्ञान और वीतराग की वाणी का सार सच्चा यह है। णाणं सार—आ गया न अपने दर्शनपाहुड़ में। आहाहा!

सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होती है, वैसे ही जो पुरुष संसार में.... पुरुष शब्द से (आशय) आत्मा। **गत हो रहा है,....** आहाहा! ऐसा शब्द है। गति में गया है। गति नरक और पशु आदि की गति हुई है। परन्तु जिसे भावश्रुतज्ञान का अन्तर में स्वभाव का भान हुआ, सचेतन प्रत्यक्ष हो गया। आहाहा! समझ में आया ? वह सूत्र के ज्ञाता **स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आती है....** कौन ? वह चीज़। आहाहा! लिखा है न ? **अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है....** ऐसा। परन्तु अपना रूप अपने को **प्रत्यक्ष अनुभव में आता है....** ऐसा। आहाहा! **इसलिए गत नहीं है...** उसमें कहा था न... '**गओ वि संसारे**' यह **गत नहीं है।** निकल जानेवाला है। आहाहा! नरक में है अभी तीर्थंकर का जीव श्रेणिक। ऐसे देखो तो कहाँ और मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में बैठा हो, लो! आहाहा! मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी नौवें ग्रैवेयक में।

मुमुक्षु : अभव्य भी।

पूज्य गुरुदेवश्री : और अभव्य की तो बात किसलिए कही ? वह तो कभी... गते। वह तो भव घटा सके ऐसे भव्य जीवों को। अनन्त भववाले नौवें ग्रैवेयक पड़े हों और एक भववाला पहले नरक में पड़ा हो। आहाहा! यह कहते हैं कि '**गओ वि संसारे**'

यहाँ। इस संसार में पड़ा दिखाई दे, ऐसा होने पर भी वह चैतन्य चमत्कार का वेदन है। निकल गया है बाहर का। (वेदन) तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेगा। आहाहा! समझ में आया? और वह आत्मा के ज्ञान बिना नौवें ग्रैवेयक में गया। बड़ी ऋद्धि दिखाई दे अहमिन्द्र, उससे कोई बड़ा नहीं। वह मरकर पशु होकर मनुष्य होकर पशु होकर नरक में जानेवाला है। आहाहा! यह संसार गत, वह संसार गत ही रहनेवाला है। और यह संसार गत है, तथापि निकलकर मोक्ष जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

प्रत्यक्ष अनुभव में आती है, इसलिए गत नहीं है नष्ट नहीं हुआ है,.... ऐसा। **वह जिस संसार में गत है, उस संसार का नाश करता है।** देखो! आहाहा! वह नरक और पशु में गया है। संसार गत कहलाये न वह इतना। तो भी संसार का नाश करता है। वह नाश ही करेगा। सब भव का नाश करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेगा। आहाहा! और जिसे भावश्रुतज्ञानरूपी स्वसंवेदन नहीं, उसे जिसे द्रव्यश्रुत का (ज्ञान) ग्यारह अंग और नौ पूर्व का हो। आहाहा! परन्तु वह संसारगत में ही पड़ा है। वह उसमें से निकलना उसे है नहीं। समझ में आया? यह जगत की बाहर की यह लीला। सफेद-पीले दिखाई दे सब ऐसे हो...हा... हो...हा... धूल-धमाका। सब भूतावल का दिखाव। वह सब नाशवान है। उसमें से ज्ञानी निकल जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दिखाई दे उसमें। हल्की चीज में दिखाई दे समकिती। आहाहा! समझ में आया?

नारकी में हो तो क्या? आहाहा! शरीर खराब, रोग, करोड़ों रोग शरीर में जन्मे तब से, हों! तीर्थंकर का जीव हो, परन्तु वहाँ तो क्या हो? आहाहा! और करोड़ों बिच्छू वेदना ऐसा स्पर्श तो उसकी पृथ्वी का है। क्या हो? वह गत है। आहाहा! और यहाँ नौवें ग्रैवेयक देखा तो ओहोहो! जिसे अनाज का... परन्तु हजार कितना ३१ सागर। ३१ हजार वर्ष में इच्छा हो तो अमृत झरे। परन्तु वह संसारगत है, हों! आहाहा! भाव। स्वसंवेदनज्ञान का जहाँ अभाव, वह तो संसारगत, वह संसारगत ही रहेगा। और यह संसार गत है, परन्तु निकलकर मोक्ष जायेगा। आहाहा! कहाँ पर्दा? नौवें ग्रैवेयक का गया हुआ, मरकर मनुष्य होगा, मनुष्य, सीधे ढोर नहीं होगा। मनुष्य मरकर फिर ढोर, नरक, निगोद जायेगा। आहाहा! वह गत है, वह गत ही रहनेवाला है और यह गत हो

गया, नीचे चला गया, नीचे चला गया। वह ऊपर गया, यह नीचे गया। बाह्य क्षेत्र अपेक्षा से, हों! भाव अपेक्षा से भी अभी संसार इतना नरक में, ढ़ोर में जाना पड़ा न? परन्तु भावश्रुतज्ञान है, (वह) निकल जायेगा।

तीन लोक का नाथ भगवान अल्प काल में होगा। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह सूत्रपाहुड़। सार। ... सार कहा न ... यह भेंट रखी भावश्रुत ज्ञान जिसने, (वह) निकल जानेवाला है। भले अभी नीच दिखाई दे, नरक में दिखाई दे। आहाहा! सातवें नरक का नारकी भी भावश्रुतज्ञानपने समकित में परिणमा है। आहाहा! कहाँ-कहाँ पड़ा है? समझ में आया? परन्तु वह निकल जायेगा। ... पहला भव ... हो परन्तु अल्पकाल में छूट जानेवाला है। वह संसार में नहीं रहेगा। जिसे संसार नहीं था, उन्होंने कहा हुआ सूत्र, उसमें संसाररहित होने की बात है, वह जिसने शोध निकाली है अन्दर से, उसे संसार होता नहीं। समझ में आया? यह तो यहाँ ऐसी बातें हैं। भगवानजीभाई! यह दीवाली आयी इसलिए ऐसा है, ... पैसे फिराये। दस लाख बढ़े और पाँच लाख बढ़े। धूल में भी बढ़े नहीं। हैरान हो जानेवाला है। सुन न! क्यों... भाई!

मुमुक्षु : पुण्य जला।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य जला परन्तु बाहर में कैसा दिखता है? ऐसे कुर्सी। पधारो... पधारो... पधारो... बराबर करे। पैसे की आशा रखे। आयेगा तो कुछ देगा पाँच-पच्चीस हजार। पधारो साहेब, पधारो। वह साहेब हो गया। यह जगत है न! परन्तु वह वापस हो जानेवाला है रंक—भिखारी। दूसरे नरक में हलाहल उठे। सम्यग्दृष्टि स्वसंवेदन है। बाहर में देखो तो... **'गओ वि संसारे'** ऐसा कहा है न? **'विणासइ सो गओ वि संसारे'** ऐसा। और वह संसार में ऊँचा कहीं गया हो तो भी वहाँ भटकनेवाला है। आहाहा! वह भगवान आत्मा के सम्यग्ज्ञान की यह महिमा है। उसमें दूसरे का क्या काम है? **संसार का नाश करता है।**

भावार्थ :— यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है... ऐसा कहा, देखो! उसमें लिखा था न, वह दृष्टिगोचर नहीं। **तो भी सूत्र के ज्ञाता के स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से अनुभवगोचर है,...** ऐसा। सर्वज्ञ के प्रमाण (प्रत्यक्ष) नहीं और इन्द्रियगम्य नहीं। **तो भी सूत्र के ज्ञाता**

के.... शास्त्र का ज्ञान—भावज्ञान जिसे हुआ, उस **स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से अनुभवगोचर है,...** आहाहा! **वह सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है,....** आहाहा! **आप प्रगट होता है,....** लो! है न मूल पाठ? '**अदिस्समाणो वि**' है न? चौथा पद नहीं? चौथा। '**अदिस्समाणो वि**' वर्तमान में नहीं दिखता तो भी प्रत्यक्ष स्वसंवेदन के कारण इतना प्रत्यक्ष है और वह वर्तमान में दिखता नहीं, परन्तु पूर्ण प्रत्यक्ष हो सकेगा। आत्मा को पूर्ण ज्ञान ऐसा हो जायेगा। आहाहा! गजब शास्त्र, भाई! गाथा, गाथा वह। आहाहा!

सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है, आप प्रगट होता है,.... '**अदिस्समाणो वि**' शब्द है न? इन्द्रिय से दिखता नहीं अथवा पूर्ण नहीं दिखता हो पूरा, परन्तु स्वसंवेदन के कारण वह प्रत्यक्षरूप से दिखता है, ऐसा वह आत्मा हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? है न चारों ही पद तो देखो!

पुरिसो वि जो ससुत्तो, ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेदणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि॥४॥

आहाहा! गजब!

★ ★ ★

गाथा - ५

आगे सूत्र में अर्थ क्या है, वह कहते हैं :— अब उस सूत्र में क्या कहा है अर्थ का—पदार्थ का स्वरूप, हेय-उपादेय का स्वरूप।

सुत्तत्थं जिणभणियं, जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा, जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठि॥५॥

अर्थः—सूत्र का अर्थ जिन सर्वज्ञदेव ने कहा है.... आहाहा! '**जिणभणियं**' पहला आया था नहीं यह? तीर्थंकर सर्वज्ञ होने के पश्चात् ही कहते हैं। '**जिणभणियं**' तीर्थंकरों ने कहा हुआ सर्वज्ञपने। आहाहा! **सूत्र का अर्थ जिन सर्वज्ञदेव ने कहा है....** सूत्र का अर्थ, हों! ऐसा है न? '**सुत्तत्थं**' है न? सूत्र तो षट्द्रव्यसूत्र की रचना, परन्तु तीर्थंकर ने भावश्रुत कहा, यह अर्थ किया। अर्हंत आता है न '**अत्थं**' अर्थ कहते हैं। अर्थ

अर्थात् भावश्रुत। उस भावश्रुत में अर्थ किया है।

जिन सर्वज्ञदेव ने कहा है और सूत्र का अर्थ.... सूत्र का अर्थ। **जीव अजीव आदि बहुत प्रकार का है....** लो! यह अर्थ भगवान के कहे हुए भाव में जीव, अजीव आदि बहुत प्रकार से नौ तत्त्व आदि का कथन है। एक बात। '**जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं**' है न पहला? '**जीवाजीवादिबहुविहं**' '**जीवाजीवादिबहुविहं**' ऐसा। बहुत प्रकार से। जीव, जीवरूप से; अजीव, अजीवरूप से; पुण्य, पुण्यरूप से इत्यादि '**जीवाजीवादि-बहुविहं अत्थं**' आहाहा! और '**हेयाहेयं**' उसमें वापस कहकर हेय-अहेय क्या है, वापस भगवान ने कहा। समझ में आया? ऐसी बातें एकदम रूखी जैसी लगे। राजा हो और रानी हो और फिर दीक्षा ली और फिर धामधूम की। कितना लगे!

वह इन्द्रध्वज का। वाँचा है न भाई इन्द्रध्वज का, नहीं? यहाँ है, पत्रिका है। पण्डित राजमल के समय में। उसमें आया है उसमें। पहले वाँचा था। पत्रिका आयी है कहीं से अपने, नहीं? वाँचा है। इन्द्र का ध्वज बड़ा। लाखों लोग इकट्ठे हुए। राजा का पहले विरोध था। मन्दिर-बन्दिर तोड़ डाला। वह हो गया। वापस राजा वह अनुकूल होकर। राजा ने कहा, जितनी पंच कल्याणक में तुम्हारे चीज़ें चाहिए हों, वे राज में से ले जाना। लाखों लोग इकट्ठे हुए। टोडरमलजी ऐसे गोम्मटसार का वाँचन करे। लोग इकट्ठे हों। ओहोहो! पाँच सौ वर्ष से गोम्मटसार की बात है, वह बन्द थी। वह शुरु जहाँ से हुई। आहाहा! कहते हैं कि यह घोलन किया है उसमें। यह वाँच गया पीछे से। बहुत वर्णन। बहुत वर्णन। पहले यह वाँच गया। पत्रिका में वाँचा था। इतना दिखाव। सोने-चाँदी के सब फूल, फलाना... फलाना... ऐसे बहुत खर्च किये। करोड़ों रुपये। तब करोड़ों अर्थात्! वे कितने गुने। अब इतने वर्ष पहले का... हो गया अभी। यह तो कितने वर्ष? वह तो बहुत हो गये, नहीं? बहुत वर्ष २०० वर्ष। यह तो ५० वर्ष पहले के हों एक लाख, (वे) अभी के बीस लाख। इतना अन्तर पड़ गया। भाव में अन्तर पड़ गया और रुपये की कीमत घट गयी। ओहोहो! रुपये की रुपयाभार बादाम अभी। गजब ऐसा!

आसोज कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक-२३-१०-१९७३
गाथा - ६ प्रवचन-३४

गाथा - ६

पाँच गाथा अष्टपाहुड़। सूत्रपाहुड़ की पाँच गाथा हो गयी। **आगे कहते हैं कि जिनभाषित सूत्र....** भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने कहा जो सूत्र। **व्यवहार-परमार्थरूप दो प्रकार है,....** एक व्यवहाररूप कथन है और एक निश्चयरूप है। **उसको जानकर...** व्यवहार को व्यवहाररूप से जानकर और निश्चय को निश्चयरूप से जानकर, **योगीश्वर शुद्धभाव करके सुख को पाते हैं—** अपना स्वभाव... व्यवहार को व्यवहाररूप से जाने सही, परन्तु निश्चय जो आत्मा का स्वरूप है, उसका आश्रय लेकर शुद्धभाव करके मोक्ष को प्राप्त करता है। **शुद्धभाव करके सुख को पाते हैं।** सुख—परमानन्द को पाता है। यह छठवीं गाथा।

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥६॥

अर्थः—जो जिनभाषित सूत्र है,.... वीतराग कथित शास्त्र, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ के मुख से जो वाणी निकली। परम सर्वज्ञदशा और परम आनन्द ऐसी दशा को प्राप्त, उनके मुख से जो वाणी निकली, वह सूत्र। **वह व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है,...** दो प्रकार हैं। उसमें व्यवहार का कथन है और परमार्थ दोनों का कथन है। व्यवहार को व्यवहाररूप से विषय है। परन्तु उसे है, ऐसा उसे जानना चाहिए। परमार्थरूप अभेद आत्मा है। उसका आश्रय करके कल्याण करना। **उसको योगीश्वर जानकर सुख पाते हैं....** योगी अर्थात् आत्मा के स्वरूप में जुड़ान करके सुख को प्राप्त करता है। आनन्द को प्राप्त करता है। **और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का क्षेपण करते हैं।** सुख को प्राप्त करता है और कर्म आदि भावकर्म के मैल को नाश करता है। यह व्यय कहा, उत्पाद कहा, ध्रुव के आश्रय से होता है। समझ में आया?

भावार्थः—जिनसूत्र को व्यवहार-परमार्थरूप यथार्थ जानकर.... भगवान ने कहे हुए सिद्धान्तों में व्यवहार-परमार्थ जैसा है, वैसा बराबर जानकर **(मुनि) कर्मों का नाश करके अविनाशी सुखरूप मोक्ष को पाते हैं। परमार्थ (निश्चय)...** अब व्याख्या करते हैं। व्यवहार, वह अभूतार्थ होने पर भी त्रिकाली की अपेक्षा से। पर्याय, रागादि है, भेदादि, यह व्यवहार। **इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है—** संक्षिप्त में उसकी कथन की शैली यह है।

मुमुक्षु : रागरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद में एक पर्याय एक भेद है। गुण-गुणी ऐसा भेद है राग अर्थात्। गुण-गुणी का भेद करना, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : गुण की पर्याय मुख्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का भेद करना, पर्याय स्वयं व्यवहार है। द्रव्य, वह निश्चय है; पर्याय, व्यवहार है। आहाहा! बात लेंगे सब। कहा एक जगह। इस छठी गाथा में।

जिन-आगम की व्याख्या चार अनुयोगरूप शास्त्रों में दो प्रकार से सिद्ध है.... वीतराग के कहे हुए आगम में आगम की व्याख्या—कथन चार अनुयोगरूप... शास्त्रों में चार अनुयोगरूप **शास्त्रों में दो प्रकार से सिद्ध है....** चारों अनुयोग में दो प्रकार ऐसे कि व्यवहार और निश्चय कहे जाते हैं। आहाहा! **एक आगमरूप, दूसरी अध्यात्मरूप।** वह दो प्रकार से अर्थात् **एक आगमरूप, दूसरी अध्यात्मरूप। वहाँ सामान्य-विशेषरूप से सब पदार्थों का प्ररूपण करते हैं....** सब छहों द्रव्यों का सामान्य-विशेषरूप कथन, वह आगमरूप। छहों द्रव्य। जितने भगवान ने देखे, उन छहों द्रव्यों का **सामान्य-विशेषरूप से सब पदार्थों का प्ररूपण करते हैं, सो आगमरूप है, परन्तु जहाँ एक आत्मा ही के आश्रय निरूपण करते हैं, सो अध्यात्म है।** यह दो भेद। समझ में आया? छह द्रव्यों का सामान्य और विशेष, द्रव्यरूप और पर्यायरूप—ऐसा जो कथन, उसे यहाँ आगम पद्धति कहते हैं। और एक आत्मा के आश्रय से बात, उसे अध्यात्म कहते हैं।

अहेतुमत् और हेतुमत् ऐसे भी दो प्रकार हैं.... आगम और अध्यात्म दूसरे प्रकार से अहेतुमत् और हेतुमत्। **वहाँ सर्वज्ञ की आज्ञा ही से केवल प्रमाणता मानना अहेतुमत्**

है... भगवान की आज्ञा प्रमाण एक-एक समय की पर्याय में षड्गुण हानि-वृद्धि, वह तो भगवान की आज्ञा प्रमाण मानना चाहिए। उसमें हेतु-बेतु, तर्क काम नहीं करते। समझ में आया? छह द्रव्य हैं, उनकी प्रत्येक समय की पर्याय में षड्गुणहानि-वृद्धि, वह तो सूक्ष्म अहेतुमत् है। वह तो आगम कहे, तत्प्रमाण जानना।

और हेतुमत् **प्रमाण-नय के द्वारा वस्तु की निर्बाध सिद्धि करके मानना, सो हेतुमत् है।** पूरी वस्तु का कथन करे और मुख्य-गौणरूप से सामान्य और विशेष का कथन वह नय। प्रमाण में पूरी चीज़ का कथन करे, नय में एक अंश का कथन। फिर सामान्य और विशेष का। वह **प्रमाण-नय के द्वारा वस्तु की निर्बाध सिद्धि...** जैसी वस्तु है, वैसी साबित करे **सिद्ध करके मानना, सो हेतुमत् है।** युक्ति से, नय से, प्रमाण से। **इस प्रकार आगम में निश्चय-व्यवहार से व्याख्यान है,....** लो! **वह कुछ लिखने में आ रहा है।** अब उसका विशेष स्पष्टीकरण करते हैं।

जब आगमरूप सब पदार्थों के व्याख्यान पर लगाते हैं.... शास्त्र की आगमदशा से जब सब पदार्थों का कथन करे—छहों द्रव्यों का, **तब तो वस्तु का स्वरूप सामान्य-विशेषरूप....** प्रत्येक पदार्थ सामान्यरूप से है और विशेषरूप से है। द्रव्यरूप से वह सामान्य और पर्यायरूप, वह विशेष। **अनन्त धर्मस्वरूप है,....** प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्म, आत्मा अनन्त धर्म, एक परमाणु भी अनन्त धर्म। ऐसे ही अनन्त धर्म एक आकाश। वह अनन्त धर्मस्वरूप **वह ज्ञानगम्य है,....** वह ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है वह।

इनमें सामान्यरूप तो निश्चयनय का विषय है.... सामान्य-विशेष में, सामान्य अर्थात् त्रिकाली द्रव्य और विशेष अर्थात् व्यवहार—वर्तमान पर्याय। यह तो अकेली बातें। परमार्थ और व्यवहार शास्त्र में दो है, उसका स्पष्टीकरण किया है न! मस्तिष्क को कुछ फैलाना पड़े वहाँ। ऐसे का ऐसे मान लो, वह वस्तु नहीं। उसे ख्याल में आना चाहिए न (कि) चीज़ ऐसी है। नय और प्रमाण से और सिद्धान्त से। जो विषय है वह **व्यवहारनय का विषय है, उसको द्रव्य-पर्यायस्वरूप भी कहते हैं।** लो! समझ में आया? **विशेषरूप जितने हैं, उनको भेदरूप करके....** गुण-गुणी का भेद करना, पर्याय का भेद करना इत्यादि **भिन्न-भिन्न कहे, वह व्यवहारनय का विषय है,....** जरा इसमें ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है, भाई इसमें तो। आहाहा!

मुमुक्षु : .... व्यवहार का और धर्म का काम, वह निश्चय का ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म का... धर्म की पर्याय स्वयं व्यवहार है। निश्चय तो त्रिकाली वस्तु है। सिद्ध पर्याय स्वयं व्यवहार है। मोक्ष का मार्ग निश्चय है, वह तो राग की अपेक्षा से, परन्तु वह व्यवहार है। पर्याय है न! त्रिकाली द्रव्य (नहीं)। समझ में आया? वस्तु है वह प्रत्येक वस्तु। एक समय में त्रिकाली वस्तु है, वह निश्चय है। और उसमें गुण-गुणी का भेद करना या पर्याय को लक्ष्य में लेना, वह व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कहना सूक्ष्म और पूछना.... समझ में आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धीरे-धीरे तो कहा जाता है यह। आहाहा!

यह पदार्थ वस्तु है या नहीं? है या नहीं? भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य है या नहीं? तो कहे, उन छह द्रव्यों का जानपना करना, वह आगम पद्धति कही जाती है। और एक आत्मा के आश्रय से कथन जानना, उसे निश्चय कहते हैं। अब उसमें भी दो प्रकार। वस्तु सामान्य रीति से निश्चय का विषय है सामान्य ध्रुव। आत्मा अभेद सामान्यरूप एकरूप, द्रव्यरूप, ऐसा निश्चय का विषय है। क्योंकि उसमें भेद नहीं, उसमें अनेकता नहीं। समझ में आया? आहाहा! संसार के जानपने के लिये बहुत होशियारी करता है। यहाँ जानपना कहा, उसमें सूक्ष्म पड़े। परन्तु बापू! वस्तु ही सूक्ष्म है और वह वस्तु ही ऐसी है। आहाहा! आगे तो अभी विशेष कहेंगे।

जिस वस्तु को.... देखो! कहते हैं न निश्चय। सामान्यरूप तो निश्चयनय का विषय है। विषय अर्थात् त्रिकाली वस्तु को जाने, वह निश्चयनय। और **उसको द्रव्य-पर्यायस्वरूप भी कहते हैं। विशेषरूप जितने हैं, उनको भेदरूप....** जितनी पर्याय, राग, निमित्त का सम्बन्ध, वह सब व्यवहाररूप। **भिन्न-भिन्न कहे, वह व्यवहारनय का विषय है,....** दया पालना, व्रत करना, भक्ति करना सीधा-सट्ट था। ऐसा ऐसा। यह क्या कर सकता है, इसका ख्याल आना चाहिए न! आहाहा! सवेरे कहा नहीं था जीव का? सवेरे यह विचार बहुत आया था। जीव का जीवन। कहते हैं न क्या, रामजीभाई कहते हैं न? जीओ और जीने दो। अंग्रेजी... में।

मुमुक्षु : जीओ और जीने दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अंग्रेजी का है। वीतराग का नहीं। वीतराग का जीवन जीना तो उसे कहते हैं। सवेरे कहा था। मन और इन्द्रियों से जिसका जीवन, भगवान आत्मा को मन और इन्द्रिय के सम्बन्ध से जीवन नहीं है। अलिंगग्रहण (प्रवचनसार गाथा १७२ में आता है)। आहाहा! और वह मन तथा इन्द्रिय से जिसका जीव नहीं अर्थात्? कि पाँच इन्द्रिय से और मन के सम्बन्ध से जिसे जीवन नहीं। आहाहा! समझ में आया? अर्थात्? कि मन और इन्द्रिय से... इन्द्रिय से जीवन तो एकेन्द्रिय को भी है है बाहर से। और पंचेन्द्रिय है, उसे मन और इन्द्रिय से जीवन है। वह वस्तु नहीं। जिसका जीवत्व जीवनशक्ति ज्ञातापने, दृष्टापने और आनन्दपने जीना, वह जीवन है। आहाहा! समझ में आया? दस प्राण हैं, वे उसमें आ गये, वे पाँच बोल लिये न! वे आ गये। ऐसा है, वे दस जड़ प्राण नहीं और जो दस प्राण की योग्यता, वह भी जीव का जीवन नहीं। जीव का जीवन तो यह है कि ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द और सत्ता। गुण तो यह सब में है ही। परन्तु जानना, देखना और आनन्द के जीवन से जीना, वह जीव का जीवन है। आहाहा! पण्डितजी! यह जीवन। गजब!

क्योंकि ज्ञान से जीनेवाला ज्ञातारूप से ज्ञान उसका स्वभाव है। उसकी पर्याय में जानपनेरूप जीवे, वह उसका जीवन। और दर्शनपने, दृष्टापने जीवे, वह उसका जीवन। ओहोहो! कहाँ वीतराग को कहना है? लोग कहाँ चले गये हैं! महावीर का जीवन... कुछ क्या कहते हैं, बोलते हैं नहीं? महावीर का सन्देश—जीओ और जीने दो। लो, ठीक! यहाँ कहे, महावीर का सन्देश—ज्ञान, दर्शन और आनन्द से जीओ और जगत को जीने दो, उसमें दखल न करो। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! जिसके जीवन में फलरूप से मोक्ष आवे, वह जीव का जीवन... जीव अर्थात् प्रभु चैतन्यरूपी भगवान, उसका जीवन अर्थात् पर्याय में ज्ञानरूप से जाननेरूप से, आनन्दरूप से जीवे। आहाहा! कि जिसके फलरूप से सादि-अनन्त शान्ति मिले, वह उसका जीवन है। भगवान का यह सन्देश है। तो वे सब लड़के इकट्ठे बोलें, महावीर का सन्देश—जीओ और जीने दो। परन्तु क्या जीवन! आहाहा!

कर्तव्य यह है। निश्चयरूप से जीव का जीवन, वह उसका जीवन है। परन्तु वह पर्याय का जीवन, वह व्यवहारजीवन है, त्रिकाली की अपेक्षा से। क्या कहा, समझ में आाय ? ज्ञाता–दृष्टा और आनन्द की पर्यायरूप है न ? पर्याय का जीवन है न ? त्रिकाली ध्रुव... त्रिकाली वस्तु जो है, वह तो निश्चय। अब त्रिकाली वस्तु के आश्रय से जो जीवन पर्याय में प्रगट हुआ ज्ञाता, दृष्टा, आनन्द आदि, वह पर्याय, वह उसका जीवन है। व्यवहाररूप जीवन वह है। ऐई !

मुमुक्षु : राग और व्यवहार जीवन नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग, वह व्यवहार जीवन कहाँ से ? असद्भूत झूठा है। आहाहा ! ऐसी बात है, बापू ! मार्ग तो यह है। समझ में आया ? ऐई ! चिमनभाई ! ... हो रहा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठण्डे व्यक्ति पीछे बैठे। यहाँ वाँचने बैठे तब खबर पड़ी। वरना तो... कहो, समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, एक बार सुन तो प्रभु ! तेरा व्यवहार जीवन भी ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! त्रिकाली जीवन तो आनन्द और ज्ञान से भरपूर जीवन जीता है ही। वह तो जीव का भाव, वह त्रिकाली है। आहाहा ! परन्तु उसके आश्रय से प्रगट हुई... आहाहा ! ज्ञान की पर्याय स्वसंवेदन, श्रद्धा की पर्याय, आनन्द की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय के साथ वीर्य की पर्याय तो प्रत्येक में है ही। स्वरूप की रचना। उस पर्याय से जीवे, उसका नाम जीवन है। आहाहा ! वह भी व्यवहार जीवन।

मुमुक्षु : चिद्विलासरूप अध्यात्म व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न प्रवचनसार में। आहाहा ! ऐसे तो निश्चयमोक्षमार्ग है, वह पर्याय है और व्यवहार कहा। निश्चय तो त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा ! मोक्ष स्वयं व्यवहार, सिद्ध स्वयं एक जीव की दो पर्याय... यह दो भेद हो गया व्यवहार है। आहाहा ! यह विशेष है। पंचाध्यायी की बात यह करेंगे आगे।

यहाँ कहते हैं, **उसको द्रव्य-पर्यायस्वरूप भी कहते हैं।** देखो ! आया ? क्या

कहा ? **सामान्यरूप तो निश्चयनय का विषय है और विशेषरूप जितने हैं, उनको भेद करके भिन्न-भिन्न कहे, वह व्यवहारनय का विषय है, उसको द्रव्य-पर्यायस्वरूप भी कहते हैं।** लो! सामान्य अर्थात् त्रिकाली द्रव्य और विशेष अर्थात् वर्तमान पर्याय। आहाहा! **जिस वस्तु को विवक्षित करके सिद्ध करना हो....** जिस चीज़ को लक्ष्य में लेकर कथन करना हो, **उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जो कुछ....** उसके अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। गुण-पर्यायरूप द्रव्य; क्षेत्र—चौड़ाई; काल—अवस्था; और भाव—गुण **जो कुछ सामान्य-विशेषरूप वस्तु का सर्वस्व हो वह तो, निश्चय-व्यवहार से कहा है....** लो! यह वस्तु का सर्वस्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उसमें जो त्रिकाली है, वह वस्तु वह निश्चय, भेदरूप भाव-पर्याय अर्थात् व्यवहार। भारी कठिन विषय, भाई! सब सूक्ष्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : दीवाली के दिनों में ऊँचे में ऊँची....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहते हैं और यह क्या कहते हैं वे ? पोडा बारस कहलाये अपने। लौकिक में। पोडा बारस समझे न ? पोडा बारस अर्थात् क्या ? कहो, सेठ! पोडा बारस कहते हैं इस बारस को।

मुमुक्षु : यह पोडा निकाल डाले और साफ करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : पोडा निकाल डाले और मिट्टी करे। यह तो छोटी उम्र का सब समझा हुआ। पोडा बारस कहा जाता है। पोडा अर्थात् बारह महीने में मिट्टी वह हो गयी हो न, उसे निकाल डाले। वह साफ। अब तो सब टाईल रही, उसमें कहाँ निकाले ? आहाहा!

भगवान आत्मा, कहते हैं कि उसका सामान्यरूप वह द्रव्य, विशेषरूप वह पर्याय। सामान्य का विषय, वह निश्चय। सामान्य, वह निश्चय का विषय है; पर्याय, वह व्यवहार का विषय है। उसका सर्वस्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारों का एकसाथ कहना, उसमें द्रव्य आदि जो अभेद हैं, वह निश्चय और भेद है, वह व्यवहार। इस गाथा में व्यवहार—निश्चय आया है न, इसलिए उन्हें स्पष्टीकरण करना पड़ा। **वैसे सिद्ध होता है....** ऐसा। **व्यवहार से कहा है, वैसे सिद्ध होता है....** वस्तु द्रव्य पदार्थ त्रिकाली, उसका क्षेत्र-

चौड़ा, काल-अवस्था, भाव-शक्ति। जैसा है वैसा निश्चय-व्यवहार से वह वस्तु सिद्ध होती है। समझ में आया? पर्याय, पर्यायरूप से सिद्ध होती है, क्षेत्र त्रिकालरूप से सिद्ध होता है, द्रव्य त्रिकालरूप से सिद्ध होता है और गुण भी त्रिकालरूप से सिद्ध होते हैं। आहाहा!

और उस वस्तु के कुछ अन्य वस्तु के संयोगरूप जो अवस्था हो.... दूसरा व्यवहार कहते हैं अब। उसी में और उसी में अभेदपना, वह निश्चय और भेद, वह व्यवहार। द्रव्य, वह निश्चय और पर्याय, वह व्यवहार। वे दोनों उसमें सर्वस्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में आ गया। कितना याद रखना? इसमें कहाँ याद? यह तो वस्तु की स्थिति है। आहाहा! इस प्रकार से जब तक समझे नहीं, तब तक उसे वस्तु परमार्थ से दृष्टि में आती नहीं।

मुमुक्षु : सिर पर बहुत बोझा डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोझा कहाँ है? यह तो हल्का होने का मार्ग है। आहाहा! अनादि से उल्टे रास्ते चढ़ा है न, उसे यह बराबर निश्चय और व्यवहार, इस चीज़ को बराबर जानना पड़ेगा। व्यवहार से व्यवहार है। नहीं, ऐसा नहीं। निश्चय, निश्चय है। यह तो और कहा था। परन्तु व्यवहार से व्यवहार का विषय और व्यवहारनय दो है। नहीं है, ऐसा नहीं। आहाहा! परन्तु वह व्यवहार आश्रय करनेयोग्य और आदरणीय नहीं, इतना। है तो वस्तु नहीं व्यवहार? यह तो इन्होंने डाला है इन टीकाकार ने थोड़ा। ४६वीं गाथा। ४६ है न समयसार की? ऐ... मार डालो तो ऐसा होगा।

मुमुक्षु : समयसार की।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार की ४६वीं (गाथा) व्यवहार से। दो बातें रखी हैं। व्यवहार विषय नहीं, परन्तु इसका अर्थ ऐसा कोई ले लेवे कि व्यवहार विषय है, इसलिए वह आश्रय करनेयोग्य है (तो ऐसा नहीं है)। दो बातें की थीं। वह आयी थीं न ८वीं गाथा में? व्यवहार निश्चय को बताता है। व्यवहार बताता है। उसने व्यवहार का अवलम्बन लिया। उसका अर्थ क्या? अवलम्बन लेने की कहाँ बात है? व्यवहार निश्चय को समझाता है। व्यवहार का आश्रय करनेवाले को और लेनेवाले को भी करना

नहीं, ऐसा तो उसमें लिखा है। आहाहा! शास्त्र को भूल गया। व्यवहार से व्यवहार समझाते हैं। भेद पाड़कर यह है, ऐसा। यह ज्ञान, वह आत्मा; दर्शन, वह आत्मा; चारित्र, वह आत्मा—ऐसा व्यवहार समझाता है। परन्तु वह व्यवहार अनुसरण योग्य नहीं है। कहनेवाले को और सुननेवाले को दोनों को। भगवानजीभाई! ऐसी वस्तु है।

वस्तु वस्तु है, अस्ति जिस प्रकार से द्रव्य और पर्यायरूप से है। त्रिकालरूप से है और उसकी दशारूप से है तो वह पर्याय तो व्यवहार हो गया और यह निश्चय हो गया। दोनों को एकसाथ जाननेवाला प्रमाण हो गया। मुख्य-गौण करके नय से कहना, वह नय है। आहाहा! परन्तु कितना ही इसे जानना चाहिए। जानपना वाँचन चाहिए। अरे! ऐसा समय कब मिले? समझ में आया? आहाहा!

काई का दृष्टान्त दिया है काई का। ...सोमचन्दभाई ने दिया था, हों! ऐई! आत्मारामजी! तुम्हारा काका। जोरावर में नहीं? जोरावर में। जोरावर में यह दृष्टान्त दिया था। पश्चात् सुधर गये। ऐसा कि काई होती है पानी में तालाब में ऊपर गोदड़ा, नीचे कछुआ रहता हो। कछुआ रहे न नीचे? अब वह काई का गोदड़ (परत) टूटा तो कछुए ने ऐसा देखा कि ओहो! यह तो अलग प्रकार का यह सब तारा और सब। वह उसके परिवार को कहने गया। कहे, चलो कभी नहीं देखा ऐसा कुछ है। वहाँ वह गोदडा इकट्ठा हो गया। उसने दृष्टान्त दिया है। यहाँ यह कहा न। इसी प्रकार मार्ग को जिसने देखा, वह दूसरे को कहने जाये कि मार्ग ऐसा है, परन्तु कहाँ था? आहाहा! वस्तु ऐसी है। आहाहा! राग बिना की वस्तु पूर्णानन्दस्वरूप है। वह परत टूटी, फटा अन्दर से, उसने देखा। आहाहा! ग्रन्थीभेद। परत (अर्थात् और) क्या? यह बात बाद में कहे, ऐसा कभी किसी ने देखा नहीं था हमने तो। यह वह कोई एकदम पागल लगता है। आहाहा!

अन्तर चैतन्य चमत्कार भगवान ज्ञान और आनन्द की मुख्यता से जिसे टिकना है, जिसके आश्रय से पर्याय होती है, वह उसका जीवन है। ऐसा जो भगवान, ऐसा निश्चय-व्यवहार हो गया। त्रिकाल वह निश्चय, वर्तमान पर्याय जीव को, वह व्यवहार। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह बात व्यवहार और निश्चय की इसमें समाहित की। द्रव्य और पर्याय में। अथवा अभेद और भेद में। अब एक दूसरी बात व्यवहार की लेते हैं।

उस वस्तु के कुछ अन्य वस्तु के संयोगरूप जो अवस्था हो, उसको उस वस्तुरूप कहना भी व्यवहार है, इसको उपचार भी कहते हैं। इसका उदाहरण ऐसे है—जैसे एक विवक्षित घट.... विवक्षित अर्थात् कहना चाहे ऐसा घट कठोर, ऐसा। जो कहना चाहे वह। ऐसा। **नामक वस्तु पर लगावें, तब जिस घट का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप सामान्य-विशेषरूप जितना सर्वस्व है उतना कहा, वैसे निश्चय-व्यवहार से कहना, वह तो निश्चय-व्यवहार है....** घट-घट। घट का सामान्यरूप जो मिट्टी आदि, वह निश्चय और उसकी पर्याय आदि वह व्यवहार। वह सर्वस्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, उसमें आ गये। समझ में आया? उसी और उसी के। अब पर के सम्बन्ध से घट में आवे, उसे इससे व्यवहार कहना। क्या कहा यह, समझ में आया?

घड़ा है न घड़ा? उस घड़ा का सामान्यरूप जो मिट्टी है, वह सामान्य और घड़ा की अवस्था है रंग की, अमुक, वह सब विशेष। अर्थात् सामान्य-विशेष द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उसमें उसके रहे। उसमें और उसमें निश्चय और व्यवहार आया। अभेद, वह निश्चय; सामान्य, वह निश्चय। भेद, वह व्यवहार। घट का घट है उसकी पर्याय है और वह सब व्यवहार। वह तो वस्तु के इस प्रकार से निश्चय-व्यवहार आ गये इसमें। अब दूसरे से थोड़ा व्यवहार कहते हैं, वह दृष्टान्त देकर।

वैसे निश्चय-व्यवहार से कहना, वह तो निश्चय-व्यवहार है और घट के कुछ अन्य वस्तु का लेप करके.... दूसरी चीज का लेप करके **उस घट को...** सफेद लगावे, सफेदा लगावे, लाख लगावे। **नाम से कहना तथा अन्य घटादि में घट का आरोहण करके घट कहना भी व्यवहार है।** घड़े के ऊपर वस्त्र बाँधे। लपेटते हैं न? वह संयोगी दूसरी, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। समझ में आया? वस्त्र ऊपर बाँधते हैं न! घट के ऊपर वस्त्र बाँधे। लपेटकर।

मुमुक्षु : विवाह में नहीं बाँधते घड़े के ऊपर?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। उस परसंयोगी चीज़ को, उसे भी घट का व्यवहार कहा जाता है। घट का व्यवहार पर्यायरूप, वह व्यवहार और संयोगी विशेषता, वह भी एक असद्भूत व्यवहार। आहाहा! बहुत विषय इसमें आ गया है। समझ में आया?

घड़ा सामान्य है, वह निश्चय और उसका भेद पाड़कर वह पर्याय है और ऐसे रंग की है, है उसमें अस्तित्व। उसका नाम उसे व्यवहार कहना। वह तो उसी और उसी का भेद किया हुआ व्यवहार उसमें है, वह कहा। अब संयोग में जो कुछ कहना है, वह भी एक असद्भूत व्यवहार का कथन है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दूसरी बात है। घी का घड़ा कहना, ताँबे का कहना, वह ... घड़ा है, यह दाने का घड़ा है, यह तो संयोग से बात है। परन्तु यह तो उसके साथ कुछ चिपका हुआ हो नया। रंग लगाया हो सफेद। यह गरबो है न, नहीं कहते? रंग लगाया हुआ होता है न, बाहर में?

घट के कुछ अन्य वस्तु का लेप करके उस घट को उस नाम से कहना तथा अन्य पटादि में घट का आरोपण करके घट कहना भी व्यवहार है। लो! **व्यवहार के दो आश्रय हैं**—व्यवहार के आश्रय में दो प्रकार हैं। आहाहा! **एक प्रयोजन, दूसरा निमित्त। प्रयोजन साधने को किसी वस्तु को घट कहना, वह तो प्रयोजनाश्रित है....** प्रयोजन साधना हो और उसे घट कहना, उसे प्रयोजन आश्रित। **और किसी अन्य वस्तु के निमित्त से घट में अवस्था हुई उसको घटस्वरूप कहना, वह निमित्ताश्रित है। इस प्रकार विवक्षित सर्व जीव-अजीव वस्तुओं पर लगाना।** यह आगम की बात की। यह आगम की बात। ओहोहो! छहों द्रव्य की और उसके सामान्य-विशेष की। और उसका सामान्य-विशेषना, वह तो निश्चय-व्यवहार उसका रह गया, परन्तु साथ में सम्बन्ध दूसरा आया, वह भी एक व्यवहार कहा गया है। आहाहा! उसमें कितना याद रहे लोगों को? दरकार नहीं होती। धर्म, बापू! यह तो चीज़ जाननी चाहिए। ऐसे-ऐसे बिना भान के चले, ऐसा नहीं चलता। जिसे हित करना है। ऐसा जन्म-मरण टालने का उपाय जिसे शोधना हो, उसे तो देखना, जानना चाहिए। समझ में आया?

अब, **एक आत्मा ही को प्रधान करके लगाना अध्यात्म है।** अब अध्यात्म आया। एक आत्मा। उसमें पाँच द्रव्य की व्याख्या गौणरूप से। मुख्यरूप से आत्मा की व्याख्या। समझ में आया? भगवान आत्मा एक आत्मा के आश्रय का कथन आवे, उसे

अध्यात्म कथन कहते हैं। **जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं।** लो! जीव-जीव है यह वस्तु, उसका त्रिकालीपना जो रहे सामान्य, उसे भी जीव कहते हैं। वह निश्चय जीव। आहाहा! **और जो जीव अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं।** अपनी अस्तित्व जो दशा, आत्मा का अस्तित्व त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसे भी निश्चय आत्मा कहते हैं और स्वयं पर से भिन्न करके **अपने पर निश्चय लगावे....** यह आया न?

जब अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं। राग से भिन्न आत्मा का अनुभव करे, वह भी आत्मा। वह पर्यायसहित लिया न वहाँ? वह भी आत्मा, ऐसा। पहला सामान्यरूप से आत्मा लिया। अब दूसरे में राग से भिन्न करके अनुभव करना, उसे भी आत्मा कहा। आहाहा! यह तो बहुत सूक्ष्म बात है। है न! उसके... वस्तु अस्ति है। सामान्य, वह भी निश्चय। और उसे भी आत्मा कहना, ऐसा कहते हैं। सामान्यरूप जो त्रिकाल है, उसे भी आत्मा कहना और राग से भिन्न करके आत्मा का अनुभव करे, उसे भी आत्मा कहना। निर्मल पर्यायसहित का, उसे आत्मा। ऐसा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....सहित प्रमाण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आत्मा कहे अर्थात् क्या पहला....

एक आत्मा ही को प्रधान करके लगाना अध्यात्म है। जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं। अकेला द्रव्यस्वरूप जो त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा, उसे भी आत्मा कहते हैं। दूसरी बात। अब पर्याय मिलाते हैं। राग से भिन्न करके आत्मा अनुभव करना, उसे भी आत्मा कहते हैं। जयसुखभाई! ऐसा बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! कहाँ आत्मा किसे खबर? जय भगवान। मिले जन्मे और जीये। यह पैसा-बैसा कुछ इकट्ठा हुआ ऐसा माना। मर गया चला गया, हो गया जाओ चौरासी के चक्कर में। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ चौरासी का चक्कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्कर तो था, परन्तु यहाँ तो उसे खुल्ला दिखता नहीं था। मनुष्य हूँ, ऐसा लगे न? मनुष्य है, पैसा है, स्त्री है, पुत्र है, बँगला है, मकान है। धूल

भी नहीं। वह तो सब पर है...। तू कहाँ उसमें था? समझ में आया?

मुमुक्षु : मनुष्य का मकान होता है। कुत्ते ने कभी मकान बनाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुत्ता क्या? किसी ने मकान कभी बनाया ही नहीं। जड़ से मकान होता है। जड़ के, पुद्गल के परावर्तन के स्वकाल का परिणमन हो, तब वह मकान होता है। ऐसा है। यह तो दवाखाना–बवाखाना तुमने किया नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह शरीर का बँगला यह ... जड़, मिट्टी, धूल है यह। यह आत्मा ने किया नहीं। यह तो मिट्टी है। यह अजीवतत्त्व है, जड़तत्त्व है, मूर्ततत्त्व है। उसकी रचना आत्मा ने की नहीं। आहाहा! 'न कारण न कर्ता न कारयिता, न कर्ता' आता है न? प्रवचनसार में नहीं? इस शरीर के रजकणों का इकट्ठा करना मैंने नहीं किया, मैंने कराया नहीं, मैंने कर्ता का अनुमोदन नहीं किया। आहाहा! मिट्टी का बँगला बड़ा यह जड़, मिट्टी, धूल। भगवान आत्मा तो अन्दर भिन्न है, अरूपी है। समझ में आया? उस भिन्न की रचना मैंने नहीं की। मुझसे हुई ही नहीं। करनेवाला जो है, वह तो अजीव है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा को दो प्रकार से सिद्ध किया है। एक तो त्रिकाली ध्रुव नित्य है, अविनाशी है, नया हुआ नहीं, नाश होता नहीं। जो आत्मा है अन्दर, वह कहीं नया नहीं होता, है। नाश नहीं होता। है, उसका नाश क्या हो? ऐसी जो सामान्य त्रिकाली चीज़, उसे आत्मा कहना, और उसे राग से भिन्न करके आत्मा की निर्मल पर्याय से अनुभव करना, उसे आत्मा कहना। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! अभी आत्मा किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! स्वयं कौन, उसकी खबर नहीं होती। घर के लड़के चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा। कहावत है या नहीं तुम्हारे यह? घर के लड़के चक्की चाटे, दूसरे को आटा दो दूसरे को। इसी प्रकार तू कौन है, यह खबर है? मेरी खबर नहीं और दूसरे की खबर की जड़ की, धूल की। आहाहा!

अन्दर आत्मा के दो प्रकार वर्णन किये। एक आत्मा नित्य आत्मा कहा है न नियमसार में। त्रिकाल ध्रुव वह आत्मा नित्य आत्मा। अब यहाँ अन्दर उसकी जाति का अनुभव करना। राग से भिन्न करके शुद्ध वस्तु है, ऐसी शुद्ध की पर्याय का अनुभव

करना, वह भी आत्मा है। कहो, वजुभाई! दो प्रकार कहे। एक सामान्य और एक विशेष। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा सामान्य और विशेष क्या होगा? सामान्य अर्थात् जिसमें भेद नहीं, एकरूप त्रिकाली वस्तु है, उसे सामान्य कहते हैं। उसे आत्मा कहते हैं। और वह आत्मा अपने स्वभाव का आश्रय लेकर राग से भिन्न करके, आनन्द और शान्ति का वेदन अनुभव करे, उसे भी आत्मा कहते हैं। क्योंकि रागादि, वह आत्मा नहीं; इसलिए अनुभव, वह आत्मा है, ऐसा कहा है।

यह तो आता है न १४वीं गाथा में। आत्मा शुद्धनय कहो, आत्मा अनुभव कहो। आहाहा! यह अपेक्षा है उसमें। ऐसे यह पर्याय अनुभव है, उसे आत्मा कहा, परन्तु वह व्यवहार आत्मा। और त्रिकाली सामान्य, वह निश्चय आत्मा। आहाहा! ऐई! त्रिकाली भगवान आत्मा अनादि-अनन्त ध्रुव, वह निश्चय आत्मा और उसका अनुभव पर्याय, वह व्यवहार आत्मा। आत्मा कहा पर्याय आत्मा। वह निश्चय आत्मा। दो होकर पूरा आत्मा। आहाहा! समझ में आया? उसके प्रमाणज्ञान में राग नहीं आया। निश्चय त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह आत्मा और उसके अनुभव की निर्मल पर्याय, वह आत्मा, दो होकर प्रमाण कहा। राग नहीं। समझ में आया? ऐसी बातें अब। निवृत्ति न हो। मुश्किल से एक घण्टा मिले। बाकी २३ घण्टे मजदूरी करे कमाने की, खाने-पीने की। ऐई! भगवानजीभाई! समय मजदूरी बड़ी। सामने यहाँ महिलायें आवे न थोड़ी? चार घण्टे काम में एक घण्टे खड़े रहे, आधे घण्टे खड़े रहे। ऐसे कर ले, ऐसे कर ले। और यह बनिया तो बराबर धन्धे में बराबर काम सवेरे से उठकर। बड़ा मजदूर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बराबर चार घण्टे। कल एक लड़की खड़ी थी वस्त्र को ऐसे-ऐसे करती थी। कल ऐसे-ऐसे करके चली जाये, खड़ी रहे, भाग जाये। ऐसे जाये और ऐसे जाये। आहाहा! कहा, यह क्या करती है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा मजदूरी लगायी है? उसमें लड़के हुए नहीं। बहुत तुम्हें लड़के करने थे। ... कहो, समझ में आया? मजदूरी करने का प्रयत्न करता

है अज्ञानी। राग और द्वेष, विकल्प पूरे दिन। आहाहा! ऐई! मकनभाई! आठ-आठ घण्टे। वह मजदूर हो, वह आठ घण्टे करे। आठ से बारह, दो से छह। बनिया मजदूर। सवेरे छह से रात्रि के नौ बजे तक। हमारे दुकान में ऐसा कहते पालेज में। लोग निवृत्त न हो। साधु के पास रात्रि में जाये। साधु आवे न पालेज। मैं तो निवृत्त दुकान से, साधु आवे तो दुकान छोड़ दूँ। दुकान में नहीं। फिर वे रात्रि में आवे साधु के पास। ओहो! रातड़िया श्रावक आये ऐसे रातड़िया। रात्रि में निवृत्त। सवेरे से रात तक। एक घण्टे पहले नामा लिख दे, इतना करे। वह देरी से नामा लिखते, दस बजे लिखते। यह वे आठ बजे लिखकर फिर एक घण्टे सुनने आवे। आहाहा! ऐसे बड़े मजदूर है या नहीं? फिर भले पाँच-पच्चीस लाख इकट्ठे करे। धूल किसने इकट्ठी की? वह तो पुण्य के कारण है। वह क्या इसकी चतुराई के कारण है?

मुमुक्षु : परन्तु वह दुकान लगायी इसलिए आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। कौन लगाये दुकान? भाव लगाया है इसने अज्ञान का। ऐई! आहाहा! बुद्धि बिना के लोग कितने ही पाँच-पाँच लाख की आमदनी महीने-महीने में करते हैं। और बुद्धि के खां को महीने में दो हजार आमदनी में पसीना उतरता है। यह कहाँ उसकी चतुराई का काम है? वह तो पूर्व का पुण्य हो तो आता है। इसने अज्ञान की दुकान लगायी, राग की। धीरुभाई! आहाहा! यह राग को करे और भोगे। कहते हैं कि वह आत्मा नहीं। पर को तो भोग सकता ही नहीं। आहाहा! परन्तु वह राग के भाव को करे और भोगे, वह तो अनात्मा है, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

आत्मा तो उसे कहते हैं, दो प्रकार से कि त्रिकाली वस्तु को आत्मा कहते हैं और त्रिकाली वस्तु को राग से भिन्न करके अनुभव करे, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! ... कहा था न जीव का जीवन? जीव का जीवन क्या? आहाहा! यह शरीर से जीना, पैसे से जीना, वह जीवन इसका कहलाये? आहाहा! और राग से और पुण्य से जीना, वह जीवन कहलाये जीव का? अधर्मभाव जो विकारभाव, दोषभाव, वह उसका जीवन है? भगवान आत्मा का जीवन और इससे जीवत्वशक्ति पहली डाली है न? जीवत्वशक्ति पहली डालने का हेतु यह है। भगवान आत्मा जीवत्वशक्ति से त्रिकाली सामान्य और

त्रिकाली सामान्य, वह आत्मा वस्तु पूरी। अब जीवनशक्ति का परिणमन होना, ज्ञाता-दृष्टा आनन्दपने होना, वह व्यवहार आत्मा अर्थात् कि वह आत्मा। वह पर्याय का आत्मा। आहाहा! कैसे कथन वीतराग के हैं? ओहोहो! चारों ओर से ऐसे वस्तु यह खड़ी होती है। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा उसे कहते हैं। दो प्रकार से आत्मा कहते हैं। एक तो भगवान त्रिकाली वस्तु, निश्चय वस्तु वही आत्मा। कायम रहनेवाला। जिसमें बदलना नहीं परिणमना नहीं, हिलना नहीं, ऐसी जो त्रिकाली चीज़, उसे आत्मा कहते हैं और वह दूसरा आत्मा तो राग और पर से भिन्न करके और उसकी जाति की पर्याय को प्रगट करके, उसे अनुभव करे, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! उस सामान्य का वह विशेष है, ऐसा कहते हैं। उस सामान्य का विशेष वह राग नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह मुद्दे की रकम की बात है। खबर नहीं मिले बेचारे को। आहाहा! रंक जैसा घूमे। वैसे भले करोड़पति और अरबोंपति कहलाते हों। बड़े भिखारी हैं।

जिसे निज सम्पदा की खबर नहीं होती और परसम्पदा को मेरी माने, वह तो बड़े मूढ़ जीव हैं। आहाहा! बलुभाई! तुम सब तुम्हारे पैसेवालों को यह लोग सुखी कहते हैं। लो! दस लाख दिये थे इन्होंने और दस लाख डाले बलुभाई ने। ऐसी कुछ बातें करते हैं। यह पचास लाख का... किया। क्या कहते हैं वह तुम्हारा वह? दवाखाना-दवाखाना। कारखाना-कारखाना। पहले बीस लाख की फैक्ट्री, बाद में पचास लाख की बनायी। ऐसी बातें लोग करते हैं। यहाँ किसी ने सुनी नहीं।

मुमुक्षु : बात सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कहता था पहले दस लाख सरकार ने दिये, दस लाख स्वयं ने दिये। फिर अब तो पचास लाख की बड़ी फैक्ट्री। वहाँ गये थे। भोजन किया था—आहार किया था उनके घर। कहो, समझ में आया? कौन बनावे फैक्ट्री? उसमें राग को रचा, वह आत्मा नहीं, कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं, हों! राग आस्रव है न? राग आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का राग। ऐई! शान्तिभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल पर्याय उसकी अपनी है। वह प्रयोजन सिद्ध करने के लिये व्यवहार कहा है। प्रयोजन ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! व्यवहार प्रयोजन निमित्त अपने दो कहे न? प्रयोजन यह है व्यवहार को। वह अपनी पर्याय ही है। और अवस्था, वह अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई उसकी जाति है। वह प्रयोजन उसे सिद्ध करने के लिये उसे व्यवहार कहा और राग को व्यवहार कहना, वह असद्भूत व्यवहार है। सद्भूत तो जो वस्तु त्रिकाल ध्रुव है, उसका भाग अंश पड़कर यहाँ आवे, उसे सद्भूत व्यवहार कहते हैं। आहाहा!

मोक्षमार्ग को प्रगट करे, वह भी उसका सद्भूत व्यवहार का जीवन है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का भारी सूक्ष्म पड़े लोगों को। सुनने को मिले नहीं। वहाँ कहे दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो और यात्रा करो, लो। मर जाये वहाँ अब। ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! तेरे जीवन की ज्योति की तो तुझे खबर नहीं और कैसे जीना पर्याय में, उसकी तुझे खबर नहीं। वह राग और वह जीवन जीना है? आहाहा! गजब बात है। ऐसी वस्तु की स्थिति को किस प्रकार कैसे तह बैठाते हैं, देखो न! व्यवहार की तह ऐसे बैठनी चाहिए।

मुमुक्षु : ....सर्जाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ...है वह और दूसरी बात। मोक्षतत्त्व। यह दूसरी बात है। अभी तो पर्याय की निर्मलता को आत्मा कहते हैं। पर्याय में रागादि हो, उसे आत्मा नहीं कहते। व्यवहार से आत्मा कहना हो तो भी राग से भिन्न पड़कर शुद्ध चैतन्य का अनुभव, उसे व्यवहार आत्मा कहा जाता है। आहाहा! धीरुभाई! पानी उतर जाये ऐसा है सब। वह चतुर होकर घूमे बड़े चतुर के पुत्र मानो हम ऐसे हुए। ओहोहो! धूल भी नहीं चतुराई तेरी। चतुर तेरा चतुरपना कब कहें?

कहा था न एक बार, नहीं? डाह्याभाई धोलसा थे न। फिर एक बार हम नाटक देखने गये थे वहाँ पालेज से भरूच। (संवत्) १९६४-६५ की बात होगी। ६४ की।

फावाभाई साथ में थे। ६४ के बाद। उसका विवाह ६४ में हो गया। ६४ में उसका विवाह था। पश्चात्, उस डाह्याभाई को... आठ दिन में तीन बार (नाटक) करे ६४ के वर्ष, हों! पन्द्रह सौ का एक दिन का था। तब पन्द्रह सौ। ६५ के वर्ष। वह फिर मरने पड़ा डाह्याभाई। नाटक बहुत बनाये हुए। अरे! डाह्या तेरा डह्यापन तब कहें कि यह शान्ति और समाधि से मरण करे तो तेरा डह्यापन कहें। बाकी सब तूने डाह्यापना डुबोया। आहाहा! ६५ के वर्ष में आठ दिन तीन बार रात्रि में नाटक करते थे। रात्रि में करे न रात्रि में?

एक मीराबाई का नाटक था, देखने गये थे। ६५ का वर्ष है। संवत् १९६५। कितने वर्ष हुए? ६४। ६४ वर्ष पहले की बात है। समयसार... मीराबाई का नाटक था। समझ में आया? देखो, आया वह। आहाहा! वैराग्य का नाटक किया था। और यह तो सब फिल्म-बिल्म सब कुकर्म कर डाले हैं। ऐसे स्त्री देखे एक ऊपर हाथ डाला हो। अरे! यह वह कहीं सज्जनता! ऐसे बाहर फोटो करे और यह क्या लक्षण तेरे? आहाहा! काल सब बहुत बदल गया। देखो न फोटो में वह किया हो। फिर महिला का हाथ डाला हो और ऐसे देखती हो। यह क्या है यह तेरा? वह तो वैराग्य के नाटक पहले, हों! नरसिंह मेहता, मीराबाई, भर्तृहरि, अनुसूईया। एक अनुसूईया सती हो गयी। वहाँ हमारे नाटक आया था। बड़ा नाटक आया पालेज में। अनुसूईया सती नाटक। नर्मदा की बहिन। ऐसे देखते-देखते अन्दर से ऐसे वैराग्य हो जाये अन्दर से। कि ओहोहो! ऐसा हो जाये कि अपने कब होंगे? ऐसे वैरागी थे।

यह वैराग्य तो भगवान उसे कहते हैं। आहाहा! राग से भिन्न पड़कर... आहाहा! जो तेरी चीज़ है आनन्द की मूर्ति प्रभु, उस आनन्द का धाम त्रिकाली, उसे—सामान्य को निश्चय आत्मा कहते हैं, उसे भी आत्मा कहते हैं और उस आत्मा के आश्रय से होनेवाली वीतरागीदशा को भी आत्मा कहते हैं। आहाहा! वह सद्भूत व्यवहार का आत्मा। वह निश्चय आत्मा। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमात्मा सभा में ऐसा कहते थे, उसका यह स्पष्टीकरण करते हैं। भगवान की वाणी में यह सब आया हुआ था। समझ में आया? '**जिण सुत्तं**' कहा न?

जिन के सूत्र में। ऐसा कहा है न? भगवान के सूत्रों में व्यवहार-निश्चय आया है। समझ में आया?

अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे,.... लो, पहला तो यह आया। **भिन्न अनुभव करके, उसको भी आत्मा कहते हैं। जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे तब इस प्रकार जो आप अनादि-अनन्त अविनाशी सब अन्य द्रव्यों से भिन्न, एक सामान्य-विशेषरूप, अनन्त धर्मात्मक, द्रव्य-पर्यायात्मक जीव नाम शुद्ध वस्तु है, वह कैसा है**—अब यह कहते हैं। क्या कहा इसमें? कि सामान्य जो आत्मा कहते हैं और अनुभव को आत्मा कहते हैं। इस प्रकार **अपने को सब जीवों से भिन्न....** सब जीव से भिन्न। **उसको भी आत्मा कहते हैं, जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर....** क्या कहा यह? **निश्चय लगावे.... अपने पर निश्चय लगावे....** आहाहा! मेरी पर्याय मुझमें, मेरा द्रव्य मुझमें, ऐसा निश्चय लगावे। **तब इस प्रकार जो आप अनादि-अनन्त अविनाशी सब अन्य द्रव्यों से भिन्न, एक सामान्य-विशेषरूप,....** देखो, यह विशेष डाला वापस, हों! पर से भिन्न ऐसा जो विशेषपना है, ऐसा सामान्य-विशेष **अनन्त धर्मात्मक, द्रव्य-पर्यायात्मक....** अनन्त धर्मात्म त्रिकाली द्रव्य और पर्याय। आहाहा! भारी सूक्ष्म! वह **जीव नामक शुद्ध वस्तु है,....** वह जीव नाम की शुद्ध वस्तु उसे कहा जाता है। उसकी व्याख्या अब विशेष करेंगे। परन्तु यह। पहले आत्मा कहा सामान्य, पश्चात् विशेष कहा और फिर कहते हैं कि वह सामान्य-विशेषस्वरूप जो वस्तु है, ऐसा जो जीव, उसे शुद्ध वस्तु कही, उस शुद्ध वस्तु की विशेष व्याख्या नीचे कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक-२४-१०-१९७३
गाथा - ६ प्रवचन-३५

यह अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ है। छठवीं गाथा का भावार्थ चलता है न? जरा सूक्ष्म है परन्तु अब समझनेयोग्य है न यह सब। यह धनतेरस और यह सब दिन। धनतेरस का अर्थ धन अर्थात् आत्मा की लक्ष्मी, उसका पूजन करना, वह धनतेरस है। वह धनतेरस है।

मुमुक्षु : यह पूजा करे लक्ष्मी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धूल में, वह तो मुफ्त का। आत्मा आनन्दस्वरूप लक्ष्मी है। उसका अन्दर पूजन करना, अर्थात् बहुमान करके सत्कार करना, इसका नाम धनतेरस है। अपने यहाँ पेराग्राफ आया न।

यहाँ देखो फिर से। **जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं।** है ? दूसरा पेराग्राफ है ४४ पृष्ठ पर। **एक आत्मा ही को प्रधान करके लगाना अध्यात्म है।** इसके बाद। निकला ? कहो, बलुभाई क्या हुआ ? जरा सूक्ष्म बात है और अधिक स्पष्ट होवे तो उसे समझने में आवे कि **जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं।** अर्थात् ? जो त्रिकाल ध्रुव है न ध्रुव नित्य ? उसे सामान्य अपेक्षा से आत्मा कहते हैं। सामान्य अर्थात् उसमें भेद नहीं। उसमें विशेष नहीं, उसमें पर्याय नहीं, ऐसी बात है। समझ में आया ?

वह सामान्य... **जीव सामान्य को भी आत्मा कहते हैं। जब अपने को....** अब दूसरी बात। **सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं।** पहले क्या कहा ? जो त्रिकाली नित्य वस्तु ध्रुव है, उसे आत्मा कहते हैं और उसका अनुभव करे। शुद्ध चैतन्यद्रव्य है, ऐसा पर्याय में अनुभव करे तो उस पर्याय को भी आत्मा कहा जाता है। समझ में आया ? **जब अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं।** कहो, समझ में आया ? सामान्य और विशेष इस प्रकार से डाला है। सूक्ष्म है इसमें, बलुभाई ! यह दवा जैसा नहीं। उसमें तो गप्प भी चले सब। यह तो बहुत कठिन सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : इनकी दवा भी बहुत कठोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा-बवा समझने जैसा है। आहाहा!

कहते हैं, यह दवा है। आत्मा एक समय में जो ध्रुव सामान्य जो वस्तु है, उसे आत्मा कहना। शान्तिभाई! जो त्रिकाली द्रव्य है, सामान्य वस्तु है, उसे आत्मा कहना, वह एक बात। दूसरी **जब अपने को सब जीवों से भिन्न अनुभव करे, उसको भी आत्मा कहते हैं।** जब आत्मा राग से भिन्न, राग के विकल्प से और शरीर, कर्म से तो भिन्न है ही। परन्तु राग से भिन्न करके आत्मा का अनुभव, वह पर्याय है। उस अनुभव की पर्याय को भी आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? दो बोल हुए।

अब उसे **जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके,....** अब तीसरा बोल। यह तीसरा बोल, यह सामान्य-विशेष इकट्ठा करते हैं इसमें। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! इन्होंने बहुत सरस निश्चय और व्यवहार बहुत सरस स्पष्टीकरण किया है। दो बोल तो हो गये। अब **जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके,....** जब आत्मा राग से, विकल्प से भिन्न जैसा स्वरूप उसका शुद्ध चैतन्य है, वैसा पर्याय में अनुभव करे। समझ में आया? **अपने पर निश्चय लगावे....** तब अपने में निश्चय कहे। आहाहा! पर्यायसहित है न? **अनुभव करके,...** है न? **अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे....** वजन यहाँ है। **जब अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे....** वजन यहाँ है। समझ में आया? सूक्ष्म तो है, भाई! यह वस्तु। परन्तु कहीं कभी अभ्यास न करे और कुछ समझे नहीं और ऐसा का ऐसा चलती जाये पोल अनादि की। आहाहा!

मुमुक्षु : आज मुद्दे की रकम है, प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्दे की रकम यह है।

मुमुक्षु : जो ज्ञान.... तीन काल—तीन लोक में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया?

पहले दो बोल तो ऐसे कहे कि जो त्रिकाली सामान्य वस्तु, वही आत्मा निश्चय। और उसका अनुभव करना, राग से भिन्न करके (अनुभव करना), वह भी आत्मा। वह

पर्याय का आत्मा, वह व्यवहार आत्मा। अब तीसरे में ऐसा कहते हैं कि जो अनुभव करके निश्चय लगाना कि जो पर्यायसहित कहा था न? आत्मा राग से, विकल्प से भिन्न करके **अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे, तब इस प्रकार जो आप अनादि-अनन्त अविनाशी....** भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त अविनाशी **सब अन्य द्रव्यों से भिन्न, एक सामान्य विशेषरूप....** सामान्य जो पहले कहा था ... ध्रुव और निर्मल अनुभव की पर्याय विशेषरूप। समझ में आया? उसमें तो विशेष पर्याय में अगुरुलघु भी डालेंगे उसमें।

कहते हैं, कि **सामान्य विशेषरूप अनन्तधर्मात्मक, द्रव्य....** अनन्त धर्मस्वरूप, अनन्त गुणस्वरूप द्रव्य। परन्तु सामान्य और विशेष दो होकर। आहाहा! यह निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करते हैं कि शास्त्र में निश्चय-व्यवहार कहा है, तत्प्रमाण जानकर कहा है न? '**सुत्तं जिणउत्तं**' सूत्र में भगवान ने—जिनेश्वर ने कहा। '**ववहारो तह य जाण परमत्थो**' व्यवहार और परमार्थ दोनों को ऐसा जिनसूत्र में कहा है, उसे जानना चाहिए। आहाहा! कहते हैं कि जब अपने को भिन्न अनुभव करे, राग से भिन्न अनुभव करे। परद्रव्य से कहा है न? **अपने पर निश्चय लगावे....** भाषा तो सादी है, परन्तु अब जरा भाव तो ऊँचे हैं, उसमें क्या करना?

स्वयं आत्मा सामान्य जो नित्य ध्रुव, वह आत्मा और पर्याय में उसका अनुभव करना, राग से भिन्न वह आत्मा। अब सामान्य-विशेष दो हो गये। अब **अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे....** तो सामान्य-विशेष दोनों उसमें आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म भी अब सुनना पड़ेगा या नहीं, इसे समझना पड़ेगा या नहीं? अनन्त काल ऐसा का ऐसा बिताया इसने। आहाहा! वास्तविक तत्त्व को समझे बिना व्यवहार से धर्म होता है और निश्चय से ऐसा होता है और निश्चय से अर्थात् फिर पर्याय में मलिनता होती ही नहीं। ऐसी गड़बड़ की है अनादि की। ऐसी यहाँ छनावट करते हैं। समझ में आया? धीरे-धीरे समझना। धीरे-धीरे। आहाहा!

अपने को सबसे भिन्न अनुभव करके,.... भगवान आत्मा को राग से, शरीर, वाणी, मन से और पर से तो ठीक, अब वह तो पर भिन्न रह गया। परन्तु राग से भी।

विकल्प है, वह आस्रवतत्त्व है, भावबन्ध है। भगवान आत्मा उससे भिन्न अबन्धस्वरूप है, उसका जो अबन्ध परिणाम अनुभव में, ऐसा अनुभव करके जो आत्मा को जाने तो किस प्रकार से कैसे जाने? **अपने पर निश्चय लगावे....** सामान्य—विशेष दोनों अनुभव करके निश्चय लगावे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न सामने पुस्तक? **निश्चय लगावे, तब इस प्रकार जो आप अनादि-अनन्त अविनाशी....** अनादि-अनन्त। आहाहा! है... है... है... अनादि-अनन्त। अविनाशी। अनादि-अनन्त है, इसलिए वह नाश हो, ऐसा नहीं है।

जब सब अन्य द्रव्यों से भिन्न,.... परपदार्थ से भिन्न **एक सामान्य-विशेषरूप,....** देखा! दोनों डाले। अनुभव करके, कहा है न? आहाहा! सामान्य जो त्रिकाली ध्रुव और विशेष जो वर्तमान राग से भिन्न पड़ी हुई अनुभवदशा, वह विशेष। शशीभाई! देखो न यह। गृहस्थाश्रम में ऐसा स्पष्टीकरण करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पहली साधक की बात है न।

सामान्य-विशेषरूप, अनन्त धर्मात्मक, द्रव्य-पर्यायात्मक.... समझ में आया? त्रिकाली द्रव्य जो शुद्ध वस्तु और उसका राग से भिन्न पड़कर अनुभव, वह पर्याय। वह सामान्य अनादि-अनन्त और विशेष पर्याय वर्तमान अनुभव। ऐसा अनन्त धर्मस्वरूप द्रव्य और **पर्यायात्मक जीव....** वह द्रव्य और अवस्था स्वरूप **जीव नामक शुद्ध वस्तु है, वह कैसा है**—यह कहते हैं। समझ में आया? आत्मा... बहुत सरस बात ली है। निश्चय और व्यवहार का स्पष्टीकरण शास्त्र में भगवान ने '**सुत्तं जिणउत्तं**' ऐसा। '**सुत्तं जिणउत्तं**' सूत्र जिनेश्वर भगवान ने कहे, वे शास्त्र में व्यवहार और निश्चय दो हैं, ऐसा इसे जानना चाहिए। जानना कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने? तो निश्चय एक यह कि त्रिकाली द्रव्यस्वरूप वह निश्चय, वह आत्मा। और पर्याय की निर्मलता, वह भी आत्मा, परन्तु वह व्यवहार। त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार। परन्तु दो होकर जब अनुभव की दृष्टि से देखे तो वह सामान्य और विशेष दो होकर निश्चय है।

मुमुक्षु : बहुत गहरी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अधिकार ही ऐसा आया है, उसमें क्या करे? समझ में आया?

उसमें प्रमाण तो दूसरा होता है। यह तो रागादि को इकट्ठा जाने तो प्रमाण हो। राग जो भिन्न है, उसे जाने और निर्मल पर्यायसहित का आत्मा, वह निश्चय। तथा रागादि साथ में है, वह व्यवहार। इन दो को जाने तो प्रमाण, ऐसा। आहाहा! शास्त्र में भगवान ने कहे हुए शास्त्र में निश्चय और व्यवहार किसे कहना, और निश्चय-व्यवहार क्या है? उसकी यह पद्धति समझाते हैं। आहाहा! कहते हैं। उसे कहते हैं अब। **कैसा है—**उसे कहते हैं, हों! यह सामान्य-विशेष जो कहा, उसे अब कहते हैं।

शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिये हुए.... क्या कहा? कि चेतना को अब लेना है। द्रव्य का स्वरूप कायम। वह कैसी चेतना? कि दर्शन-ज्ञानमयी। दृष्टा और ज्ञानमय जो चेतना जो त्रिकाल वस्तु भगवान त्रिकाल जैसे चेतन, उसकी चेतना त्रिकाल। वह चेतना अर्थात् दर्शन-ज्ञानमयी। चेतना दो रूप से। दो का एकरूप। **असाधारण धर्म को...** ऐसा असाधारण एक ही यह धर्म है। इन अनन्त गुणों को धर्म में एक यह चेतना असाधारण। उसे **लिये हुए, अनन्त शक्ति का धारक है,....** कौन? आत्मा। यह अनन्त शक्ति का धारक है। शुद्ध वस्तु कही है न अन्दर? ऊपर।

उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है। अब उसमें जो सामान्य भेद। सामान्य का भेद सामान्य **चेतना अनन्त शक्ति का समूह....** अनन्त शक्ति का समूह सामान्यरूप से, वह द्रव्य। समझ में आया? है जरा, है वस्तु ऐसी है। **उसमें...** अर्थातृ अनन्त शक्तिस्वरूप जो वस्तु है, उसमें भेद, उसका भेद है, परन्तु वह वस्तु का भेद, हों! परन्तु चेतना अनन्त शक्ति का समूह, वह द्रव्य। उसका जो चेतना वस्तुभेद, उसका समूह पूरा वह आत्मा। कहो, समझ में आया?

उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है। अब उसमें भेद। **अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य ये चेतना के विशेष हैं....** वह सामान्य चेतना कही थी। दर्शन-ज्ञानस्वरूप चेतना, वह सामान्य चेतना अनन्त शक्ति सम्पन्न, वह द्रव्य। समझ में आया? भाई! द्रव्यानुयोग का विषय। ऐसा का ऐसा ऊपर से और ऊपर से चल गया है,

इसलिए ऐसी बात इसे ऐसी लगे कि यह क्या है परन्तु। उसका तत्त्व ऐसा। भगवान ने इस प्रमाण कहा है। '**जिणउत्तं**' ऐसा कहा है न? '**सुत्तं जिणउत्तं**' जिन जब केवली हुए। भगवान की वाणी में केवली होने के बाद यह बात आयी है। निश्चय और व्यवहार वीतराग के मार्ग में यह है।

कहते हैं कि जो आत्मा, उसका सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्तिवाला, वह द्रव्य। समझ में आया? और उसका भेद **अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य ये चेतना के विशेष हैं....** सामान्य जो चेतना कही थी, वह सामान्य चेतना अनन्त शक्तिसम्पन्न द्रव्य, ऐसा कहा था। उसमें जो सामान्य चेतना कही, उसमें चार भेद। अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य **ये चेतना के विशेष हैं....** यह तो उसका गुण है, कहते हैं। अनन्त शक्ति सामान्य चेतनास्वरूप, वह द्रव्य। अब वह अनन्त शक्तिसम्पन्न जो उसके जो आनन्दआदि गुण। है न सुख वीर्य आदि? वह विशेष। वह गुण। आहाहा! वस्तु जो है आत्मा पदार्थ, उसका जो सामान्य चेतना अर्थात् भेद किये बिना की चेतना। भले दर्शना-ज्ञानरूप चेतना। वह चेतना उसका त्रिकाली रूप है। उस चेतना शक्तिसम्पन्न, वह द्रव्य। आहाहा! समझ में आया? वह भेद, वह विशेष, वह गुण।

वह एक चेतना त्रिकाली चेतना की सम्पन्न जो वस्तु वह द्रव्य। अब उस चेतना के प्रकार जो पड़े, वे उसके गुण। आहाहा! समझ में आया? जयसुखभाई! तुम्हारी वकालत में ऐसा आया नहीं होगा कहीं।

मुमुक्षु : भटकने का आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने का आता है। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तुरूप से अन्दर जो है पदार्थ, वह सामान्यरूप से जो त्रिकाल है, वह आत्मा और उसका राग से भिन्न अनुभव करना, वह भी आत्मा। वह सामान्य-विशेष होकर आत्मा कैसा है? उसका यह वर्णन करते हैं अब। यह ऐसा कहा न, देखो न। **शुद्ध वस्तु है, वह कैसा है**—ऐसा। समझ में आया? अरे! ऐसी मेहनत करना? इसे समझना कठिन पड़े, लो। बाहर की बातें करे तब चतुर मानो उतरा हो देव का पुत्र, ऐसी बातें करे। उसका ऐसा है... उसका ऐसा है... उसका ऐसा है... ऐई! दवा की बातें करे तो बलुभाई कैसी करते होंगे?

मुमुक्षु : वह तो फौरेन में जाये तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : फौरेन में। बाहर अफ्रीका में गये थे। तीन महीने वहाँ रहे थे। सुना यह कमाने के लिये, पाप के लिये तीन महीने वहाँ रहे, कहते हैं। और यह आत्मा के लिये रहना हो तो जरा... आहाहा! ऐसा समय स्वरूप के साधन का काल है यह तो। आहाहा! जन्म-मरण को मिटाने के पंथ का काल है, भाई तुझे! आहाहा! कहते हैं, यह द्रव्य, गुण और पर्याय तीन वर्णन करने हैं अब। ऐसा जो कहा था **जीव नामक शुद्ध वस्तु है, वह कैसा है—शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्म को लिये हुए, अनन्त शक्ति धारक है, उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्ति का समूह द्रव्य है।** सामान्य चेतनास्वरूप त्रिकाली, उसे द्रव्य कहते हैं, ऐसा कहते हैं। और उस चेतना के भेद, वे गुण हैं। आहाहा! ठीक, लोग इकट्ठे हुए हैं, अब सुने तो सही। यह सब आये हैं अलग-अलग बहुत आये हैं। हमारे शान्तिभाई ने कहा ध्यान देना, हों! यह तो... है यहाँ। वहाँ आज आया फिर मुहूर्त। आहाहा! यह तो मोक्ष के मण्डप की बातें हैं। ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : इसका नाम भी प्रवचनमण्डप है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनमण्डप बात सच्ची, लो। प्रवचनमण्डप है न यह। आहाहा!

दो बातें हुईं। क्या कहा? एक द्रव्य और गुण। द्रव्य किसे कहा यहाँ? यह वहाँ सामान्य जो कहा था, वह उसे यहाँ द्रव्य किस प्रकार कहा? कि जो सामान्य चेतना दर्शन-ज्ञान का एकरूप, ऐसी अनादि-अनन्त जो शक्तिमात्र वह द्रव्य, ऐसा। द्रव्य, वह यह अनन्त शक्तिमात्र जो ज्ञान, दर्शन का रूप चेतना, उसकी शक्तिमात्र जो द्रव्य। अब उसके जो भेद ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य, वह गुण। समझ में आया? **और अगुरुलघु गुण के द्वारा षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप परिणमन करते हुए...** यह अगुरुलघु नाम के गुण द्वारा पर्याय में षड्गुण हानि-वृद्धि। यह सूक्ष्म बात है।

जीव के त्रिकालस्वरूप अनन्त पर्यायें हैं। यह जीव को त्रिकाल स्वरूप अनन्त अवस्थायें हैं। वह पर्याय है। तीन बातें कीं। द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य उसे कहते हैं कि जो सामान्य चेतना अनादि-अनन्त ज्ञान-दर्शन का एकरूप ऐसी अनन्त शक्ति का

स्वरूप, वह द्रव्य और उस चेतना के चार भेद करके ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य, वह गुण और उस चेतना की वर्तमान पर्याय अगुरुलघु की षड्गुण हानि-वृद्धि, वह पर्याय। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .... इकट्ठी आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव में तो निर्मल पर्याय आ गयी, फिर यह पर्याय इकट्ठी आयी। अगुरुलघु की पहली आयी। यह तो सामान्य-विशेष में आ गयी अन्दर। उसकी व्याख्या चलती है न? सामान्य-विशेषरूप जो आत्मा शुद्ध वस्तु कैसी है? वह ऐसा है, ऐसा कहते हैं। अनुभव की पर्याय इकट्ठी आ ही गयी है। भाई! समझ में आया इसमें? वस्तु सामान्य-विशेषरूप वस्तु, सामान्य जो त्रिकाली आत्मा और विशेष निर्मल अनुभव, वह आत्मा। यह दो होकर जो सामान्य-विशेषरूप शुद्ध वस्तु, वह कैसी है, वह यहाँ चलता है। अर्थात् सामान्यरूप और विशेषरूप अनुभव तो पर्याय इकट्ठी है ही, परन्तु उसके साथ अगुरुलघु षड्गुण हानि-वृद्धि की पर्याय को यहाँ लिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव करके...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सामान्य-विशेष (अर्थात्) जो अनुभव पर्याय और सामान्य ध्रुव, यह दो होकर जो शुद्ध वस्तु है, वह कैसी है, वह यहाँ चलता है। है न, देखो न अन्दर। समझ में आया?

इस प्रकार शुद्ध जीव नामक वस्तु को.... इस प्रकार से शुद्ध जीव नाम की वस्तु भगवान आत्मा **सर्वज्ञ ने देखा, जैसा आगम में प्रसिद्ध है,....** भगवान ने जैसा कहा, जाना, वैसा '**जिण उत्तं**' सूत्र में प्रसिद्ध है, ऐसा कहते हैं। **वह तो एक अभेदरूप शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है,....** वह पर्यायसहित। समझ में आया? अभेद... अभेद हों वहाँ। द्रव्य, गुण और पर्याय का अनुभव, वह अभेद है। वह **शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है, इस दृष्टि से अनुभव करे तब तो ऐसा है....** आहाहा! समझ में आया? भले थोड़ा समझ में आये परन्तु बराबर समझना चाहिए न! लम्बी-लम्बी बड़ी बात, परन्तु वस्तुस्थिति क्या है, ऐसा इसके भाव में न आवे, तब तक जाने किस प्रकार? स्थिति ही ऐसी है वस्तु की, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वह तो एक अभेदरूप शुद्ध निश्चयनय का विषयभूत जीव है, इस दृष्टि से अनुभव करे.... अनुभव करे। **तब तो ऐसा है और अनन्त धर्मों में भेदरूप किसी एक धर्म को लेकर कहना व्यवहार है।** लो! एक में से एक धर्म को पृथक् करके कहना। अभेद है, वह तो ऐसा है। परन्तु भिन्न करके कहना, वह व्यवहार। समझ में आया? ऐसा जिनसूत्र में '**जिणउत्तं**' जिनेश्वर ने इस प्रकार से कहा है। ऐसा कहते हैं। पहले के गृहस्थ भी कैसे! सच्ची परम्परा मिल गयी और अन्दर ऐसी पात्रता। जाओ।

आत्मवस्तु के अनादि ही से.... अब दूसरी बात लेते हैं। यह बात यहाँ पूरी हुई। समझ में आया? अब विकार लेना है न वापस? अनुभव में तो राग से रहित कहा था। सामान्य वस्तु कही थी और विशेष, उसे राग से भिन्न का अनुभव और ऐसी वस्तु कहकर निश्चय कहा था। भेद—पृथक् करके कहना, वह व्यवहार। अब उसमें विकार है, तब वह क्या है? समझ में आया?

मुमुक्षु : .... जान ले। तो फिर निर्मल पर्याय जो अभेद थी...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अभी यह बात नहीं। यहाँ अभी नहीं। द्रव्य का सम्यक्त्व का विषय है अभेद, वह अलग बात है। परन्तु अभेद का अनुभव किया, तब उसे शुद्धता हुई और शुद्ध भास में आया, इस अपेक्षा से लेना। समझ में आया? द्रव्य वस्तु है, वह तो अभेद है, दर्शन (दृष्टि) का विषय। विषय तो अभेद है। परन्तु अभेद का अनुभव हुआ कि यह अभेद है, तब उस अनुभवसहित की विशेष पर्यायसहित का निश्चय लगाया है। समझ में आया? किरणभाई! यह सब सूक्ष्म है, हों! तुम्हारे वहाँ वह गोला मारते हैं न! आहाहा! देखो, यह धनतेरस। यह ज्ञान की धनतेरस है। आहाहा! ऐसा स्वरूप आत्मा का है, ऐसा इसे निश्चय और व्यवहार से बराबर जानना चाहिए। आहाहा!

अब एक बोल रह गया अन्दर में रागादि है वह। राग से तो भिन्न अनुभव किया। समझ में आया? परन्तु राग है न? **आत्मवस्तु के अनादि ही से पुद्गल कर्म का संयोग है,....** भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु अमृत मूर्ति प्रभु। अमृत मूर्ति आत्मा है। कभी मरे नहीं और दु:ख उसमें है नहीं। ऐसी अमृत की अमर मूर्ति प्रभु को **अनादि ही से पुद्गल**

कर्म का संयोग है, इसके निमित्त से राग-द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है.... देखो! पर्याय में कर्म का निमित्त। निमित्त से नहीं, परन्तु निमित्त है, इसलिए **निमित्त से...** कहा। परन्तु निमित्त है, इसका अर्थ, पर का लक्ष्य करता है पर्याय में उससे **राग-द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है....** समझ में आया?

उसमें ऐसा आया था, नहीं? वहाँ आया था न कहाँ? अनादि में। आया था। अभी नहीं आया था? यह तो बात वह हुई थी मोक्षमार्ग की। उसमें नहीं आया था कहीं? आया नहीं था वह? समयसार में आया था। आया था कल समयसार में, वह नहीं? आया था। अनादि के प्रज्ञा के दोष से राग और द्वेष, मोह में स्थिर है। आहाहा! उसमें आया था कि अनादि में निमित्त डाला, वह नहीं डाला, ऐसा कहना है। वहाँ निमित्त नहीं डाला। यहाँ तो एक निमित्त समझाते हैं कि विकार है, वह निमित्त के लक्ष्य से होता है। इतना। होता है निमित्त से नहीं; होता है तो स्वयं से। समझ में आया? अनादि से विकार होता है, तो वह स्वयं से और सादिपने विकार नया हो तो वह भी स्वयं से। निश्चय से, निश्चय में तो निमित्त की अपेक्षा भी है नहीं। जब व्यवहार लेना हो, तब निमित्त की अपेक्षा साथ में आती है। समझ में आया? गजब बातें!

निमित्त से राग-द्वेषरूप विकार की उत्पत्ति होती है, उसको विभाव परिणति कहते हैं,.... भगवान आत्मा में अमृतस्वरूप भगवान आनन्दमय होने पर भी उसकी पर्याय में भी अनुभव करे तो आनन्द की दशासहित होने पर भी, उसे कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से विभाव की परिणति अन्दर है। विकार की दशा है, वह दुःखदशा है। आहाहा! समझ में आया? **इससे फिर आगामी कर्म का बन्ध होता है।** लो! यह पारस्परिक लिया न? कर्म का निमित्त से परवश होकर स्वयं परवश स्वयं स्वतन्त्र होता है, हों! कर्म परवश कराता नहीं। पर्याय में पर के वश होकर राग-द्वेष का भाव जो होता है, वह विभाव परिणति अवस्था है। वह **फिर आगामी कर्म का बन्ध होता है।** निमित्त के आश्रय से हुआ विकार और वह विकार नये कर्मबन्धन का निमित्त है। अरेरे! ऐसी बात! वह सीधा-सट्ट धर्म था कि व्रत करना और तपस्या करना। लो! ऐसा कठिन कर डाला है। कठिन नहीं। मार्ग ही यह है। गप्पें मारे हैं सबने। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **आगामी कर्म का बन्ध होता है। इस प्रकार अनादि निमित्त-**

नैमित्तिकभाव के द्वारा.... लो! अनादि निमित्त-नैमित्तिक। कर्म निमित्त, नैमित्तिक विकार। विकार निमित्त, बन्धन नैमित्तिक। क्या कहा? आत्मा में अनादि से निमित्त कर्म और नैमित्तिक विकार तथा वह विकार निमित्त और नया बन्धन नैमित्तिक। ऐसा प्रवाह अनादि से चला आता है। समझ में आया? निमित्त-नैमित्तिक। **चतुर्गतिरूप संसार भ्रमण की प्रवृत्ति होती है।** इस प्रकार निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से चार गति के परिभ्रमण में दुःखी हो रहा है। **संसार भ्रमण की प्रवृत्ति होती है।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! कीड़ा, कौवा, कंथवा, कुंजर—हाथी, भवनपति, व्यन्तर, तिर्यंच, सिंह। आहाहा! ऐसे भव चार गति की प्रवृत्ति का भ्रमण है, कहते हैं।

जिस गति को प्राप्त हो वैसा ही नाम का जीव कहलाता है.... जिस गति को प्राप्त, वह नाम कहलाये। यह मनुष्य का जीव, यह देव का जीव, ऐसा कहलाये। आहाहा! **नाम का जीव कहलाता है तथा जैसा रागादिक भाव हो, वैसा नाम कहलाता है।** यह रागी जीव, यह द्वेषी जीव, क्रोधी जीव, मानी जीव, विषय-वासना आदि। गतिवाला कहलाये और रागवाला कहलाये, ऐसा कहते हैं। अघाति और घाति दो की बात ली है। समझ में आया? अघातिकर्म के निमित्त से गति आदि हो, तब उसे वैसा जीव कहा जाता है। यह मनुष्यगति का जीव, यह देवगति का जीव। यह घातिकर्म के निमित्त से विकार होता है और रागी जीव, द्वेषी जीव, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह धर्म तो कहते हैं कि यह व्रत करना, अपवास करना। ऐसी बात हो तो पकड़ में भी आवे। परन्तु सुन न! करनेवाला कौन है और कैसा है, इसकी खबर बिना क्या करेगा वह? धर्म करनेवाला कौन है, कैसा है, इसकी खबर बिना धर्म हो जाये उसे? आहाहा! क्या कहा इसमें, चिमनभाई यह सब? तुम रुके, आठ दिन रुके हो यहाँ। गये थे किसी के लिये यहाँ रुके। कुण्डला। कहो, समझ में आया?

तथा जैसा रागादिक भाव हो, वैसा नाम कहलाता है। कर्म के उदय की गति.... मनुष्य का जीव, पशु का जीव, देव का जीव, नारकी का जीव, कौवे का जीव, कंथवा का जीव ऐसा कहलाये न? वह अघाति के निमित्त की अपेक्षा से कहलाते हैं। और घाति के निमित्त तो राग, द्वेष, मिथ्यात्व आदि है। यह मिथ्यादृष्टि जीव, यह रागी

जीव, यह द्वेषी जीव। आहाहा! **जब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की बाह्य अन्तरंग सामग्री के निमित्त से....** अब चार गति का परिभ्रमण इस प्रकार से हुआ। परन्तु अब मिटे, तब क्या होता है, वह बात अब कहते हैं।

जब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की बाह्य अन्तरंग सामग्री.... निमित्तादि और भाव अन्दर में निर्मल भाव आदि। **अन्तरंग सामग्री के निमित्त से अपने शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनय के विषयस्वरूप....** अपना शुद्ध स्वरूप, **शुद्धनिश्चयनय के विषयस्वरूप अपने को जानकर श्रद्धान करे....** लो! स्वयं भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप है, पवित्र का धाम है। ऐसा अन्तर में स्वसन्मुख की दृष्टि से श्रद्धा करे **और कर्म संयोग को तथा उसके निमित्त से अपने भाव होते हैं, उनका यथार्थ स्वरूप जाने....** जाने बराबर। गति है, यह राग है, ऐसा जाने बराबर। परन्तु अनुभव शुद्ध का करे, तब श्रद्धान करे और उसका ज्ञान करे। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

संयोग को... कर्मसंयोग को। **उसके निमित्त से अपने भाव होते हैं, उनका यथार्थ स्वरूप जाने, तब भेदज्ञान होता है,....** आहाहा! गति और रागादिभाव को बराबर जाने। परन्तु शुद्ध स्वरूप की श्रद्धा करे, तब उसे जाने, तब उसे भेदज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप अन्तर आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! कहाँ रंक भटकता है मेरा। एक बीड़ी अच्छी मिले वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न। यह लड़कियाँ कण्डा बिनने आती हैं न रास्ते में। उसमें अधिक सूखा गोबर पड़ा हो और टोकरा भरे इतना बड़ा। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! वह ढोर की विष्टा। छाण अर्थात्? पशु की विष्टा। उसकी माँ को जाकर कहेगी, माँ! आज तो बहुत गोबर मिला। आहाहा! अरे! तीन लोक का नाथ जिसे चक्रवर्ती का राज और इन्द्र का पद भी कफ छोड़े, वैसे छोड़ दे, ऐसा यहाँ एक गोबर में प्रसन्न हो। आहाहा! एक स्त्री अच्छी मिले, वहाँ प्रसन्न हो जाये। एक लड़का अच्छा कोमल रूपवान कर्मी जागे न (तो) प्रसन्न हो जाये। आहाहा! क्या किया यह इसने? ऐई! फूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : कर्मी जागे तो प्रसन्न हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न यह तो कर्मी कहा। पैसे कमावे। कर्मी कहा था।

साथ में कहा था। लड़का अच्छा, रूपवान और कर्मी, ऐसे तीन कहा था। और कर्मी जागे कि आहाहा! लड़के के नाम से पिता को पहिचाना जाये तब तो। यह किसका बाप? कि फलाने का। प्रसिद्ध वह हुआ न? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अरे! आत्मा! प्रभु! तू तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है न, नाथ! तेरी त्रिकाल सम्पदा में आनन्द और शान्ति भरी है न प्रभु! यह तुझे क्या हुआ यह? आहाहा! बाहर का कर्म का संयोग और उसके निमित्त से होता भाव। आहाहा! उसे जानकर भेदज्ञान करे। अरे! यह मैं नहीं। मैं तो शुद्ध चैतन्य आनन्दघन हूँ। राग और कर्म के सम्बन्ध से गति आदि, वह मैं नहीं। समझ में आया? यह तो पहले ऐसा लिया कि शुद्ध स्वरूप का श्रद्धान करे, पश्चात् साथ में ज्ञान करे। ऐसा साथ में लिया। ऐसा लिया न? शुद्धस्वरूप शुद्ध निश्चयनय। जो ज्ञान का अंश त्रिकाली को पकड़े, विषय करे, उसे जानकर श्रद्धान करे। **जानकर श्रद्धान करे...** ऐसा लिखा है न? ऐसे **अपने को जानकर श्रद्धान करे...** आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जाने बिना किसकी श्रद्धा? आहाहा! माता के गर्भ में, शास्त्र में ऐसा आता है, गर्भ में रहे तो बारह वर्ष रहे। नौ महीने में जन्म होता है, यह अलग बात है। परन्तु रहे तो बारह वर्ष तक एक गर्भ रहे। ऐसा शास्त्र में लेख है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... छह वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुतों को होता है। तीन-तीन वर्ष के होते हैं गर्भ में। भगवान तो बारह वर्ष कहते हैं। मुझे तो अभी दूसरा कहना है। बारह वर्ष रहे... आहाहा! उल्टे सिर लटके, वह वहाँ से जहाँ जन्मा, उस दिन वापस मर जाये वहीं का वहीं। और दूसरे बारह वर्ष माता के गर्भ में। ऐसी कायस्थिति गर्भ की चौबीस वर्ष की ऐसी है। आहाहा! भूल गया परन्तु...। जरा कुछ मनुष्यपना और इन्द्रियाँ। आहाहा! यह क्या भोगा है? तू कहाँ था? और तू है कौन? समझ में आया? भूल गया... भूल गया। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं कि भाई! तू जान तो सही, बापू! आहाहा! तेरी चीज़ तो अन्तर शुद्ध चैतन्यघन,

उसकी श्रद्धा करने से तुझे धर्म की—सुख की शान्ति का पंथ तुझे मिलेगा। और उसी काल में कर्म का संयोग कितना? और उसके निमित्त से होता विकार कितना हुआ? उसका ज्ञान कर।

ज्ञान करके यथार्थ जाने, **तब भेदज्ञान होता है,...** श्रद्धा हुई है, साथ में उससे भिन्न, उसका नाम भेदज्ञान। आहाहा! समझ में आया? **तब ही परभावों से विरक्ति होती है।** आहाहा! तीनों ले लिया। वस्तु का स्वरूप शुद्ध चिदानन्द प्रभु, उसका श्रद्धान, कर्म और निमित्त का जो कर्म से होते विकारों का ज्ञान, उससे भेदज्ञान और भेदज्ञान हुआ, उससे पुण्य-पाप के भाव से विरक्ति हुई, वह चारित्र। आहाहा! **परभावों से विरक्ति होती है।** आहाहा! **फिर उनको दूर करने का उपाय सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझकर,....** कहो, विरक्ति होती है परन्तु ऐसा कि फिर विशेष स्पष्ट जानना। **दूर करने का उपाय....** रागादि दूर करने का उपाय। पुण्य और पाप के भाव जो कर्म के निमित्त से उपाधि दु:खरूप दशा, उसे दूर करने का उपाय। आहाहा!

सर्वज्ञ के आगम से.... सर्वज्ञ, जिन्होंने पूर्ण त्रिकाल जाना है। आहाहा! ऐसे सर्वज्ञ के आगम से। **यथार्थ समझकर....** उसमें से भी वापस **यथार्थ समझकर....** आगम में गड़बड़ करे, इसका ऐसा, वह नहीं। आगम में जो कहा है, ऐसा **यथार्थ समझकर उसको अंगीकार करे....** आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धा भी साथ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहा न, **जानकर श्रद्धान करे....** फिर ज्ञान साथ में हुआ दूसरा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आ गया न! देखो है न! अब विरक्ति। ज्ञान ने जाना कि यह विरक्त—छोड़नेयोग्य है, ऐसा। उसे जाना थोड़ा कहे और उसका उपाय विशेष बतायेंगे। कथन भारी किया है छठी गाथा का। बहुत अच्छा। आहाहा!

फिर उनको दूर करने का उपाय सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझकर उसको अंगीकार करे, तब अपने स्वभाव में स्थिर होकर.... चारित्र अंगीकार करे, ऐसा कहते

हैं। उपाय अंगीकार करे राग का अर्थात् चारित्र स्वरूप में रमणता। **अपने स्वभाव में स्थिर होकर....** अपना आनन्दस्वभाव, भगवान ज्ञानस्वभाव शान्त... शान्त... शान्ति... शान्ति... शान्ति के रस का स्वभाव, ऐसी श्रद्धा करने से ऐसा ज्ञान पर से भिन्न किया। अब उसमें स्थिर होता है। आहाहा! यह चारित्र। यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र की यह व्याख्या। आहाहा!

अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं.... आहाहा! **अपने स्वभाव में स्थिर होकर....** कोई महाव्रत के विकल्प और उनसे यह मुक्ति पाते हैं अनन्त चतुष्टय में, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, परन्तु इसे विश्वास कहाँ बैठता है? इतना बड़ा प्रभु हूँ। आहाहा! एक समय की वर्तमान हालत में जिसकी दृष्टि है, उसे हालत के पीछे महाप्रभु विराजता है... चैतन्य तत्त्व, महा चैतन्य तत्त्व, महान परमेश्वर स्वयं। आहाहा! ऐसे जिसे श्रद्धा और ज्ञान हुए, वह अब स्वभाव में स्थिर होकर अनन्त चतुष्टय को प्रगट करता है। कहो, भगवानजीभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! लोगों का भाग्य है न इतना, यह बराबर मौके से आया। यह सब अधिक आये तब यह आया, लो। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। ओहोहो!

कहते हैं, तीन लोक के नाथ परमेश्वर ने जिनसूत्र में ऐसा कहा कि निश्चय उसे कहना और व्यवहार उसे कहना। अर्थात् कि वस्तु के त्रिकाली स्वभाव का अनुभव करना, तब उसे निश्चय यथार्थ है, ऐसा भासित हुआ, और तब उसे राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, उस ज्ञान ने जाना कि इस राग को छोड़नेयोग्य है। श्रद्धा में तो प्रतीति इतनी है कि यह ज्ञान जानता है कि यह छोड़नेयोग्य है। अब छोड़ने के लिये अन्तर में स्वरूप को अंगीकार चारित्र को करे। आहाहा! और उस स्वरूप के स्वभाव में स्थिर हो अर्थात् अन्तर स्वरूप में स्थिर हो, जो स्वरूप अनन्त चतुष्टयमय है आत्मा, उसमें स्थिर होने से अनन्त चतुष्टय प्रगट पर्याय में होते हैं। आहाहा! यह लक्ष्मी प्रगट हुई, कहते हैं।

मुमुक्षु : धनतेरस आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धनतेरस आयी। कहो, किरणभाई! यह किरण प्रगट हुई, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्द का पूर प्रभु, चैतन्य का नूर। तेज महा जिसके पड़े अन्दर में। आहाहा! उसकी श्रद्धा करने से पर से पृथक् करके भेदज्ञान किया, अब उस स्वरूप में स्थिर होने से उसे अनन्त चतुष्टय की दशा प्रगट होती है। आहाहा! अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य—ऐसा आत्मारूपी सूर्य, उस स्वभाव से भरपूर भगवान के अन्तर में क्रीड़ा—रमणता करने से, स्थिर होने से उसे अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है। उसे बाहर की क्रिया और महाव्रत के परिणाम से अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझकर उसको अंगीकार करे, तब अपने स्वभाव में स्थिर होकर अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं, सब कर्मों का क्षय करके.... आहाहा! देखो, यह ठेठ से ली है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम शुद्ध चैतन्यघन और उसे तो यह कहा था शुद्ध चेतना अनन्त शक्तिसम्पन्न वह द्रव्य, ऐसा। आहाहा! अभेद। ऐसे स्वभाव की श्रद्धा करके और पर का ज्ञान रागादि का करके, उससे भेदज्ञान करके और रागादिभाव है, वह विरक्ति—छोड़नेयोग्य है। ऐसा जानकर फिर स्वरूप में स्थिरता होने का अंगीकार करके अनन्त चतुष्टय को प्रगट करता है। आहाहा! परमात्मा केवलज्ञान होता है, ऐसा। आहाहा!

सब कर्मों का क्षय करके लोकशिखर पर जाकर.... फिर आत्मा यहाँ से पृथक् हो जाता है। लोकशिखर जाता है। लोक का पदार्थ है अग्र में। यहाँ तो रहकर जहाँ अन्तिम में अन्तिम भाग वहाँ रहता है। वह व्यवहारक्षेत्र है, है तो अपने में। परन्तु परक्षेत्र उसका लोक के अग्र में है। समझ में आया? **लोकशिखर पर जाकर विराजमान हो जाता है....** यह किसने लिखा लोक के शिखर मुक्ति अन्तिम। ऐसी कल्पना की है। ऐसे के ऐसे मूर्ख। ऐसा कि भगवान को मुक्त हुए तो उन्हें मुक्त शिला एक कल्पी, जहाँ फिर पत्थर। अरे! सुन न भगवान! हाँ, ऐसा कि वहाँ फिर दूसरे पत्थर पर रहे। पत्थर ऊपर कहाँ है? वह तो मुक्तिशिला से बहुत दूर है। हजारों कोस दूर है। आहाहा! यह तो लोक हुए चौदह ब्रह्माण्ड, उसका अन्तिम क्षेत्र है, वहाँ रहते हैं बस, ऐसा। यह व्यवहार से। बाकी रहते हैं अपने असंख्य प्रदेश में। आहाहा! अरे! ऐसी वस्तुस्थिति है। उसे जिस प्रकार से सर्वज्ञ ने कहा, वह क्षेत्र, वह भाव, वह श्रद्धा, वह ज्ञान, वह चारित्र, वह संयोग

चीज़, वह विकार वस्तु जो भगवान ने कही, वह सब उसमें रख दिया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर सिद्धशिला से एक....

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें भाग में। ३३३ धनुष। ५०० धनुष में से अन्तिम भाग निकल गया तीसरा भाग। इतने रहे। वह सब कल्पना। क्योंकि भिन्न किया है सही न। इसलिए कुछ करना चाहिए न? आहाहा!

केवली का सर्वज्ञ का कहा हुआ। इससे कहते आते हैं न, सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ जानकर। आहाहा! सर्वज्ञ के आगम तो दिगम्बर सन्तों ने जो रचे हैं, वे सर्वज्ञ के कहे हुए आगम हैं, भाई! इसके अतिरिक्त कल्पना करके श्वेताम्बरों ने नये रचे, वे वस्तु नहीं हैं। उसमें से स्थानकवासी निकले, वे भी कल्पित बातें हैं सब। समझ में आया? दुःख लगे लोगों को... उसे लगे, हों! बापू! परन्तु मार्ग यह है न, भाई! सत्य की वस्तु ऐसी है। यह दुःख लगाने के लिये नहीं है। सत्य के प्रकाश के लिये यह बात है। आहाहा! भाई! अरेरे! ऐसा अवसर आया है।

तब मुक्त या सिद्ध कहलाता है। लो! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक-२५-१०-१९७३
गाथा - ६ प्रवचन-३६

यह अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़। गाथा छठवीं। इसके भावार्थ में छठवाँ पेराग्राफ है इसमें। व्यवहार और निश्चय की बात चलती है।

मुमुक्षु : पहले व्यवहार या पहले निश्चय?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला-पश्चात्.... निश्चय हो, वहाँ व्यवहार होता है। पहला व्यवहार और फिर निश्चय, ऐसा कुछ नहीं है। दोनों साथ में हैं। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' आता है न? (वृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ४७)। ऐसी ही है न वस्तु। वस्तुस्वरूप। यहाँ तो निश्चय-व्यवहार के बहुत प्रकार किये हैं। बाकी वास्तव में तो त्रिकाल वस्तु निश्चय जो स्वरूप है, उसे यहाँ निश्चय कहते हैं और उसकी यह वर्तमान पर्याय है, उसे भेद पाड़कर कहा, इसलिए उसे भी व्यवहार कहते हैं। और कर्म के निमित्त से होते अपने में राग की अवस्था, उसे भी असद्भूतव्यवहारनय से व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार हेय है। परन्तु होता है।

मुमुक्षु : हेय का ऐसा लम्बा-लम्बा किसलिए समझना?

पूज्य गुरुदेवश्री : न समझे तो हो गया। परन्तु उसे जो कुछ छोड़नेयोग्य है, वह यदि उसका ज्ञान न करे... पहले यह तो आ गया वहाँ, नहीं? '**ववहारो तह य जाण परमत्थो**' व्यवहार को परमार्थ सिद्धान्त में कहा उसे जान। जानने का नहीं व्यवहार? जानने में तो है नहीं व्यवहार कैसा है? ऐसा। बहुत प्रकार आ गये इसमें अपने। समझ में आया?

त्रिकाल ध्रुवस्वरूप सामान्य आत्मा, उसे भी आत्मा कहा। और राग से भिन्न पड़ी हुई अनुभवदशा, से आत्मा कहा। यह दो होकर आत्मा को निश्चय में कहने में आता है। पर से भिन्न की अपेक्षा से। और अपनी अपेक्षा से स्व की अपेक्षा से त्रिकाली, वह निश्चय है और अनुभव की पर्याय, वह त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार है। परन्तु पर से

भिन्न करने के लिये, राग से भिन्न करने के लिये अनुभव की पर्यायसहित का आत्मा, वह निश्चय है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? व्यवहार-निश्चय की बहुत सूक्ष्म बात। यह बड़ी गड़बड़ उठी है न, उसके कारण। आहाहा ! व्यवहार भेदरूप उसे व्यवहार कहते हैं, निमित्त के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ विकार अपने में, उसे व्यवहार कहते हैं और निमित्त की चीज़ की प्रवृत्ति को भी उसे असद्‌भूतव्यवहार कहते हैं। ऐसा है।

इस प्रकार जितनी संसार की अवस्था और यह मुक्त अवस्था.... भगवान आत्मा में संसार की दशा या मोक्ष की दशा **इस प्रकार भेदरूप आत्मा का निरूपण...** भेद हुआ न इतना ? संसार अवस्था और मोक्ष अवस्था, वह त्रिकाल की अपेक्षा से यह भेद हुआ। भेद हुआ, इसलिए उसे व्यवहार कहा गया है। आहाहा ! कहेंगे। जब पर्याय कहना हो, तब वह निश्चय है, पर्यायरूप से। परन्तु स्व में त्रिकाल की अपेक्षा दो भेद पड़े, इसलिए इस अपेक्षा से व्यवहार है। आहाहा ! व्यवहार और निश्चय। कहा है न, जिसे कारण और कार्य बराबर समझ में आये, वह सब समझे, परन्तु जिसे व्यवहार-निश्चय और कारण-कार्य का ज्ञान यथार्थ नहीं, उसे गड़बड़ उठे बिना नहीं रहे। आहाहा !

व्यवहारनय का विषय है, इसको अध्यात्मशास्त्र में अभूतार्थ-असत्यार्थ नाम से कहकर वर्णन किया है,.... लो ! क्या कहा यह ? कि आत्मा वस्तु है त्रिकाली नित्य ध्रुव अविनाशी, जिसका त्रिकाल स्वभाव, वह निश्चय और उसकी दशायें संसार और मुक्त हो, वह भेद है, वह व्यवहार कहा जाता है। उसे अध्यात्म शास्त्र में असत्यार्थ कहा है। ११वीं गाथा कही न ! व्यवहार अभूतार्थ। वह पर्याय, संसार अवस्था या मोक्ष अवस्था सब परिणाम त्रिकाली की अपेक्षा से, त्रिकाली जो वस्तु है, वह सत्यार्थ है, भूतार्थ है, उसकी अपेक्षा से पर्यायें असत्यार्थ और अभूतार्थ है। आहाहा ! समझ में आया ? व्यवहार और निश्चय जैनदर्शन में क्या कहा है, उसका पण्डितजी ने ठीक प्रकार से स्पष्टीकरण किया है। यह गम्भीर बात है।

क्योंकि शुद्ध आत्मा में संयोगजनित अवस्था हो सो तो असत्यार्थ ही है,.... समझ में आया ? शुद्ध भगवान आत्मा में **संयोगजनित अवस्था हो सो तो असत्यार्थ ही है, कुछ शुद्ध वस्तु का तो यह स्वभाव नहीं है, इसलिए असत्य ही है। जो निमित्त से**

अवस्था हुई वह भी आत्मा ही का परिणाम है,.... आहाहा! उसे अभूतार्थ कहा था, परन्तु जो आत्मा में **निमित्त से अवस्था हुई वह भी आत्मा ही का परिणाम है, जो आत्मा का परिणाम है, वह आत्मा ही में है, इसलिए कथंचित् इसको सत्य भी कहते हैं,....** पर्याय उसमें हुई है, इस अपेक्षा से कथंचित् सत्य है, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से उसे असत्य और अभूतार्थ (कहा है)। सब ... अभूतार्थ कहने में आया है। बहुत सूक्ष्म आया है।

ऐसी चीज़—वस्तु है ऐसे अन्दर। आहाहा! एक समय में वर्तमान त्रिकाल वस्तु सदृश एकरूप त्रिकाल परमात्मस्वरूप, उसे यहाँ वास्तव में तो सत्यार्थ कहा है और उसकी अपेक्षा से जो कोई संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष, वे सब परिणाम हैं, पर्याय है; इसलिए असत्यार्थ कहे हैं। परन्तु उसकी पर्याय का अंश उसमें है। इस अपेक्षा से कथंचित् सत्य भी कहा जाता है। यह अनेकान्त है अनेकान्त। समझ में आया? अब तो यह ३९वीं यह दीवाली आयी है। बहुत वर्ष से तो बात चलती है। सूक्ष्म पड़े, ऐसा बहुत नहीं मानना। उसका मार्ग ही ऐसा है।

त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु एक क्षण में त्रिकाल ध्रुव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और उसी समय में वर्तमान अवस्था है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से तो व्यवहार कहो या असत्यार्थ कहो। क्योंकि आश्रय लेने योग्य तो एक त्रिकाली भगवान आत्मा है। पर्याय आश्रय लेनेयोग्य नहीं। क्योंकि पर्याय के आश्रय से पर्याय नहीं होती। ऐसी उस पर्याय को—अवस्था को, असत्यार्थ, अभूतार्थ कहकर व्यवहार कहा है। वह पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा है, असत्यार्थ कहा है। अभाव करके असत्यार्थ कहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

क्योंकि शुद्ध आत्मा में संयोगजनित अवस्था हो सो तो असत्यार्थ ही है,.... संयोग से उत्पन्न हुई विकारी। **शुद्ध वस्तु का तो यह स्वभाव नहीं है, इसलिए असत्य ही है। जो निमित्त से अवस्था हुई, वह भी आत्मा ही का परिणाम है,....** अब उसे **जो आत्मा का परिणाम है, वह आत्मा ही में है,....** राग-द्वेष आदि और संसार अवस्था और मोक्ष अवस्था। **कथंचित् इसको सत्य भी कहते हैं,....** पर्याय अपेक्षा से सत्य है। **परन्तु**

जब तक भेदज्ञान नहीं होता है, तब तक ही यह दृष्टि है,.... राग भी सत्य है, उस राग से भिन्न ज्ञान न हो, तब तक राग सत्य है, ऐसा उसे ज्ञान में जाने। परन्तु भेदज्ञान होने के पश्चात् मुझमें राग है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु जब तक भेदज्ञान नहीं होता है,.... अर्थात् राग का विकल्प जो है शुभ-अशुभ। यहाँ मुख्य तो शुभ की बात है। उस शुभराग से भिन्न पड़कर अपनी चीज़ का पर से भिन्न ज्ञान न हो, तब तक वह सब रागादि अपने में है, वह असत्य होने पर भी (तथा) पर्याय में सत्य होने पर भी अपने में है, ऐसा भेदज्ञान न हो तब तक जानना। आहाहा! भेदज्ञान होने पर वह राग मुझमें नहीं। समझ में आया इसमें? आहाहा! **जब तक भेदज्ञान नहीं होता है, तब तक ही यह दृष्टि है, भेदज्ञान होने पर जैसे है, वैसे ही जानता है।** जानता है कि राग है। मुझमें नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानस्वरूपी भगवान को राग से पृथक् हुई दृष्टि के काल में भेदज्ञान के काल में, उस राग को जैसा है वैसा जाने, परन्तु मुझमें नहीं। पर्याय में है, वस्तुरूप से असत्य है। ज्ञान में जाननेयोग्य रूप से व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे साधारण बेचारे स्त्रियाँ और पुत्र को क्या यह धर्म, क्या कहते हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : एक बार कान में पड़े न....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कान में पड़े तो उसकी अलौकिक बात है बापू यह। आहाहा! कोरा सकोरा होता है न कोरा। बासण कोरा सकोरा। उसमें पानी पड़े तो पहला थोड़ा पड़े तो उसमें शोषित हो जाता है। परन्तु पश्चात् बारम्बार अधिक पड़े तो ऊपर ले जाये, पानी हो जाये। यह तो भाई ने कहा, इसलिए दृष्टान्त दिया। ऐसा बारम्बार डालने से उसे ख्याल में न आवे जरा पकड़ में आये, परन्तु थोड़ा-थोड़ा अन्दर संस्कार पड़ने पर जब विशेष संस्कार पड़े, तब उसे बात ख्याल में आ जाये। किरणभाई! सब यह सूक्ष्म बात है, हों! वह कमाने—बमाने में कुछ (नहीं है)। वह तो पुण्य के कारण आवे। वह कहीं चतुराई-बतुराई नहीं वहाँ। आहाहा! अरे! जो जन्म-मरण दुःख के पाया में घुस गया है पूरा। ओहोहो! यह दुःख, वह ही मैं हूँ, ऐसा जिसने माना है। आहाहा! परन्तु वह दुःख, वह मैं, यह कहाँ तक? कि जहाँ तक इसे भेदज्ञान नहीं हुआ

वहाँ तक, ऐसा कहते हैं। उस दुःख से भिन्न पड़ने पर, भगवान के अन्तर में गया, वहाँ उसमें आनन्द ही है। वह दुःख से मुक्त है। दुःख पृथक् रूप से दूसरी चीज़ है ऐसा है, ऐसा जाने। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भारी कठिन मार्ग। यह बड़े दिनों में ऐसा मार्ग आया।

मुमुक्षु : बड़े दिनों में बड़ी बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी बात।

जो द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं.... अब दूसरी अपेक्षा से। **वे आत्मा से भिन्न ही हैं,....** कर्म जो जड़ है, वह तो अत्यन्त भिन्न ही है। उसकी अवस्था में भेदरूप और अशुद्धतारूप वह कोई वस्तु नहीं है। समझ में आया? पहले में तो ऐसा कहा था कि जो वस्तु त्रिकाल ध्रुव प्रभु, उसकी अवस्था है, वह उसका भेदरूप है और उसमें रागादि हों, वे भी उसमें हैं।

मुमुक्षु : भेदज्ञान न हो तब तक।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेदज्ञान न हो, तब तक। और अब यह कहते हैं कि कर्म जो है अन्दर जड़, वे तो भिन्न चीज़ ही है भिन्न। भगवान आत्मा अरूपी चैतन्यघन, उसमें कर्म के रजकण जो हैं, वे तो अत्यन्त भिन्न चीज़ हैं।

उनसे शरीरादिक संयोग है, वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है,.... आहाहा! और वह कर्म के निमित्त से शरीर, वाणी, मन जो जड़ है, वे सब प्रगट प्रसिद्ध पर है। आहाहा! समझ में आया? कर्म प्रगट प्रसिद्ध पर है और उसके निमित्त से हुए शरीर, वाणी, मन, ऐसे दस प्राण आदि वह तो **संयोग है, वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है,....** मन, वचन और काया, पाँच इन्द्रिय जड़, आयुष्य, श्वास वह तो कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई अत्यन्त भिन्न चीज़ है। वह प्रसिद्धि है। लो! **आत्मा के कहते हैं, सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही,....** शरीर आत्मा का, वाणी आत्मा की, मन आत्मा का यह तो व्यवहार का कथन है। यह तो भिन्न है तो भी इसका कहना, वह तो उपचार का कथन व्यवहार है। वास्तविक इसके (आत्मा के) शरीर, वाणी, मन है ही नहीं। वह तो जगत की चीज़ रजकण हैं। जगत की चीज़ उसकी कहना, वह तो व्यवहार का उपचार है।

आहाहा! उसमें स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान वे अत्यन्त कर्म के निमित्त से हुए यह शरीरादि में वे भी आते हैं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, पैसा वह अत्यन्त भिन्न है। उन्हें इसका कहना। यह पैसे इसके, यह मकान इसका, यह लड़के पिता, यह सब उपचार के कथन हैं।

मुमुक्षु : इसके हैं नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कब थे ? सुमनभाई लड़का नहीं रामजीभाई का ?

मुमुक्षु : मुझे किसी का लड़का होना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : माणेकचन्दभाई का रामजीभाई पुत्र है। आहाहा!

कहते हैं कि यह तो... यह उसमें आता है यह। **शरीरादि का संयोग है, वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है,....** है न ? **द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं, वे आत्मा से भिन्न ही हैं, उनसे....** उनसे अर्थात् कर्म से। कर्म के संयोग से शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत, लक्ष्मी, मकान, यह **संयोग है, वह आत्मा से प्रगट ही भिन्न है,....** आहाहा! किसका पुत्र और किसका पिता ? मुफ्त का। कहो, फूलचन्दभाई! लड़के के लिये रुकना पड़े न सब ?

मुमुक्षु : ठिकाने लगाना है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ठिकाने लगाना है न। आहाहा! कहते हैं कि वे सब तो पर ही हैं। जैसे कर्म पर है, वैसे कर्म के निमित्त से प्राप्त यह सामग्रियाँ पर ही है। उन्हें आत्मा की कहना, वह तो उपचार, व्यवहार है, वास्तविकता से दूर है। आहाहा!

इसको असत्यार्थ या उपचार कहते हैं। देखो, लो! आत्मा का शरीर, आत्मा की भाषा, आत्मा का पुत्र, उसका पिता, इसकी पत्नी, उसका पति यह सब उपचार के कथन हैं। कौन किसके किसके पति-पत्नी ? कुछ आत्मा भिन्न चीज़, शरीर भिन्न चीज़। आहाहा! सब झूठा है। सब झूठी है। आहाहा! भूतावल इकट्ठी हुई है सब। उसे कहाँ वह अकेला, कहाँ से अकेला आया ? अकेला अभी रहा और अकेला होकर जायेगा। आहाहा! यह संयोग जो दिखते हैं, वे सब, कहते हैं कि कर्म के निमित्त से हुई चीज़ है। वह तुझसे अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! उसे अपनी मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है।

समझ में आया? वह अत्यन्त भिन्न चीज़ है, शरीर, वाणी, मन। यह मन परमाणु, हों! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, मकान, इज्जत, कपड़ा, जवाहरात-गहने वह कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई पर सामग्री है। वह अत्यन्त भिन्न है। बिल्कुल आत्मा को और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! तो भी ऐसा कहना, वह झूठा है कि इसकी यह स्त्री और इसका पति, इसकी पत्नी सब झूठे झूठ है। समझ में आया? आहाहा!

अकेला स्वयं भिन्न चीज़ है। उसमें भले, कहते हैं, भेद पड़ो और अशुद्धता हो, वह त्रिकाल की अपेक्षा से तो असत्यार्थ है, परन्तु पर्याय की अपेक्षा से सत्यार्थ भेदज्ञान न हो, तब तक उसे जानना। आहाहा! समझ में आया? भेदज्ञान अर्थात्? उससे भिन्न पड़ा तो फिर वह उसका कहाँ रहा? आहाहा! समझ में आया? राग और पुण्य से भिन्न पड़ा, वह भेदज्ञान का अर्थ कि उससे भिन्न पड़ा। भिन्न पड़ा अर्थात् फिर भिन्न (चीज़) उसकी कहाँ रही वहाँ? आहाहा! कहो, तब तो उसे असत्यार्थ जानना चाहिए। भेदज्ञान की अपेक्षा से रागादि, भेद और रागादि को असत्यार्थ जानना चाहिए। आहाहा!

और **यहाँ कर्म के संयोगजनित भाव हैं, वे सब निमित्ताश्रित व्यवहार के विषय हैं....** आत्मा में पुण्य और पाप का भाव, वह सब संयोगजनित भाव है। आहाहा! पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ, विषय, वासना, खेद, अरति, शोक, वह सब परिणाम **संयोगजनित भाव हैं, वे सब निमित्ताश्रित व्यवहार के विषय हैं....** निमित्त के आधीन हुए, इसलिए वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! यह व्यवहार और निश्चय। **'सुत्तं जिणउत्तं'** ऐसा शब्द आया है। **'सुत्तं जिणउत्तं'** जिन भगवान ने कहे हुए सूत्र, उसमें व्यवहार और निश्चय कैसे है, उसकी व्याख्या चलती है। आहाहा!

और उपदेश अपेक्षा इसको प्रयोजनाश्रित भी कहते हैं,.... उपदेश कहलाये न तब कि राग से भिन्न है। परन्तु राग, वह आत्मा का है, उससे तू भिन्न पड़। यह बात प्रयोजन आश्रय से उसे कथन करना, वह भी व्यवहार है। अथवा आत्मा में दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा भेद करके प्रयोजन के आश्रय से प्रयोजन समझाना है अभेद और प्रयोजन की अपेक्षा से तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! उसकी एक समय की पर्याय को भी प्रयोजन अपेक्षा से। क्योंकि पर्याय में समझता है। त्रिकाली वस्तु को पर्याय में

समझता है। नित्य का अनित्य में निर्णय होता है। नित्य का नित्य में निर्णय नहीं होता। आहाहा! ऐसी भगवान चीज़ जो अन्दर ध्रुव-ध्रुव वस्तु, उसका निर्णय तो पर्याय में होता है, इसलिए उसे प्रयोजनाश्रित व्यवहार कहते हैं। देख भाई! यह उसका है, यह पर्याय उसकी है, यह भेद उसके हैं। भेद से समझावे न? ८वीं गाथा में आया है न कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह आत्मा, वह भेदकथन। वह व्यवहार का प्रयोजन आश्रय त्रिकाल को समझाने के लिये ऐसा उपदेश होता है। वह व्यवहार है।

इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का संक्षेप है। लो! बहुत आ गया है न पहला। शान्ति से, धीरे से समझे तो समझ में आये, ऐसा है। यह समझने के लिये ऐसा भगवान ने कहा है और समझनेवाले की योग्यता है, उसके लिये कहा है। समझ में आया? वह कहीं जड़ को नहीं कहते। तथा राग को ऐसा नहीं कहते कि राग तू पर है। यह तो आत्मा को कहते हैं कि राग तुझसे पर है। समझ में आया? आहाहा!

अब मोक्षमार्ग के ऊपर आते हैं जरा। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा,....** अब यह पर्याय की बात लेते हैं। वह तो पर से भिन्न द्रव्य की और पर से भिन्न पर्याय की और पर के सम्बन्धवाले राग की व्याख्या की। अब यह मोक्षमार्ग निश्चय-व्यवहार की व्याख्या करते हैं। आहाहा! सूक्ष्म है परन्तु अब अन्दर पुस्तकें तो आ गयी हैं बहुत सब। अभी मौके से सब आ गयी हैं, वाँचन होता है इसलिए। न हो उसे ले लेना चाहिए। है या नहीं? फूलचन्दभाई! नहीं न, ठीक कहा। ऐ... आहाहा!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र.... भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसको अन्तर में ज्ञान का ज्ञेय बनाकर, ध्यान में उसे ध्येय बनाकर, ध्यान में उसका विषय बनाकर जो दृष्टि प्रगट होती है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! उसे—ज्ञेय को ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान पर्याय में होता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। उस सम्यग्ज्ञान में दर्शन में विषय तो त्रिकाल है। अब उस त्रिकाल में जो दर्शन-ज्ञान हुआ, उसमें जो स्थिरता की क्रिया होती है, उसे चारित्र कहते हैं। **ये तीनों एक आत्मा ही के भाव हैं,....** लो! तीन, परन्तु एक आत्मा का भाव, ऐसा।

यहाँ ऐसे समझना कि ये तीनों.... कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र **एक आत्मा ही के भाव हैं,....** हैं तीन, परन्तु एक आत्मा के तीन भाव हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार इनरूप आत्मा ही का अनुभव हो, सो निश्चय मोक्षमार्ग है,.... लो! **इस प्रकार इनरूप....** इस प्रकार से—इसरूप से आत्मारूप से। आत्मा का। ओहो! भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, उसका अनुभव हो, अनु अर्थात् द्रव्य को अनुसरकर दशा होओ, वह निश्चय मोक्षमार्ग है। वह निश्चय सच्चा मोक्षमार्ग है। लो!

इसमें भी जब तक अनुभव की साक्षात् पूर्णता नहीं हो.... यह अनुभव की पूर्ण प्राप्ति न हो, तीन की एकता की पूर्ण प्राप्ति **तब तक एकदेशरूप होता है....** तो एक भागरूप अनुभव होता है। चौथे, पाँचवें, छठवें... समझ में आया? आहाहा! **एकदेशरूप होता है, उसको कथंचित् सर्वदेशरूप कहकर....** उसे पूरा मोक्षमार्ग कहना। चौथे, पाँचवें, छठवें में एक अंश होने पर भी उसे पूर्ण अनुभव कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा! **जब तक एकदेशरूप होता है, उसको कथंचित् सर्वदेशरूप कहकर कहना व्यवहार है और एकदेश नाम से....** और जितना अंश है, उतना उसे कहना, वह निश्चय है। आहाहा! भारी बात ऐसी!

फिर से। कि जो आत्मा है वस्तु भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ, तीर्थंकर ने देखकर कही। ऐसा जिसे आत्मा अन्तर्दृष्टि में आवे और उसे ज्ञान की पर्याय में भी वह ज्ञेय इतना आवे, तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। और उसमें चारित्र स्वरूप में स्थिर हो तब। उन तीन की नीचे है, वह पूर्णता नहीं, तथापि नीचे पूर्णता कहना, वह व्यवहार है। और जितना है, उतना उसे जानना, कहना वह निश्चय है। समझ में आया? कठिन बात! बलुभाई! ऐसे ऊपर-ऊपर से पकड़ना, उसे यह कठिन लगता है अभी। ऊपर-ऊपर से हाँ... हाँ... हाँ, ना किया हो। आहाहा! ऐसा मार्ग गहराई से इसे जानना पड़ेगा। समझ में आया? व्यवहार-निश्चय के झगड़े हैं, वे झगड़े टालना हो तो उसे यह जानना पड़ेगा। व्यवहार... व्यवहार के स्थान में है। निश्चय, निश्चय के स्थान में है। परन्तु व्यवहार आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : साधक होकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक, वह तो उपचार से कहा है। साधक तो स्वरूप अनन्त आनन्दस्वरूप स्वयं ही घुलकर खड़ा होता है अन्दर, वह साधक है। व्यवहार राग को

साधक (कहा, वह) तो उस साधक का उसमें उपचार किया है। साधक के साथ प्रज्ञाब्रह्म भगवान आत्मा... वह तो आ गया है पहला। राग से भिन्न करने की प्रज्ञा, वह स्वयं ही साधन है। सम्यग्ज्ञान की दशा जो राग से भिन्न पड़कर स्व का आश्रय लेती है, वह प्रज्ञा-पर्याय, वह साधन है। परन्तु उस साधनकाल में एक राग की उस प्रकार की उस-उस भूमिका के योग्य जाति कैसी है, ऐसा बतलाने को उसे साधन कहा जाता है। साधन नहीं, है तो बाधक। समझ में आया ? परन्तु यहाँ साधक स्वयं अपने स्वरूप को साधता है, उस समय ऐसा राग होता है, ऐसा गिनकर निरूपण साधक का उसे किया है। व्यवहार निरूपणरूप से साधन है, वस्तुरूप से नहीं। ऐसी अब किसे खबर है। समझ में आया ? बापू! जानना पड़ेगा, भाई! बड़ी गड़बड़ है।

यहाँ तो त्रिकाली को निश्चय कहते हैं, पर्याय को व्यवहार कहते हैं और राग को असद्भूतव्यवहार कहते हैं। और दूसरे प्रकार से कहें तो निर्मल अनुभव पर्यायसहित का आत्मा, उसे निश्चय कहते हैं और राग को व्यवहार कहते हैं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! इसने कभी सच्ची बात (सुनी नहीं), रुचिपूर्वक इसे कान में पड़ी नहीं अनन्त काल में। यह वस्तु, आहाहा! कहते हैं कि जो भगवान पूर्ण स्वरूप, वह तो निश्चय से सत्य ही है। पर्याय भी पर्याय की अपेक्षा से सत्य है परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा अभूतार्थ गिनकर, उसे व्यवहार गिनकर झूठा कहा है। परन्तु राग, वह अत्यन्त झूठा है और वह राग असत्य है, उसकी अपेक्षा से पर्याय सत्य है। पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य त्रिकाल सत्य है। त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय असत्य है, पर्याय की अपेक्षा से राग असत्य है और राग की अपेक्षा से परद्रव्य की पर्याय असत्य है। समझ में आया ? यह सब उसे जाने तो ... नहीं तो झगड़ा व्यवहार-निश्चय का चला है। व्यवहार से भी लाभ होता है। व्यवहार से भी लाभ होता है, ऐसा भी कहने की अपेक्षा है। परन्तु जिसे निश्चय मोहक्षोभरहित परिणाम प्रगट हुए हैं, उसे शुभराग भी इतना मोह का—क्षोभ का अभाव है, इसलिए उसे भी साधन कहे, व्यवहार कहे। शुभराग को भी व्यवहार कहे। उस शुभराग में भी निश्चय स्वभाव के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ है, वह निश्चय। और साथ में शुभराग है, उसमें उतना मोह का राग घटा है, इसलिए उसे व्यवहार भी कहा जाता है।

आया था उसमें, भाई! ८२ गाथा में। ८२ नहीं भाव? भावपाहुड़। उसमें है न देखो न! ८२-८२। भावपाहुड़, हों! ८३। ८३-८३। ८३ गाथा। यह भावपाहुड़। १७८ पृष्ठ।

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥८३॥

है? ८३ गाथा। नहीं आयी? **जिनशासन में जिनेन्द्र देव ने....** जरा वह सूक्ष्म है, इसलिए जरा इसमें से थोड़ासा (लेते हैं)। जैनशासन में **जिनेन्द्र देव ने इस प्रकार कहा है कि—पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है....** धर्म नहीं। आहाहा! भगवान की पूजा, व्रत वह पुण्य है। और **मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम वह धर्म है।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आत्मा के राग का अभाव, मिथ्यात्व का अभाव, वह धर्म है।

भावार्थः—लौकिक जन तथा अन्यमति कई कहते हैं.... जैन में भी लौकिक और अन्यमति। जैन में रहे हुए भी लौकिक हैं और अन्यमति कितने ही कहते हैं। दोनों लिये। **कि पूजा आदिक शुभ क्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है, परन्तु ऐसा नहीं है। जिनमत में जिन भगवान ने इस प्रकार कहा है कि—पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य है, इसमें पूजा और आदि शब्द से भक्ति,....** भगवान की पूजा, भगवान की भक्ति, भगवान, गुरु आदि को वन्दन और **वैयावृत्य आदिक समझना,....** आहाहा! **यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है....** वह तो परद्रव्य के आश्रय से होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उपवास आदिक व्रत हैं, वह शुभक्रिया है,.... उपवास आदि है, वह तो शुभक्रिया राग की है। आहाहा! **इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है....** कहो, यह तो समझ में आये ऐसा है। वह जरा सूक्ष्म था थोड़ासा यह। आहाहा! **इसलिए उनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है।** इस पुण्य का फल तो स्वर्गादि मिले, आत्मा की शान्ति की पर्याय उससे प्राप्त नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी, मुनि को भी जितना शुभभाव भक्ति, पूजा आदि का है, उसके फलरूप से स्वर्गादि संयोग मिले, क्योंकि उस संयोगीभाव से संयोग

मिलते हैं। उसमें स्वभाव की एकता की पर्याय का लाभ नहीं होता। आहाहा! अब इसमें बड़ा विवाद है न। नहीं, उससे भी ऐसा होता है। शुभोपयोग धर्म है। कौन इनकार करता है शुभोपयोग में धर्म नहीं? आहाहा! नहीं। शुभोपयोग धर्म है। यह अभी इन्दौर में कहा गया। आहाहा! क्या करे भाई!

यहाँ तो जो शुभ उपयोग का रागसहित परिणाम कहा है। चाहे तो भक्ति हो, पूजा हो। आया न? वन्दना हो, वैयावृत्य हो। देव-गुरु-शास्त्र की वैयावृत्य करना, मन्दिर की वैयावृत्य करना, वह सब शुभभाव है। साधु की वैयावृत्य करना, वह शुभभाव है। परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाये तो वह शुभभाव है। आहाहा!

मोह क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को धर्म समझाये। अब धर्म की बात आती है। मोह अर्थात् मिथ्यात्व और क्षोभ अर्थात् आकुलता। उससे रहित **आत्मा के परिणाम को धर्म समझाये।** आहाहा! आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्दस्वरूप के परिणाम, वह मोह और क्षोभरहित है। उस परिणाम—उस पर्याय को धर्म कहते हैं। लो! समझ में आया? **मिथ्यात्व तो अतत्त्वार्थश्रद्धान है, क्रोध-मान-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा—ये छह द्वेषप्रकृति हैं और माया, लोभ, हास्य, रहति—ये चार तथा पुरुष, स्त्री, नपुंसक—ये तीन विकार, ऐसी सात प्रकृति रागरूप हैं। इनके निमित्त से आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकाररहित, क्षोभरूप, चलाचल, व्याकुल होता है....** आहाहा! कितनी भाषा की! क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति-खेद, वासना, स्त्री, पुरुष, नपुंसक की वृत्ति, वह वासना, वह सब क्षोभरूप विकारसहित, चलाचल, व्याकुलता है। **इन विकारों से रहित हो तब शुद्धदर्शन-ज्ञानरूप निश्चय हो, वह आत्मा का धर्म है।** आहाहा!

इस धर्म से आत्मा के आगमी कर्म का आस्रव रुककर संवर होता है और पहिले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है। सम्पूर्ण निर्जरा हो जाय, तब मोक्ष होता है.... अब शुभ परिणाम की बात आयी। सम्यग्दृष्टि को, हों! अज्ञानी की बात नहीं है। **एकदेश मोह के क्षोभ की हानि होती है, इसलिए शुभपरिणाम को भी उपचार से धर्म कहते हैं....** कहो, देवीलालजी! समकित दृष्टि की बात है, हों! स्वभाव का आश्रय होकर दर्शन, ज्ञान, स्थिरता आदि आयी है, उसके जो शुभ परिणाम। **एकदेश मोह के क्षोभ की हानि होती है,...** उसमें। अशुभराग की हानि हुई न? **इसलिए शुभपरिणाम**

को भी उपचार से धर्म कहते हैं और जो केवल शुभपरिणाम ही को धर्म मानकर सन्तुष्ट है, उनको धर्म की प्राप्ति नहीं है,.... वह शुभभाव से ही मुझे धर्म होता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति आदि, लाखों-करोड़ों रुपये के दान, पूजा, गजरथ। गजरथ कहते हैं न बड़े। इन्द्रध्वज महोत्सव। यह सब शुभभाव है। परन्तु यदि इससे धर्म होता है, ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह तो समझ में आये ऐसी बात थी। यह तो पाठ है। यह आत्मधर्म में बहुत बार आ गया है।

और एकदेश नाम से कहना निश्चय है। जितना प्रगट हुआ है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश। उसे उस प्रमाण कहना, वह निश्चय। परन्तु प्रगट हुआ है थोड़ा और उसे पूर्ण कहना, इसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? छोटे-छोटे लड़के भी सुनने बैठे हैं। सुने तो सही, कान में तो पड़े। आहाहा! अरे! यह भगवान का स्वरूप ही ऐसा है। निगोद के एक शरीर में अनन्त भगवान विराजते हैं। आहाहा! किसे बैठे? जिसे यह द्रव्यस्वभाव ऐसा है बैठे, उसे यह बात बैठ जाये। क्षेत्र भले बड़ा न हो परन्तु शक्ति है न, सत्त्व है न। वह भी ज्ञान है, उसका सत्त्व ज्ञान है। आत्मा सत् है, उसका सत्त्व ज्ञान है। ज्ञान सत्त्व है अर्थात् वह तो पूर्ण है। शक्ति कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, वह पूर्ण है। पूर्ण है, वह परमात्मा है। समझ में आया?

एक अँगुल के असंख्य भाग में एक कणी जितनी टुकड़ा... कणिया कहते हैं। काई (की) एक कणी में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त भगवान। देवल एक और अनन्त भगवान देव। आहाहा! बापू! यह तो स्वभाव की बात है। स्वभाव जो है न, उस स्वभाव की... नहीं। स्वभाव, वस्तु है वह अरूपी है। परमाणु भी वास्तव में तो इन्द्रियगम्य तो है नहीं। छहों द्रव्य इन्द्रियगम्य नहीं है। आहाहा! पंचेन्द्रिय में भी एक-एक आत्मा ऐसी वस्तु है न? पदार्थ है न? तो उसकी अवस्था उत्पाद-व्यय की होने पर भी ध्रुव उसका स्वरूप है या नहीं? क्षेत्र छोटा, ऐसा नहीं, परन्तु क्षेत्र में सामर्थ्य कितनी है? उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे अनन्त भाव की सामर्थ्य है। ऐसी आत्मा की शक्ति की सामर्थ्य जिसे बैठे, उसे यह बात बैठ जाये। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग मार्ग है, वह बहुत सूक्ष्म है और बहुत धीरज का काम है यह। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, ऐसी जो स्वरूप की प्रतीति है, वास्तविक अपनी ध्रुव की। तो इस

प्रकार सबको वस्तुरूप से तो ध्रुव ही देखता है। आया न '**एयत्त णिच्छयगदो समओ सवत्थ**' टीका में जयसेन आचार्य ने यह लिखा है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय। परन्तु एकेन्द्रिय, वह तो पर्याय है, परन्तु वस्तु जो है, वह तो परमेश्वर एकत्व सदा ही है। आहाहा! एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संसार, सिद्ध आदि, वह तो सब पर्यायें हैं। परन्तु उन पर्यायों में वह ध्रुव चीज़ है एकरूप वस्तु है, वह आत्मा और वह भगवान है। आहाहा! अरे! यह बात तो कहीं साधारण प्राणी को बैठे ऐसी है? बापू! आत्मा वह तो अलौकिक बातें हैं भगवान! आहाहा! सत् का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! वहाँ वे कहते हैं कि एक है आत्मा। इसलिए भगवान ने तो ऐसा कहा, कुन्दकुन्दाचार्य ने। पाखण्डियों की मान्यता है। अमेहनाकार पाखण्डियों से प्रसिद्ध लोकाकाश प्रमाण व्यापक एक यह पाखण्डियों की मान्यता है। आहाहा! कहने का आशय ऐसा है। ऐसी वस्तु एक-एक ऐसी है, उसे सब होकर एक कहे। अरे! परन्तु महा पाखण्ड है। समझ में आया?

ऐसी चीज़ें अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे अनन्त आत्माओं से अनन्तगुणे तो रजकण, उतने ही गुणवाले। उन्हें—सबको एक कहना, वह तो बहुत ही मिथ्यात्व का जोर है वहाँ। इसलिए ऐसी महान चीज़ों को एकरूप से गिन डाला। आहाहा! समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं न कि यह निश्चय की बात है न, यह वेदान्त के साथ मिलती है, इसलिए उस वेदान्त की शैली की बात है यह। उस क्रिया में धर्म नहीं, ऐसा आता है। दया आ गया न? वह धर्म नहीं, पुण्य है। होता है। वेदान्त में गया यह तो सब। अरे! वेदान्त में। वेदान्त का अर्थ ज्ञान के अन्त में—सार में गया, ऐसा कह। परन्तु वेदान्त कहता है कि एक ही आत्मा, उससे तो अनन्तगुणा विरोध है। आहाहा! यह वस्तु कहाँ, उसे ख्याल में नहीं। सुनी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं ऐसा जो परिपूर्ण प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह आंशिक प्रगट हुई हो, उसे पूरा कहना, वह व्यवहार है और है—ऐसा जानना, वह निश्चय है। कहो, समझ में आया? अब ऐसा धर्म कैसा? वह तो कैसी थी हमारे हीराजी महाराज की छह काय की दया पालो, व्रत करो, तपस्या करो। भाई! व्रत करने से संवर होगा, तपस्या करने से निर्जरा होगी। लो! और पर की दया पालने से उपयोग

में शुद्धता होगी। शुद्धता होगी अर्थात् धर्म होगा, ऐसा। आहाहा! वस्तु अन्धेरे में रह गयी, उसे अपने अज्ञान में। ऐसी चीज़, यह कहते हैं वह प्रतीति, ऐसा कहते हैं। ऐसा पूर्ण प्रभु आत्मा पाँच सौ धनुष के देहवाला हो या सात-आठ हाथ (लम्बा) वाला हो। आहाहा! परन्तु वह वस्तु जो है, वह तो परिपूर्ण अनन्त गुण का धाम ध्रुव-ध्रुव वस्तु है। ऐसी ध्रुव की उसमें प्रतीति, प्रतीति में जोर कितना है? कि जो पूरी चीज़ इतनी इसने उसे श्रद्धा में ली थी। एक समय की श्रद्धा में ऐसी त्रिकाल वस्तु भगवान, जिसके गुण का पार नहीं होता अमापपना, ऐसी सदृश शक्ति का पिण्ड प्रभु, ऐसी जिसने श्रद्धा में ली, वह उसे सम्यग्दर्शन निश्चय से कहते हैं। और उसका जानपना-ज्ञान, वह निश्चय सम्यक् ज्ञान कहा, स्थिरता का चारित्र कहा। वस्तु यह है। अब वह पूर्ण नहीं और उसे पूर्ण कहना कि मोक्षमार्ग पूरा हो गया छठवें में, वह व्यवहार से। और चौथे गुणस्थान को मोक्षमार्ग कहना, वह भी व्यवहार है।

मुमुक्षु : जितना प्रगट हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जितना प्रगट हुआ है, उतना उसे जानना कहना, वह निश्चय है। ऐसे कितने पक्ष याद रखना? आहाहा! यह तो पक्ष नहीं, उसकी जाति की बात की बात है। पक्ष-बक्ष कहाँ इतने सब है? आहाहा! एक ओर द्रव्य का पक्ष, एक ओर पर्याय का पक्ष और उसके साथ राग का पक्ष। यह सब उसकी क्रीड़ा की बात है। समझ में आया? आहाहा!

अब, **दर्शन, ज्ञान, चारित्र को भेदरूप कहकर मोक्षमार्ग कहे....** उसे भेद पाड़कर व्यवहार। **तथा इनके बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं, उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है।** व्यवहार है न, व्यवहार राग का? उस राग को सम्यग्दर्शन कहना, ऐसे शास्त्र के ज्ञान को ज्ञान कहना, ऐसे महाव्रत को चारित्र कहना, वह भेदरूप मोक्षमार्ग है। वह तो व्यवहार है और उसका **बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं,....** देव, गुरु, शास्त्र इत्यादि। **उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे,....** आया न भाई उसमें? उस बन्ध में नहीं आया बन्ध? छह काय के जीव, वे चारित्र हैं, ऐसा वह यहाँ कहते हैं। नौ तत्त्व, वह श्रद्धा है। समझ में आया? आचारांग आदि के अक्षर, वे ज्ञान हैं। उसमें निमित्त है न, इसलिए कह

दिया। आहाहा! यह व्यवहार से कहते हैं। वहाँ तो यह कहा है। छह काय के जीव, वह चारित्र हैं। अर्थात् कि छह काय के भावों का, दया का भाव-विकल्प है और वह है व्यवहारचारित्र है। परन्तु उसमें वह निमित्त पड़ा था, उसे कह दिया परद्रव्य का। उसमें निमित्त पड़ा न बस, वह। यह यहाँ कहते हैं, देखो!

जो **बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं, उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम से कहे, वह व्यवहार है।** आहाहा! समझ में आया? वेदना से समकित हुआ, देवऋद्धि देखकर समकित हुआ, वह सब व्यवहार के कथन हैं। बाहर के परपदार्थ के। सम्मेदशिखर के ऐसे दर्शन होने से समकित हुआ। समवसरण में भगवान को देखकर समकित हुआ, यह सब बाह्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त है। उसे कहे व्यवहार से।

देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं,.... देखो, स्पष्टीकरण किया है। पर है न परवस्तु? देव पर, गुरु पर और शास्त्र पर। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म तो आया परन्तु अब भाई! यह मनुष्यदेह ऐसा उसमें यदि यह नहीं किया... आहाहा! यह रजकण सब बिखर जायेंगे। अकेला चला जायेगा चौरासी में भटकने। सच्ची समझ और सच्ची श्रद्धा का डोरा नहीं पिरोया, भाई! कहीं हाथ नहीं आवे तू। आहाहा! कहीं चौरासी के अवतार, वे असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र। वहाँ सब वैमानिक देव और भूतड़ा के व्यन्तर। नारकी के, पृथ्वीकाय के जीव वापस। आहाहा! पानी का जीव। नारकी के आसपास है न वह क्या कहलाता है वह? वायुमण्डल। उदोदधि में जीव जन्मे। आहाहा! मुक्तिशिला का पत्थर, उसमें जीव जन्मे अन्दर।

जिसे यह आत्मा निश्चय और व्यवहार की बात का क्या स्वरूप है, ऐसा यदि नहीं जाना, उसे यह परिभ्रमण के भवों में जाना पड़ेगा। आहाहा! चार इन्द्रियाँ हार जायेगा, मन हार जायेगा। दुनिया को स्वीकार करना पड़े कि यह जीव है, ऐसी जाति में नहीं रहेगा तू। आहाहा! समझ में आया? दुनिया उसे कहे कि यह आत्मा है, ऐसी स्थिति में भी नहीं रहेगा। आहाहा! ... चाहिए, बापू! आत्मा ऐसा है, ऐसा जरा। उसमें अनन्त आत्मा है। ऐसा असत्य को सेवन किया था। मानो ऐसे सत्य को लांछन दिया था कि वह सत्पना अपना है (ऐसा) दुनिया को स्वीकार करना मुश्किल पड़ गया।

आहाहा! समझ में आया?

देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं,.... ठीक! श्रद्धा में निमित्त है न वह? व्यवहार, हों! विकल्प है, राग है। आहाहा! **जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं।** यह व्यवहार। आहाहा! **शास्त्र के ज्ञान अर्थात् जीवादिक पदार्थों के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं इत्यादि।** यह व्यवहार। आहाहा! राग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहोहो! अब फिर चारित्र लेंगे। श्रद्धा में भगवान आत्मा स्वस्वरूप से पूर्णानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा, वह निश्चय सम्यग्दर्शन। और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह विकल्प है, राग है। वह व्यवहार श्रद्धा कही जाती है। अर्थात् कि नहीं है, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार। ऐसे आत्मा का ज्ञान। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, चैतन्य उसका ज्ञान, वह निश्चयज्ञान है और शास्त्र का ज्ञान, वह विकल्प-राग है, व्यवहार है। आहाहा! यहाँ तो शास्त्र का ज्ञान थोड़ा-बहुत हो तो उसे चढ़ जाये। आहाहा! बड़ा पण्डित हो गया और मैं मानो दुनिया में अधिक। आहाहा!

मुमुक्षु : पूजा हो, रोटियाँ मिलें, स्थान मिले, माल मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटियाँ मिले। गृहस्थामें जाता है न वहाँ। यह कहते हैं।

मुमुक्षु : मैं तो मेरी बात करूँ, प्रभु! दूसरे की बात मैं नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने यह कहा। भाई वहाँ जाते हैं न। ...पैसेवाले बहुत। पन्द्रह घर हैं न? कितने? पन्द्रह हैं।

मुमुक्षु : पन्द्रह घर हैं। पचास लाख....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पैसेवाले हैं। वहाँ जाय और फिर झपट मारे इसलिए लोग, ओहोहो! स्थान दे, माल दे, खाने का दे, सब दे। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : माल दे नहीं।....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा तो कहाँ तुम्हारे देना है?

अब निश्चयचारित्र में व्यवहारचारित्र कैसा होता है, यह विशेष कहेंगे, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १५, शुक्रवार, दिनांक-२६-१०-१९७३
गाथा - ६ प्रवचन-३७

अष्टपाहुड़, सूत्रपाहुड़ चलता है। भगवान को (निर्वाण का) आज २५००वाँ वर्ष लगा।... फिर करेंगे। पूरा हो इसलिए। २५००वाँ वर्ष लगा मोक्ष पधारे न। भगवान को केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल दशवीं को हुआ है। परन्तु फिर पावापुरी में मोक्ष पधारे। वहाँ आगे आत्मा में ध्यान में अयोगदशा प्रगट की। शुक्लध्यान में। उत्कृष्ट अन्दर में एकाग्र होने से योग से रहित। जैसा वह निवृत्तस्वरूप है, वैसा निवृत्त अन्तर में साधा। और राग से, कम्पन से भिन्न करके अकम्पनरूप से स्थिर होकर मोक्ष की पर्याय को साधा। आहाहा! अनन्त काल में सिद्धपद नहीं था, वह यह मांगलिक का दिन है, उसमें सिद्धपद की प्राप्ति हुई, वह सिद्धपद मिला, वह ऐसे तो व्यवहार है। क्योंकि पर्याय है न? पर्याय है न, उतना व्यवहार। परन्तु दूसरे विचार करनेवाले को श्रुतज्ञानी को व्यवहार है। उन्हें कुछ है नहीं। उन्हें तो... आहाहा!

स्वयं जो पूर्ण स्वरूप हो गया। द्रव्य और पर्याय पूर्ण, वह तो प्रमाण ज्ञान पूरा हो जाता है। उसे नय नहीं। परन्तु निश्चय से श्रुतज्ञानी श्रुतज्ञान के भागरूप नय जो अवयव। यह विषय सब सूक्ष्म है इसमें आज।... बड़े दिन में आया है, उसे ख्याल तो रखना पड़ेगा। निश्चय-व्यवहार के पहलू समझने के लिये बहुत मध्यस्थता और तात्त्विकता क्या कही है, उसका इसे ज्ञान करना पड़ेगा। यहाँ यही अपने आया, देखो। परमात्मा मोक्ष पधारे, वह पर्याय है। वास्तव में निश्चय से तो उस पर्याय को परद्रव्य कहा है। वह किस अपेक्षा से? कहो, समझ में आया? पर्याय में से पर्याय नहीं आती। पर्याय द्रव्य में से आती है। इसलिए एक समय की पर्याय मोक्ष को भी जिसने परद्रव्य कहा है। आहाहा! और उसे व्यवहार कहा है। और एक ओर उसमें हुई मोक्ष की पर्याय अथवा मोक्ष का मार्ग, वह निश्चय है, उसकी पर्याय में है, इसलिए निश्चय है।

दूसरे प्रकार से कहें तो पुण्य और पाप का संसार जो उदयभाव है, उसे यहाँ

अध्यात्मशास्त्र में तो परद्रव्यरूप से कहा है। परन्तु दूसरी अपेक्षा से, आगम अपेक्षा से लें तो वह विकार निश्चय से स्वद्रव्य की पर्याय है, इसलिए इसका है। समझ में आया? यह सब निश्चय-व्यवहार के झगड़े खड़े हुए हैं न, उसका स्पष्टीकरण किया है। शास्त्र की पद्धति के निश्चय-व्यवहार कैसे होते हैं? वह व्यवहार एक समय की पर्याय को भी व्यवहार कहा। यह तो प्रश्न उठा था। सातवीं गाथा में नहीं? कि पर्याय तो उसकी है। उसे तुम व्यवहार कैसे कहते हो? व्यवहार तो परद्रव्य को व्यवहार कहा जाता है। परवस्तु, वह व्यवहार और स्ववस्तु वह निश्चय। वह पर्याय तो परवस्तु नहीं, उसे तुमने व्यवहार कैसे कहा? कि भाई! साधक जीव को अभेद के ऊपर दृष्टि गये बिना और अभेद हुए बिना, उसे धर्म का लाभ नहीं होता। और रागी प्राणी है, इससे भेद के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो उसे राग होगा। भेद, वह राग का का कारण है, ऐसा नहीं। परन्तु रागी को रागभाव है न? वह अभेद पर दृष्टि जायेगी तो उसे मुक्ति का कारण होगा। भेद पर लक्ष्य जायेगा तो रागी को राग के कारण से राग उत्पन्न होगा। बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! आहाहा! कहो, पोपटभाई! ऐसा कभी सुना न हो, ऊपर-ऊपर से सुना हो, निश्चय ऐसा है और फलाना ऐसा है। आहाहा! बापू! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का कहा हुआ निश्चय और व्यवहार जिस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से उसका यथार्थपने जानना पड़ेगा। आहाहा!

यहाँ आया अपने। यहाँ आया है न अन्तिम पैरेग्राफ में। भगवान मोक्ष पधारे। आहाहा! भरतक्षेत्र में केवलज्ञान का विरह पड़ा और बुद्धि कम, बहुत कम रही, इसलिए निश्चय-व्यवहार को समझने में पक्षपात करके झगड़े खड़े किये हैं। परन्तु उन झगड़ों को टालने के लिये भगवान की वाणी में निश्चय-व्यवहार का स्पष्ट स्वरूप आया है। समझ में आया? त्रिकाली द्रव्य वस्तु है, उसे निश्चय कहते हैं। आहाहा! तब उसकी वर्तमान पर्याय को व्यवहार कहते हैं। भेदरूप हुआ न? न्याय आता है न अब? भेद पड़ा न इतना? आहाहा! और व्यवहार कहते हैं अर्थात् वह हेय हो गया। समझ में आया?

दूसरी अपेक्षा से कि जो यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र उसमें प्रगट हो, सम्यग्दर्शन-

ज्ञान–चारित्र आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हों, वह निश्चय मोक्षमार्ग है। जिसे—पर्याय को त्रिकाल की अपेक्षा से परद्रव्य कहा था, उसे राग से भिन्न पड़ी हुई दशा को, स्वआश्रित हुई है, इसलिए उसे निश्चय-मोक्षमार्ग कहा। चन्दुभाई! भारी पहलू भाई ऐसे! और उस त्रिकाली को निश्चय कहा, उसके मोक्षमार्ग को भी निश्चय कहा। और भेदरूप जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र के व्यवहार से भेद पड़े, उसे व्यवहार कहा। देव-गुरु–शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत इत्यादि को व्यवहार कहा।

वास्तव में तो व्यवहार परद्रव्य को ही कहा जाता है परन्तु प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये उसकी (स्वयं की) पर्याय को भी व्यवहार कहते हैं। द्रव्य के ऊपर दृष्टि लगाने का प्रयोजन आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की शुद्धि के लिये अभेद वस्तु को निश्चय कहा। और अभेद वह मुख्य है और मुख्य है, उसे निश्चय कहा। आहाहा! एक ओर अपना द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों होकर निश्चय कहा। स्व है इसलिए। पर है, उसे व्यवहार कहा। दूसरे प्रकार से उसे स्व की पर्याय में भेद पड़ता है, त्रिकाल की अपेक्षा से। यहाँ तो साधक को नय, प्रमाण, निश्चय, व्यवहार होता है न? भाई! यह कहीं निश्चय-व्यवहार मुक्त को होता नहीं है। साधक को किस प्रकार निश्चय-व्यवहार है, ऐसा इसे समझना चाहिए। आहाहा!

अरे! अनन्त काल में इसने वास्तविक सत्य का स्वरूप और व्यवहार का उपचारिक स्वरूप क्या है? किस अपेक्षा से? उसका इसने ज्ञान किया नहीं। यथार्थ ज्ञान हो और शान्ति न मिले, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। फिर से लेते हैं पैराग्राफ। **दर्शन, ज्ञान, चारित्र को भेदरूप कहकर मोक्षमार्ग कहे....** यह व्यवहार हुआ। देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह व्यवहार दर्शन है। वह व्यवहार समकित कहलाता है। जो राग भेदस्वरूप है। उसे व्यवहार भेद करके व्यवहार कहते हैं। **तथा इनके बाह्य परद्रव्यस्वरूप....** बाह्य निमित्त। द्रव्य बाह्य निमित्त, क्षेत्र बाह्य निमित्त, काल और भाव निमित्त है। **उनको दर्शन, ज्ञान, चारित्र नाम से कहे....** यह कल कहा था। नौ तत्त्व को, नौ तत्त्व को समकित कहना, छह काय के जीव को चारित्र कहना, शास्त्र के अक्षर शास्त्र जो अक्षर है, उन्हें ज्ञान कहना। क्योंकि उसके निमित्त से, अवलम्बन से हुआ, इसलिए उस निमित्त को ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र परद्रव्य को कहना, वह भी एक

व्यवहार है। यह सूक्ष्म तो है, भाई। यह अधिकार ही सूक्ष्म मौके से आया है इसमें। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि **दर्शन, ज्ञान, चारित्र...** अब मोक्षमार्ग के ऊपर लेना है। पहला तो द्रव्य और पर्याय के बीच की बात की थी। अब निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की पर्याय के भेद की बात करते हैं। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्ष का मार्ग अन्तर, वह तो निश्चय है। भले द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय है, परन्तु राग की अपेक्षा से निर्मलता है भिन्न; इसलिए उसे निश्चय कहा जाता है। अपनी पर्याय है और अपने से उत्पन्न हुई है। पर से उत्पन्न हुई दशा नहीं है। परन्तु उसमें भेद दिखता है, वह पर के आश्रय से उत्पन्न हुआ है, इसलिए व्यवहार कहते हैं। देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, यह सब व्यवहार है। यह व्यवहार वास्तव में तो वस्तु की अपेक्षा से तो हेय है।

मुमुक्षु : आये बिना रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये बिना रहता ही नहीं। आवे तो सही, परन्तु वह हेयबुद्धि से आता है। हेयबुद्धि से ज्ञेय है। भगवान त्रिकाल है, वह उपादेयबुद्धि से ज्ञेय है। उसमें कहाँ सब? ऊपर-ऊपर से पकड़ना हो और हाँ... हाँ... करता हो। आहाहा!

उसमें 'निश्चय-व्यवहारनय ने जगत भरमाया।' यह आता है न? बनारसीदास में आता है। उसे बराबर न समझे तो उसमें भ्रम ही उत्पन्न होता है। ऐसा अनादि से ऐसा का ऐसा... आहाहा! भाई! तेरी चीज़ तो...। ओहो! पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु है न! उसकी अन्तर दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और वह सम्यग्दर्शन है पर्याय, परन्तु मोक्ष के मार्ग की अपेक्षा से वह पर्याय निश्चय है। आहाहा! अब इस समय यह अधिकार आया सहज ही, क्या करना? यह ३९वीं दीपावली है न? परिवर्तन के बाद की। कहो, समझ में आया? यह तो बहुत वाँचन और विचारना पड़ेगा। ऐई! बालुभाई! ऐसे ऊपर से नहीं चले वहाँ।

मुमुक्षु : आपकी सेवा करे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा-बेवा में कुछ चले ऐसा नहीं। वहाँ जायें तो चौबीस घण्टे साथ रहे। मुम्बई में दुकान-बुकान जाये नहीं। रात्रि में नहीं। घर में नहीं। यह लड़का

करता है, इसलिए यह सन्तोष हो न उसका। आहाहा! वह न हो अन्दर में, देखो! यह कहते हैं। ऐसा हो तो होओ। ओहोहो! उस पर में मेरा अधिकार जरा भी नहीं है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो सम्यक् है, सच्चा मोक्षमार्ग है, उसका भेद करके कहना... नियमसार में आता है न... भेद पाड़कर कहना। यह तो मानो कि तीन का भेद एक दर्शन, ज्ञान, ऐसा नहीं। उसमें यह शैली है। नियमसार में, शुरुआत में। यह तो मानो दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन है, उसका एक-एक भेद करना, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसका अर्थ दूसरा है। यह उसका भेद करना कि दर्शन जो सम्यक् है, उसका भेद करके व्यवहार कहना, वह व्यवहार की बात है।

मुमुक्षु : उसे—अपने को भिन्न करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न करता है। आहाहा! छोटाभाई! नियमसार में आता है। यहाँ तो अब बहुत वाँचन हो गया है, हों! शक्तिप्रमाण... बाकी अपार वस्तु है। ओहोहो! वीतरागमार्ग की द्रव्य, गुण, पर्याय की शैली अपार... अपार... अपार... गम्भीर है। साधारण प्राणियों को पार पा सकना बहुत कठिन है। आहाहा! यह तो परम सत्य ऐसा है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा परम सत्य प्रसिद्ध किया है। उसके अन्दर में दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो आत्मा के आश्रय से हो, वह निश्चय है। क्योंकि वह सत्य है। वह सत्य है अर्थात्? वह रागरूप नहीं, भेदरूप नहीं। इस अपेक्षा से उसे सत्य कहते हैं और त्रिकाल की अपेक्षा से उसे असत्य कहा है। परिणाममात्र को अभूतार्थ और असत् कहा है। आहाहा! गजब बात है।

यह यहाँ कहते हैं और वह बाह्य परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, वह निमित्त है। उस वस्तु को व्यवहार कहना। परद्रव्य को, हों! आहाहा! **नाम से कहे, वह व्यवहार है।** अब इसका स्पष्टीकरण किया है। **देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं,...** यह व्यवहार विकल्प राग। आहाहा! देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ, शास्त्र भगवान ने कहे हुए। आहाहा! अनेकान्त शास्त्र जो है भगवान ने कहे हुए हैं। उनकी श्रद्धा, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या तो (यह कि वह) विकल्प है। समझ में आया?

जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं। दूसरी लाईन। जीवादि श्रद्धा को सम्यग्दर्शन। इसलिए कल आया था न थोड़ा? कि निगोद के जीव जो जीव हैं, वे अनन्त हैं। स्वद्रव्य की श्रद्धावाले को परद्रव्य की श्रद्धा का व्यवहार उसे आता है। एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव सर्वज्ञस्वभावी आनन्दस्वभावी, पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग उघाड़, क्षेत्र में एक, अंश में अनन्त। एक कण में अनन्त। ऐसा जीवतत्त्व है, उसे निश्चय की श्रद्धावाले को ऐसी उसे व्यवहार श्रद्धा होती है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो मोक्ष को भी व्यवहार कह दिया। जीवादिक पदार्थों के ज्ञान। है न? **श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं।** जीवादि पदार्थ (में) मोक्ष पदार्थ आया। पर्याय की श्रद्धा, वह व्यवहार श्रद्धा है। आहाहा! अभी तो नहीं मोक्ष। है उसकी श्रद्धा करना, वह तो परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! यह धीरज की बात है। पहले भाई... मार्ग था। पहले विवाह करते न विवाह। पहले था। अब तो कहाँ निवृत्ति है? विवाह करे तो डोरा उलझाकर दे वर को। सुना है? चन्दुभाई! सूत का डोरा होता है न, उलझाकर उसे दे। उसे उस समय विवाह करने आया है, उसके उत्साह में धीरज है या नहीं? यह देखने के लिये। शशीभाई! ऐसा पहले था? किसे खबर? मुझे खबर है। यहाँ तो सब नमूने देखे हुए हैं न! वह सूत का डोरा उलझाकर आड़ा-टेढ़ा करके वर को दे। खोल दो। धीरज चाहिए। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा में निश्चय-व्यवहार की उलझन किस प्रकार से है, उसका हल करना चाहिए इसे। तो इसे मोक्ष का विवाह हो, मोक्ष हो। वरना नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! आता है, निश्चय-व्यवहारनय में जगत भरमाया है। आहाहा!

अरे! यह वस्तु सर्वज्ञ पंथ में ही होती है। समझ में आया? और इस प्रकार की सत्यता, वह दिगम्बर जैनधर्म में ही होती है। वह यहाँ कहते हैं कि **जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा....** आहाहा! अनन्त जीव, अनन्त रजकण, शुभभाव पुण्य, अशुभभाव पाप, दोनों आस्रव होकर भावबन्ध... उसकी यथार्थ श्रद्धा व्यवहार है। यह विकल्प है, वह तो राग है उसमें। **शास्त्र के ज्ञान अर्थात् जीवादिक पदार्थों के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं....**

यह व्यवहार। आहाहा! परद्रव्य है न शास्त्र? यह शास्त्र का ज्ञान, वह भी व्यवहार ज्ञान विकल्पवाला और रागवाला है। आहाहा!

पाँच महाव्रत,... अब चारित्र यहाँ से आया। यहाँ से कल था। अब चारित्र की अन्दर निश्चय तो स्वरूप के आनन्द में रमणता। भगवान आनन्दस्वभावी वस्तु की प्रतीति और ज्ञानसहित आनन्दस्वरूप प्रभु में रमना, चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! उसके साथ व्यवहारचारित्र अर्थात् कि चारित्र नहीं परन्तु चारित्र कहना, इसका नाम व्यवहार। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव के परिणाम हैं। उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है।

पाँच समिति... देखकर चलना इत्यादि। वह आस्रव विकल्प। **तीन गुप्तिरूप प्रवृत्ति को चारित्र कहते हैं।** मन, वचन और काया में शुभ की प्रवृत्ति को चारित्र कहते हैं, वह व्यवहार है। वह शुभ विकल्प है। आहाहा! यहाँ तो अभी यह पंच महाव्रत के परिणाम, वह चारित्र हो गया। वह तो एकओर रह गयी बात। आहाहा! कहाँ एक भी... क्या हो? कहते हैं। उसे **बारह प्रकार के तप को तप कहते हैं।** वह अनशन और ऊनोदर और वृत्तिपरिसंख्यान और रसपरित्याग और अपवास किये, पाँच अपवास किये, दस अपवास किये, वह व्यवहार तप है। उसमें शुभविकल्प राग की मन्दता का हो, उसे व्यवहारतप। अन्तर में इच्छा निरोध के अमृत के स्वाद में जो दशा होती है, उसे निश्चय तप कहते हैं। और ऐसे बारह प्रकार के तप के विकल्प उठें, उसे व्यवहार कहते हैं। अर्थात् कि तप नहीं उसे तप कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! तब कहे, व्यवहार है न? है अर्थात् क्या परन्तु? वह धर्म है? वह व्यवहार... ऐसा कहते हैं कि उस व्यवहार में निश्चय का अंश है, ऐसा कहते हैं। यह वहाँ सुना था तब। (संवत्) २०१३ के वर्ष में। समझ में आया? व्यवहार में निश्चय हो तो व्यवहार कहा क्यों उसे? आहाहा!

ऐसे भेदरूप... अब दो बातें लीं। भेदरूप समझ में आता है? संसारदशा और मोक्षदशा दो भेदरूप। और वह व्यवहार के विकल्प आदि, वह भेदरूप। द्रव्य की अपेक्षा से त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से मोक्ष और संसार, वह भेदरूप व्यवहार है, और निश्चय मोक्षमार्ग की अपेक्षा से उसमें भेद पड़ने पर विकल्प जो नौ तत्त्व की श्रद्धा आदि का,

उसे व्यवहार (कहा), वह भेदरूप है। **तथा परद्रव्य के आलम्बनरूप प्रवृत्तियाँ....** वह भेदरूप तो अकेली पर्याय कही। मोक्ष की आदि। और मोक्षमार्ग में से भेदरूप। मोक्षमार्ग का भेदरूप यदि कहो, तब तो राग हो गया। परन्तु यहाँ तो समुच्चय। ऊपर लिया था न? **इस प्रकार जितनी संसार की अवस्था है, यह मुक्त अवस्था इस प्रकार भेदरूप आत्मा का निरूपण है, वह भी व्यवहारनय का विषय है।** है न पैराग्राफ में? यह भेदरूप लियास। यह भेदरूप लिया।

तथा परद्रव्य के आलम्बनरूप.... परद्रव्य के आलम्बन से जितनी प्रवृत्ति दया, दान, व्रत, समिति, गुप्ति हो, वह **सब अध्यात्मशास्त्र की अपेक्षा व्यवहार के नाम से कही जाती है....** आहाहा! अध्यात्म शास्त्र जहाँ स्व के आश्रय की बात कहने में आवे, इस अपेक्षा से तो सब एक समय की पर्याय मोक्ष और संसार, मोक्ष का मार्ग, समझ में आया? उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! एक समय की दशा जहाँ त्रिकाल वस्तु है पूरी। आहाहा! पूर्व में जिसकी अस्ति नहीं थी और भविष्य में नहीं, ऐसा है? वह तो अस्ति... अस्ति... अस्ति... है... है... है... ऐसा जो सदृश तत्त्व, वह उसे निश्चय कहते हैं। उसे सत्य कहते हैं, उसे भूतार्थ कहते हैं, वह ही है, ऐसा कहते हैं। और एक समय की मोक्षादि पर्याय, उसे असत्य कहते हैं, झूठी कहते हैं, 'नहीं' ऐसा कहते हैं। इसकी (द्रव्य की) अपेक्षा से, हों! आहाहा!

क्योंकि वस्तु के एकदेश को वस्तु कहना भी व्यवहार है.... त्रिकाली द्रव्य की एक समय की पर्याय को आत्मा की कहना, वह भी व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म लगे, परन्तु इसमें विषय जो आया है उसमें... आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार के प्रकार बहुत होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत हैं। एक समय की पर्याय त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार, एक समय की पर्याय त्रिकाल की अपेक्षा से परद्रव्य, एक समय की पर्याय उपचारिक, व्यवहारिक और झूठी। तथा राग की अपेक्षा से एक समय की पर्याय सच्ची, सत्व और है। आहाहा!

वह कहते हैं न कि सोंठ का गांठिया लेकर पंसारी नहीं हुआ जाता है। एक सोंठ

का गांठिया बेचने बैठा, तो पंसारी हो गया? भाई! सोंठ का गुण देखे और इसके अतिरिक्त हल्दी, घाणा और जीरा और... ढ़ेर चाहिए, तब उसे पंसारी कहा जाता है। ऐसे पंसारी नहीं कहा जाता। और एक-दो वस्तु कुछ पकड़ी तो हमको ज्ञान हो गया। समझ में आया? वह सोंठ की गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता। चन्दुभाई! पंसारी कहलाये वह? आहाहा!

कहते हैं, **परद्रव्य के आलम्बनरूप प्रवृत्तियाँ सब अध्यात्मशास्त्र की अपेक्षा व्यवहार के नाम से कही जाती है....** देखो! इसलिए रागादि का भाव, उसे व्यवहार कहते हैं और राग में जो निमित्त है, उसे भी व्यवहार कहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं लिया? कि विकार है निश्चय से अपना है और कर्म उसका निमित्त, वह तो व्यवहार उसे कहते हैं। इस अपेक्षा से दो के बीच का भेद करने की बात है। यहाँ जब समयसार में कहा विकारमात्र है, वह व्यवहार, अभूतार्थ है। असत्यार्थ, वस्तु में तीन काल में नहीं। यह दूसरी अपेक्षा है। वह विकार, द्रव्य में जाने के लिये विकार ज्ञान हो, उसे भी वह ज्ञान करके जाना कहाँ है? अर्न्मुख परमात्मा विराजते हैं, वहाँ उसे जाना है। समझ में आया? ऐसे ध्रुवधाम में जिसे दृष्टि देनी है। आहाहा! सब चिन्तायें छोड़कर, एक समय की पर्याय में भी कुछ है, ऐसा विकल्प भी छोड़कर। आहाहा! त्रिकाल की अपेक्षा से उसे स्वद्रव्य कहा, पर्याय को परद्रव्य कहा। उस पर्याय को मोक्षमार्ग की अन्दर निश्चय मोक्षमार्ग, उसका सच्चा कहा। राग के कारण व्यवहार कहा। उसका निमित्त हो उसे भी व्यवहार कहा जाता है।

अब तीसरी बात आयी। अब दूसरी बात लेते हैं पंचाध्यायी की। कान में पड़ने तो दो यह क्या है। अनजाने, साधारण मस्तिष्कवालों को ऐसा लगेगा। कितने ही लड़के इकट्ठे हुए हैं न! आहाहा! कहीं शिक्षा का ठिकाना नहीं। चौथी, पाँचवीं में थी, ऐसा यहाँ ठिकाना सातवीं में नहीं और और मेट्रिक में नहीं। आहाहा! **अध्यात्म शास्त्र में...** दूसरे प्रकार से अध्यात्म शास्त्र, ऐसा। एक बात तो अध्यात्म शास्त्र की व्यवहार से। **इस प्रकार भी वर्णन है...** एक इस प्रकार का भी अध्यात्म शास्त्र, जिसमें भगवान आत्मा को मुख्य करके जिसमें कथन है, ऐसे **अध्यात्म शास्त्र में इस प्रकार भी...** ऊपर कहा वह तो है, परन्तु इस प्रकार से भी एक वर्णन है।

कि वस्तु अनन्त धर्मरूप है.... भगवान आत्मा तो अनन्त धर्मस्वरूप है। अनन्त धर्म धारे हैं, अनन्त शक्ति गुणस्वरूप है। भगवान वस्तु एक, परन्तु उसकी शक्तियाँ, गुण, स्वभाव, सत्त्व वे अनन्त हैं। सत् वस्तु का सत्त्व; सत्त्व अर्थात् गुणभावपना। आहाहा! वह अनन्त धर्म है। शशीभाई! इस समय यह सूक्ष्म आया है। आहाहा! **इसलिए सामान्य विशेषरूप से तथा द्रव्य-पर्याय से वर्णन करते हैं।** इसलिए अध्यात्म में सामान्य-विशेषरूप से और द्रव्य-पर्याय दो। एक द्रव्य अर्थात् सामान्य और पर्याय अर्थात् विशेष। इसका स्पष्टीकरण किया। क्या कहा, समझ में आया?

भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं। यह हीरा जिसे लेना है, उसकी कीमत उसे भरनी पड़ेगी। ऐसा जिसे सच्चा मोक्षमार्ग समझना हो, उसे पुरुषार्थ की कीमत उसे देनी पड़ेगी। समझ में आया? आहाहा! हैरान हो गया है, ऐसा और ऐसा चौरासी के अवतार में। कर्म और कर्म के निमित्त से होनेवाली सामग्रियाँ, उन्हें अपनी मानना, वह आत्मा का खून है। कर्म और कर्म के निमित्त से दो प्रकार—घाति और अघाति। घाति कर्म के निमित्त से होती अन्दर में विकृत अवस्थायें, अघाति के निमित्त से सामग्री। ऐसा और ऐसा सब। इसलिए कर्म और कर्म के निमित्त से होनेवाली उपाधि में किसी भी अंश को अपना मानना... आहाहा! वह अधर्म-मिथ्यात्व—महास्वरूप की हिंसा है। समझ में आया? कहो, डालचन्दभाई! कहाँ गये तुम्हारे हरिभाई? दादा! समझना पड़ेगा, हों! वहाँ अकेले बड़ा-बड़ा व्यापार और फलाना-ढींकणा। इज्जत बड़ी हो और दस लाख रुपये बड़े बँगले, वह कहीं धूल में भी कुछ नहीं। आहाहा!

तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्दसहित जहाँ अन्दर विराजता है। आहाहा! उसका स्वरूप दो प्रकार से—एक सामान्य स्वरूप, एक विशेष स्वरूप। अर्थात् कि एक द्रव्यरूप, एक पर्यायरूप। समझ में आया? आत्मा है, वह त्रिकाली एक द्रव्यरूप वस्तु ध्रुवरूप और एक उत्पाद-व्यय-पर्यायरूप। अर्थात् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् के दो भाग किये। तीन थे, उसके दो किये। उत्पाद-व्यय-अवस्था उपजना, दूसरी अवस्था जाना और ध्रुव ऐसा होने पर भी वह सदृश वस्तु गुण तो कायम रहते हैं। उन तीन के अभी दो अब। एक ओर वस्तु द्रव्य त्रिकाली और उत्पाद-व्यय-पर्याय। त्रिकाली, वह सामान्य; उत्पाद-व्यय, वह विशेष। त्रिकाली, वह निश्चय और पर्याय, वह व्यवहार—

ऐसा जो कहा था, उसे दूसरे प्रकार से अब कहते हैं। समझ में आया? अब दूसरे प्रकार से कहते हैं।

द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहना व्यवहार का विषय है। पंचाध्यायी की शैली। यह द्रव्य है, वह त्रिकाली है, वह भी पूरी चीज़ में से भेदरूप विकल्प उठा। यह द्रव्य है। वह भी व्यवहार है। लो! भेद पड़ा न? पूरी चीज़ में से एक अंश के दो अंश हो गये न? समझ में आया? पंचाध्यायी की (शैली से) जितना कथन करो, वह व्यवहार है, वह ऐसा नहीं, इसका नाम निश्चय है, यह यहाँ सिद्ध करते हैं। ऐसा नहीं। कि द्रव्यमात्र कहना और पर्यायमात्र कहना, वह व्यवहार का विषय हो गया। एक-एक दोनों व्यवहार का विषय। चन्दुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....नहीं पड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद पड़ा और विकल्प है उतना। वह विकल्पवाला नय लेकर द्रव्यमात्र कहना, वह व्यवहार, पर्यायमात्र कहना, वह भी व्यवहार।

और **द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन-अगोचर कहना निश्चय का विषय है।** यह द्रव्य है, ऐसा जो होता है, वह भी एक विकल्प है। आहाहा! जिसे द्रव्यदृष्टि से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा जो कहा, वह द्रव्य त्रिकाली का जहाँ आश्रय—लक्ष्य में वहाँ जाता है, इसलिए सम्यग्दर्शन होता है। उस द्रव्य को यहाँ विकल्पवाला निश्चयनय लिया। समझ में आया? कहते हैं कि द्रव्य वस्तु है, ऐसी वस्तु है, वस्तु है। वस्तु है वह त्रिकाली, परन्तु उसका विकल्प कि यह है, ऐसा हुआ, वह विकल्प उठा। और पर्याय है उसकी अवस्था। उसका विकल्प उठा। कथनमात्र के भेद करने से उसे लक्ष्य में ले तो उसे विकल्प उठता है। परन्तु उसका निषेध करके, द्रव्य का और पर्याय का निषेध करके वचन अगम्य कोई चीज़ है। विकल्पातीत चीज़ है। आहाहा! जिसके, कहो गिरधरभाई! यह सब सूक्ष्म आया। गिरधरभाई की जमीन ले ली गयी भाई कल। यह गिरधरभाई की जमीन कहलायी गयी। उसे लेने की थी न। आये थे कहने। वहाँ मन्दिर नया बनाना है। साधारण है न भगवान का मन्दिर। देखा है तुमने? .. साधारण दूसरा। ... अब वहाँ गृहस्थ तो बहुत हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कैसा उसे ज्ञान कितना-किस प्रकार का करना? देव-गुरु-शास्त्र, वे तो पर और व्यवहार। परन्तु यहाँ तो द्रव्यवस्तु त्रिकाली द्रव्य है, यह द्रव्य है, ऐसा भेद पाड़कर विकल्प उठता है, वह भी व्यवहार है। ...चन्दभाई! आहाहा! भगवान की भक्ति, वह तो व्यवहार, वह तो असद्भूतव्यवहार। आहाहा! परन्तु द्रव्य वस्तु है, ऐसी है—ऐसा विकल्प उठे, वह भी सद्भूतव्यवहार। आहाहा! वह भी निषेध करनेयोग्य है। कठिन बातें, भाई! ऐसा मार्ग वीतराग का, लोग बाहर में मानकर बैठ गये सब। वह कहे दया पालना, वे कहे भक्ति करना, यात्रा करना, वे कहे वस्त्र छोड़कर नग्न होकर रहना। आहाहा! उसमें क्या है, बापू! यह तो अनन्त बार किया, भाई!

वस्तु अन्दर में पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु, तेरा भगवान पूर्णानन्द विराजमान है। आहाहा! जिसमें एक समय की वर्तमान अवस्था है न, कार्यरूप या विचाररूप, वह उसमें नहीं। ऐसी चीज़ को द्रव्यमात्र भी कहना और लक्ष्य में लेना, तो कहते हैं कि वह विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो प्रभु! गहरे-गहरे ले जाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गहरे-गहरे। आहाहा! गहरे अर्थात् हो वहाँ पाताल में पानी निकले न? समझ में आया? यह तो दीवाली का दिन है। भगवान मोक्ष पधारे हैं। पावापुरी पर (सिद्ध) क्षेत्र में विराजते हैं। वह भगवान की वाणी में निश्चय-व्यवहार का... यह आया है न पाठ? '**सुत्तं जिणउत्तं**' सूत्र, वह '**जिणउत्तं**' जिनेश्वर ने कहे, भगवान त्रिलोकनाथ। उस सूत्र में व्यवहार और परमार्थ का स्वरूप है, उसे जानते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। कहो, समझ में आया? जैनदर्शन में भगवान त्रिलोकनाथ ने, जिनके देव इन्द्र एकावतारी तलिया चाटते, जिनकी रज सिर पर लेते, ऐसे त्रिलोकनाथ वीतराग बिम्ब सर्वज्ञ परमात्मा हुए, अरिहन्त हुए। तब वाणी होती है न? इसके बिना तो वाणी है नहीं। अरिहन्त हुए पहले तीर्थंकर को वाणी नहीं होती। यह उपदेश की (वाणी नहीं होती)। दूसरी संसार की होती है। समझ में आया? इसलिए उसे वीतराग ने कहा जिनेश्वर ने (कहा) ऐसा जिस शास्त्र में निश्चय और व्यवहार, उसे जान। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसे उसमें कहा ऐसा जान, ऐसा।

दूसरे जो सूत्र भगवान के कहे हुए नहीं, उनमें तो अनेक प्रकार के निश्चय और व्यवहार के घोटाले किये हैं। क्योंकि वे भगवान के कहे हुए ही नहीं हैं। समझ में आया? वस्तु ऐसी है। श्वेताम्बर शास्त्र, वे भगवान के कहे हुए ही नहीं हैं। वास्तव में तो बहुत शान्ति से, धीरज से, उसे समझना पड़े। वे गृहीत मिथ्यादृष्टि के किये हुए हैं। मुनि के नहीं, समकिती के नहीं, अगृहीत मिथ्यादृष्टि के नहीं। भाई! शान्ति से उसकी शोध करो तो यह है। इससे उसमें कहे हुए व्यवहार-निश्चय की बात नहीं कही। भाई! गाथा यह है न, देखो न! गाथा क्या है, देखो न! '**सुत्तं जिणउत्तं**'

मुमुक्षु : उसमें भी निश्चय-व्यवहार की बात ही बहुत खोल डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बहुत व्यवहार की, निश्चय की। केवलज्ञानी हो, मोख जाये, तब पाँच पाटला दूसरे को सौंपे, यहाँ तक बातें हैं। ...समुद्घात हो गयी है। केवलज्ञान समुद्घात हो गयी है। अब जाना है न मोक्ष? जाना हो न घर में? ... ऐसा पाठ है। ३६वाँ अध्ययन... क्या बातें वह यह! वह सूत्र ही नहीं। आहाहा! उसमें निश्चय-व्यवहार का सच्चा स्वरूप है ही नहीं। इससे भगवान आचार्य को इस सूत्रपाहुड़ में '**सुत्तं जिणउत्तं**' डालना पड़ा। उसमें कहे हुए निश्चय-व्यवहार को इतने पहलुओं से जानना पड़ेगा। झांझरीजी! ऐसी वस्तु है। आहाहा! अरे! मैट्रिक में पास होने के लिये भी अमुक समय व्यतीत करता है। एल.एल.बी. का पूंछड़ा लगवाने को। उपाधि कहते हैं न उसे? उसमें भी उपाधि लिखी है, यह पी.एच.डी. उपाधि लिखी है। डॉक्टर की, विद्या की। उपाधि है। आहाहा!

यह तो भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप वस्तु... वस्तु... वस्तु... और पर्यायस्वरूप वस्तु, ऐसे दो उसके भाग करना, वह व्यवहार है। अमरचन्दभाई! अब यह व्यवहार कहाँ तक डालेंगे? वे तो कहे, व्यवहार राग की क्रिया करो व्यवहार, उससे लाभ होगा। अरे! भगवान! आहाहा! और निमित्त से लाभ होगा। देव-गुरु-शास्त्र से लाभ होगा, यह तो कहीं व्यवहार गया। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो निमित्त का अस्तित्व निमित्त में और उसकी ओर के लक्ष्यवाला राग, वह राग में और उस राग का ज्ञान, वह उसकी पर्याय में और उस पर्यायरहित त्रिकाली द्रव्य, वह द्रव्यस्वरूप से, ऐसा भेद पाड़कर कहना,

वह भी व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा! यह वीतराग का मार्ग, भाई! यह कोई ऐरे-गैरे का कहा हुआ नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ केवली परमात्मा वीर जिन... आहाहा! एक विचार आया था कि आज भगवान का मोक्ष हुआ और कल आता है शनिवार। वीर का शनिवार कहलाता है। हनुमान का कहलाता है न हनुमान का। वीर का २५००वाँ वर्ष यह लगा और दूसरे ही दिन वीर का दिन आता है। शनिवार है। और तीसरे दिन रविवार आता है। फिर आता है सोम। आहाहा!

मुमुक्षु : बाद में मंगलवार।

पूज्य गुरुदेवश्री : मंगलवार को... आहाहा!

भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरे घर की बातें, बापू! महँगी है, भाई! साधारण प्राणी कथन करके धर्म करके बतावे, बापू! ऐसी यह चीज़ नहीं है। दुर्लभबोधि है, भाई! अनन्त काल में जिसकी प्राप्ति दुर्लभ, दुर्लभ्य, महा पुरुषार्थ से प्राप्त हो, ऐसी चीज़ है। साधारण पुरुषार्थ से मिले, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! कहते हैं, द्रव्यमात्र कहना (विकल्प) पर्याय, व्यवहार का विषय है, वह द्रव्य कहना, यह व्यवहार का विषय। जिसे द्रव्यदृष्टि में निश्चय का विषय, वह विकल्प बिना की बात थी। यहाँ विकल्पवाला नय है। भाग पाड़कर यह है, यह है—ऐसा विकल्प उठता है न ऐसा। यह है। यह द्रव्य है, इस अपेक्षा से लिया है। यह द्रव्य है, ऐसा विकल्प उठता है। यह पर्याय है, यह विकल्प, ऐसा।

अहो! जगत का भाग्य समयसारादि शास्त्र रह गये।

मुमुक्षु : उन्हें सुनानेवाले भी मिल गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हम तो भगवान... भगवान प्रभु परमात्मा ने कहा, वह कहने में आता है। आहाहा! कहेंगे। साधारण बुद्धिवालों ने स्वयं कल्पित करके महन्त होकर नहीं बैठना, बापू! यह वस्तु गम्भीर है। समझ में आया? अल्पबुद्धिवालों में कुछ थोड़ा-बहुत सीखकर निश्चय-व्यवहार की बातें करने लगे। बापू! वहाँ महन्तपना नहीं करना, भाई! उसमें मद चढ़ जायेगा। है न? आहाहा! है न? ... बहुत सरस बात। बहुत सरस बात। पण्डित जयचन्द्रजी ने तो अर्थ किये हैं। आहाहा! समयसार, अष्टपाहुड़, आत्ममीमांसा।

मुमुक्षु : आत्मानुशासन में भी बहुत सरस....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....

कहते हैं कि जब एक अध्यात्म की दृष्टि में एक इस प्रकार का भी कथन आता है। यह ऊपर कहे निश्चय-व्यवहार के इनके कथन तो ठीक हैं, परन्तु एक अध्यात्म के कथन में भी इस प्रकार का कथन आता है। कि जिसे भगवान आत्मा द्रव्य त्रिकाली वस्तु और एक समय का चलता परिणाम—इन दो के अन्दर में यह द्रव्य है... यह द्रव्य है—ऐसा जो विकल्प उठता है कि यह द्रव्य है, वह व्यवहार है। आहाहा! वह पर्याय है, ऐसा है तो है, परन्तु विकल्प उठे कि यह है, वह व्यवहार है। आहाहा! वहाँ एक बार मोक्षमार्ग की पर्याय को निश्चय कहा। अकेला... पर्याय को त्रिकाल की अपेक्षा से परद्रव्य कहा। उसी बात को उसका पर्याय को द्रव्य जैसा डाल दिया यहाँ तो। अत: जैसे द्रव्य है, वैसे पर्याय है, ऐसा दोनों का विकल्प व्यवहार है। समझ में आया? कहो, हरिभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! भाई के ऊपर सब डाला होगा। आहाहा!

अब आया। **जो द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है....** अब निश्चय आता है। निश्चय है न वह पहला? निषेध आया उसमें निश्चय है। **द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन-अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है।** समझ में आया? **जो द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है इस प्रकार दोनों को ही प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है,....** परन्तु वह विकल्प है न सब। **इसका उदाहरण इस प्रकार है**—अब विशेष। **द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है, इस प्रकार दोनों को ही प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है,....** वह निश्चय का विषय यह था, वह भी नहीं और यह भी नहीं। तथा वह भी है और यह भी है, दोनों इकट्ठे वह प्रमाण का विषय है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! यह देखो न, यह भी गृहस्थाश्रम में रहे हुए ने टीका की है। स्त्री, पुत्रवाले थे, हों! वे कहाँ इसे अवरोधक हैं दृष्टि में? समझ में आया? ऐसा नहीं कि भाई यह स्त्री, पुत्र और परिवार हो, इसलिए सच्चा ज्ञान नहीं होता। और स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़ दिया, इसलिए उसे सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा! बलुभाई! ...लोग दूसरे की... बहुत बढ़ जाये। परन्तु तब कहे ऐसा-ऐसा हुआ तो ऐसा हुआ। वह तो द्रव्यदृष्टि करना,

वह निश्चय, पर्यायदृष्टि रखना, व्यवहार इसलिए हेय, वह तो एकदम अति संक्षिप्त। उसका यह स्पष्टीकरण है। किस अपेक्षा से द्रव्य और किस अपेक्षा से पर्याय, किस अपेक्षा से निश्चय मोक्षमार्ग है, किस अपेक्षा से व्यवहार, इसे बराबर भेद करके समझना चाहिए। वरना गड़बड़ उठेगी। आहाहा!

द्रव्यरूप है... उसमें पहले **द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन-अगोचर कहना....** वह तो विकल्पातीत वस्तु है। ऐसा कहते हैं और यह पर्याय है, ऐसा विकल्प भी जिसमें नहीं। ऐसा अनुभव में भी उस विकल्प का अवकाश नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह भगवान आत्मा पर्याय द्वारा द्रव्य का अनुभव करे उसमें, कहते हैं, विकल्प का अवकाश नहीं, ऐसा कहते हैं। विकल्प द्वारा नहीं हो सकता उसे। पर्याय द्वारा द्रव्य को पकड़ने से, यह द्रव्य है या यह पर्याय है, ऐसा वहाँ विकल्प का उच्छेद हो गया। समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें! परन्तु एक वस्तु ऐसी है। निश्चय-व्यवहार के पहलू का भान ही कहाँ है? लक्ष्य में तो लेना पड़े न! समझ में आया? यह वहाँ सब गड़बड़ उठायी है न सब। निमित्त से होता है, चाहे व्यवहार से होता है निश्चय। बड़ी गड़बड़ उठी। निमित्त अजीव कर्म, उससे आत्मा को विकार, उसके कारण से होता है। गड़बड़ उठी। अजीव से आस्रव हुआ, अजीव और आस्रव दोनों भिन्न चीज़ नहीं रही और आस्रव जो शुभभाव, उससे धर्म होता है, इसलिए आस्रव और संवर भिन्न चीज़ नहीं रही। समझ में आया?

नौ को भिन्न कहा न पहले व्यवहार से? वह भिन्न भी कहाँ रहे हैं? आहाहा! कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है, कर्म है तो विकार है। तब तो फिर कर्म के कारण से है तो विकार है, इसलिए कर्म अजीव है और विकार हुआ, वह आस्रव भावबन्ध और पुण्य-पाप है। इसलिए पुण्य-पाप, आस्रव और भावबन्ध अजीव है तो है, इसलिए अजीव भिन्न और तत्त्व भिन्न रहे नहीं इसे। आहाहा! और पुण्य के परिणाम शुभभाव और भावबन्ध है, तो इसे धर्म होता है। उनमें से इसे शुद्धता प्रगट होती है। शुभभाव हो। क्योंकि अन्तिम में तो शुभभाव होता है। अन्तिम जब छोड़ना है शुभ को, तब तो शुभ होता है, इसलिए शुभभाव कुछ कारण है, कुछ भी उसमें उसका असर है।

और आत्मा को निश्चय होता है। वह आस्रव और संवर तथा आस्रव और निर्जरा दोनों एक कर डाले। व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना रहा नहीं उसका। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा कुछ है, ऐसा तो लक्ष्य में रखना। पकड़ में नहीं आया तो भी कुछ मार्ग तो है। आहाहा! भगवानजीभाई! आहाहा!

द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन-अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। जो द्रव्यरूप है, वही पर्यायरूप है, इस प्रकार दोनों को ही प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है, इसका उदाहरण इस प्रकार है—अब इसका उदाहरण आयेगा, लो। इसका उदाहरण है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १, शनिवार, दिनांक-२७-१०-१९७३
समयसार, कलश- २६८, प्रवचन-३८

२६८ कलश है। समयसार। समयसार लिया है न? कल रात्रि में कहना भूल गये थे। समयसार (कलश) २६८।

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा॥२६८॥

यह सुप्रभात की व्याख्या है। आज नूतन वर्ष मनाते हैं। परन्तु यह तो सुप्रभात आत्मा का दिन मनाते हैं। भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य अनन्त आनन्द, ज्ञान आदि चतुष्टय से भरपूर पदार्थ है। आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, ऐसे स्वचतुष्टय से वह विशेष अनन्त गुण, उससे भरपूर पदार्थ है, उसमें जब इसे मिथ्यात्वरूपी रात्रि का नाश होता है और सम्यग्दर्शनरूपी दिवस—सूर्य उगता है। उसे सुप्रभात कहते हैं। समझ में आया? यह कहते हैं।

(पूर्वोक्त रीति से जो पुरुष इस भूमिका का आश्रय करता है)... अर्थात् क्या कहा? कि जो कोई यह आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्द का सागर भगवान आत्मा, उसका जितना आश्रय करे, उसके अवलम्बन से उसे सुप्रभात प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। जघन्य सुप्रभात सम्यग्दर्शन है। उत्कृष्ट सुप्रभात अनन्त केवलज्ञान-दर्शन आदि, वह है।

मुमुक्षु : मध्यम मुनिपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मध्य तो उसका आत्मा। यह वस्तु यहाँ शुरुआत यहाँ बैठता है। दो ली है। बनारसीदास ने सम्यगदर्शन लिया है, इन्होंने केवलज्ञान लिया है।

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा वस्तु जो स्वरूप पूर्ण शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति

आत्मा है। ऐसे चैतन्यद्रव्य का वस्तु के स्वभाव का आश्रय, अवलम्बता है, उसे **'चित्पिण्ड' चैतन्य का पिण्ड का निरर्गल...** एक न्याय से तो एक चैतन्यपिण्ड जो वस्तु—पदार्थ है, उसके आश्रय से प्रगट हुई दशा केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द और वीर्य, वह जिसकी प्रगटदशा है। सुप्रभात उत्कृष्ट। समझ में आया? जघन्यदशा... चित्पिण्ड... मिथ्यात्व का नाश होकर। क्योंकि जिसने भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध का आश्रय किया, उसे मिथ्यात्व का नाश हुए बिना नहीं रहता। मिथ्यात्वरूपी रात्रि का अन्धकार वहाँ नाश होता है। आहाहा! और सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य का प्रकाश होता है। समझ में आया? वह प्रकाश किसके आश्रय से होता है, यह भी कहा और उसके आश्रय से होता है, तो ऐसी दशा प्रगट होती है।

सम्यग्दर्शन, वह चैतन्य का सूर्य अन्दर प्रकाशित हुआ। पर्याय में वह प्रकाशित हुआ। वस्तु तो थी चिद्पिण्ड, परन्तु वह चिद्पिण्ड पर्याय में चिद्पिण्ड की अवस्था प्रगट हुई। आहाहा! उसे यहाँ अर्थकार ने दर्शन लिया है। केवलदर्शन। वह पिण्ड वस्तु जो त्रिकाल है, उसके आश्रय से प्रगट होती अनन्त दर्शन की शक्ति जो है, उसे यहाँ चिद्पिण्ड कहते हैं, अनन्त दर्शन जो केवलज्ञान के साथ में होता है वह। आहाहा! और नीचे सम्यग्दर्शन, वह चैतन्य भगवान आत्मा की श्रद्धा के समीप में प्रभु वर्तता है, इससे श्रद्धा में प्रकाश आया सम्यग्दर्शन का। समकितरूपी सूर्य उदित हुआ। समझ में आया?

यह बहिनें गीत नहीं गातीं विवाह के समय? सूरज हमारे... क्या कहा यह? 'सोना समा रे सूरज उग्यो...' उसमें तो धूल भी नहीं। 'सोना समा रे सूरज उग्यो' भाई! चैतन्य नाथ प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। सत् है, वह चिद् और आनन्द का भण्डार है। उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? अनन्त गुण का वह रत्नाकर—रत्न का सागर है। परन्तु अपनी कीमत कैसे आवे इसे? पर की कीमत करने गया, अपनी कीमत भूल गया। आहाहा! अनन्त अनाथ। क्यों? कि अनादि से उसकी वर्तमान दशा जो प्रगट अंश है, उसमें उसकी रुचि और लक्ष्य और उसमें उसकी सब क्रीड़ा है। परन्तु एक समय की वह अवस्था जो गति वर्तमान दिखती है क्षयोपशम, विकार, ज्ञान, पर्याय इत्यादि। वह कहाँ से खड़ी हुई दशा? किसके

आधार से खड़ी हुई? किसमें से वह आयी? ऐसा जो त्रिकाली भगवान द्रव्यस्वभाव वस्तु आत्मतत्त्व। आहाहा!

भगवान आत्मतत्त्व वह पूर्ण जो अन्दर स्वभाव से भरपूर, उसकी नजरें करने से ... '**हासः**' का शब्द निधान लिया है। '**हासः**' है न '**हासः**'? उसे निधान भी लिया है और एक अर्थ ऐसा लिया है। यहाँ तो '**हासः**' का अर्थ खिलना लिया है। अर्थात्? भगवान आत्मा अन्तर के द्रव्य वस्तुस्वभाव में एक समय की वर्तमानदशा, उसके पीछे पूरा तत्त्व पूर्ण ध्रुव तत्त्व भगवान आत्मा है। उसकी अन्तर दृष्टि होने पर वह आत्मा पर्याय में खिल जाता है। जैसे गुलाब का फूल संकुचित प्राप्त होता है, तब उसे सूर्य की किरणों का निमित्त होने से वह गुलाब फूल हजार-हजार पंखुड़ी का होता है। वहाँ अपने देखने गये थे, वहाँ नहीं था। क्या कहलाता है? चीखली। चीखली। चीखली में एक तालाब है, उसमें बहुत गुलाब होते हैं। परन्तु तब तो अपने कोई सब... चीखली है। गुलाब संकुचित हो, वह खिले जब हजार पंखड़ी का खिले। उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण की राशि, ऐसा प्रभु, उसकी जब अन्तर निधान की दृष्टि पड़ने पर पर्याय में झरमर... झरमर... झरमर... झरमर... जैसे मेघ बरसे... यह अर्थ किया है। झरमर शब्द है परन्तु मुझे यह ... झरमर शब्द तो है। '**हासः**' का अर्थ एक झरमर किया है। आहाहा!

प्रभु आनन्दस्वरूप आत्मा की अन्तर में दृष्टि अपूर्व अनन्त काल में कभी की हुई नहीं। ऐसी अन्तर में दृष्टि जाने से पर्याय में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्शान्ति, आनन्द का झरना, झरमर... झरमर... अन्दर से दशा प्रगट होती है। वह नूतन वर्ष का यह। यह बोनी चलती है यह। आहाहा! तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है, उसकी इसे खबर नहीं। जगत के पदार्थ को कीमत और महत्ता और महिमा देने से अपनी महत्ता और महिमा यह चूक गया है। आहाहा! मैं कौन? अर्थात् इसे ऐसा कि मैं तो एक पामर प्राणी। एक रागी हूँ, द्वेषी हूँ, अल्पज्ञानवाला ऐसा मैं। तू वह नहीं। एक समय की दशा—प्रगट अवस्था उतने में तू पूरा आ नहीं जाता। समझ में आया? ऐसा जो भगवान, क्या कहा? चैतन्यपिण्ड। चैतन्यपिण्ड वह तो पर्याय की व्याख्या है, हों! पर्याय में प्रगट

हुई दशा चैतन्यपिण्ड को यहाँ एक न्याय से केवलदर्शन लिया है, और दूसरे न्याय से उसमें सम्यग्दर्शन लिया है।

चैतन्यपिण्ड अर्थात् सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन की पर्याय में ऐसा आत्मा पूरा अनुभव में आया। आहाहा! इससे वह सम्यग्दर्शन स्वयं चैतन्यपिण्ड है। एक समय की पर्याय में पूरा द्रव्य प्रतीति में आया और जिसकी एक समय की पर्याय में—अवस्था में छह द्रव्य ज्ञात हों, ऐसी जो पर्याय, ऐसी उसकी सामर्थ्यता जो है, उसमें स्वद्रव्य का आश्रय आया, इसलिए एक समय की पर्याय में छह द्रव्य अनन्त-अनन्त हैं, उन्हें जानने की सामर्थ्यवाली पर्याय। ऐसी अनन्त पर्यायों का एक गुण, ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड, उसकी जो प्रतीति में सम्यग्दर्शन आया, वह सम्यग्दर्शन पर्याय चैतन्यपिण्ड है। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसी बात है। यह पहले लेने से दो—तीन... पहले। परन्तु यह जरा सूक्ष्म था न सवेरे का। इसलिए सवेरे का नहीं बैठे नये को। वह आया। वरना नूतन वर्ष का लेते थे बहुत बार। सब उस समय उपस्थित न हो। सब नये होंगे न कितनों ने कभी सुना नहीं होगा। आहाहा!

भगवान! तेरा आत्मा आनन्द का सागर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर बाकी पदार्थ है या नहीं? तो यह शक्कर है तो सफेद और मीठापन की मिठास से भरी हुई चीज़ है? या खाली है? तो यह तो भगवान आत्मा जड़ को भी निश्चित् करनेवाला तो यह तत्त्व है कि इस जगत में जड़ है, शरीर है, यह राग है, उन्हें प्रसिद्ध करनेवाला तो चैतन्यपिण्ड है। ऐसे चैतन्यपिण्ड में ऐसी शक्ति है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! इसने दूसरा सब किया। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा। आहाहा! वह सब भाव तो शुभराग है। समझ में आया? वह कहीं आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा! वह आत्मतत्त्व तो उस शुभराग के विकल्प से भी पार निर्विकल्प आनन्द का नाथ आनन्दघन प्रभु है। आहाहा! ऐसे चैतन्य का जिसने आश्रय लिया, उसे मिथ्यात्वरूपी अन्धकार नाश हुआ, मोह निद्रा का नाश हुआ और जिसकी पलकें फटी आँख की। ऐसे बन्द थीं वे खुल गयीं। समझ में आया?

मोह मिथ्यात्वरूपी निद्रा जो अनादि की थी। आहाहा! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप

और ज्ञान का पिण्ड प्रभु, ऐसी अन्दर में प्रतीति होने पर उसे मोहरूपी निद्रा का नाश हुआ, पलक फटी और विकास हुआ अन्दर में से। उसे यहाँ सुप्रभात (कहते हैं)। यह वर्ष उगा, दिन उसका उगा और दीवाली हुई उसके घर में। आहाहा! लड्डू खाये और यह खाये, ... धूल भी नहीं उसमें। आहाहा! रात्रि में ऐसे धड़ाका बोलते हैं न, क्या कहलाता है वह? पटाखे। पटाखों में फड़ाक... फड़ाक... आहाहा! उसमें तो बेचारे कितने ही जीव मर जाते हैं। यह तो पटाखा फूटे तो जीव उग निकले अन्दर में से। समझ में आया? वह क्या कहलाये? फूलझड़ी। फूलझड़ी आती थी या नहीं? ऐसे सुलगावे तो फूल झरे। बारूद की नहीं फूलझड़ी। फूलझड़ी। हाँ यहाँ तो सब हमने किया था न छोटी उम्र में? फूलझड़ी की है। सब एक-एक नमूना देखा है। समझ में आया? हमारे मामा की ओर से दीवाली का सब आता था।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा... आहाहा! यह '**झर्झरं**' शब्द है हों! .. '**झर्झरं**' वह क्या है? '**हासः**' '**झर्झरं**' है। मुझे तो वह अन्दर लागू पड़े, वह बैठा देना। संस्कृत है। संस्कृत है अध्यात्म तरंगिणी, इस श्लोक का संस्कृत में अर्थ है। संस्कृत में उसके अर्थ हैं, एक-एक शब्द के। पूर्व में विद्वान सन्तों ने बहुत मेहनत करके जगत के समक्ष सत्य को प्रसिद्ध किया है। जगत के समक्ष सत्य को प्रसिद्ध किया है। परन्तु इसने दरकार नहीं की। आहाहा! और यह मनुष्यपने का भव मिला, एकेन्द्रिय, हरितकाय, उसमें से कीड़ा, कौआ, कुंजर में से निकलकर मुश्किल से आया है। अब उसमें जो यह करनेयोग्य वह कैसे करना? उसे खबर नहीं। परन्तु अपने '**झर्झरं**' अर्थात् यह। आहाहा!

भगवान शान्तरस और आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसका जहाँ अन्तर्मुख होकर स्वीकार किया, तो कहते हैं कि उसकी समय की पर्याय में, जैसे गुलाब का फूल खिले, वैसे आत्मा की पर्याय खिल जाती है। आनन्द की, शान्ति की पर्याय से आत्मा खिल जाता है और जैसे क्या कहा? वह फूलझड़ी ऐसे एक के बाद एक धारा रागरहित, शुद्ध परिणति की धारा, आनन्द की धारा फूलझड़ी, आनन्द का फूल खिरता है उसमें से। ऐसा अनन्त आनन्द का नाथ भगवान, जिसने अन्दर में भेंट की, उसे अन्दर में सुप्रभात उगा है, कहते हैं। आहाहा! कहो, वजुभाई! तुम्हारे पैसे-बैसे का इसमें कुछ नहीं आता। आहाहा! दो, पाँच, दस करोड़ रुपये इकट्ठे हुए, इसलिए बड़ा (है)। धूल भी

नहीं, सुन न! सब भिखारी है। इतने पैसे देखे, यह देखा। यह तो आत्मा। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। मुझे चाहिए तो यह भगवान आत्मा। ऐसा अनन्त का सागर उसे जिसने अन्तर श्रद्धा और ज्ञान में स्वीकार किया, कहते हैं कि वह खिल निकली दशा। 'खिलना' उसमें शब्द है। इसमें '**हासः**' खिलना शब्द है इसमें।

चैतन्यपिण्ड का निरर्गल विलसता जो विकास... एक-एक शब्द का अर्थ है यह। पहला '**चित्पिण्ड**' है। '**चण्डिम**' अर्थात् निरर्गल-प्रकाश। चैतन्य पिण्ड का जिसका प्रताप विलसता। आहाहा! विकास जिसका रूप, जैसे फूल खिले, वैसे भगवान आत्मा वर्तमान दशा में त्रिकाली वस्तु का आश्रय लेकर खिल जाता है। समझ में आया? यह नूतन वर्ष का यह सुप्रभात का मांगलिक है। यह मार्ग है। आहाहा! उसके ज्ञान के ऊपर ध्यान में तो यह बात ले कि वस्तु तो यह है। आहाहा! उसके ज्ञान में, उसके ज्ञान में दौर में तो ऐसा ले कि यहाँ अन्दर में जाना है, वह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

कहते हैं, यह चैतन्य का पिण्ड, जिसका रूप विकासरूप जिसका खिलना है। शक्ति तो थी अन्दर, कहते हैं। भगवान आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द बेहद अपरिमित स्वभाव से भरपूर भगवान। आहाहा! एक बीड़ी जरा पीवे, वहाँ इसे ऐसा हो जाये कि आहाहा! दिशा को (दस्त के लिये) जंगल जाये, पाखाने में दो बीड़ी पीवे, वह क्या कहलाता है तुम्हारे वह? सिगरेट। तब भाईसाहब को दस्त उतरे। ऐसे तो जिसके व्यसन। व्यसन का अर्थ पीड़ा होता है, हों! व्यसन का अर्थ ही पीड़ा और दु:ख होता है। ऐसा जिसका दु:ख से जला हुआ, दु:ख से जला हुआ। आहाहा! उसे यह चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ कैसे बैठे? जरा एक बाहर की प्रशंसा थोड़ी सुने, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। अब धूल में भी नहीं, सुन न! यह परमात्मा के आनन्द में जहाँ मौज में गया। आहाहा! आनन्द खिल गया। वह अंकुर फूटे। उस आत्मभूमिका में जो शक्तियाँ अनन्त अपरिमित, अपरिमित अनन्त संख्या से और एक-एक शक्ति का अपरिमित अर्थात् मर्यादा बिना का जिसका स्वभाव। ऐसे भगवान आत्मा को अन्तर सन्मुख होने पर जिसकी पर्याय पर्याय में उसकी दशा खिल गयी। आहाहा! उसकी मोहनिद्रा गयी, पलट फटी (खुली) और उसे चैतन्य सूर्य अन्दर में से उगा। यह उगा, वह उगा, वह

फिर अब अस्त नहीं होगा। समझ में आया? यह तो वर्ष लगा और वर्ष गया। ऐसा कहते हैं न? यह वर्ष लगा। लगा न? फिर चलने लगा। एक, दो, चार। यह बैठा और फिर चलने लगा... चलने लगा... दीवाली पूरी हुई, लो। यह तो चलने लगा निकला, निकला। माँ के पेट में से निकला वापस... वापस जाये, ऐसा बने नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तु से परिपूर्ण शान्त और आनन्द का आश्रय लेने से जो दशा खिल गयी, जिस दशा में निधान आया। आहाहा! आत्मा अर्थात् निधान कहा है।

निधान, झरझरना और खिलना यह '**हासः**' के तीन अर्थ हैं। उसमें तीन हैं। अपने को कहाँ शब्द रटना आता है। देखा इसमें से। अलग भाग। समझ में आया? आहाहा! महाराजा प्रभु अन्दर चैतन्य जिसे अन्दर में गद्दी पर बैठा भगवान आत्मा, राग में और पुण्य में अनादि से बैठा था, उठाकर उसे अन्दर में बैठाया। उसे निधान मिला, उसे अनादि का निधान जो अव्यक्त ख्याल में नहीं था। आहाहा! वह दृष्टि में आया और समय-समय अर्थात् क्षण-क्षण में अनन्त गुण की पर्याय का झरना, प्रगट होना, झरमर... झरमर... झरमर... वर्षा बरसे ऐसे अन्दर में वर्षा बरसने लगी। आहाहा! शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्तियों की दशा वर्तमान पर्याय में झरमर जैसे खिलने लगी। आहाहा!

खिलते-खिलते जहाँ केवलज्ञान का काल आया। आहाहा! पूर्ण केवलज्ञान हो गया। यह उसमें भी आता है। पद्मनन्दि पंचविंशति में। तब आता था। पद्मनन्दि में भी आता है। केवलज्ञान और केवलदर्शन खिला, रात्रि का अन्धकार उसमें नाश हो गया। यह बारहवें तक तब अज्ञान कहा था न, भाई! बारहवें गुणस्थान तक उसकी—ज्ञान की अल्पता गिनी है न? और जहाँ केवल हुआ, वहाँ सब दशा नाश हो गयी। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... चैतन्य भगवान स्वयं ज्ञान से जलहल सूर्य उगा है अन्दर से। आहाहा! वह केवलज्ञान। और उसके साथ प्रगट हुआ केवलदर्शन। वह यह '**चण्डिम**' में केवलदर्शन कहा है। समझ में आया? केवलदर्शन अथवा सम्यग्दर्शन दोनों अर्थ होते हैं इसके। आहाहा! अरे रे! इसके गीत इसने सुने नहीं, हों! शान्तिभाई! महिमा बाहर की करे कि यह ... पाँच। सोजा समझ में आता है न? इस शरीर में सोजा (सूजन) नहीं होता? ऐई!

चन्दुभाई! सोजा, वह निरोगता होगी? बिगाड़ है। आहाहा! यह तो ... '**चण्डिम**'— प्रकाश चैतन्यपिण्ड। '**चण्डिम**' भगवान! यह वर्तमान पर्याय की बात है सब, हों। चैतन्यसूर्य द्रव्य की बात नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु एक क्षण में ध्रुव निधान पड़ा है, उसका जिसने प्रतीति और स्वीकार, उसका ज्ञेय बनाकर वर्तमान ज्ञान की दशा जो ज्ञानरूप परिणमी, शुद्धरूप हुई, वह उसका निधान खिला। वह उसे झरमर... झरमर बरसती शान्ति की वर्षा आयी। आहाहा! और उसे यहाँ निधान कहते हैं और वह वस्तु थी शक्ति में, उसका पर्याय में विकसना, खिलना, खुलना, प्रगट हुआ है। लो, यह नूतन वर्ष की (बोहनी) यह है। वे कहे लड्डू खाना, यह देना, पहरामणी देना। सोने का थाल उसमें फलाना-ढींकणा। आज आया है चार नीचे। चाँदी के चार सिक्के आये हैं। चाँदी के सिक्के नहीं आते? चार सिक्के आये हैं। सवेरे रखे हैं किसी ने। २५-२५ रुपये का एक सिक्का। चार आये थे। पड़े थे ऊपर। किसी ने लिये होंगे। आहाहा! यह तो सिक्का आनन्द के नाथ का सिक्का एकदम बाहर आया है। मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ। मुझमें दुःख की गन्ध नहीं। ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु— सत् चिदानन्द प्रभु आत्मा का प्रेम और प्रीति की दृष्टि में जिसका खिलना हुआ है।

'शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।' शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात समान है,... क्या कहते हैं? यहाँ ज्ञान की, केवलज्ञान की व्याख्या में है। कि जिसे केवलदर्शन प्रगट हुआ, उसके साथ सुप्रकाश केवलज्ञान प्रगट होता है। और एक समय में तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी केवलज्ञान शक्ति जो शक्तिरूप से थी, उसे वर्तमान दशा में प्रगट वह प्रगट दशा हुई। उसे यहाँ केवलज्ञान कहते हैं। अथवा निचली दशा में लें तो '**शुद्धप्रकाशभर**' शुद्ध परिणति प्रगट हुई। मिथ्यात्व का नाश होने से, सम्यग्दर्शन प्रगट होने से, जिसे शुद्ध परिणति, शुद्धदशा प्रगट हुई, जो अनादि की, अशुद्ध और मलिन और दुःखरूप दशा थी, समझ में आया? उसके स्थान में, उसके काल में, उसकी दशा में शुद्ध परिणति प्रगट हुई। आहाहा! शुद्धधारा। शुद्ध पवित्र परिणति दशा जिसे प्रगट हुई, उसे सुप्रभात कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा!

'**शुद्धप्रकाशभर**' अतिशय। अतिशय है, कहते हैं। आहाहा! उस शुद्ध परिणति की विशेषता है। क्या कहा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने पर शुद्ध परिणति की विशेषता वहाँ प्रगट हुई। अशुद्धता थी, उसका नाश होकर, ऐसा कहा है न... में। सम्यक्त्व अर्थात् उसे शुद्ध परिणति ही होती है। भाई! अशुद्ध परिणति है, उसे गौण करके अकेली शुद्ध परिणति ही प्रगट हुई। क्योंकि प्रभु शुद्ध वीतरागी मूर्ति है, शुद्ध है, उसका आश्रय लेकर जो दृष्टि सम्यक् प्रगट हुई, उसमें शुद्ध प्रकाश प्रगट हुआ, शुद्ध परिणति हुई। वीतराग अवस्था प्रगट हुई। आहाहा! अर्थात् सम्यग्दर्शन, वह वीतराग अवस्था है और उसके साथ का ज्ञान है, वह भी वीतरागी ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम नूतन वर्ष कहलाता है। इसका नाम भगवान आत्मा में वर्ष लगा। बाकी सब जगत की बातें हैं। आहाहा!

सुप्रभात। है न अन्दर है शब्द, देखो! '**शुद्धप्रकाशभर**' **शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण...** निर्भर अर्थात् यह। शुद्ध प्रकाश परिणति के विशेष अतिशय से, उसके कारण निर्भर अर्थात् यह लिया। '**सुप्रभातः**' यह सुप्रभात समान है। आहाहा! 'सोना समो रे सूरज उग्यो।' आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ स्वर्ण समान सूर्य फट निकला। आहाहा! स्वर्ण को जैसे जंग और मैल नहीं होता, उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप की अन्दर प्रतीति और अनुभव करने से, उसे शुद्ध की धारा प्रगट होती है। वहाँ मैल और मलिनता उसमें होती नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बात परन्तु इसने कभी सुनी नहीं, हों! और दुनिया की चतुराई कर-करके मर गया अनादि से। राजा हुआ, रंक हुआ, देव हुआ, नारकी हुआ, कीड़ा-कौआ... अनन्त बार हुआ। परन्तु यह केवलज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा, उसे अन्दर फैलाना कैसे और विकास करना, उसकी कला इसने नहीं सीखी। जो सीखने जैसी यह है, वह कला नहीं सीखा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि शुद्ध प्रकाश, शुद्ध परिणति, शुद्ध दशा की विशेषता से, उसके कारण सुप्रभात उसे कहा जाता है। यह दूसरे पद की व्याख्या चलती है। '**शुद्धप्रकाशभर**' शुद्ध परिणति, शुद्धदशा की विशेषता से, विशेषता को '**निर्भर**' लेकर '**सुप्रभातः**' है। आहाहा! एक शुद्ध परिणति प्रगट हुई, वह सुप्रभात है। आत्मा में सम्यग्दर्शन होने पर चैतन्य ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध ध्रुव था, ऐसा उसका स्वीकार होने पर उसकी दशा

में शुद्धता की परिणति के कारण विशेषता के कारण वह सुप्रभात कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध परिणति को प्रभु आनन्द झरता....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में आयेगा। अभी अब आयेगा। यह तो अभी ज्ञान की बात आयी। आहाहा! ओहोहो! सन्तों ने कितना समेटा है, थोड़े शब्दों में। आहाहा! 'सद्गुरु ने मारे शब्द के बाण और अन्दर खिल निकला भगवान।' समझ में आया? यह आता है, हों! समयसार नाटक में। समयसार नाटक में कहीं आता है। समयसार नाटक है न यह! उसमें पीछे होगा। पीछे नहीं होगा? आता है सही। अभी शब्द आ गया था? 'सद्गुरु ने मारे शब्द के बाण अरु खिला अन्दर से भगवान।' ऐसा आया। खिलने की बात भगवान ने की थी गुरु ने। ...दासजी! आहाहा! इस ओर में है। उस ओर नीचे इतने में है। चौदह गुणस्थान में... उसमें होगी कहीं। चौथे, पाँचवें, छठवें में प्रगट होती है न वहाँ होगी। उसमें नीचे लिखा था। वहाँ नहीं। वहाँ-वहाँ इस ओर। यह शब्द ही स्पष्ट पड़ा है। 'सद्गुरु ने शब्द के...' कहो, समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार ज्ञानी के ज्ञान में जो वाणी आयी मुनियों की, सन्तों की, समकिती की, केवली की, वह उसे आत्मा खिल जाये, ऐसी बात आयी है। आहाहा! उसे राग कर और राग से तुझे लाभ होगा, और स्वर्ग मिले, वह वाणी वीतराग की नहीं है, सन्तों की वह वाणी नहीं है। आहाहा! सन्तों की वाणी में तो वीतरागता खिले और राग का नाश हो, यह वाणी का उसका स्वरूप है। वीतरागपोषक वाणी होती है। सन्तों की, धर्मात्मा की वीतरागपोषक वाणी होती है। रागनाशक और वीतरागपोषक। आहाहा! राग की पोषक वाणी वीतराग में नहीं होती। वह यहाँ कहा इन्होंने कि भगवान की वाणी इसे कान में पड़ी और जहाँ अन्तर अनुभव हुआ।

'शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।' आहाहा! **शुद्ध परिणति की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात समान है...** दो बोल हुए। एक तो सम्यग्दर्शन और साथ में सम्यग्ज्ञान। एक ओर केवलदर्शन और साथ में केवलज्ञान। **'आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप'** कैसा है? **आनन्द में सुस्थित ऐसा जिसका सदा अस्खलित एक रूप है...** यह पर्याय

की बात है, हों! अवस्था। जिसका भगवान आत्मा का स्वभाव तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ वह है। परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को जिसने नाथा अर्थात् दृष्टि में लिया। समझ में आया? ऐसे परमात्मस्वरूप को जिसने प्रतीति में स्वीकार किया, कहते हैं कि उसे आनन्द की धारा बहती है। वह अन्तर में आनन्द का स्वभाव जो त्रिकाल पड़ा है, उसमें से जिसे अनन्त आनन्द प्रगट होता है। वह केवलज्ञान के साथ अनन्त आनन्द है, उसकी बात है। और निचलीदशा में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ आनन्द की धारा शान्ति की, आनन्द की धारा बहती है। आहाहा! अकेला ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के साथ आनन्द का स्वाद होता है। आहाहा!

देखो, यह मार्ग। इसे आत्मधर्म कहते हैं। आत्मतत्त्व की पहिचान इसे कहते हैं। आहाहा! अब इसकी खबर न हो और बाहर की प्रवृत्ति में धर्म करके माना। कहते हैं, आनन्द सुस्थित। ऐसा आनन्द प्रगट हुआ कि सुस्थित। अनाकुल–आकुलतारहित स्थिरता अन्दर प्रगट हुई। आहाहा! भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द जो शक्तिरूप, स्वभावरूप, सत्त्वरूप, भावरूप, गुणरूप था, उसे अन्तर में आश्रय से दृष्टि में लेने से उसे पर्याय में भी ज्ञान अकेला नहीं आया बाहर; आनन्दसहित ज्ञान आया। वह ज्ञान आनन्द का भोक्ता है। आहाहा! नित्यभोजी। आता है न नित्यानन्द भोजी। आहाहा! यह तो एक क्षण लड्डू खाये और फिर वापस बुखार आये... पाँच दिन निकले तो हाय... हाय... बहुत हर्ष करने जाये। यह सुप्रभात किसे कहना, उसकी बात चलती है। ऐसा सूर्य उगा और अस्त हुआ अनन्त बार हो गया, परन्तु भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, सन्त किसे सुप्रभात कहते हैं? कि जिसमें आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है। यह सच्चिदानन्द आत्मा है। आहाहा! सत् चित् और आनन्द का स्वरूप उसका है। ऐसे सच्चिदानन्द प्रभु को जिसने अन्तर में स्वीकार किया, उसकी जिसे महत्ता और महिमा जिसके अन्तर में आयी, उसे कहते हैं कि आनन्द अन्दर में से झरमर–झरमर आनन्द झरता है। आहाहा!

नरसिंह मेहता ने नहीं कहा? कि 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहिं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' सब झूठी, धूल तेरी, जा। तेरी पूजा और भक्ति, दान और दया, व्रत और तप सब बिना एक के शून्य। कहो, मनुभाई! यह आत्मतत्त्व जो है। आहाहा! इसने

भी सुना नहीं। इसकी इसे महत्ता कभी आयी ही नहीं। बाहर की प्रवृत्ति की महत्ता के समक्ष यह धूल की महत्ता, पैसा, स्त्री, पुत्र, राज और पाट। धूलधाणी। उसकी महत्ता के समक्ष आत्मा अन्दर प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप है। वस्तु है न, पदार्थ है न, तत्त्व है न। तो वह तत्त्व अनादि-अनन्त है। और अनादि-अनन्त उसका स्वभाव अनादि-अनन्त है। वर्तमानदशा—अवस्था अल्पज्ञ है रागादि से। परन्तु उसका स्वरूप है, वह पूर्ण है अन्दर। उस पूर्ण स्वरूप का जिसे गुरुगम से सुनकर शब्द के बाण लगने से... समझ में आया? यह तो हाथ आना हो, तब आवे न! वहाँ कुछ नहीं। यह तो जो है, वहाँ ऐसा ही कहा वहाँ। यह पीछे के भाग में।

'सद्गुरु ने मारे शब्द के बाण...' वह यह शब्द। प्रभु! तू त्रिकाल आनन्द का नाथ है न अन्दर। तेरी चीज़ में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। अब इसे कहाँ से खबर? शक्कर में तो अकेली मिठास ही भरी है। उसमें कड़वाहट-बड़वाहट होती नहीं। इसी प्रकार प्रभु! तेरे स्वरूप में तो अतीन्द्रिय आनन्द है। यह इन्द्रिय का आनन्द जो है, मानता है, वह तो जहर का प्याला पीता है। विषय में आनन्द माने, बाहर में आनन्द माने, वह तो जहर को पीता है गट गट करता है जहर को। प्रभु! तुझमें ऐसा आनन्द है कि एक क्षण भी जो तेरे स्वरूप का स्वीकार करने से उसे आनन्द झरे झरमर... झरमर... वर्षा बरसती है। उसमें अंकुर फूटे। आषाढ़ महीने की पहली बरसात हो और पूरी जमीन में अंकुर फूट निकले। अंकुर-अंकुर। इसी प्रकार जहाँ आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, आहाहा! आत्मतत्त्व। उसकी अन्दर में दृष्टि होने पर, उसकी वर्तमान दशा में आनन्द का झरना झरमर वर्षा बरसे, उसे सुप्रभात कहते हैं। उसे वर्ष लगा और वह केवलज्ञान और पूर्णानन्द की प्राप्ति करेगा, उसका नाम यहाँ सुप्रभात कहा जाता है। यह बाहर के सब सुप्रभात तुम्हारे हों और सवेरे नारियल रखे, लड्डू हो और लापसी बनावे। आहाहा!

वह देखो न अरबपति एक दस मिनिट में मर गया। शान्तिलाल खुशाल नहीं? सुना है या नहीं? वह गोवा में नहीं? गोवा। शान्तिलाल खुशाल अरबपति। तीन करोड़ की तो आमदनी बाहर की, उसे तीन करोड़ की आमदनी। दशाश्रीमाली है। अपने है न यहाँ बहिन की पुत्री ब्रह्मचारी। ...पुत्री। निर्मला। उसकी एक बहू को कुछ निर्बलता थी। ६१वर्ष की छोटी उम्र। अरबों रुपये। ४०-४० लाख के तो रहने के बँगले।

४० लाख के। परन्तु धूलधाणी और वा-पाणी। इस आत्मा का बँगला जिसने देखा नहीं। आहाहा! उसकी स्त्री को कुछ ठीक नहीं था तो आये मुम्बई। उसमें सो रहे होंगे। रात्रि में डेढ़ बजे उठे। जरा दुःखता है। दुःखता है। कभी आयी हुई नहीं कभी, आहाहा! क्या कहलाता है तुम्हारे? हार्ट... हार्ट। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर जहाँ आवे वहाँ वह समाप्त दस मिनिट में। कभी हार्ट की बीमारी नहीं, परन्तु देह की स्थिति वह तो जड़, बापू! वह कहीं तेरी चीज़ नहीं। वह तो जड़ की हड्डियाँ और माँस और धूल है। वह वीर्य और रक्त की बिन्दु में से यह बँगला (शरीर) बना बहुत बड़ा और श्मशान में राख हो जायेगा। प्रभु! तू तो आत्मा अन्दर भिन्न चीज़ है। परन्तु एक क्षण में, हों! दस मिनिट में समाप्त। आहाहा! ले गये फिर वहाँ। इज्जतवाला व्यक्ति था। वहाँ क्या कहलाता है गोवा में। फूल-वूल डाला होगा। मुर्दे को डाले उसमें। क्योंकि इज्जत बड़ी है, इज्जतदार है। लाख-लाख रुपये की आमदनी दिन की, हों! ... आमदनी। धूल में भी कुछ नहीं। वह तो पूर्व का पुण्य हो तो दिखता है उसमें उसकी शान्ति जल गयी। यह पूर्व का पुण्य था, लोन लेकर आया था, यह उसका दिखाव है। पुण्य जल गया और यह दिखता है, परन्तु तेरे पास क्या आया, धूल? नारणभाई!

यह आत्मलक्ष्मी, यहाँ तो परमात्मा कहते हैं। आहाहा! अन्तर में भगवान अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, शान्ति, वह आत्मा की लक्ष्मी अन्दर है। परन्तु कैसे बैठे? कभी देखी नहीं, सुनी नहीं और विचार किया नहीं। उसके सन्मुख होने में कितना पुरुषार्थ चाहिए, उसकी इसे खबर नहीं। यह भटकाभटक, भटकाभटक कर-करके मर गया। राजा हुआ दुःखी, सेठिया दुःखी, रंक दुःखी, सब दुःखी हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भाई! भगवान आत्मा, इस मोहनिद्रा का जिसने नाश किया अर्थात् कि मिथ्यात्व का नाश किया, अर्थात् कि पर में स्थित है, ऐसी जो मिथ्याबुद्धि थी, उसका नाश करके आत्मा में आनन्द है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई, उसे सुप्रभात प्रगट हुआ। उसके घर में दिन उगा। समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ, सन्त सब ऐसा कहते हैं। ऐसा इसने सुना नहीं। भाई! तू भगवान है, बापू! आत्मतत्त्व। आत्मा अर्थात् क्या? ओहोहो! एक सैक्रीन जैसा होता है, चीनी का पूरा। ओहोहो! बहुत मिठास...

बहुत मिठास... जड़। धूल के रजकणों को क्या कहलाये नहीं यह? सैक्रीन। यह तुम्हारे शब्द किसे आवे? वह मिठास। वह आत्मा में कुछ है? आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास भरी है।

मुमुक्षु : उसके मधुररस हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मधुर रस है, चैतन्य भगवान को। परन्तु चैतन्य मधुररस प्रभु, तुझे खबर नहीं, भाई! यह शुभ-अशुभराग होता है न, आकुलता विकल्प, वह तो दुःख है। उसके पीछे भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप तू है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो प्रगट क्यों नहीं होता सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भान करता नहीं इसलिए। मिठास सब बाहर की है न!

मुमुक्षु : आपके बोलने में बहुत आनन्द आता है, अन्दर आनन्द आवे, तब आनन्द कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस लड़के की मिठास कितनी लगे, देखो! बापूजी वह... उसके लड़के का। बड़ा ऑफीसर। दो हजार वेतन। अब तब दोनों को क्या... यह हमारे रहे, कहाँ गये चन्द्रकान्त? चन्द्रकान्त को २१०० वेतन है। कहाँ है? बैठे थे न यहाँ चन्द्रकान्त नहीं? वे। बैठे हैं, नहीं बाजू में। चन्द्रकान्त है। उसे २१०० वेतन है। ऐसो में जिसमें अपने है न रामजीभाई का पुत्र। ऐसो में, उड़ता घोड़ा। नहीं वह... था न अपने था। फिर बदल डाला। तेल... तेल। उसमें नौकर है न सुमनभाई? आठ हजार मासिक वेतन है। इनके लड़के का। मासिक आठ हजार।

मुमुक्षु : आप तो सब धूल कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल और जहर है। इसमें तो दूसरा कहता हूँ। यह सुमनभाई की जो कम्पनी है न उसमें। २१०० वेतन है। यहाँ आता है महीने रहने को। अवकाश हो न, तब एक महीना रहने को आवे। अब ऐसी तो धूल अनन्त बार मिली, सुन न अब। आहाहा! उस आत्मा के रतन को राग में रौंद डाला, भगवान! आहाहा! रतन रौंदा श्मशान में। कहा था न एक बार नहीं? ६६ के वर्ष में, पालेज में दुकान थी न, पालेज

में दुकान थी। शिवाजीराव का पुत्र था। फत्तेहराव, वह मर गया छोटी उम्र में। अभी उसका पुत्र है। तीन करोड़ की आमदनी। लड़का दो वर्ष का था अभी तो... ६६ की बात है। दुकान में मैंने सुना था। पुस्तक हमारे पास आयी थी दुकान पर। 'रतन रौंदा श्मशान...' ऐसा आया था। अब वह रत्न तो धूल में भी नहीं कहीं, सुन न अब। कहीं बेचारा चला गया होगा। यह चैतन्य हीरा आनन्द का नाथ भगवान, उसे तूने राग और पुण्य और पाप में रौंद डाला है। बिगाड़ दिया है तूने तेरा प्रभु! तू क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं '**आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप**' ऐसा भगवान अन्दर है कि अतीन्द्रिय आनन्द का एकरूप। यह तो पर्याय की बात है यहाँ। परन्तु ऐसा एकरूप जो अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा है। यह इन्द्रियों का आनन्द जो मानता है, वह तो सुख कल्पना है। उस कल्पना के पीछे जो है अन्दर आत्मा, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। सच्चिदानन्द प्रभु है। उस आनन्द की अन्तर दृष्टि करने से उसे सुप्रभात प्रगट होता है। आनन्द में सुस्थित ऐसा जिसका सदा अस्खलित एकरूप। आहाहा! त्रिकाल आनन्दस्वरूप अस्खलित है, उसका अनुभव और दृष्टि करने से, उसका स्वीकार और सत्कार करने से, उसकी दशा में आनन्द अतीन्द्रिय अस्खलित धारावाही आनन्द प्रगट होता है, उसे सुप्रभात कहते हैं। यह तो दूसरा प्रकार है, भाई! इस दुनिया से, हों! यह तो जंगल में आकर पड़े हैं, तुम्हारे सोनगढ़ आकर।

मुमुक्षु : यहाँ सब चले आते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है। यह तो आत्मा यह तो यहाँ जंगल में आकर पड़ गये। आहाहा!

मुमुक्षु : जंगल में मंगल कर दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आत्मा भगवान। आहाहा! एक कड़ी किसी ने कही थी, हों! कल अरजणभाई ने। वह अरजणभाई नहीं वाणंद? ... अपने अरजणभाई नहीं वाणंद? वह परसों आये थे और कुछ कड़ी बोले थे इसकी आगम की। कोई पुरानी कड़ी थी उसमें से बोले कि आगम ऐसा होगा, और उसके बाद ऐसा होगा। बोले थे।

मैं तो मेरे विचार में था। मुझे ... नहीं। अरजणभाई आये हैं? नहीं आये। वे बोले थे कुछ। श्लोक है, वह श्लोक। आगम का शब्द कि जो आगम ऐसा कहा, वह आगम... ऐसा कहे। बोले थे। मेरा विचार मैं अन्दर में था। पूछते थे जरा। आगम में फिर ऐसा कहा था। आहाहा!

यह तो आगम अर्थात् आत्मज्ञान। यह तो अक्षरज्ञान अक्षर है। अन्तर में सच्चिदानन्द अक्षर। जिस ज्ञान का क्षिरना, नाश न हो ऐसा जो चैतन्य का ज्ञानस्वभाव, उसे यहाँ अक्षर ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! कहते हैं, जिसे ऐसा भगवान आत्मा अनन्त काल में बैठा नहीं। बाहर की प्रवृत्ति में धर्म मानकर रुक गया है वहाँ। समझ में आया? इसलिए नरसिंह मेहता ने कहा न, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहिं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' तेरी पूजा, भक्ति, दान, दया सब शून्य है। ऐई! नानुभाई! यह आत्मा, इससे उत्कृष्ट सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा। आहाहा! उस आत्मा की अन्दर श्रद्धा और ज्ञान होने पर, कहते हैं कि उसे सूर्य की किरण जैसे खिले, वैसे अनन्त शक्तिवाला प्रभु था, उसका जहाँ स्वीकार अन्तर में, अनुभव में दृष्टि में लिया, वहाँ किरण-अंकुर फूटे। जैसे जमीने में बरसात आने पर अंकुर फूटते हैं, वैसे अनन्त गुण के अंकुर के अंकुर फूटे। उसे यहाँ प्रभात कहा जाता है। यह तो अध्यात्म की बात है न, भगवान! यहाँ तो बहुत अन्दर की बात है भगवान! यह कोई बाहर से कुछ हाथ आवे, ऐसी नहीं है। इसलिए बहुतों को सूक्ष्म लगता है। परन्तु होता यह है तो ऐसा।

अरूपी अन्दर चैतन्यघन; यह (शरीर) तो सब मिट्टी, जड़, रूपी। यह तो जड़, उसके विरोधी तत्त्व हैं। उसका चैतन्य अन्दर चैतन्य का नूर, ज्ञान का नूर-तेज का पूर भरा हुआ है अन्दर। आहाहा! ऐसे ज्ञान के नूर के पूर को जिसने अन्दर स्वीकार किया, उसे आनन्द प्रगट होता है। आहाहा! जिसका चैतन्य मधुर स्वाद है। आहाहा! यह धूल का स्वाद, आत्मा को नहीं आता। यह दूधपाक और उसका स्वाद आत्मा को नहीं है। वह तो जड़ है। परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य करके राग करता है न, राग? उस राग का उसे स्वाद है। वह तो जड़ है। यह तो अरूपी आत्मा है। अरूपी को दूधपाक का, स्त्री का शरीर, माँस, हड्डियों का स्वाद आता है उसे? वह तो जड़ है। परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य करके प्रेम करता है और राग करता है तो उस राग का उसे स्वाद है। आहाहा! उस राग

का स्वाद जहरीला स्वाद, चार गति में भटकने का स्वाद है। यह स्वाद तो चैतन्य मधुर। उस राग का स्वाद छोड़कर अन्दर प्रभु... यह तो अपूर्व बात है, भगवान! इसने अनन्त काल में किया नहीं। ध्यान ही दिया नहीं। अवसर आया तब ऐसा करके छूट गया, ऐसा होता है, धीरे-धीरे होगा, ढींकणा होगा, ऐसे करके इसने नकार ही किया है। आहाहा! और आँखें मिंच गयीं, जाओ चौरासी के अवतार में। आहाहा! आँधी का तिनका उड़कर कहाँ जाकर गिरेगा? इसी प्रकार जिसे आत्मज्ञान और भान नहीं, मिथ्यात्व के भ्रम में पड़े हैं, वे उड़ते तिनके कहाँ जाकर अवतरित होंगे? आहाहा!

कहते हैं, जिसे इस आत्मा का ज्ञान और आत्मदर्शन हुआ, उसे आनन्द प्रगट हुआ। आहाहा! और अब चौथा बोल। **अचल जिसकी ज्योति है...** आहाहा! अचल शब्द। जो आत्मा में वीर्य अन्दर बल पड़ा है। उस बल का जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ दशा में अनन्त बल प्रगट होता है। जैसे गुलाब का फूल संकोच हो तो खिला हुआ न हो, परन्तु सूर्य की किरणों का निमित्त पाकर खिल उठता है गुलाब का फूल। उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त वीर्य का पिण्ड प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसकी अन्तर में दृष्टि और श्रद्धा करने से उसकी पर्याय वर्तमान दशा में अचल ज्योति वीर्य प्रगट होता है। आहाहा! वह बल कहलाता है। बाकी दुनिया के बल और राग और धूल मार डालेंगे इसे। समझ में आया? यह अचल ऐसा आत्मा '**अयम् आत्मा उदयति**' '**अयम् आत्मा**' उदय पाता है। शब्द है। यह सूर्य जैसे उदय पाता है, वैसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरपूर है। वस्तु है वह आत्मतत्त्व ही इतना वह है। उसका अन्दर स्वीकार और अनुभव दृष्टि करने से, वह धर्म की पहली दशा, उसमें अनन्त चतुष्टय के अंश प्रगट होते हैं, उसमें वह आत्मा उदय पाया, ऐसा कहा जाता है। वह आत्मा उदय पाया जो अन्धेरे में था। समझ में आया? वह आत्मा उगा। आहाहा! और जैसे उगा, वह उगा। जैसे माता के गर्भ में से पुत्र जन्मे, वह पुत्र वापस नहीं जाता। इसी प्रकार एक बार सम्यग्दर्शन और आत्मा की किरण का भान हुआ, वह वापस नहीं जाता। वह केवलज्ञान लेकर, भव का अन्त लेकर ही रहेगा। उसे यहाँ सुप्रभात, दिन उगा, वर्ष लगा, ऐसा कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल २, रविवार, दिनांक-२८-१०-१९७३
गाथा- ६,७,८, प्रवचन-३९

अष्टपाहुड़ है। उसकी छठवीं गाथा का भावार्थ चलता है। यहाँ तो निश्चय और व्यवहारनय का सिद्धान्त शास्त्र में जो कथन है, उसे जो पद्धति है, वैसे उसे बराबर जानना चाहिए। निश्चय और व्यवहार दोनों विरोधी हैं। निश्चय जब अभेद की बात करे, तब व्यवहार भेद की बात करे। यह बात है। निश्चय एकरूप तत्त्व के आश्रय की बात करे, तब व्यवहार पर के आश्रय के भाव की बात करता है। और उस व्यवहार के भी अनेक प्रकार हैं। परवस्तु निमित्त हो, उसे व्यवहार कहना। सब है हेय, परन्तु हेय के प्रकार में इतने प्रकार हैं। परवस्तु का निमित्त देखकर उसे हेय कहना, वह भी एक व्यवहार है। आत्मा में राग होता है, दया, दान, वह भी निश्चय से स्व में है, परन्तु त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से वह राग हेय है, छोड़नेयोग्य है। तब शुद्ध चैतन्यस्वभाव के आश्रय से हुई दशा, वह आदरणीय है।

जब वह दशा जो है निर्मल... सूक्ष्म बत है, सब आ गयी है। आत्मा में निर्मलदशा धर्म की हो, उसे जब व्यवहार कहते हैं, तब वह हेय हो जाती है और त्रिकाली वस्तु का उपादेय करे, वह निश्चय है। यह सब पहलू शास्त्र में हैं, उन्हें जैसा है, वैसा जानना चाहिए। एकान्त खींच डाले और तत्त्व के गर्भ को वास्तविक व्यवहार का सन्दर्भ, गर्भ क्या है तत्त्व ? निश्चय का क्या रहस्य है ? उसे समझे बिना गड़बड़ करे, यद्वा-तद्वा कहे, वह विपरीत श्रद्धा होती है।

यहाँ कहते हैं **जैसे जीव को चैतन्यरूप, नित्य, एक, अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहना....** ४६ पृष्ठ पर है न ? दूसरे पैराग्राफ में पाँचवीं लाईन। तीन और दो पाँच। **इसका उदाहरण इस प्रकार है—जैसे जीव को....** भगवान आत्मा **चैतन्यरूप, नित्य, एक, अस्तिरूप....** ऐसा है। यह सब ज्ञान करने से, उसे यथार्थपना प्राप्त हो, ऐसा है। ऐसे का ऐसे ऊपर-ऊपर से मान ले, मानो कि हमको... वे कहते थे ऊपर का ऊपर का जानना

कुछ। रहस्य हम नहीं जानते। हमारे होलकर है न होलकर, उसमें रुई में तो बहुत गहरे-गहरे जाते होंगे। है या नहीं होलकर?

यहाँ तो उसमें किस अपेक्षा का कथन है, ऐसा जानना चाहिए। एक समय की पर्याय है, उसे भी परद्रव्य कहते हैं। वह त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेने के लिये और उसमें से (द्रव्य में से) नयी पर्याय प्रगट होती है, (पर्याय में से पर्याय नहीं होती) इस अपेक्षा से पर्याय को परद्रव्य कहा। उस (शुद्ध) पर्याय को राग की अपेक्षा से निश्चय कहते हैं। और राग को पर की अपेक्षा से निश्चय कहते हैं, निमित्त के आधीन हुई इसलिए व्यवहार कहते हैं। यह सब प्रकार सिद्धान्त में हैं, उसे बराबर यथाविधि जैसा है, वैसा जानना चाहिए। वरना कुछ का कुछ हो जाये, ऐसा है। देखो!

कैसा है भगवान आत्मा निश्चय? जीव चैतन्यरूप है वह तो। ज्ञानस्वभाव, वस्तुस्वभाव नित्य है। जीव का चैतन्यस्वरूप वह नित्य है, एक है। उसमें प्रकार-भेद नहीं। एकरूप है। ऐसा जो अस्तित्व—होनापना **इत्यादि अभेदमात्र कहना....** अभेदमात्र जानना या कहना, **वह तो द्रव्यार्थिकनय का विषय है....** द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु को जानने का वह विषय है। समझ में आया? **और ज्ञान-दर्शनरूप, अनित्य, अनेक, नास्तित्वरूप इत्यादि....** आत्मा में यह ज्ञान है, यह आनन्द है, यह समकित है और यह अनित्य जो अवस्थायें भेदरूप और अनित्य अवस्थायें, वे अनेक और नास्तिरूप। पर से नास्ति, परसमय उसमें नहीं। **इत्यादि भेदरूप कहना पर्यायार्थिकनय का विषय है।** यह थोड़ा सूक्ष्म है भाई!

दोनों ही प्रकार की प्रधानता का निषेधमात्र वचन-अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। निषेध, यह नहीं और यह नहीं। है वह है। भेद पाड़कर कहना, वह सब व्यवहार। **दोनों ही प्रकार को प्रधान करके कहना प्रमाण का विषय है इत्यादि।** लो, इसलिए इसे थोड़ा सूक्ष्म है, परन्तु अब थोड़ा लिया। दूसरा जानने जैसी बात है। बहुत लम्बा ठीक नहीं पड़े सभा में।

सातवीं गाथा। क्योंकि यह... शैली है। मात्र यह जानने का। जैसा है, वैसा उसे नय से जानना और जानकर जैसा है, वैसा उसका यथार्थ अन्दर रहस्य है, उसका अर्थ

करना। उसे आगे-पीछे करने जायेगा तो भ्रष्ट हो जायेगा। निश्चय-व्यवहार को यथार्थ नहीं जाने। कहीं व्यवहार को उपादेय कहा हो, वह जानने के लिये कहा हो। परन्तु व्यवहार आदरणीय है, इसके लिये नहीं कहा। ऐसे कथनों को उसे बराबर जानना, उसकी बात है। अभी मन्दबुद्धि प्राणी है और उसमें थोड़े ज्ञान में महन्तपना अभिमान में स्वयं आकर बहुत जानता हूँ ऐसे ... वीतराग की आज्ञा नहीं समझे तो वह भ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया? इत्यादि-इत्यादि बात है। आहाहा!

गुरु सम्प्रदाय में अभी यथार्थ गुरु की आज्ञा रही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और अपनी कल्पना से करने जायेगा तो वास्तविक तत्त्व इसे हाथ नहीं आयेगा। बहुत सूक्ष्म बात है थोड़ी। सातवाँ बोल लो।

★ ★ ★

गाथा - ७

अब सातवीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जो सूत्र के अर्थ—पद से भ्रष्ट है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना—**

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स॥७॥

आहाहा! **अर्थः—जिसके सूत्र का अर्थ और पद विनष्ट है, वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है,....** क्या कहते हैं? दिगम्बर धर्म में जो शास्त्र चले आये हैं अनादि के। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो दिगम्बर जैनधर्म कहा, वही जैनधर्म है। यह पहले आ गया है। जैनदर्शन किसे कहना? और वह धर्म की मूर्ति जो दिखती है, वह दर्शन क्या है? कि अन्तर में तीन कषाय का अभाव होकर जिसे निर्ग्रन्थदशा पर्याय में प्रगट हुई है। और जिसकी भूमिका में उस भूमिका के योग्य का व्यवहार पंच महाव्रत, खड़े-खड़े आहार, अदन्तधोवन आदि के विकल्प उसे होते हैं, वह व्यवहार है। और मुद्रा नग्न शरीर होता है। यह तीनों होकर जैनदर्शन कहा जाता है।

मुमुक्षु : इसमें से कौनसा न हो तो चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होता ही है। न हो तो चले नहीं। साधक है न यहाँ तो अभी ? समझ में आया ?

आत्मा वस्तु है आनन्दमूर्ति प्रभु। उसके आश्रय से हुआ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अन्तर में उग्र पुरुषार्थ से स्वसंवेदन प्रत्यक्षदशा विशेष हो, वह वास्तविक जैनदर्शन निश्चय है। उसकी भूमिका में अचेलपना—वस्त्ररहितपना, एक बार आहार, छह आवश्यक का विकल्प, उसकी भूमिका का, वह व्यवहार है और उस भूमिका के योग्य शरीर की—अजीव की अवस्था नग्न हो, वह वस्तु का स्वरूप है। कहो, बलुभाई! ऐसा जो जैनदर्शन भगवान ने कहा, उसे अन्तर में अपने स्वभाव के आश्रय से मानना और उसके ऐसे जैनदर्शन जो वीतराग शास्त्र में कहा, उससे जो भ्रष्ट हुए... सूक्ष्म बात है जरा। अलग बात है, भगवान!

यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि सूत्र जो भगवान ने कहे हुए, उनके वे दिगम्बर के शास्त्र मुनियों ने धार रखे हैं। उन शास्त्र में से एक शब्द से भी जो... विरोध। है न ? सूत्र का अर्थ और पद विनष्ट हुए। आहाहा! वास्तविक जो सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए शास्त्र जो दिगम्बर के शास्त्र, वे परमार्थ के कहे हुए हैं। भगवान के कहे हुए हैं। उनसे एक भी शब्द और अर्थ को भ्रष्ट होकर जो पंथ जैन में निकला, वह मिथ्यादृष्टि पंथ है। समझ में आया ? जरा झेल रखने जैसी बात है। धर्मचन्दभाई! ऐसी बात। भगवान ने कहे हुए शास्त्रों में तो यह मार्ग था। उसमें से कल्पित कर डाला। मुनि को वस्त्र होते हैं, मुनि को तत्त्वज्ञान का ज्ञान होता है, उन्हें चाहे जिस प्रकार से आहार बनाया हो, परन्तु उनको चले, स्त्री का देह हो और उसे मुनिपना आवे, केवल(ज्ञान) हो, यह सब सूत्र के न्याय से भ्रष्ट है। ऐई! बलुभाई! ऐसा है यह। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है यह। श्वेताम्बर पंथ निकला, उसके ऊपर की यह बात है।

'**सुत्तत्थपयविणट्ठो**' कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है कि जो सूत्र के वीतराग परमेश्वर ने जो सूत्र, सिद्धान्त कहे थे, उनसे एक भी न्याय से भ्रष्ट हुए, वे प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं। '**हु**' है न '**हु**' ? वास्तव में मिथ्यादृष्टि हैं। अरर! यह बात कठिन पड़े। कहो, शिवलालभाई! श्वेताम्बर मत पूरा और उसके भेद में निकला हुआ स्थानकवासी पंथ, दोनों भगवान के

शास्त्र से विरुद्ध होकर पंथ निकले हैं। ऐई! जयन्तीभाई! अभी तक सब उसमें चलता था। आहाहा! अन्यमत की तो बात क्या करना? परन्तु यहाँ जैनधर्म में भी प्रवाहरूप से अनादि का भगवान ने कहा हुआ शास्त्र का मार्ग... आहाहा! कहाँ गये शान्तिभाई? पालनपुर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आया है? कहो, समझ में आया?

यह परम सत्य है। कुन्दकुन्दाचार्य पंच महाव्रतधारी व्यवहार से, निश्चय से वीतराग पदधारी और नग्नपना और एक बार खड़े (खड़े) आहार ले। पात्र नहीं होता, वस्त्र नहीं होता—ऐसी दशा को जैनदर्शन का मोक्षमार्ग का पूरा रूप कहा जाता है। उससे कुछ भी जब अन्तर किया, वह सब मिथ्यादृष्टि, प्रगट गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। चिमनभाई! इनके पिता वे। ऐसा है। वैराग्य का निषेध बहुत करें। पुरानी रूढ़ि के मनुष्य हों न। उसने कुछ वाँचा न हो... श्वेताम्बर का क्रियाकाण्ड करते हों। उसमें कहे, श्वेताम्बर मिथ्यादृष्टि, हाय... हाय...!

मुमुक्षु : अपने वहाँ (सोनगढ़) नहीं जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना निकल जाये। आहाहा! बापू! मार्ग यह है, भाई! शान्ति से जो धीरज से जो यथार्थ मार्ग था, सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर का मार्ग, उसमें तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। यह जैनदर्शन की परम्परा में मूल मार्ग के प्रणेता कुन्दकुन्दाचार्य हैं। वे कुन्दकुन्दाचार्य ऐसी पुकार करते हैं जगत को, बापू! वीतराग मार्ग से भगवान ने कहे हुए सिद्धान्तों से यह जो नये सिद्धान्त बनाये आचारांग और वह तो कल्पित बनाये हुए हैं। ३२ और ४५, वे भगवान के कहे हुए नहीं हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! अरे! यह बात कैसे बैठे? ऐई! कान्तिभाई!

मुमुक्षु : बराबर बैठे.... प्रभु! आपके चरण में।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इतना तो इसे विचार करना चाहिए न कि यह उसमें थे कितना, तो भी बदलकर बैठे हैं तो कुछ होगा अन्दर? प्रेमचन्दभाई! आहाहा! मार्ग यह

बापू! ऐसा है भाई! वीतराग का कहा हुआ, केवली का कहा हुआ और सन्तों ने उस प्रकार का अनुभव करके हम मार्ग कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस मार्ग के प्रणेता हम यह खड़े। आहाहा! आता है न प्रवचनसार। पीछे के भाग में आता है। मार्ग ऐसा है। आहाहा! जिसकी नग्नदशा, एकबार खड़े-खड़े आहार। आहाहा! और जिसके विकल्प ही कषाय की बहुत मन्दतावाले पंच महाव्रतादि के। और जिसकी दशा अन्दर में वीतरागमूर्ति प्रभु के आश्रय से—स्वआश्रय से दशा प्रगट हुई तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाववाली उसे मुनिमार्ग कहते हैं, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं, उसे जैनदर्शन कहते हैं। समझ में आया? मूलचन्दभाई! ऐसी बात है यह तो।

उनके सूत्र के एक पद से और एक अर्थ से भ्रष्ट हुए, वे प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं। ...भाई! मार्ग ऐसा है। किसी के साथ विरोध की बात नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध-द्वेष नहीं। वह भी आत्मा है परन्तु वस्तु का स्वरूप ऐसा है, वहाँ क्या हो? अनन्त केवलियों ने, अनन्त तीर्थंकरों ने, अनन्त सन्तों ने तो यह मार्ग कहा है, भाई! जैनदर्शन की परम्परा का वास्तविक मार्ग तो दिगम्बर धर्म और दिगम्बर के शास्त्र हैं। समझ में आया? प्रेमचन्दभाई! बहुत कठिन लगे। पूरी चीज़... हो और माने हो कि हम ऐसे साधु हैं। अरे! भाई! आहाहा!

इसलिए जो अचेल है,.... देखो! **वस्त्रसहित है...** वस्त्रसहितपना साधुपने में जिसने मनवाया, वे सब सिद्धान्त से भ्रष्ट हैं। अनादि सनातन वीतरागमार्ग से विपरीत हुए हैं। ऐई! प्रेमचन्दभाई! वे माने घर में अकेले। बाकी सब... यह मार्ग क्या है, यह जरा... आहाहा! **इसलिए जो अचेल है, वस्त्रसहित है...** इस कारण से उसने वस्त्रसहित स्थापित किये। भगवान के शास्त्र की विराधना की, उससे भ्रष्ट हुए इसलिए वस्त्रसहित साधुपना स्थापित किया। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो भाई... मार्ग तो... भले वह जैनदर्शन की मुनिपने की दशा भले पाल न सके, परन्तु वह मार्ग यह है, ऐसी इसे श्रद्धा अन्दर में करनी चाहिए। वह यहाँ श्रद्धा का जोर है। सम्यग्दर्शन का जोर है परन्तु उस सम्यग्दर्शन में ऐसा

जैनदर्शन है, उसकी श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? भगवानजीभाई! आहाहा! यह मार्ग है, भाई! यह वस्तु ही यह है न! आहाहा!

उसको 'खेडे वि' अर्थात् हास्य-कुतूहल में भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहार नहीं करना। क्या कहते हैं यह? वस्त्र रखना और हाथ में आहार लेना। भाई! पहले आया था न शुरुआत में। यह मार्ग वीतराग का नहीं। पहले शुरुआत में ऐसा रखते हैं। मन्दिर भी शुरुआत में दोनों के एक थे। पश्चात् फेरफार हो गया। भाई ने बराबर कहा। यह ... हो गया है। हुकमचन्दजी का क्षयोपशम बहुत है, बहुत है। एक-एक बात को ऐसी... मोक्षमार्ग की। कहते हैं कि तीन लोक के नाथ केवली महाविदेह में परमात्मा तो विराजते हैं। यहाँ भी वीर और गौतमादि हो गये। उन सब भगवानों ने मुनिमार्ग को जैनदर्शन वस्त्ररहित ऐसे साधु और रागरहित ऐसी अन्तर की दशा निश्चय। और राग की भूमिका हो वहाँ, परन्तु वह वस्त्र ले, ऐसा राग नहीं होता। समझ में आया? निर्दोष आहार ले, ऐसा विकल्प होता है, नग्नपना रहना, ऐसा एक विकल्प होता है। यह तो उस भूमिका की मर्यादा है।

बाह्य में वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनि माने या मनावे, वह सिद्धान्त से भ्रष्ट है। आहाहा! भारी कठिन! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, देखो! अब दोनों के सूत्र समान हैं और दोनों के सिद्धान्त में मोक्ष का मार्ग है, यह इसमें कहाँ रहा? लो, यह नूतन वर्ष का दूसरा दिन यह आया। एक ओर चन्द्र है दूज, और वार रवि है। चन्द्र और सूर्य इकट्ठे हुए आज। चन्द्र दूज है न आज दूज है। भाईदूज कहते हैं, क्या कहते हैं यह? और यह वार रवि है। रवि अर्थात् सूर्य। चन्द्र और सूर्य दोनों इकट्ठे हुए हैं। उसमें आता है, नहीं? भजन में वहाँ आता नहीं है? यहाँ सूर्य उग्रे चन्द्र... भजन में आता है अपने। भगवान केवली परमात्मा की इन्द्र आकर सेवा करते हैं... ऐसा कहते हैं। भक्ति में है भक्ति में।

यहाँ कहते हैं, भाई! शान्ति से किसी के प्रति का विरोधभाव रखे बिना वस्तु की स्थिति यह है। अनन्त केवलियों ने वस्त्रसहित मुनिपना माने, उन्हें मिथ्यादृष्टि (कहा है), उन्हें सम्यग्दर्शन होता नहीं। तो उन्हें साधुपना कहाँ से होगा? कठिन मार्ग है। उसमें तो श्वेताम्बर आ गये। अब यह तो ३९ वर्ष से होता है यह सब। यह ३९वाँ वर्ष

लगा यह। भाई को लगेगा तीसरा वर्ष। आहाहा! अब ऐसा तो स्पष्ट करने का प्रसंग आवे, तब आवे न! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : पंचम काल में ऐसा बनता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है यह? यह पंचम काल के मुनि कहते हैं, वे किसे कहते हैं? आहाहा!

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, जो भगवान के पश्चात् गौतम और गौतम के पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य आये। वे ऐसा पुकारते हैं, सूत्र के भगवान के कहे हुए शास्त्र, भाई! उसमें तो वस्त्ररहितपना मुनिपना स्थापित किया है। और उसमें से शास्त्र का एक अर्थ भी बदलकर अचेल अर्थात् ऐसा कहते हैं वे। जैसे कन्या ऊणोदरी हो, क्या कहलाती है वह? कन्या नहीं उदर... नहीं, उसका अर्थ पतला है। बहुत पतला हो न शरीर।... उसे पेट ही नहीं, ऐसा कहे। उसका अर्थ? कि बहुत पतला है इसलिए। इसी प्रकार अचेल का अर्थ बहुत थोड़े वस्त्र रखे, इसलिए अचेल, ऐसा अर्थ करते हैं। ऐसा नहीं है, बापू! मूल देव में भूल है। देव ने ऐसा कहा, ऐसा माननेवाले देव को पहिचानते नहीं। गुरु ने ऐसा पालन किया, ऐसा माननेवाले गुरु को पहिचानते नहीं। और शास्त्र में ऐसा कहा है वस्त्रसहित मुनि, वे शास्त्र को जानते नहीं। तीनों में उनकी भूल है। आहाहा! कहो, धीरुभाई! भारी कठिन! आहाहा!

'खेडे वि' अर्थात् हास्य-कुतूहल में भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहार नहीं करना। हाथ में ऐसे वस्त्र पहना हुआ हो और हाथ में आहार ले। विकल्पमात्र से भी करना नहीं। और ऐसे को कौतुहल मात्र से भी आहार देना नहीं। गुरु मानकर कि यह भी गुरु होते हैं। आहाहा! कहो, प्रवीणभाई! यह तो ऑपरेशन है न? सर्जन है। आहाहा!

भावार्थः—सूत्र में मुनि का रूप नग्न-दिगम्बर कहा है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त प्रभु ने सिद्धान्त में मुनि का नग्नरूप कहा है। आहाहा! प्रवचनसार में उसमें आया न? जिनवर ने कहा हुआ। अट्ठाईस मूलगुण जिनवर ने कहे हैं, भाई! वस्त्र रखना और पात्र रखना, वह भगवान की वाणी नहीं। वह तो अज्ञानियों ने शास्त्रों

में कल्पित बनाकर, उसे शास्त्र में डाला। आहाहा! बहुत उथल-पुथल। मार्ग तो ऐसा है, बापू! किसी की सिफारिश कि... वहाँ काम आवे नहीं। कि बड़ी पदवी ऐसी है और ऐसी है। वीतराग भगवान का विरह पड़ा। सन्त आदि सच्चे की उत्पत्ति घट गयी। बुद्धि की लक्ष्मी का विकास कम हो गया। उसमें ऐसे मार्ग निकले, उसे परखना कठिन पड़ गया। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि सिद्धान्त में तो मुनि को नग्नदशा कही है। अकेली नग्न (दशा) नहीं; अन्तर में वीतरागता आत्मा के आनन्द की दशा प्रगट हुई है, उसे वस्त्र लेने के विकल्प की उत्पत्ति ही नहीं होती। ऐसी जिसकी दशा है, उसे भगवान ने नग्न कहे हैं। जयन्तिभाई!

जिसके ऐसा सूत्र का अर्थ तथा अक्षररूप पद विनष्ट है.... सिद्धान्त का ऐसा अर्थ जिस शास्त्र में नहीं कि वस्त्रपना, वह मुनिपना होता है, वस्त्र रखने में मूर्च्छा कहाँ है? मूर्च्छा परिग्रह ऐसा कहा है। बापू! तब वस्त्र का रखना, वही मूर्च्छा है। प्रवचनसार में तो कहते हैं कि पर की हिंसा हो और हिंसा न लगे। नहीं मारने का भावफेर है इसलिए। परन्तु परिग्रह रखे और परिग्रहवन्त न हो, ऐसा नहीं होता। प्रवचनसार में है न। आहाहा! यह सिद्धान्त सिद्ध किये हैं। आहाहा! वास्तविक अभी गुरु और देव की खबर नहीं होती और देव-गुरु का स्वरूप शास्त्र में क्या कहा है, उस शास्त्र की खबर नहीं होती, उसकी श्रद्धा सच्ची कहाँ से हो? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देना आहार... वह देने की बात ही नहीं यहाँ। मुनि है, ऐसा मानकर न दे, ऐसा। आवे तो आवे, उसमें कहाँ इनकार है? कोई भी आवे। और उसके ऊपर कहीं द्वेष है? वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा जानना। अन्दर में अन्तर में उसके प्रति बैर नहीं। द्वेष आवे, ऐसा नहीं होता। वह भी आत्मा है। भूला है, परन्तु पर्याय में वह भूल टालेगा, तब होगा। उसका स्वभाव ही भूल को टालने का है। परन्तु अब रखकर करे तब तक क्या हो? ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! आहाहा!

बहुत ही करुणा से कुन्दकुन्दाचार्य जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं कि भाई! शब्द का एक न्याय बदला शास्त्र का। **आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है....**

आहाहा! उसने तो बेचारे ने लिखा है न एक व्यक्ति ने, नहीं? अर्धफालक थे। भाई नहीं, एक साधु है न? जूनागढ़ मिले थे। अर्धफालक पहले साधु हुए, दिगम्बर में से निकले तब। इतना टुकड़ा। उसमें है पाठ अष्टपाहुड़ में। अर्धफालक। उसने लिखा है। अर्धफालक में से १०८ उपकरण हो गये। १११। भगवान जाने अब कहाँ तक जायेगा? कहाँ जाकर रुकेगा? अर्धफालक में से विकृत विकार। वह श्वेताम्बर साधु है। परन्तु यहाँ का सब पढ़ा हुआ है न। है न वह? अर्धफालक वस्त्र में से विकृत विकार कहाँ जाकर रुकेगा, वह तो प्रभु जाने। उदासीन चम्पक सागर। मन्दिरमार्गी साधु। यह वाँचा है न इसलिए उसका... दिगम्बर में से निकले तब तो थोड़ा टुकड़ा रखते थे इतना नग्न। ... उसमें से फिर बढ़ गया। प्राय: १०८ साधुजी को और साध्वी को ... ११९ जितनी संख्या होती है। इतना रखते हैं... साधु।

मुमुक्षु : बाजार की डिब्बी आ गयी है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बाजार की डिब्बी आयी है। बाजार की डिब्बी, चश्मा, घड़ी, । यह तो वस्तु एक जानने के लिये। मार्ग तो यह... है। अनादि का सनातन जैनदर्शन, वह दिगम्बर दर्शन जैनदर्शन। उसमें से भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर दर्शन निकला, उसके लिये यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। समझ में आया? श्रद्धा को सुधारो और वह श्रद्धा नहीं सुधरे, तब तक अन्तर में नहीं जाओगे। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है, वह जिन-आज्ञा से भ्रष्ट हुआ.... है न उसमें? यह बाहर बात जाये तो लोगों को ऐसा लगे कि... आहाहा!

मुमुक्षु : गले तक आ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : अब यह बात किसी को कठोर नहीं लगती।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है, भगवान! वस्तु ही यह है न, प्रभु! तुझे लागत आती है भाई! वस्त्रसहित मुनिपना माने वह जैनदर्शन को कलंक है। वे कुपुत्र जगे हैं, ऐसा कहते हैं। भले मुनि न हो सके, परन्तु जैसा स्वरूप आत्मा का है, ऐसा वैसा इसे

मानना तो चाहिए न! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है। उसमें किसी की सिफारिश और किसी की महा महत्ता हो, इसलिए हम कुछ उसमें आ जायें। वह बाहर की महत्ता कुछ नहीं। आहाहा! बहुत बचाव करते हैं अभी यह। वहाँ तक कहते हैं, भगवान को भी वस्त्र था... और आधा फाड़कर दिया। अरेरे! बापू! यह मार्ग वीतराग का नहीं, भाई! वे शास्त्र भगवान के नहीं। वे तो शास्त्र के सिद्धान्त से भ्रष्ट हुए, उन्होंने बनाये हुए हैं। शान्ति से कहो, मिठास से कहो, सत्य तो यह है। समझ में आया? भगवानजीभाई! उनके श्वेताम्बर के मन्दिर, भगवान को बड़े गहने सिर पर चढ़ावे। क्या कहा?

मुमुक्षु : मुकुट।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुकुट, चाँदी की आँगी। अभी एक जगह देखा था इत्र लगाकर चोपड़ते हैं। अरर! एक इत्र की बिन्दु में महापाप। यह मार्ग भगवान का ऐसा नहीं होता, भाई! भगवान का मार्ग अहिंसा है। राग की उत्पत्ति न होना, ऐसी जो दया, उसे अहिंसा कहते हैं। ऐसे भानवाले को ऐसा भाव नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक वस्तु का स्वरूप यह है। आहाहा! ऐसा सुनकर अपने दोष हों, उन्हें टालने की बात है। दूसरे के दोष हों, उसके ऊपर... करने की... करने की... बातें हैं। आहाहा! मार्ग सनातन सत्य तो यह है। आहाहा!

कल कहा था न, एक व्यक्ति ने प्रश्न किया था कि यह उद्देशिक आहार का स्पष्टीकरण हो जाये तो प्रेम बढ़े। वह क्या स्पष्टीकरण करें? ऐसा (कि) वे गृहस्थ उनके लिये बनाते हैं और वे साधु लेते हैं, उसमें कुछ दिक्कत नहीं। बापू! भगवान का विरह पड़ा, पश्चात् ऐसे अर्थ नहीं होते। आहाहा! ऐसा कहा भाई, हों! वीतराग केवली ... भाई! उनके पीछे ऐसे अर्थ नहीं होते। और इस प्रकार से संप बढ़े, वह संप नहीं कहलाता। समझ में आया? उसे गृहस्थ करे और ले, उसमें से कुछ उद्देशिक (नहीं है), ऐसी शैली यदि निकले तो संप बहुत हो। मैंने तो कहा, हिन्दुस्तान में क्षुल्लक

द्रव्यलिंगी भी मैं तो मानता नहीं। उनसे स्पष्ट कहा। थे क्षुल्लक। उनसे कहा था। सुनते थे। सुनते थे शान्ति से। किसी व्यक्ति के प्रति उससे (द्वेष से) नहीं। बापू! मार्ग यह है। हिन्दुस्तान में द्रव्यलिंगी साधु तो नहीं, परन्तु द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं। यह जँचे, न जँचे, वह... आहाहा! ऐसा स्वरूप गणधरों ने, तीर्थंकरों ने इन्द्रों और गणधरों की सभा में यह फरमाया था, वह कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जिन-आज्ञा से भ्रष्ट हुआ प्रगट मिथ्यादृष्टि है,.... आहाहा! **इसलिए वस्त्रसहित को हास्य-कुतूहल से भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहारदान नहीं करना तथा इस प्रकार भी अर्थ होता है कि ऐसे मिथ्यादृष्टि को पाणिपात्र आहारदान लेना योग्य नहीं है,....** वस्त्रसहित रहना और हाथ में आहार लेना, ऐसा उसे हो नहीं सकता। आहाहा! जैन के अतिरिक्त अन्यमत की तो क्या बात करना? परन्तु जैन में ऐसे भाग पड़े। दुकानें अलग-अलग हो गयीं। बेचारे लोगों को निर्णय करने का समय रहा नहीं। मुश्किल से घण्टे-दो घण्टे समय मिले, बाईस घण्टे धन्धा। अब उसमें इतने प्रकार के पंथ का निर्णय करना कैसे? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि ऐसे पाणिपात्रवाले को आहार नहीं देना, वस्त्रसहित (वाले को) हाथ में आहार नहीं देना, ऐसा कहते हैं। और उसे हाथ में आहार लेना नहीं। दो बातें लीं। आहाहा! **ऐसा वेश हास्य-कुतूहल से भी धारण करना योग्य नहीं है,....** आहाहा! एक तो वस्त्र रखना और फिर हाथ में आहार लेना, ऐसा कौतुहल से भी नहीं करना, भाई! जैनदर्शन लज्जित होता है। जैनदर्शन तो है वह है। परन्तु बापू! तेरे इस भाव से जैनदर्शन की अशोभा होती है, भाई! आहाहा! पालन न कर सके इससे उसे कुछ दिक्कत नहीं। परन्तु उल्टी गड़बड़ करना, वह मार्ग नहीं, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर एकदम पहले तो मन्दिर अकेला आया... पश्चात्... पहले भिन्न पड़े न बारह वर्ष दुष्काल पड़ा न, तो थोड़ासा कपड़ा रखते थे। बस। फिर हाथ में ले आहार। यह कहते हैं। यह वीतराग का मार्ग नहीं है। आहाहा! सनातन सर्वज्ञ

परमेश्वर जिनके—सर्वज्ञ के ज्ञान में ऐसा मुनिपना वस्त्ररहित, रागरहित दशा, और राग हो तो उसकी मर्यादा क्या है, ऐसा भगवान के ज्ञान में देखा, वैसा कहा। वैसा शास्त्र में रचा। जिस शास्त्र में अर्थ में से उल्टे (अर्थ) करके दूसरा अर्थ निकाला। अचेल का अर्थ वस्त्र थोड़ा हो उसे अचेल कहना। बाधा नहीं ? कहते हैं कि वह शास्त्र से भ्रष्ट हो गये हैं। समझ में आया ? अरे.. ! जगत को कहाँ पड़ी है ? यह सत्य कहाँ है और असत्य क्या है ?

अपने को यह सत्य क्या है, इसके निर्णय बिना, प्रभु ! तू कहाँ जायेगा ? आहाहा ! और असत्य का निर्णय झूठा है, उसे छोड़े बिना इसे कहाँ जाना है ? आहाहा ! भगवान परम सत्य चैतन्य साहेबा, वह तो परम सत्य को ही स्वीकार करनेवाला है। एक अंश भी असत्य हो, वह चैतन्य के अन्दर समाता नहीं। समझ में आया ? जागती ज्योति चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा, वह जैसी है, वैसी वह जाने। फेरफार करके कुछ भी जाने, वह शास्त्र के अर्थ को समझते नहीं, वे वीतराग की आज्ञा को मानते नहीं। वे वीतराग के पंथ से भ्रष्ट हुए हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : सत्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। मार्ग यह है।

वस्त्रसहित रहना और पाणिपात्र भोजन करना,.... टुकड़ा इतना रखना और हाथ में आहार लेना, ऐसा कहते हैं। शुरुआत में इतना टुकड़ा रखे। वह बहुत निन्दा हो जाये लोगों को, इसलिए इतना रखना ऐसा करने लगे। उसमें अधिक चला... चला... आहाहा ! साधु निकले तो पोटला सिर पर। एक-दो मजदूर साथ में हो। यह निर्ग्रन्थ मुनि। अरेरे ! प्रभु ! यह मार्ग वीतराग का नहीं, भाई ! केवली तीर्थंकरों का यह मार्ग नहीं। यह वस्त्र का टुकड़ा रखना और आहार, पानी हाथ में लेना, भाई ! यह मजाक है। कौतुहल से ऐसा करना नहीं और ऐसे को तू कौतुहल से भी आहार देना नहीं मुनि मानकर। समझ में आया ? आहाहा ! **क्रीड़ामात्र भी नहीं करना।**

★ ★ ★

गाथा - ८

आगे कहते हैं कि जिनसूत्र में भ्रष्ट हरिहरादिक के तुल्य हो तो भी मोक्ष नहीं पाता है....

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो॥८॥

अर्थः—जो मनुष्य सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है, वह हरि अर्थात् नारायण, हर अर्थात् रुद्र, इनके समान भी हो,.... कहते हैं कि महापुण्यवन्त हो और बड़ी पदवी हो। उससे क्या? राजा मानता हो। समझ में आया? बड़े-बड़े राजा माने, बड़ी पदवी हो, उससे क्या? वह कुछ वस्तु नहीं। और सच्चे सन्त हों नग्न दिगम्बर, थोड़ी बुद्धि समझाने की हो। जंगल में बबूल के नीचे पड़े हों। कोई न माने। पत्थर मारे, इससे कहीं सत्य घट जाये, ऐसा है? और ऐसी बड़ी पदवीधर हुए, इसलिए धर्म, वह भी कुछ धर्म है, ऐसा नहीं है।

पद से भ्रष्ट हुए, वे हरि और हर **अनेक ऋद्धि संयुक्त हो, तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है।** क्षयोपशमज्ञान इतना हो, जगत को समझाने की शक्ति और लाखों मनुष्य इकट्ठे करने की शक्ति, तथापि भगवान के कहे हुए सिद्धान्त की श्रद्धा से भ्रष्ट है। वह तो बड़ी हल्की गति में जानेवाले हैं, कहते हैं। अभी भले पदवी बड़ी धराते हों। आहाहा! और बड़े पंथ के आचार्य और गुरु हुए। उसमें आ गया है पहले। उसकी त्रस की स्थिति पूरी होने लगी है। आहाहा! कठोर लगे, भगवान! परन्तु मार्ग तो यह है, हों! प्रभु! मिथ्यात्व का फल क्या भाई! अनन्त केवलियों से विरुद्ध, अनन्त सिद्धान्तों से विरुद्ध, अनन्त गुरुओं से विरुद्ध। कहो, समझ में आया? अब इसमें कहीं नहीं, उसे एक जगह अन्य में भी कुछ होगा, ब्राह्मण में और वेद में और ढींकणा में। भ्रमणा... भ्रमणा जगत की वह मिथ्यात्व की पुष्टि में अनन्त संसार भटकने का है। आहाहा! समझ में आया? ठीक अब यह जरा अधिकार आया आज। आहाहा!

मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। यदि कदाचित् दान पूजादिक करके पुण्य उपार्जन करके... बाह्य व्रत पालन करे। अज्ञानी को है इस प्रकार के। ब्रह्मचर्य पाले, भगवान की

पूजा, भक्तियों के ... लाखों, करोड़ों रुपये खर्च करके, परन्तु शास्त्र के सिद्धान्त से भ्रष्ट हुए वह बड़ी-बड़ी पूजाएँ रचावें, भले कदाचित् स्वर्ग में जावे तो जाओ। **वहाँ से चय कर, करोड़ों भव लेकर संसार ही में रहता है,....** आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त से एक भी अर्थ बदलकर भ्रष्ट हुए, इन्होंने तो बहुत हजारों अर्थ बदल डाले हैं। बहुत तो एक भी अर्थ बदलकर कि वस्त्रसहित मुनिपना मानना, इतना एक अर्थ लो। तो भी कहते हैं कि वह बड़ा महन्त हो, ज्ञान के क्षयोपशम में बढ़ गये हों, राजा-महाराजा जिसके तलिया चाटते हों। राजा का मान जिसे मिलता हो, राजा जिसे ताम्रपत्र पर लिखकर दे कि जाओ, तुम्हारा इतना हक है। परन्तु उससे क्या? कहते हैं।

तत्त्व की बात का विषय तो यह है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की जिसे अभी खबर नहीं। उसे आत्मा की खबर पड़े और समकित हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो शान्ति से दर्शनपाहुड़ में बात की, वैसी सूत्रपाहुड़ में यह बात की है। भगवान के कहे हुए सिद्धान्त आचारांग और सूयगडांग और वे तो लोप हो गये हैं। उनका अमुक भाग का अंश कुन्दकुन्दाचार्य आदि से रह गया है। उसमें से भी भ्रष्ट हुए। आहाहा! और बड़ी महन्तदशा शरीर का पुण्य जोरदार हो। समझ में आया? हजारों राजा खम्मा-खम्मा करते हों। उससे क्या? भले उस समय के पुण्य के परिणाम हों दान के, दया के, ब्रह्मचर्य के, वह स्वर्ग में जाये। परन्तु करोड़ों भव करके, अरबों भव करके... भवकोटि शब्द है न? आहाहा! '**न प्राप्नोति सिद्धिं**' ऐसे करोड़ों भव करे तो भी उसकी मुक्ति नहीं है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन की व्यवहार श्रद्धा के सुधार की बात है।

मुमुक्षु : मूल रकम है प्रभु यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। टकरावपना किसी के साथ खड़ा हो, वह बात नहीं इसमें। मार्ग ऐसा गजब है, भाई! अरिहन्त का कहा हुआ। केवली पण्णंत्तो धम्मो। केवली ने कहा हुआ धर्म, वह यह है। उसमें से कुछ भी फेरफार करके महा पदवी को प्राप्त और बालब्रह्मचारी हो, राजा मान्य करता हो, जिसके पुण्य का दिखाव देह में

दिखता हो, उससे क्या? ऐसा कहते हैं। अन्त में करोड़ों भव करके संसार में भटकेगा। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? यह अन्दर पचाने की बात है, हों! किसी के साथ टकराव करने की यह बात नहीं है। अपने को समझकर दोष-विरोध हो, उसे टालना, यह बात है। दूसरे के साथ चर्चा और वाद और झगड़ा करना (नहीं)। समझ में आया?

करोड़ों भव लेकर संसार ही में रहता है, इस प्रकार जिनागम में कहा है। देखो! है न? '**सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो**' पाठ में है पाठ। उसे संसार में भटकना पड़ेगा। आहाहा! अभी बड़ा महन्त क्षयोपशम में समुद्र जैसा क्षयोपशम। ग्यारह अंग और नौ पूर्व की लब्धि हुई हो। लो! आहाहा! तथापि जिसने भगवान के मार्ग का विरोध करके नये सिद्धान्त बनाये, उसमें वस्त्रसहित मुनिपना स्थापित किया, वे सब करोड़ों भव करेंगे और चार गति में भटकेंगे। चन्दुभाई! ऐसी बात है। कहो, मनहरभाई! यह तुम्हारे पारेख कुबेर थे। कुबेर क्या? कबीर। कबीर। अब छोड़ दिया लड़के ने। परन्तु फूलचन्दभाई को थोड़ा-बहुत था, हों! कबीर... कबीर का नहीं? परन्तु सामने मोती पारेख थे न तुम्हारे सामने नहीं? वृद्ध नहीं थे? तुमने नहीं देखे होंगे। सामने। मोती पारेख थे। वे पक्के कबीरपंथी। बुद्धि कुछ होती नहीं। स्थूल बुद्धि। आहाहा!

यहाँ तो कबीरपंथी नहीं, परन्तु जैनपंथी में से भी जो वस्त्र रखकर मुनिपना माने, वह अजैन है, जैन नहीं। कहो, समझ में आया? अरे! इसे आत्मा की दरकार क्या? अरे! मेरा क्या होगा? मैं यहाँ से जाऊँगा तो आत्मा तो कायम है। यह तो सब बिखर जायेगा फू... (हो जायेगा)। तो कहाँ जाना है इसे? यदि इसने मिथ्याश्रद्धा रखी तो मिथ्याश्रद्धा में भटकेगा चार गति में। यदि इसने सच्ची श्रद्धा करके अन्तर के—आत्मा के आश्रय से सम्यक् किया होगा तो इसे भविष्य में भी एकाध-दो भव या पाँच भव में केवल (ज्ञान) और मोक्ष जायेगा यह। समझ में आया? परन्तु यह दिगम्बर सर्वज्ञों ने और मुनियों ने कहा हुआ मार्ग, वह जिसे अन्दर में बैठे, उसे भवभ्रमण होता नहीं। उन्हें भव हो तो इसे भव नहीं होता, ऐसी बात गुलाँट खाती है। समझ में आया? कहो, मनसुखभाई! क्या करना इसमें तुम्हारा? इनका घर एक और सामने बहुत अधिक वे। आहाहा!

देखो, भावार्थ में है न? **श्वेताम्बरादिक...** श्वेताम्बर और स्थानकवासी और उसमें तेरापंथी यह जो निकले अभी तुलसी आदि। **इस प्रकार कहते हैं कि—गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है....** वस्त्र है, सहित है वह तो गृहस्थपना है, तथापि उसे मोक्ष होता है। अन्य लिंग से सिद्धा। आता है न उसमें? गृहस्थी सिद्धा, अलिंग सिद्धा... आहाहा!

मुमुक्षु : .... में दृष्टान्त देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ आता है न! केवल (ज्ञान) हुआ पश्चात् वस्त्र दिये। हमारे दीक्षा में ऐसा हुआ था। दीक्षा बड़ी धूमधाम से हाथी के हौंदे हुई। शाम को फिर जाने लगे सब इकट्ठे होकर। उतारा है न दरबार (का)। भरतेश्वर को केवल हुआ, यह भजन कुछ आता है और फिर देव ने दिये ओघा और मुँहपत्ती जिनशासन के रागी। केवलज्ञान हुआ भरत को काँच भवन में। परन्तु फिर वे वस्त्र थे, उन्हें निकाल दिया और बाद में वस्त्र दिये थे। वहाँ देव वांदवा लगे। देवों ने दिये... ... यह गाये। यह सुना था मैंने बराबर। बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। दो हजार लोग आये थे। ७० की बात है। ६० वर्ष।

कहते हैं। आहाहा! **वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है—इस प्रकार सूत्र में कहा है। उसका इस गाथा में निषेध का आशय है कि—जो हरिहरादिक बड़ी सामर्थ्य के धारक भी हैं तो भी वस्त्रसहित तो मोक्ष नहीं पाते हैं। श्वेताम्बरों ने सूत्र कल्पित बनाये हैं,....** स्पष्टीकरण किया। ... ३० और ४५ सूत्र भगवान के कहे हुए नहीं परन्तु समकिती के कहे हुए भी नहीं। **उनमें यह लिखा है सो प्रमाणभूत नहीं है; वे श्वेताम्बर जिनसूत्र के अर्थ—पद से च्युत हो गये हैं, ऐसा जानना चाहिए।** लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक-२९-१०-१९७३
गाथा- ८,९,१०, प्रवचन-४०

भावार्थ आया है न? ८ वीं गाथा। भावार्थ है न? यह बात सम्यक् प्रकाण से शास्त्र की समझना चाहिए। किसी के साथ वाद-विवाद और झगड़ा और टकराव करना, इसके लिये यह बात नहीं है। समझ में आया? कितने ही उतावले होकर एकदम कहे, तुम श्वेताम्बर मत मिथ्यादृष्टि हो। इसके लिये यह बात नहीं। अपने समझने के लिये यह बात है। समझ में आया? यह अधिकार आया हो, तब फिर उसका स्पष्ट करना चाहिए न?

मुमुक्षु : अपने को जानने के लिये आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए है। किसी के साथ नहीं, देखो ऐसा। ऐसा है... दूसरे का क्या काम है तुझे?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा कहा कि जो परम्परा से शास्त्र चलते थे, वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसमें से सूत्र के भ्रष्ट हुए श्वेताम्बर लोग और नये कल्पित शास्त्र बनाये। वे भगवान के शास्त्र नहीं हैं। और उन शास्त्रों में कल्पित बातें बहुत सब की हैं। और ऐसी मान्यता से तो मिथ्यात्व होता है, इसलिए यह बात जरा बतलाते हैं। समझ में आया?

भावार्थ है न? **श्वेताम्बरादिक...** श्वेताम्बर जैन और स्थानकवासी और तेरापंथी यह तुलसी आदि। वे **इस प्रकार कहते हैं कि—गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है**—गृहस्थलिंगे सिद्धा। पन्द्रह भेदे सिद्ध कहते हैं उसमें—शास्त्र में।

मुमुक्षु : भरत महाराज का दृष्टान्त देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त झूठा है। भरत महाराज को ध्यान में आये और वस्त्र छोड़े, पश्चात् मुनिपना हुआ। काँच भवन में भरतजी अपने... देखकर वैराग्य हो गया और वस्त्र छोड़ दिये, पश्चात् ध्यान में आये, तब उन्हें केवलज्ञान हुआ। वस्त्र रखने का

भाव हो और मुनिपना आवे, यह तीन काल में नहीं होता। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

कहते हैं कि **श्वेताम्बरादिक इस प्रकार कहते हैं कि—गृहस्थ आदि वस्त्रसहित को भी मोक्ष होता है—इस प्रकार सूत्र में कहा है।** अन्य के शास्त्र में ३२ सूत्र, ४५ सूत्र में यह कहा है। बहुत लिखीं हैं परिग्रह की बातें। **उसका इस गाथा में निषेध का आशय है....** इस गाथा में उसका निषेध किया है भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। **कि—जो हरिहरादिक बड़ी सामर्थ्य के धारक भी हैं....** हरि-वासुदेव-हर-शंकर ऐसे **धारक भी हैं तो भी वस्त्रसहित तो मोक्ष नहीं पाते हैं।** वस्त्र रखे और साधुपना हो, वस्त्र हो बुद्धिपूर्वक, हों! कोई ऊपर डाल दे, वह अलग बात है। वस्त्र रखने की बुद्धि और भाव में चारित्र हो, यह तीन काल में नहीं होता। ऐसा कठिन लगे।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय में लोगों को कठिन लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय नहीं, बापू! यह तो वस्तु का स्वरूप है। वस्तु की स्थिति ऐसी अनन्त तीर्थंकरों ने कही है। अनन्त सर्वज्ञों का यह मत है। कल्पित शास्त्र बनाये, उनके आचार्यों ने सब विरुद्ध बनाये हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! सम्प्रदाय का यह मार्ग नहीं। यह तो फिर वस्त्ररहित मुक्ति, वह सम्प्रदायवाले दिगम्बर मानते हैं। वस्त्रसहित मुक्ति श्वेताम्बर मानते हैं।

यहाँ कहते हैं कि **बड़ी सामर्थ्य के धारक भी हैं तो भी वस्त्रसहित तो मोक्ष नहीं पाते हैं। श्वेताम्बरों ने सूत्र कल्पित बनाये हैं,....** आहाहा! भारी कठिन पड़े। पाठ ही यह कहते हैं न। '**हरिहरतुल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटिः। तथापि न प्राप्नोति....**' मुक्ति। आहाहा! बड़े पराक्रमी हों, हजारों राजा जिनकी सेवा करते हों, लाखों लोगों में उपदेश देते हों, महन्त होकर आचार्य, उपाध्याय घूमते हों, परन्तु जिसने वस्त्रसहित मुनिपना माना है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

उनमें यह लिखा है, सो प्रमाणभूत नहीं है;.... उसमें लिखा है वस्त्र का, पात्र का। ...निशित सूत्र कल्पित बनाया है। साधु को तीन पात्र चलते हैं, रंग और रोगन और यह और वह। सब कल्पित है। वह वीतराग के कहे हुए तो नहीं, परन्तु समकिती के कहे हुए वे शास्त्र नहीं हैं। माने, न माने स्वतन्त्र जीव है। नवरंगभाई! आहाहा! समझ

में आया ? किसी के साथ विरोध करना, टकराव करने की यह बात नहीं। यह तो वस्तु की मर्यादा सर्वज्ञ ने देखी हुई, जानी हुई और कही हुई यह बात है। प्रवचनसार में नहीं आता ? जैन जिनेश्वर ने यह मत कहा है। अट्ठाईस मूलगुण, अचेल दिगम्बरपना, वह वीतराग तीर्थंकरों ने कहा है। और पन्द्रह भेद से सिद्ध हो, गृहस्थलिंग से सिद्ध हो, अन्य लिंग से सिद्ध हो और फिर कल्पनाओं की बातें अज्ञानी ने की हुई है। वह ज्ञानी के अभिप्राय की ज्ञानी की बात नहीं। अमरचन्दभाई ! तुम्हारे बहुत कठिन पड़े... आहाहा ! मार्ग यह है, भाई !

मुमुक्षु : राग-द्वेष आता है या नहीं आता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-द्वेष जरा भी नहीं आता। वीतरागता आती है। तब तो अन्यमति ईश्वरकर्ता माने, यह पाखण्डी धर्म... में माने और बकरे काटकर धर्म माने, उसे खोटा कहना, उसमें द्वेष आया ? वह... है सब... वादी हैं वे। यह किसलिए मानना चाहिए ? ऐसा किसलिए मानते हैं बकरे काटकर धर्म माने उसमें बाधा क्या है ? मानना ही नहीं चाहिए। भले हो। ऐसा नहीं चलता। यह तो वीतराग का मार्ग है, बापू! आहाहा ! टोडरमलजी को सम्प्रदाय की ... मरना पड़ा। ४७ वर्ष की उम्र में हाथी को ... सम्प्रदायवालों को नहीं सुहाया। इन्होंने (पण्डित टोडरमलजी ने) स्पष्ट बात की थी मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया ? उसमें तो लिखा कि मार डाला, परन्तु फिर मारकर मुर्दे को गन्दगी में... इतना लोगों को द्वेष हुआ। यह सम्प्रदाय की दृष्टि से। उन्होंने तो जो कहा था, वह बराबर कहा है। परन्तु संसार ऐसा अनादि से चलता जाता है। इसमें पंचम काल... नहीं, बुद्धि कम और जहाँ पकड़ाये हों उसमें से छूटना, इसे कठिन पड़े।

कहते हैं कि **श्वेताम्बरों ने सूत्र कल्पित बनाये हैं, उनमें यह लिखा है, सो प्रमाणभूत नहीं है; वे श्वेताम्बर जिनसूत्र के अर्थ—पद से च्युत हो गये हैं,....** भगवान के कहे हुए सिद्धान्त, वह बारह वर्ष के दुष्काल के काल में शास्त्र से भ्रष्ट हुए, इसलिए फिर नया कल्पित पंथ निकाला। यह जैनदर्शन और जैनधर्म नहीं। माने, न माने; बैठे, न बैठे—परन्तु मार्ग तो यह है। समझ में आया ? श्रीमद् कहते हैं न एक पंक्ति ?

समभाव। समभाव की व्याख्या ऐसी की है कि कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र कहकर माने, स्थापे। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को (सच्चा) माने और स्थापित करे, वह समभाव है। समझ में आया? क्या शब्द नहीं? शब्द गाथा।

मुमुक्षु : आत्मज्ञान समदर्शिता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस यह। 'आत्मज्ञान समदर्शिता।' यह समदर्शिता की व्याख्या की। बड़ी पुस्तक में (है)। कि भाई! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को माने या स्थापित करे कि खोटे हैं, वह समभाव है। वह ज्ञातापने का भाव है और सच्चे को सच्चा स्थापित करे, वह अन्दर में वस्तु स्वभाव का समभाव है। भले विकल्प हो। समझ में आया? नहीं तो कोई सत्य बात कही ही नहीं जाये। दुनिया में उल्टे मार्ग अनेक हैं।

परन्तु मोक्षमार्गप्रकाशक में तो कहा है कि तुम ऐसी बात करोगे तो झगड़ा होगा। परन्तु हम झगड़ा करे तो न। वे विरोध करे तो भले करे। हम कुछ विरोध करते नहीं। हम तो हमारे मार्ग की बात है, उसे समझते हैं और कहते हैं। है इसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक में। ऐसा है यह। **प्रमाणभूत नहीं है;.... ऐसा जानना चाहिए।**

★ ★ ★

गाथा - ९

आगे कहते हैं कि—९वीं। **जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं, वे स्वच्छन्द होकर प्रवर्तते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं:**—आहाहा!

उक्किट्ठसींहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं, पावं गच्छंदि होदि मिच्छत्तं॥९॥

अर्थ:—जो मुनि होकर उत्कृष्ट, सिंह के समान निर्भय हुआ आचरण करता है.... महीने-महीने के अपवास करे, महा तपस्यायें करे, बाहर के व्रत महा कठोर पालन करे **और बहुत परिकर्म अर्थात् तपश्चरणादि क्रियाविशेषों से युक्त है....** वहाँ वाँचन, श्रवण, मनन, तपस्या, आदि में विशेष परिक्रिया सब क्रियाओं से सहित हो। **गुरु के भार...** पदस्थ हो बड़ा आचार्य और उपाध्याय और गणीवर और गण। **अर्थात् बड़ा**

पदस्थरूप है,.... ऐसे पद में हो। **संघ-नायक कहलाता है....** आहाहा! **परन्तु जिनसूत्र से च्युत होकर....** भगवान तीर्थंकरों ने जो शास्त्र कहे, उनसे जो भ्रष्ट हुए, यह कुन्दकुन्दाचार्य ने स्पष्ट किया। समझ में आया?

स्वच्छन्द प्रवर्तता है.... अपनी कल्पना से प्रवर्तता है। वीतराग के मार्ग को छोड़कर, शास्त्र की आज्ञा को छोड़कर अपनी कल्पना से शास्त्र बनाकर, तत्प्रमाण प्रवर्तता है। **तो वह पाप ही को प्राप्त होता है....** वह पापी है। आहाहा! उसके आत्मा को महा दुःख ही है वह। और दुःख की परम्परा में दुःखी है। ऐसा कहते हैं। वह तो करुणा है, हों! भाई! परमसत्य वस्तु जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ ने कही, ऐसी शास्त्र की रचना में से छूट कर कल्पना के शास्त्र बनाये, स्त्री को मुक्ति होती है, भगवान को आहार होता है, भगवान के दो पिता होते हैं, मुनि को वस्त्र इतने उपकरण होते हैं... सब वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के अभिप्राय से अत्यन्त विरुद्ध मार्ग है। नवनीतभाई! ऐसा है।

मुमुक्षु : संख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : संख्या तो बहुत है यह देखो न! वैष्णव की संख्या कितनी है?... करोड़ों की। यह डोंगरेजी और बेचारे कितनी बातें करते थे। डोंगरेजी यहाँ नहीं उतरे थे? कितना उन्हें क्या कहलाये वह पारायण। पारायण कितनी की? डोंगरेजी। वाँचन। भागवत, रामायण की, रामचरितमानस कहते थे, रामचरितमानस नहीं? इतना इतना सब किया, अब ऐसा कि वहाँ स्त्री चली गयी रजनीश में। और यह पति ऐसा पचास-पचास हजार लोगों में भाषण देता था। उसकी दृष्टि हो रामायण की। यहाँ कहा है। मुम्बई में तो ४०-४०, ५०-५० हजार लोग इकट्ठे हों। करोड़ों की बस्ती उनकी है न पूरी दुनिया मानती है। अब कल सुना, स्त्री रजनीश के मत में चली गयी। कल सुना, हों! उसे कुछ समझाने गये। दूसरी बात करना। मैंने विचारकर काम किया है। अब उसको आघात हो न! वह बाहर में इतना प्रसिद्ध, लोग लाखों माने और स्त्री न माने, ऐसा जगत में चलता है, बापू!

मुमुक्षु : कोई किसी को मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कौन किसका माने? आहाहा! हिम्मतभाई तो माने या

नहीं रामजीभाई का? उन्हें ठीक लगे, वह माने। होवे तो अन्दर में हो। कहो, समझ में आया? कितनी ही बातें आती हैं। यहाँ तो सब खबर है न! वहाँ... कहलाये?

मुमुक्षु : आपके पास सब सच्ची बात नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सच्ची बात। यह तो स्वयं ने कही हो उसने। उसने स्वयं ने कही होती है। सहज अन्तर हो कहीं... लगे उसे। कहे। यह तो चलता है। संसार में तो ऐसा ही चलता है। यहाँ कहते हैं **मिथ्यात्व को प्राप्त होता है।** आहाहा! बहुत कठिन काम।

भावार्थ:—जो धर्म का नायकपना लेकर—गुरु बनकर निर्भय हो.... आहाहा! धर्म के नायक होकर—गुरु बनकर निर्भय हो जाये स्वच्छन्दता से। भगवान की आज्ञा क्या है, सिद्धान्त क्या है, उसकी कुछ खबर नहीं होती उसे। आहाहा! **तपश्चरणादिक से बड़ा कहलाकर....** बड़ी तपस्यायें करे। छह-छह महीने के अपवास। देखो न, वह नहीं कहा था? ... अकबर को। कोई महिला थी। बहुत तपस्या की। वह आया था उसमें। उसके लिये बड़ी शोभायात्रा निकली थी। हरिभद्र को। उसे... हो गया राजा। ऐसी तपस्या! ऐसी तपस्यायें हों। करोड़ों, अरबों रुपये खर्च करते हों, यह वर्षीतप करे। उसे साधु नाम धराकर अन्दर। उसमें पड़े और बड़ा करोड़ों का खर्च हो। यह उपधान करते नहीं, लो न! धूमधाम करे... लाखों-करोड़ों का खर्च करे, वह क्या चीज़ है? वह **स्वेच्छाचारी प्रवर्तता है....** आहाहा! है?

तपश्चरणादिक से बड़ा कहलाकर अपना सम्प्रदाय चलाता है.... अपना सम्प्रदाय चलाता है। आहाहा! भगवान का मार्ग छोड़कर बड़ा पदस्थ नाम हो, सम्प्रदाय चलावे **जिनसूत्र से च्युत होकर स्वेच्छाचारी प्रवर्तता है तो वह पापी मिथ्यादृष्टि कही है,....** दर्शन श्रद्धा ऊपर का जोर इतना है कि उसमें जरा भी कमी हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! जगत के साथ खड़े रहना अनमेल होकर। मिलान नहीं मिले कहीं। आहाहा! **उसका प्रसंग भी श्रेष्ठ नहीं है।** उसका प्रसंग—परिचय भी श्रेष्ठ नहीं है। उसका परिचय करे, उसे सुनने जाये। ऐई! चेतनजी! यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं। यहाँ आया इसलिए आवे न।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकरों का मार्ग तो दिगम्बर मार्ग, वह अनन्त तीर्थंकरों का कहा हुआ है। और उसमें जो भ्रष्ट होकर निकले सिद्धान्त से विरुद्ध होकर, वह सब गृहीत मिथ्यादृष्टि, निश्चय से तो वास्तव में वे निगोदगामी हैं। यह मिथ्यादृष्टि कहकर ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व, वही निगोद का कारण है। आहाहा! गजब बात! आहाहा! यह ब्रह्मचर्य पालते हों, व्रत, प्रत्याख्यान करते हों, महाव्रत... चलते, ऊपर ... हो। ऐसी भले क्रिया हो परन्तु वह मिथ्यादृष्टि है। वह स्वच्छन्द से वीतराग के मार्ग से त्रिलोकनाथ अनन्त सर्वज्ञों ने जो मार्ग कहा, उससे विरुद्ध करके बाहर से यह सम्प्रदाय चलावे। समझ में आया? उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है।

मुमुक्षु : उसमें भरा है, इसलिए अच्छा हो वह लेना है। उसमें क्या दिक्कत सुनने का?

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा कहाँ था?

मुमुक्षु : ऐसी दलील करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत प्रकार हैं, बापू! मिथ्यादृष्टि का अच्छा हो क्या जरा? जैनदर्शन में कहाँ अच्छा... नहीं? कि अन्यत्र अच्छा खोजने जाये? कठिन बातें हैं। सम्प्रदाय के चलानेवालों को यह भारी मुश्किल पड़े। भगवानजीभाई! इस प्रकार दस-बीस हजार खर्च किये हैं, पचास हजार मन्दिर में।

मुमुक्षु : सब धूलधाणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूलधाणी। भाई ने दिये हैं नहीं तुम्हारे... दिये? उसमें से निकलना कठिन पड़े लोगों को। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ रह गये इसलिए इस ओर का अब झुकाव नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : झुकाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? लोग ऐसा भी कहते हैं कि उसमें भी है और इसमें भी है। श्वेताम्बर, यह दिगम्बर... नहीं उसमें आता है। षट्पाहुड़ में। क्या कहलाये... उसमें आता है। ....समभाव रखनेवाला। बापू! समभाव हो नहीं कहीं। जिसके (मार्ग के) कर्ता खोटे, उनकी मान्यतावाले को समभाव कभी

आता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अब श्रीमद् भी यह श्लोक कहते हैं। अब आता है उसमें। श्रीमद् में भी आता है।... परन्तु उनके माननेवालों को भारी कठिन पड़े। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज... अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ, गणधरों ने शास्त्र में गूँथा हुआ, उससे विरुद्ध जिसने शास्त्र रचे, उनका मार्ग सब अमार्ग, उन्मार्ग है। बाबूभाई! ऐसा कठिन पड़े। कहाँ गये तुम्हारे? बलुभाई गये? बलुभाई।

★ ★ ★

गाथा - १०

आगे कहते हैं कि—जिनसूत्र में ऐसा मोक्षमार्ग कहा है—वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में और गणधरों ने वह दिव्यध्वनि सुनकर 'ॐकार ध्वनि सुणि अर्थ गणधर विचारे।' यह गणधरों ने चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना की। एक अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में की। उन गणधरों के शास्त्र अनादि प्रवाह में।

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

आहाहा! उसे कहना है कुन्दकुन्दाचार्य को।

अर्थः—जो निश्चेल अर्थात् वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप.... वस्त्र का टुकड़ा नहीं। दिगम्बर—माता से जन्मा ऐसा जिसका शरीर हो। अन्तर वीतरागता हो। आहाहा! **और पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में खड़े-खड़े....** है न? आहाहा! उसमें आ गया है पहले १४वीं गाथा, नहीं? १४वीं। सूत्रपाहुड़। नहीं कैसी? दर्शनपाहुड़। ऐसी १४वीं गाथा बोधपाहुड़ की है। ऐसी दर्शन की व्याख्या है न। १४वीं। वह १४वीं आयी है न अपने अष्टपाहुड़ की? ऐसी १४ बोधपाहुड़ की है। बोधपाहुड़ है न? ... है न वह? यह उसकी १४ गाथा है। हाँ १४ है। **दर्शन का स्वरूप...** यह १४ है। देखा! वहाँ भी १४ है और यहाँ भी १४ है। आहाहा!

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजम सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं॥१४॥

यह कहा था... १४वीं गाथा। है १४वीं गाथा? पृष्ठ ९५। पहले १४वीं गाथा दर्शनपाहुड़ की आयी थी कि जैनदर्शन किसे कहना। वहाँ भी बाह्य-अभ्यन्तर त्याग, वस्त्र आदि रहित नग्नदशा और पंच महाव्रतादि के परिणाम विकल्प। उसमें तीन कषाय का नाश अर्थात् मोक्षमार्ग की प्राप्ति हुई, वहाँ दशा। वह ... भले आगे बढ़े, शुरुआत वहाँ हुई थी। इसलिए उसे जैनदर्शन कहने में आया है। यहाँ दर्शन की दूसरी व्याख्या करते हैं। **'दंसेइ मोक्ख' जो मोक्षमार्ग को दिखाते हैं, वह दर्शन है। मोक्षमार्ग कैसा है?— सम्यक्त्व अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है, संयम अर्थात् चारित्र— पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है, सुधर्म अर्थात् उत्तम-क्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, निर्ग्रन्थरूप है—बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित है, ज्ञानमयी है....** अकेला ज्ञानमय तत्त्व, श्रद्धा-ज्ञान में रमणता हुई। आहाहा! जैसा ज्ञानस्वभाव है वस्तु, ऐसी ही पर्याय में ज्ञान की श्रद्धा, ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान की रमणता, ज्ञानमय दशा जिसकी।

निर्ग्रन्थ और ज्ञानमयी.... ऐसा। ज्ञानमयी का अर्थ कि वह विकल्पमय नहीं, तीन कषाय के अभाववाली दशा है। **जीव अजीवादि पदार्थों को जाननेवाला है। यहाँ निर्ग्रन्थ और ज्ञानमयी ये दो विशेषण दर्शन के भी होते हैं....** निर्ग्रन्थ और ज्ञानमयी। वह **दर्शन के भी होते हैं, क्योंकि दर्शन है, सो बाह्य तो इनकी मूर्ति निर्ग्रन्थ है....** है न? **और अन्तरंग ज्ञानमयी है। इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है....** मुनि के रूप को दर्शन कहा। **ऐसे रूप के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वरूप को....** ऐसे रूप की श्रद्धा अन्दर में हो, उसे समकित कहा जाता है। क्या है? ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह यह। ... ऐसे मोक्षमार्गवाले मुनि हों, उनकी श्रद्धा, वह अखण्ड आत्मा की श्रद्धा। आहाहा!

मुमुक्षु : .... वह आत्मा की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह आत्मा की तब ही हो उसे श्रद्धा। ऐसा दर्शनमार्ग धर्म वीतरागमूर्ति प्रभु। दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित निश्चय, हों! ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, जिसे प्रगट हुआ है, वह जैनदर्शन है। ऐसी जिसे अन्तर दर्शन-श्रद्धा हो, उसे आत्मा की अखण्ड श्रद्धा होती है। समझ में आया? कठिन बातें, भाई!

अपने यहाँ १०वीं। दोनों १४वीं गाथा आयी। दर्शनपाहुड़ में और बोधपाहुड़ में सर्वत्र। अकेला व्यवहार, ऐसा नहीं। अन्दर निश्चय आनन्दमयी, ज्ञानमयी दशा जिसे कहते हैं। चारित्र भी ज्ञानमयी, श्रद्धा ज्ञान की और ज्ञान का ज्ञान, ऐसी जिसकी ज्ञानमयी। रागमयी नहीं, ऐसा। ज्ञानस्वरूप जैसा है, वैसी ज्ञानमय जिसकी दशा श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की हुई है। वह दर्शन है। वह जैनदर्शन है। उसकी मूर्ति को यहाँ दर्शनमूर्ति कहने में, धर्ममूर्ति कहने में आता है। शुरुआत में जो ऐसा कहे तो भड़के, भागे हों। अब सहज आज तो आते हुए आया है। मूल तो पहले कहा गया है। उस समय अधिक यह। बाहर से बहुत आते हैं न.... क्या कहा फूलचन्दजी! सुनने जाने में क्या दिक्कत है? अच्छा-अच्छा लेना। आहाहा! आगम में से अच्छा-अच्छा लेना। क्या अच्छा लिया जाता होगा? बापू, मार्ग ऐसा है।

मुमुक्षु : गुणग्राहीपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणग्राही का अर्थ क्या? जिसमें गुण हो, उसका गुणग्राही या न हो, उसका गुणग्राही?

मुमुक्षु : कोई भी जीव ऐसा नहीं होता कि जिसमें से गुण....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही नहीं। मिथ्यादृष्टि को गुणपना होता नहीं। आहाहा! शासन का शत्रु। वह तो यशोविजयजी ने कहा नहीं? वह तो ७८ में कहा है। ...७८ में कहा था। 'ज्यों-ज्यों बहु जन सम्मत, बहु पीछे ... त्यों-त्यों जैनशासन का वैरी जो नहीं निश्चय दरियो।' संस्कृत टीका में आता है ठाणांग के छठवें ठाणे में। अन्दर टीका में आता है। यह बात राणपुर में की थी। यह चन्दुभाई को... ऐ... किस प्रकार कहा जाये? उसमें सम्प्रदाय में आते नहीं। फिर यह बात रखी थी ७८ में। राणपुर। टीका में है, हों! 'जह जह...' पाठ। है तो गद्य। परन्तु उसमें से पद बनाया।

बहुत शास्त्र के जाननेवाले शिष्यों से... जैसे-जैसे बहुश्रुत-बहुजन सम्मत और बहुत लोग माने। ओहो! आचार्य, वे आचार्य हुए। और बाहर की इज्जत बहुत। परन्तु जिसे निश्चय आत्मा क्या चीज़ है और जैनदर्शन का मार्ग क्या है? वह जिसने अन्दर में जाना नहीं, वहाँ तो अर्थ साधारण किया। कषायवन्त हो और ऐसा हो, ऐसा कहा था। टीका बहुत साधारण। समझ में आया? बात तो यह है। ओहो!

यहाँ कहते हैं न हरिहरादि से... क्रिया... और उसने एक व्यक्ति ने यह कहा है। यह गुप्तरूप से कहा था एक व्यक्ति ने। नहीं अपने... नहीं वह ब्राह्मण? क्या नाम? अपने कुमुदविजय। वह यहाँ अन्दर सब स्वीकार किया सुनकर चार महीने। सच्ची सत्य बात है सौ प्रतिशत। क्या करना? हम कुछ कहते नहीं। वस्त्र बदलने की यहाँ जवाबदारी नहीं। यह रहे... हमारा... समझ में आया? यहाँ कहा। दो बार कहा अन्दर, हों! ... कहा, भाई! यहाँ हमारे सिर पर... हम किसी को कुछ कहते नहीं। वेश पलटो, सम्प्रदाय छोड़ो, यह हमारा काम नहीं। फिर बाहर निकलकर ऐसा कहा, लो, वे लोग ऐसी बात करते हैं परन्तु वस्त्र उन्हें अवरोधक है। परद्रव्य अवरोधक है। वस्त्र अवरोधक नहीं, बापू! वस्त्र का जो भाव है, वह अवरोधक है। वस्त्र लेने का जो भाव जहाँ तक है, वहाँ तक उसे मुनिदशा तीन काल में नहीं हो सकती। ऐसा अनादि का वीतराग तीर्थंकरों का सनातन प्रवाह चला आता है। वह कहीं महाविदेह के लिये नहीं है। भरत, ऐरावत और महाविदेह तीनों क्षेत्र के लिये यह बात है। समझ में आया? महाविदेह में तो दूसरा कोई पंथ भी बाहर का नहीं है। दूसरा कोई मन्दिर नहीं। दिगम्बर मुनि, दिगम्बर मन्दिर, दिगम्बर सन्त, इनके अतिरिक्त कोई बाहर वहाँ दूसरा है नहीं। वहाँ उल्टे अभिप्रायवाले हैं। बाहर का वेश कोई नहीं। यहाँ तो सारा राग बेचारे लोगों को निर्णय करना भारी कठिन पड़े। ऐसे मत, अभिप्राय। आहाहा! एक कुछ कहे... एक कुछ कहे... एक कुछ कहे... उसमें क्या करना?

कहते हैं, वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्त देवों ने तो वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रा को मुनिपना कहा है। देवानुप्रिया! क्या है? अब उसमें कोई बचाव नहीं। **पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में खड़े-खड़े आहार करना,...** आहाहा! ऐसा मार्ग अनादि का।

आहार करना, इस प्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग.... अजोड़ मोक्षमार्ग **तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्र ने....** पाठ है न? '**परमजिणवरिंदेहिं**' परम जिनेन्द्र—भगवान तो यह मार्ग अनादि का कहते आये हैं। वस्त्र रखकर मुनिपना माने, वह वीतराग के मार्ग से भ्रष्ट हो गये हैं। आहाहा! ऐई! जादवजीभाई! यह क्या किया यह सब तुमने वहाँ? एक थे न वहाँ प्रमुख सब तुम्हारे स्थानकवासी में। परन्तु नहीं सुना हो तो क्या करे? बात सच्ची। ऐसा मार्ग है, बापू! मध्यस्थ से सुने, शान्ति से सुने, उत्तेजित होकर नहीं। परन्तु मार्ग तो यह है।

मुमुक्षु : वस्त्र के भाव.... ऊपर से हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरु ही नहीं। जब तक वस्त्र है तब तक मन-वचन-काया, कृत-कारित-अनुमोदन नौ कोटि से त्याग नहीं। काया से त्याग कब कहलाये? मोक्षमार्ग में आया है। काया से त्याग कब कहलाये? कि वस्त्र को रखे नहीं, रखावे नहीं और उसका अनुमोदन नहीं। नौ-नौ कोटि से त्याग। तब उसका त्याग कहलाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर कहाँ भारी पड़ा? बाहर त्याग नहीं, वहाँ उसे नौ कोटि का त्याग तो है ही नहीं, पड़ा है। ऐसा नहीं चलता। मोक्षमार्ग में कहा है, काया से वस्त्र रखना नहीं, रखाना नहीं कब होता है? वह वस्त्र छूट जाये तब। उसका भाव ऐसा हो तो वह वस्त्र छूट जाये उसके कारण से। कठिन बातें, बापू! और लोग ऐसा कहे, वह तो अप्रयोजनभूत बात है। अपनी बात का मिलान नहीं खाता न (इसलिए) ऐसा करके बात को उड़ा दे। बापू! तीर्थंकर तो ऐसा कहते हैं। परम जिनवरंदेही। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। परम जिनवरेन्द्र—तीर्थंकर, जिनवर अर्थात् गणधर, उनके भी इन्द्र।

'**एक्को वि मोक्खमग्गो**' अन्तर में वीतरागदशा और बाह्य में नग्नदशा ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने एक ही मोक्ष का मार्ग यही कहा है। दूसरा कोई मार्ग तीन काल में भगवान के पंथ में नहीं है। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसा है। वाड़ावालों को ऐसा कठिन पड़े। बापू! इतना तो ख्याल करो कि पूरी चीज़ यह चलती नहीं थी, उसमें से यह पंथ अलग पड़ा तो कुछ कारण से पड़ा होगा या नहीं? दोनों एक ही हों तो क्यों नहीं

रहे उसमें? आहाहा! बड़ी श्रद्धा का बड़ा फिरका और वह श्रद्धा बड़ी खोटी, वह सब निगोद के गामी जीव हैं। चाहे तो वे त्यागी होकर घूमें और आचार्य नाम धरावे परन्तु उसका फल तो परम्परा से निगोद है। चन्दुभाई! कल तो अहमदाबाद जाना है।

यह तो... आहाहा! मार्ग तो यह है, बापू! शान्ति से सुनो, धीरज से सुनो। दूसरे पक्षपात छोड़कर जिनवर '**परमजिणवरिंदेहिं**' वस्त्ररहित अन्तर निर्ग्रन्थदशा, बाह्य में निर्ग्रन्थदशा, वह '**परमजिणवरिंदेहिं**' '**उवइट्ठं**' '**णिच्चेलपाणिपत्तं**' दो बातें ली हैं। वस्त्र नहीं और हाथ में आहार। ऐसे। दो है मूल पाठ। वस्त्र नहीं और हाथ में आहार अर्थात् पात्र नहीं, ऐसा। कहा है न? '**णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं**' यह आ गया। सच्चे जैनदर्शन के सन्त जो दिगम्बर मुनि, उन्हें वस्त्र और पात्र नहीं हो सकते। अकेले दिगम्बर होकर घूमे परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शन और ज्ञान का भान नहीं, वह भी जैनदर्शन नहीं। समझ में आया? नग्नपना लेकर बैठे, परन्तु राग की क्रिया के कर्ता और नग्नपना मेरा कार्य है, ऐसा मानते हैं, तब तक वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ... भारी कठिन काम। समझ में आया?

पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्र में.... ऐसा हुआ न पाणिपात्र अर्थात्? इसलिए फिर खड़े आहार हुआ न उन्हें। **इस प्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग (भगवान) तीर्थंकर परमदेव....** कहा है। आहाहा! जिनेन्द्र ने यह उपदेश किया है। सर्वज्ञ परमेश्वरों ने यह उपदेश किया है। उससे विरोध करके शास्त्र बनाये खोटे, कल्पित। वस्त्र स्थापित किये, पात्र स्थापित किये। समझ में आया? वे सब शास्त्र नहीं, कल्पित शास्त्र हैं। आहाहा! प्रभु... प्रभु! कठिन पड़े बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गोचरी किसमें ले? यह एक टाईम ले, हाथ में ले। उसके हिसाब से तो... पात्र में ले, वह मार्ग नहीं है। गृहस्थ का मार्ग है, साधु का मार्ग नहीं है। ऐसा है, बापू! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य... कहते हैं। यह भगवान का नाम लेकर कहते हैं, हों! आहाहा! भगवान ने '**परमजिणवरिंदेहिं**' यह उपदेश किया है, कहते हैं। आहाहा! पाठ है

या नहीं ? '**णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं**' अब उसमें क्या हो, भाई! वह कहीं कुल परम्परा में मार्ग आया हो, इसलिए सच्चा, ऐसा है ? आहाहा ! उसे सत्य...

मुमुक्षु : .... वाडा में सब मनुष्य समावे कहाँ से ? अलग-अलग वाड़ा चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो वाड़ा, वह कौन इनकार करता है, खोटे। परन्तु सच्चा मार्ग वह नहीं। ऐई ! एक वाड़ा में सब मनुष्य कैसे रहें ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वह वाड़ा-सम्प्रदाय नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! वीतराग परम जिनेन्द्रदेव '**णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं**' आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य की भाषा तो देखो ! तीन लोक के नाथ ने वस्त्ररहित और पात्ररहित ऐसा मुनिपना भगवान तीर्थंकरदेव ने कहा है। अब उसे छोड़कर दूसरा कहे कि यह भी मुनिपना है वस्त्र रहे, पात्र रहे। आहाहा! कठिन पड़े, बापू! मार्ग की पद्धति कोई अलग है। परन्तु इतना तो विचार बाह्य से करना। सम्प्रदाय में थे तो बहुत मान था। प्रभुतुल्य हमको कहते थे। परन्तु हमको कुछ दूसरा भासित हुआ, तब यह परिवर्तन किया है।

मुमुक्षु : .... ऐसी बात ध्यान में लेनी चाहिए, परन्तु वह कुछ ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन-तीन हजार लोग वहाँ (संवत्) १९८९ के वर्ष में राजकोट। मोटरों की... हों ! .... परन्तु अन्दर कहा, इसमें अपने नहीं रह सकेंगे।

मुमुक्षु : ....दूसरों को स्थानकवासी साधु होने का उपदेश देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग ऐसा है, बापू ! दीक्षा लेने बहुत आते थे हमारे पास। बापू ! हम दीक्षा नहीं देते। उसे ऐसा कैसे कहें कि परन्तु हम ही साधु नहीं अभी। यह उत्तमचन्दभाई हैं, लो न भाई ! वडिया। उत्तमचन्दभाई नहीं बड़े ?

मुमुक्षु : वह तो अपने शान्तिलाल को दीक्षा लेनी थी....

पूज्य गुरुदेवश्री : शान्तिलाल को दीक्षा लेनी थी। वह शान्तिभाई गुजर गये न ? ऐसे तो बहुत हमारे पास आये हैं बहुत। राणपर में एक मोहनलाल सोहनभाई थे।

मुमुक्षु : यह नेमिदासभाई को लेनी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नेमिदासभाई तो बड़ा गृहस्थ, इसलिए ... दस लाख। नेमिदास

खुशाल दस लाख की पूँजी। वह तब नहीं था। पाँच-पच्चीस हजार होंगे। ९० के वर्ष। मुझे दीक्षा दो। स्त्री मर गयी। पैसे थोड़े। ४८ वर्ष की उम्र। नेमिदास खुशाल? ...

मुमुक्षु : नेमिदास खुशालदास।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ नेमिभाई! हम किसी को देते नहीं। मैंने कहा ब्रह्मचर्य लो। ब्रह्मचर्य नहीं ले सकूँ। या तो दीक्षा और या तो... कहा नहीं था। या तो दीक्षा दो। ऐसा कहा था। फिर विवाह किया। कंचनबाई आयी, कंचन। पैसे आये दस लाख रुपये। अभी २०-२० लाख के बड़े बँगले हैं मुम्बई में। यहाँ पोरबन्दर। वह दीक्षा लेने आये थे। कुछ बहुत दीक्षा लेने आये हुए। बापू! हम ऐसा कैसे कहें कि भाई साधुपना ही ऐसा नहीं होता। साधुपना दूसरा। ऐई! ख्याल न हो तब तक, फिर ऐसा हो न। बहिन ने भी माँगी थी। वह भी खबर है। ९० में। ... नहीं। दीक्षित ... हुए।

एक बार आहार लेने गये न आहार लेने। बहिन खड़ी थीं। खबर है? तुम थे? ऐसा। ९० के वर्ष की बात है। ऐसा कि दीक्षा लेने का भाव है। ... ९० की बात है। दीवानपरा में रहते थे न? ... यह तो ख्याल नहीं था, बाहर की बात। वह बात भाई ऐसी है।

यहाँ कहते हैं, तीन लोक के नाथ अरिहन्त देव परम जिनवरेन्द्र। जिन तो चौथे गुणस्थान में भी कहलाते हैं। जिनवर गणधर को भी कहा जाता है। यह तो '**जिणवरिंदेहिं**' तीर्थंकर अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने '**उवइट्ठं**' उपदेश ऐसा दिव्यध्वनि में किया कि पाणिपात्र हाथ में आहार, निश्चेल-वस्त्र बिल्कुल धागा न हो उन्हें। वह एक ही मोक्षमार्ग है। है? '**एक्को वि मोक्खमग्गो**' वह एक ही मोक्षमार्ग है। उसमें दो और तीसरा भी हों?

मुमुक्षु : यह एक कहा, उसमें व्यवहार तो आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें?

मुमुक्षु : एक मोक्षमार्ग कहा न उसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही मोक्षमार्ग है। यह तो आ गया उसमें। यह व्यवहार आया था न। मोक्षमार्ग यह, परन्तु उसका अर्थ हो गया न? तो पहले स्पष्टीकरण हो गया

न १४वीं गाथा में? और १४वीं में पश्चात् अभ्यन्तर तो वीतरागदशा होती है। अकेला नग्नपना नहीं। अभ्यन्तर आनन्द का उछाल। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में शोधक में जाकर आनन्दपना पर्याय में निकाला (प्रगट किया) है। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन—वेदन है। और उसे वस्त्ररहित बाहर की दशा है। उसे जैनदर्शन कहा जाता है। अकेले नग्न होकर घूमे, पाँच महाव्रत पालन करे तो भी वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? मार्ग भारी कठिन, भाई! अनन्त काल में इसने यह बात ऐसी है, ऐसा अन्दर बैठा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'एक्को वि मोक्खमग्गो' एक का अर्थ किया। एक अद्वितीय—दूसरा नहीं, ऐसा। एक अद्वितीय अजोड़। मोक्षमार्ग तीर्थंकर ने कहा। **परमदेव जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है,.... 'सेसा य अमग्गया' इसके सिवाय अन्य रीति सब अमार्ग (उन्मार्ग) हैं।** समझ में आया? वस्त्र रखकर, पात्र रखकर, मिथ्यात्व सेवन कर मुनिपना माने, वह सब उन्मार्ग है। वीतराग जैन परमेश्वर का वह मार्ग नहीं। आज जँचे, कल जँचे, परन्तु यह जँचने से ही छुटकारा है। इसके बिना इसका (परिभ्रमण का) अन्त आवे, ऐसा नहीं है। दुनिया की संख्या चाहे जितनी हो। कहो, गिरधरभाई! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा तो देखो! **'णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं। एक्को वि मोक्खमग्गो'** अर्थात् इसमें अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, स्वरूप के आश्रय से हुआ दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो और बाह्य में नग्नदशा हो, वस्त्र और पात्र न हो—ऐसा उपदेश इन्द्रों ने—जिनवरेन्द्रों ने दिया है। अब उसमें कोई शिथिल और ढीला कहे, वह वीतरागमार्ग से विपरीत है। कहो, समझ में आया? **'सेसा य अमग्गया'**

भावार्थः—जो मृगचर्म,.... अर्थ किया है पहला। **वृक्ष वल्कल,...** वृक्ष की छाल। **कपास पट्ट,...** कपास के कपड़े **दुकूल,...** होगा कुछ। **रोमवस्त्र,...** बाल के वस्त्र। वह आते हैं न। भेड़ के ... पहनते हैं न ऊन के। **टाट के और तृण के वस्त्र इत्यादि रखकर अपने को मोक्षमार्गी मानते हैं....** लो, यहाँ तो तृण का रखकर नहीं। उस टीका में आता है न एक तृण का? परमात्मप्रकाश में। इसके उसमें भी आता है अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ में।

मुमुक्षु : किसमें आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अष्टपाहुड़। उसमें आता है और यह परमात्मप्रकाश, दोनों में आता है। दोनों जगह आता है।

तृण के वस्त्र इत्यादि रखकर अपने को मोक्षमार्गी मानते हैं तथा इस काल में जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं,.... भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त परमागम से भ्रष्ट हो गये हैं। आहाहा! समझ में आया? पसीना उतर जाये, ऐसा है यह तो। बालब्रह्मचारी महिलायें—स्त्रियाँ, देखो! लड़कियाँ, कन्या वे दीक्षा लेती हैं बालब्रह्मचारी और कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व के पोषक हैं। ऐई! वीतराग का मार्ग यह नहीं है। ऐई! फूलचन्दभाई! यह कहते हैं, लो।

इस काल में जिनसूत्र से च्युत हो गये हैं, उन्होंने अपनी इच्छा से अनेक वेश चलाये हैं, कई श्वेत वस्त्र रखते हैं, कई रक्त वस्त्र,.... रखते हैं। **कई पीले वस्त्र,....** रखते हैं, लो। यह श्वेताम्बर में पीले नहीं करते? एक वस्त्र रखे। **कई टाट के वस्त्र, कई घास के वस्त्र....** लो! **कई रोम के वस्त्र आदि रखते हैं, उनके मोक्षमार्ग नहीं है....** उनके सम्यग्दर्शन नहीं, उनके सम्यग्ज्ञान नहीं और उनके सम्यक्चारित्र नहीं। आहाहा! **उनके मोक्षमार्ग नहीं है क्योंकि जिनसूत्र में तो एक नग्न दिगम्बरस्वरूप पाणिपात्र भोजन करना....** भगवान के सिद्धान्त में तीर्थंकरों के शास्त्र में तो एक नग्न दिगम्बरस्वरूप पाणिपात्र में भोजन करना **इस प्रकार मोक्षमार्ग कहा है,....** आहाहा! **अन्य सब वेश मोक्षमार्ग नहीं है और जो मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं।** भारी कठिन काम, भाई! वाड़ा में हो और ऐसा कहे तो निकालो... निकालो... यहाँ तो कौन? यहाँ तो वाड़ा बाहर हैं। मार्ग यह है। कहो, समझ में आया?

सब वेश मोक्षमार्ग नहीं है.... आहाहा! सब मिथ्यादृष्टि कुलिंगी, अन्य वेश से साधुपना माने, वे सब गृहीत मिथ्यात्व के सेवन करनेवाले हैं। ऊपर तो कहा था न पाठ में? **'स्वच्छंद पावं'** ९वीं गाथा में। **'स्वच्छंद पावं'** स्वच्छन्द से पापी। ९वीं में था। है न वह? **पाप ही को प्राप्त होता है....** है न पाठ है। मिथ्यात्व, वही महापाप है। उसके पश्चात् चारित्र दोष का पाप तो बहुत अल्प और थोड़ा है। अर्थात् जिसकी मिथ्या श्रद्धा

(वह) महापाप का सेवन करनेवाला है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! ऐसा मार्ग है। यह अपने लिये है, हों! यह बाहर में किसी के साथ टकराव करने का नहीं है। वाद-विवाद करना—तुम्हारा मार्ग खोटा, इसके लिये यह नहीं है। यह तो अपने आत्मा के हित के लिये समझने की बात है। बात जब आवे तब तो उसका रूप हो, ऐसा दिया जाये न! उसमें कुछ कम, अधिक, विपरीत कुछ नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहते हैं, लो! गाथा बहुत अच्छी आयी है, हों!

एक होय तीन काल में यह मोक्ष का मार्ग। जिसका परिपूर्ण भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन ज्ञायकभाव के सन्मुख होकर जिसकी दृष्टि वीतरागी हुई है। वह सम्यग्दृष्टि और जिसे चैतन्यमूर्ति भगवान ज्ञान, आनन्दस्वरूप के सन्मुख होकर उसका ज्ञान हुआ है। और उसके सन्मुख में लीन होकर अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन अनुभव करता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन जिसका नित्य है। आहाहा! यह सन्तों की दशा। उन्हें इस वीतरागभाव के योग्य विकल्प की जाति और नग्नदशा उसके योग्य निमित्तपना होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अकेले व्यवहार के विकल्प नग्न, ऐसा नहीं है। आहाहा! उन्होंने कहे हुए 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' यह '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' ऐसे मार्ग की दशा में ऐसे विकल्प पंच महाव्रत के और नग्नपने की मुद्रा, उसे यहाँ वीतरागमार्ग कहते हैं। आहाहा! उसका फेरफार जरा एक अक्षर भी अन्तर, यह पहले आ गया। पहले में आया था न? '**सुत्तत्थपयविणट्ठो**' ७वीं। सूत्र के पद से विनष्ट।

मुमुक्षु : ७वीं गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ७वीं। पहले आया, '**सुत्तत्थमग्गणत्थं**' सूत्र को सूत्र में से वीतरागमार्ग का शोधन, करना। शास्त्र में वीतरागभाव कहा है। ऐसा उसे अन्दर में से शोधना। उसमें यह कहा है, उसमें शोधना, उसे सूत्र कहते हैं। और उसमें शोधकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करे, उसे श्रमण अर्थात् साधु कहते हैं। दूसरे को साधु नहीं कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ४, बुधवार, दिनांक-१४-११-१९७३
गाथा- ११ से १५, प्रवचन-४१

गाथा - ११

सूत्रपाहुड़। ११वीं गाथा। **आगे दिगम्बर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति करते हैं:—**

मुमुक्षु : श्वेताम्बर....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्वेताम्बर मानते हैं न। उसे ... किया ऊपर। '**णिच्चेल-पाणिपत्तं**' यह '**एक्को वि मोक्खमग्गो**' .... बात की है। वस्त्रधारी को मुनिपना माने, वह उन्मार्ग है, जैनमार्ग नहीं। उसे जैनदर्शन नहीं कहा। १४वीं गाथा में आ गया है। आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं। वस्तु की मर्यादा ऐसी है। यहाँ कहा। आगे कहेंगे २३ गाथा में। एक ही मार्ग है, बाकी सब उन्मार्ग है। दिगम्बरमार्ग जो वीतराग ने कहा, वह एक ही मार्ग है, बाकी सब उन्मार्ग है। श्वेताम्बर हो, स्थानकवासी हो, अन्यमति भी हो, वह कुछ ... है।

मुमुक्षु : अन्यमति में चढ़े, ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल चढ़े, ऐसा नहीं। अन्यमत में जाये ऐसा है सब। यह नाम धराते हैं, बाकी है अन्यमत। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में यहाँ ऐसा कहा है। सूक्ष्म बात है। दो हजार वर्ष पहले अलग पड़ गये। लोगों को उस समय तार-पत्र कहीं कुछ नहीं था। इसलिए कहीं एक जगह अलग पड़े तो दूसरी जगह खबर पड़ जाये तुरन्त ऐसा कुछ नहीं था। ऐसा का ऐसा चला। मार्ग तो यह है। आत्मा के सम्यग्दर्शनपूर्वक अनन्त बल रुचिपूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र और बाह्य में नग्नमुद्रा और व्यवहार विकल्प अट्ठाईस मूलगुण—यह जैनदर्शन। ऐसे जैनदर्शन को अन्दर मानना स्वभाव के आश्रय से, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आ गया न! त्रिकाल आत्मा को माने हुए का मानना।

इसका अर्थ यह हुआ या नहीं? जिसे त्रिकाल आत्मा है, उसे मानने से ज्ञान-चारित्र कहा है, उसे मानना। तब कब माना कहलाये? उसने जिसने त्रिकाल आत्मा को मानकर अनुभव किया है, ऐसा जो चारित्र और ऐसा जो विकल्प, ऐसा जो... और उसे मानने जाये तो अन्दर दृष्टि हो, तब ही माने वह। कहा था। तब कहा था। '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' (बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा ४७) दोनों मोक्षमार्ग ध्यान में ही प्राप्त होते हैं। यह मोक्षमार्ग ऐसा है जैन परमेश्वर का। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता छठवें में। छठवें की बात है। ऐसी पूर्णता की प्रतीति करने जाये, तब तो वह पर्याय है मोक्षमार्ग तो। उसकी प्रतीति करने जाये तो वह प्रतीति तो द्रव्य के आश्रय से होती है। द्रव्य ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से पर्याय की मोक्षमार्ग की पर्याय की प्रतीति होती है। उसमें आत्मा का ही आधार और आश्रय आया। आगे इसमें भी कहेंगे।

आत्मा नहीं रुचता अर्थात् अनुभव नहीं दृष्टि आत्मा आनन्दस्वरूप, उस बिना की जो क्रियायें सब करे, वे सब क्रियायें धर्म नहीं। निरर्थक है। है आगे। '**अप्पा णिच्छदि**', है न १५वीं गाथा। '**अह पुण अप्पा णिच्छदि**' आत्मा जो इच्छता नहीं। '**धम्माइं करेइ**' निरवश होता है। मूल वस्तु तो यहाँ है। परिपूर्ण स्वभाव ऐसा भगवान आत्मा, उसे जो इच्छता नहीं अर्थात् कि अन्तर का आश्रय करता नहीं। और '**धम्माइं करेइ**' दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि करे '**तह वि ण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो**' वह संसार में भटकनेवाला है। समझ में आया?

यह जैनदर्शन ऐसा मार्ग है, इसकी प्रतीति कब हो? कि वह पर्याय द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है। ऐसी सर्वज्ञ को प्रसिद्ध कैसे हो? वह तो ऐसी... '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' (प्रवचनसार, गाथा ८०)। भगवान के द्रव्य-गुण-पय्राय जानकर उनकी पर्याय की प्रतीति कब हो? कि यह स्व सन्मुख झुके तब ही होती है। समझ में आया? दिगम्बर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कहते हैं। श्वेताम्बर मोक्षमार्ग, वह है ही नहीं। यह पक्ष की बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप है। सूत्र से भ्रष्ट हुए, वस्त्र का टुकड़ा रखा थोड़ा, उसे मुनिपना मानकर और मनमाने लगे, यह मार्ग नहीं है।

जो संजमेसु सहिओ, आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ, ससुरासुरमाणुसे लोए॥११॥

वहाँ भी मुम्बई में बड़ा विवाद है। नव पूजा करे न नवमी? ... दो बार करे। ... यह बाबूभाई की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भक्त करते हैं, इनकार करते हैं। ... कहा था।

मुमुक्षु : ....की बात कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ... की बात कहाँ है? वह तो श्वेताम्बर की बात है। श्वेताम्बर इन भाई का भानेज है न। बाबूभाई नहीं थे? वहाँ उतरे थे न! उनका भानेज है न। ... है न। उसे है। तथापि यहाँ चार दिन रह गया। आहाहा! वह कहता था मेरे पिता भी वहाँ गये हुए। उसमें वह फोटो खींचते थे। झगड़े हुए। फोटो खींचता था उसमें उसका पिता फोटो खींचने का बन्द कराया। वह गया तो उसे मारा। उस फोटो में झगड़े आ जाये न कि यह झगड़ा करता है। इसलिए उस फोटोवाले को बन्द कराने गया, उसका पिता, भानेज का। उसे मारा कहे मेरे पिता को। उसी में और उसी में दो विवाद। एक कहे कि ऐसा नहीं होता। लो, यह मुनि को इस प्रकार से हो पूजा भगवान की?

मुमुक्षु : भगवान को.... पूजा करे.... भगवान समवसरण में हों तब गिन्नी भगवान को...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कुछ निकालता है आधार। कोई कहता था। शास्त्र का आधार निकालता है। ऐसे की ऐसी सब बातें करे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **जो दिगम्बर मुद्रा का धारक मुनि....** जिसकी दशा नग्न होती है। वस्त्र का धागा भी नहीं होता। **इन्द्रिय-मन को वश में करना,....** मन और इन्द्रिय जिन्हें वश वर्तती है। मात्र नग्नपना नहीं, ऐसा कहते हैं। **इन्द्रिय-मन को वश में करना, छह काय के जीवों की दया करना,....** अर्थात् किसी को न मारने का भाव है, ऐसा। **इस प्रकार संयमसहित हो....** मन, इन्द्रिय और छह काय बारह हुए न? **गृहस्थ के सब आरम्भों से....** गृहस्थ के जितने आरम्भ हैं, उनमें से निवर्तित। मकान बनाना, मन्दिर बनाना, पाठशाला बनाना, पैसा, इन सबसे निवृत्त होता है, ऐसा कहते हैं।

बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से विरक्त हो,.... देखो! बाह्य परिग्रहरहित और अभ्यन्तर

मिथ्यात्व आदि परिग्रहरहित होता है वह। आहाहा! बाह्य का परिग्रह छोड़ा, परन्तु मिथ्यात्व का परिग्रह छोड़ा नहीं तो कुछ छोड़ा नहीं। मूल तो मिथ्यात्व, वही वास्तविक परिग्रह है। आहाहा! राग को एकत्वरूप से मानना, वही महापरिग्रह है। चैतन्यस्वभाव आनन्द ज्ञायक, उसे विकल्पवाला मानना, रागवाला मानना, वही मिथ्यात्व का महा परिग्रह है। आहाहा! उस मिथ्यात्व का त्याग नहीं और बाह्य का त्याग करे, उसे त्याग गिनने में नहीं आता।

बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से विरक्त हो,.... यह शब्द रह गया, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह क्या? और उसका त्याग क्या? यह बात रह गयी। यह आयेगा। **तथा बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से विरक्त हो, इनमें नहीं प्रवर्ते....** अर्थात्? वस्त्र आदि रखकर उसमें न प्रवर्ते, मिथ्यात्व और राग-द्वेष में न प्रवर्ते। **आदि शब्द से ब्रह्मचर्य आदि गुणों से युक्त हो....** ब्रह्मचर्य हो, आनन्दस्वरूप भगवान के ब्रह्मचर्य में लीन हो। **वह देव-दानवसहित मनुष्यलोक में वन्दने योग्य है,....** आहाहा! यह मुनिपना और यह मोक्षमार्ग के अधिकारी। वह **देव-दानवसहित मनुष्यलोक में वन्दने योग्य है,....** मनुष्यलोक में है न मुनि? इसलिए भले मनुष्यलोक में हो परन्तु **देव-दानवसहित मनुष्यलोक में वन्दने योग्य है, अन्य वेशी परिग्रह....** दूसरे वेश धरनेवाले, **परिग्रह-आरम्भादि युक्त पाखण्डी (ढोंगी) वन्दने योग्य नहीं है।** मूल तो स्वरूप कहते हैं। ११वीं गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - १२

आगे फिर उनकी प्रवृत्ति का विशेष कहते हैं:—

जे बावीसपरीसह, सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया, कम्मक्खयणिज्जरासाहू॥१२॥

अर्थः—जो साधु मुनि अपनी शक्ति के सैकड़ों से.... एक तो दिगम्बर हो बाहर में और अन्तर में बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित हो और **अपनी शक्ति के सैकड़ों से युक्त....** १२वीं गाथा। है न पाठ में? '**सत्तीसएहिं**' यहाँ तो वीतरागमार्ग में तो अनादि का

यह मार्ग है। जैनी मुनि का मार्ग तो वस्त्ररहित दिगम्बर है। अनादि तीर्थंकरों ने कहा हुआ यह मार्ग है। बात माने, न माने, जगत स्वतन्त्र है। अनादि का वीतरागमार्ग। वस्त्ररहित दिगम्बर मुनि और बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित और सैकड़ों परीषह को सहन करे, वह मुनिमार्ग है। अभी तो सब बिखर गया है। क्या हो परन्तु अब? वाड़ा बाँधकर .... अनादि तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा और उनका मार्ग तो यह है। समझ में आया?

क्षुधा, तृषादिक बाईस परीषहों को सहते हैं.... क्षुधा, तृषा आदि सहन करे आनन्दस्वरूप में रहकर। अतीन्द्रिय आनन्द। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द है, उसमें रहकर वह क्षुधा आदि सहन करे। दिगम्बर मुनि जंगल में हों। मुनि तो जंगल में ही बसते थे। परमात्मा के समय और बाद में ६०० वर्ष तक। पश्चात् यह सब फेरफार हो गया। बारह (वर्ष का) दुष्काल पड़ा, उसमें सब मार्ग बिखर गया। मूल मार्ग तो यह है। आहाहा! और **कर्मों की क्षयरूप निर्जरा करने में प्रवीण हैं....** कर्म का नाश करने के लिये आत्मा के आनन्दस्वरूप में लीन होने को वह प्रवीण है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा, उसमें वह लीन होने को प्रवीण है, ऐसा कहते हैं। देहादि की क्रिया तो जड़ है, शरीर मिट्टी है। अन्दर दया, दान के भाव आवे व्रत के, वह तो विकल्प—राग है। उनसे रहित आत्मा में लीन है, ऐसा कहते हैं। है न? वह **निर्जरा करने में प्रवीण हैं, वे साधु वन्दने योग्य हैं।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग।

भावार्थः—जो बड़ी शक्ति के धारक साधु हैं.... साधु कोई साधारण बात नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर आत्मज्ञान प्रगट हुआ हो, आत्मदर्शन सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान, तदुपरान्त स्वरूप में लीनता और आनन्द उग्र हो, ऐसे मुनि को साधु कहते हैं। आहाहा! वे **परीषहों को सहते हैं,....** परीषह-उपसर्ग को सहते हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! **परीषह आने पर अपने पद से च्युत नहीं होते हैं....** बाहर की प्रतिकूलता आवे तो अपनी शान्ति और आनन्द का जो पद है अन्दर आनन्दस्वरूप है, उससे च्युत नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **उनके कर्मों की निर्जरा होती है, वे वन्दने योग्य हैं।** लो!

(गाथा) १३। **आगे कहते हैं कि जो दिगम्बर मुद्रा सिवाय....** वीतरागमार्ग में तो अनादि का नग्नपना, वह मुद्रा जैनदर्शन की दशा। समझ में आया? वह यह श्वेताम्बर

पन्थ भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में निकला। यह वस्त्र रखकर मुनिपना मनाया। शास्त्र रचे। स्थानकवासी उसमें हुए। अभी पाँच सौ वर्ष में निकले। वह श्वेताम्बर स्थानकवासी। सनातन वीतरागमार्ग दिगम्बर, केवलज्ञानी परमेश्वर ने कहा हुआ यह मार्ग चला आता था। वह दिगम्बर मुद्रा। मुनि की तो दिगम्बर मुद्रा होती है, अनादि-सनातन। जिसे वस्त्र का धागा भी नहीं होता और वस्त्र रखकर मुनिपना माने, मनावे, निगोद में जायेगा—ऐसा है। बात ऐसी है, भाई! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। है न आगे? १८वीं गाथा में है। १८वीं गाथा है न?

जहजायरूवसरिसो, तिलतुसमेत्तं ण गिण्हदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं, तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्॥१८॥

वस्तु का स्वरूप ऐसा है भगवान, बापू! वाडावालों को कठिन पड़े, ऐसा है। यह क्या हो? केवलज्ञानी परमेश्वर त्रिलोकनाथ, वे तो ऐसा कहते हैं। उनके शास्त्र भगवान के हों! **मुनि यथाजातरूप है,....** है न १८वाँ? यथाजात। जैसा माता से जन्मा, ऐसी उसकी दशा होती है। **वैसे ही नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है, वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता;....** तिल के छिलके जितना हाथ से ग्रहण न करे। मुनि उसकी दशा, बापू! मुनि अर्थात्! आहाहा! पंच परमेष्ठी। णमो लोए सव्व साहूणं। जिसे गणधर नमस्कार करे, वह मुनिपना तो जगत को सुनना कठिन पड़ा, जगत को।

कहते हैं, **अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता; और यदि कुछ थोड़ा-बहुत लेवे ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है।** निगोद—एकेन्द्रिय में जायेगा। यह वीतराग के वचन हैं। आहाहा! भारी कठिन, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : सत्यपना पूरा-पूरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा सत्य है। परन्तु ऐसा मार्ग भी सम्प्रदाय बाँधकर बैठे, उन्हें भारी कठिन पड़ता है। वस्तु का भाव ऐसा तो अनादि का परमात्मा का है। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु। वहाँ भी यही मार्ग वर्तता है। मुनि नग्न दिगम्बर

वनवासी। आत्मध्यान में मस्त। और एक वस्त्र का धागा रखकर मुनि जाने, माने, मनावे, उन सबकी गति निगोद है, एकेन्द्रिय है। ऐसा कठोर मार्ग है, बापू! आहाहा! यह आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे वहाँ। यह कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ (में गये थे)। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु। पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़पूर्व का आयुष्य है। सीमन्धर भगवान (का) एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। इतना लम्बा आयुष्य। भगवान विराजते हैं न महाविदेह में? सीमन्धर परमात्मा विहरमान भगवान। उनका करोड़पूर्व का आयुष्य है। पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़पूर्व में एक पूर्व, उसके ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे-ऐसे करोड़पूर्व का भगवान का आयुष्य है। करोड़ों वर्ष से हैं और अभी करोड़ों वर्ष रहेंगे। मुनिसुव्रत भगवान जब यहाँ हुए, तब वहाँ मुनि हुए। और आगामी चौबीसी में तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब मोक्ष पधारेंगे, इतना लम्बा आयुष्य है। उनके पास गये थे कुन्दकुन्दाचार्य। आठ दिन रहे थे। संवत् ४९। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। वहाँ से भगवान के पास से आकर यह सब शास्त्र रचे हैं। आहाहा! भारी कठिन बात! जीव को सत्य मार्ग सुनना मुश्किल पड़ गया। समझना और श्रद्धा तो कहीं रह गयी। कहते हैं, जो कोई साधु नाम धराकर वस्त्र रखे और उसे मुनि कहे। भगवान की वाणी में तो ऐसा आया है कि वह निगोद में जायेगा, एकेन्द्रिय होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! कठिन मार्ग है।

★ ★ ★

गाथा - १३

(गाथा) १२ चलती है न? १३। १३वीं। **आगे कहते हैं कि जो दिगम्बर मुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारण करें, सम्यग्दर्शन-ज्ञान से युक्त हों वे इच्छाकार करने योग्य हैं:—** क्षुल्लक-क्षुल्लक। क्षुल्लक हो वह लंगोटी रखे, वस्त्र रखे, स्त्री का बाद में आयेगा। स्त्री को भी पाँचवाँ गुणस्थान हो सकता है। मुनिपना नहीं हो सकता। यह बाद में लेंगे। यहाँ तो अभी मुनि जो नग्न मुनि दिगम्बर आत्मध्यानी ज्ञानी अन्दर में, वही जैन का मार्ग और मोक्ष का मार्ग। इसके अतिरिक्त वस्त्र रखे, कोई परन्तु सम्यग्दर्शन और

ज्ञान सच्चा हो अन्दर में। मोक्षमार्ग तो वस्त्ररहित वह मुनिमार्ग है। ऐसी उसे श्रद्धा होती है, आत्मज्ञान होवे तो, कहते हैं कि वह इच्छा करनेयोग्य है। 'इच्छता हूँ आत्म वही।' आहाहा! आपने आत्मा का जो अनुभव किया है, ऐसी ही मैं भी इच्छा करता हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। आहाहा!

यह कहते हैं, देखो! **दिगम्बर मुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारण करें, सम्यग्दर्शन-ज्ञान से युक्त हों....** परन्तु आत्मज्ञान हो। वस्त्रसहित हो तो भी क्षुल्लक हो। एक लंगोटी रखे। क्षुल्लक होता है न, दिगम्बर मुनि न हो सके तो वस्त्र का टुकड़ा रखे थोड़ी लंगोटी और एक ओढ़ने का, तो वह भी सम्यग्दृष्टि जो हो, सम्यग्ज्ञान हो तो वह भी इच्छने योग्य है। ऐसा मार्ग! आहाहा! जगत ऐसा का ऐसा संसार में भटकता अनन्त काल से चलता जाता है। सत् का पंथ मिलना बहुत दुर्लभ है।

अवसेसा जे लिंगी, दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया, ते भणिया इच्छणिज्जा य॥१३॥

इसका अर्थ। **दिगम्बर मुद्रा सिवाय....** नग्न न रह सके, मुनिपना न पालन कर सके तो **अवशेष लिंगी वेश संयुक्त....** वस्त्र रखकर समयग्दर्शन-ज्ञान आत्मा का प्रगट करे और मार्ग मोक्ष का तो दिगम्बर है, वही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा माने। समझ में आया? आहाहा! ऐसे वस्त्ररहित न रह सके तो वस्त्र रखे, परन्तु श्रद्धा करे यह कि नग्नमुनिपना, वही मुनिपना है, बाकी मुनिपना है (नहीं)। ऐसी आत्मश्रद्धा और आत्मज्ञान सहित **वेश संयुक्त और सम्यक्त्व सहित दर्शन-ज्ञान संयुक्त हैं....** सम्यग्दर्शन अर्थात्? यह देव-गुरु-शास्त्र मानना, वह नहीं। वह तो साधारण माने, वह तो अभव्य माने। आत्मा अन्दर पुण्य और पाप के रागरहित चिदानन्द मूर्ति प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसे आत्मा की अन्तर में अनुभव में प्रतीति होना उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। अभी तो सम्यग्दर्शन इसे कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव तो ज्ञान की पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव की पर्याय में प्रतीति कही। अनुभव में प्रतीति वापस कही।

मुमुक्षु : अनुभव तो ज्ञान आया। ज्ञान में प्रतीति।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान हुआ, उसमें प्रतीति आयी।

आत्मा आनन्दस्वरूप है, शुद्ध चिद्घन है, परमात्मा स्वरूप ही प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसे स्वभाव के सन्मुख में उसकी दृष्टि और अनुभव होकर प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! कहते हैं कि भले मुनिपना न पालन कर सके, नग्नमुद्रा से न रह सके तो उसे वस्त्रसहित भी ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञानसहित होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? उसकी श्रद्धा में वह वस्त्ररहित दिगम्बर और तीन कषायरहित साधु, वही मार्ग है, ऐसे मार्ग की प्रतीति स्वभाव के आश्रय से करे और सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञान प्रगट करे तो वह वस्त्रवाला हो भले, तो भी वह इच्छा करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग! सुना न हो कभी और यह क्या कहते हैं? यह तो नवीन है। नया नहीं, बापू! इसने सुना नहीं। कहो, सेठ!

वेश संयुक्त और सम्यक्त्व सहित दर्शन-ज्ञान संयुक्त हैं.... 'दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता' ऐसा है न? सहित है परन्तु इसने ऐसा डाला। दर्शनसहित दर्शन-ज्ञान संयुक्त ऐसा। उसका स्पष्टीकरण किया खाली, ऐसा। सम्यक्त्वसहित अर्थात् दर्शन-ज्ञान संयुक्त ऐसा। **तथा वस्त्र से परिगृहीत हैं,....** वस्त्र रखता हो जरा। पेटी आदि क्या कहलाती है वह? लंगोट क्षुल्लक सच्चा हो वह, हों! यह यों ही लंगोट रखकर घूमते हैं बहुत, वह तो अभी समझने जैसे हैं। परन्तु सच्चे अन्दर सम्यक् आत्मा का भान, अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु चैतन्यमूर्ति है, उसका जिसे भान है अन्दर में, उसकी अन्तर रुचि हो गयी है। पुण्य-पाप की रुचि जिसकी हट गयी है। पुण्य और पाप के भाव तो विकार हैं। आहाहा! उसकी रुचि टलकर, स्वभाव के आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द सागर आत्मा है, उसकी रुचि हुई है, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र को मानो, नौ तत्त्व को मानो, वह समकिती है नहीं। वह तो अज्ञानियों ने मनाया है।

वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा अरिहन्त परमेश्वर ने तो भगवान आत्मा वस्तुस्वरूप से आनन्द है। पूर्ण ज्ञान, दर्शन से भरपूर पदार्थ है। जिसमें पुण्य और पाप के भाव का विकार है नहीं, ऐसी चीज़ की अन्तर्मुख होकर अनुभव में प्रतीति करना, उसका नाम

भगवान दर्शन और ज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे दर्शन-ज्ञानसहित है। वस्त्र। कोपीन या लंगोटी रखते हों। **वे इच्छाकार करने योग्य हैं।** इच्छाकार—इच्छता हूँ। दूसरे उसे इच्छता हूँ, ऐसा कहे। ऐसा वीतराग का मार्ग अनादि से चला आता है। फिर यह गड़बड़ हुई, मार्ग दूसरा चला। समझ में आया?

भावार्थ:—जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान संयुक्त हैं.... आत्मा के दर्शन और आत्मा का ज्ञान। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन। उसका अन्तर में ज्ञान, भान होकर प्रतीति होना, सम्यग्दर्शन और उसका ज्ञान, वह ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान हो, न हो विशेष, उसका कुछ नहीं। आत्मवस्तु आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा, उसकी प्रतीति, भान और उसका ज्ञान। आहाहा! जिसे वह आत्मदर्शन और आत्मज्ञान अनन्त काल में (हुआ नहीं), मुनि हुआ अनन्त बार नग्नमुनि दिगम्बर द्रव्यलिंगी, परन्तु आत्मदर्शन और ज्ञान बिना वह सब व्यर्थ गया। समझ में आया? मुद्दे की रकम तो यह है। चैतन्य प्रभु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य सत्ता के सन्मुख होकर उसका आश्रय लेकर जो दर्शन हो, उसे सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली भूमिका कहा जाता है। तत्पश्चात् धर्म का उसका ज्ञान और चारित्र। सम्यग्दर्शन न हो और चारित्र हो—ऐसा तीन काल में नहीं होता। यह सब व्रत लेकर बैठे इसलिए हमको चारित्र है। बिल्कुल झूठ बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुस्तक लिखी हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक में क्या है जड़ लिखे उसमें? बारह व्रत और तप को नहीं आदरते? पुस्तक आदर की है इसने जड़। भगवान अन्दर यह विकल्प—रागरहित चैतन्यमूर्ति वस्तु है, उसकी श्रद्धा की तो खबर नहीं। क्या आया उसे? पुस्तक आदरी, राग का आदर किया। आहाहा! रागरहित भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध स्वरूप है। आहाहा! कहते हैं कि उसका जिसे ज्ञान और दर्शन है **और उत्कृष्ट श्रावक का वेश धारण करते हैं....** वस्त्र है न लंगोटी आदि, वह श्रावक है। लंगोटी का, वस्त्र का टुकड़ा हो, वहाँ तक मुनि नहीं है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग अनादि का चला आता है। यह बीच में गड़बड़ हुई, अब उसे बेचारे को खबर नहीं होती। ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : .... तो सुना भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने।

उत्कृष्ट श्रावक का वेश धारण करते हैं, एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखते हैं.... एक वस्त्र रखते हैं। थोड़ा ओढ़ने का और कोपीन आदि दो। आहाहा! **इच्छाकार करने योग्य हैं....** उसे इच्छता हूँ, इच्छामि—ऐसा करने लायक है। **इच्छामि इस प्रकार कहते हैं। इसका अर्थ है कि मैं आपको इच्छुं हूँ....** देखा! ओहो! आपने जो आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, अनुभव, ऐसे ही आत्मा को मैं इच्छता हूँ, ऐसा कहते हैं। पुण्य और पाप के भाव को इच्छता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह सब पुण्य का भाव है, राग भाव है। उस रागरहित भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का जो अनुभव हुआ, उसे दूसरा कहता है कि मैं तुम्हारा आत्मा है, ऐसे आत्मा को इच्छता हूँ। आहाहा! मैं तो पुण्य को भी इच्छता नहीं, ऐसा समकिती कहता है। पुण्य आवे सही, हो। पुण्य तो राग है। पुण्य तो बन्धन का कारण है। सोने की बेड़ी है। वह मेरी इच्छा उसमें नहीं है। आहाहा! वह तो इच्छा करनेवाला ऐसा कहते है। मुझे पुण्य की इच्छा का निषेध है। आहाहा! प्रभु! आपका आत्मा भले दिगम्बर मुनि न हुआ हो, परन्तु जिसने अन्तर आत्मा का दर्शन और ज्ञान हुआ है, उसे कहते हैं कि प्रभु! मैं आपको इच्छता हूँ। दूसरा श्रावक उसे चरण-वन्दन करते हुए इच्छता हूँ, ऐसा कहता है। आहाहा!

मेरा आत्मा अन्दर... यह तो देह तो मिट्टी-जड़ है। अन्दर में पाप के भाव होते हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह पाप है। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति के भाव होते हैं, वह पुण्य है। दोनों बन्धन का कारण है। उनसे रहित जो आत्मा है, ऐसा जिसने अनुभव किया उसे मैं इच्छता हूँ, ऐसे वन्दन करनेवाला ऐसा कहता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इसलिए इच्छामि इस प्रकार कहते हैं। इसका अर्थ है कि मैं आपको इच्छुं हूँ, चाहता हूँ ऐसा इच्छामि शब्द का अर्थ है। लो! आहाहा! **इस प्रकार से इच्छाकार करना जिनसूत्र में कहा है।** भगवान की वाणी में यह आया जैन शास्त्र में। मुनि जो दिगम्बर सन्त सच्चे अन्दर हों, आनन्दसहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित, वे वन्दन

करनेयोग्य हैं। परन्तु ऐसे जो हों श्रावक, वे इच्छा करनेयोग्य हैं। ऐसा वीतराग के शास्त्र में परमात्मा ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने तो यह कहा है। आहाहा! समझ में आया?

श्वेताम्बर ने शास्त्र तो बाद में घर के बनाये हैं। दो हजार वर्ष पहले बारह (वर्ष का) दुष्काल पड़ा। बड़ा बारह (वर्ष का) दुष्काल ऊपरा-ऊपरी (लगातार)। मुनि नग्नरूप से बहुत थोड़े रह गये। और कितने ही वस्त्र का टुकड़ा रखने लगे। उसमें से यह श्वेताम्बर पन्थ निकला दिगम्बर में से। आहाहा! कहते हैं, उन्होंने जो शास्त्र बनाये, वे तो उनके स्वयं के बनाये हुए हैं। भगवान के कहे हुए नहीं। भारी कठिन बातें, भाई! **इच्छाकार करना जिनसूत्र में कहा है।** भगवान की वाणी बारह अंग में से जो ... शास्त्र रचे थे, उसमें तो भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा! उत्कृष्ट श्रावक हो सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, तो उसे इच्छा करना, ऐसा जिनसूत्र में कहा है। इच्छामि। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १४

आगे इच्छाकार योग्य श्रावक का स्वरूप कहते हैं:—१४ (गाथा)।

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हुं छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होदि॥१४॥

अर्थः—जो पुरुष जिनसूत्र में तिष्ठता हुआ इच्छाकार शब्द के महान प्रधान अर्थ को जानता है.... लो! भगवान की वाणी है, उसे जिसने जाना है। आहाहा! वाणी में वीतरागपना वर्णन किया था प्रभु ने। उसे जिसने जाना है, उसमें जो स्थित है, वह **इच्छाकार शब्द के महान प्रधान अर्थ को जानता है....** इच्छाकार का महान अर्थ है, उसे वह जानता है, ऐसा कहते हैं। इच्छता हूँ इतने शब्द में वह महान भाव क्या है, वह ज्ञानी जानता है। आहाहा! **जिनसूत्र में तिष्ठता हुआ....** ऐसा कहा है न? **'सुत्तठिओ'** सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सूत्र कहे, उसमें जिसका ज्ञान बराबर है और उसमें जो स्थित है। आहाहा! उस इच्छाकार के महान प्रधान अर्थ को वह जानता है।

और स्थान जो श्रावक के भेदरूप प्रतिमाओं में तिष्ठता हुआ.... श्रावक की

प्रतिमायें हैं न, ११ प्रतिमाएँ। उसमें १०-११। **सम्यक्त्वसहित वर्तता है,....** आहाहा! जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ है। देह, वाणी, मन से भिन्न... वह तो अजीवतत्त्व जड़ है, कर्म जड़ अजीव है। उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हों, वह पुण्य है। उससे भिन्न भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! ऐसे आत्मा की जिसे पहिचान हुई और प्रतीति हुई है, वह समकितसहित है, ऐसा कहते हैं। **सम्यक्त्वसहित वर्तता है,....** आहाहा! शुद्ध चैतन्य पूर्ण आनन्द ज्ञायक परमात्मस्वरूप प्रभु विराजता है आत्मा अन्दर। उसकी जिसे अन्तर में प्रतीति और ज्ञान हुआ है, उस सहित जो वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**ठाणे ट्ठियसम्मत्तं**'

आरम्भ आदि कर्मों को छोड़ता है.... वह आरम्भ अर्थात् हिंसा आदि छोड़ देता है। हिंसा नहीं करता छह काय के जीव की। श्रावक है न? **वह परलोक में सुख करनेवाला होता है।** वह प्राणी परलोक में सुखी होगा। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित। है न? **आरम्भ आदि कर्मों को छोड़ता है, वह परलोक में सुख प्रदान करनेवाला होता है।**

भावार्थः—उत्कृष्ट श्रावक को इच्छाकार करते हैं सो.... ऐसा। **जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है....** वह इच्छा करनेवाला। वह ऐसा कहते हैं। **सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित आरम्भादिक छोड़कर उत्कृष्ट श्रावक होता है....** आहाहा! वह स्वयं भी इच्छा करता है कि वह स्वयं भी जब ऐसा होता है। वह तो मोक्ष में जाता है (और यह) स्वर्ग में। परन्तु इस इच्छा का करनेवाला जो है। **उत्कृष्ट श्रावक को इच्छाकार करते हैं सो जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है और सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित आरम्भादिक छोड़कर उत्कृष्ट श्रावक होता है....** वह जिसकी इच्छा करे, वह और इच्छाकार होता है। **परलोक में स्वर्ग का सुख पाता है।** लो! क्योंकि मुनिपने बिना मोक्ष जाता नहीं और यह मुनिपना है नहीं। सम्यग्दर्शनसहित है, परन्तु अभी पुण्य का शुभभाव रहा है, इससे पुण्य से स्वर्ग में जाता है। और जितना अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त किया है, उतनी उसे शुद्धता की निर्जरा है। आहाहा! **छोड़कर उत्कृष्ट श्रावक होता है, वह परलोक में स्वर्ग का सुख पाता है।** लो! अब उस इच्छा का अर्थ करते हैं अधिक।

★ ★ ★

गाथा - १५

आगे कहते हैं कि—जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को नहीं जानता है और अन्य धर्म का आचरण करता है, वह सिद्धि को नहीं पाता है:—

अह पुण अप्पा णिच्छदि, धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं।
तह विण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो ॥१५॥

अर्थः—अथ पुनः शब्द का ऐसा अर्थ है कि—पहली गाथा में कहा था कि जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है, वह आचरण करके स्वर्गसुख पाता है। आचरण करनेवाला। **वही अब फिर कहते हैं कि इच्छाकार प्रधान अर्थ आत्मा को चाहना है,....** आहाहा! शरीर की रुचि नहीं, पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति हो, उसकी भी रुचि नहीं। आहाहा! आत्मा की जो रुचि है। **आत्मा को चाहना है,....** भगवान पूर्ण आनन्द ज्ञाता-दृष्टा। ज्ञान और दर्शन से भरपूर भगवान आत्मा, वर्तमान में, हों! आहाहा! ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर राग और पुण्य के परिणाम से पृथक् होकर आत्मा की ऐसी दृष्टि जिसे हुई है। समझ में आया?

वह अपने स्वरूप में रुचि करता है.... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह मन-वाणी-देह से भिन्न और पुण्य-पाप के भाव से भिन्न, उसकी जो रुचि करता है। आहाहा! **वह इसको जो इष्ट नहीं करता है....** आहाहा! चाहे जितनी क्रियायें सब करे, व्रत और नियम और तप, परन्तु आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी उसे रुचि नहीं। सब व्यर्थ है, भटकने का है। आहाहा! समझ में आया? पाठ में है न '**अह पुण अप्पा णिच्छदि**' दूसरा सब परन्तु आत्मा की रुचि, दृष्टि अनुभव नहीं। उसे रुचता नहीं, ख्याल में आता नहीं अनादि से ऐसा। ऐसा कहते हैं। पर्याय में—वर्तमान अवस्था में खड़ा है और उसे पुण्य और पाप के परिणाम हैं, वे उसे रुचे हैं। बहुत तो पर्याय एक समय की अवस्था है, इतनी रुचि है उसे, ऐसा कहते हैं। परन्तु पर्याय के—अवस्था के पीछे पूरा प्रभु आत्मा भिन्न वस्तु है। आहाहा! उसकी जिसे रुचि नहीं। आहाहा! वह उसे इष्ट नहीं करता। इष्ट करने लायक तो वह चीज़ है, ऐसा कहते हैं।

पुण्य के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव हो, परन्तु इष्ट करनेयोग्य

नहीं। ऐसा स्वरूप गजब। अब निवृत्ति कहाँ मिले? एक तो कमाने में रुके बाईस घण्टे, तेईस घण्टे। और एकाध घण्टा हो, वह ऐसा आवे तो समझे कहाँ? और भटके अनादि का ऐसा का ऐसा भटकता है बेचारा। कहते हैं कि जिसे ऐसा आत्मा रुचता नहीं। आहाहा! यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की रुचि को भी छोड़ दिया है। भगवान आत्मा ज्ञान का समुद्र प्रभु, ज्ञान का सागर और अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरा हुआ प्रभु आत्मा। अरेरे! उसे यह बात रुचि नहीं। उसे रुचता नहीं, ऐसा कहते हैं।

अपने स्वरूप में रुचि करना है, वह इसको जो इष्ट नहीं करता है.... रुचि (करना) उसे इष्ट नहीं करता। ऐसी दो वस्तुएँ डालीं। **अन्य धर्म के समस्त आचरण करता है....** दूसरा व्रत पाले और अपवास करे, व्यवहार क्रियायें सब करे। एक बिना के शून्य हैं। आहाहा! वर छोड़कर बारात। बारात नहीं कहलाती। मनुष्यों का झुण्ड कहलाता है। आत्मा अन्दर वस्तु पूर्ण शुद्ध चैतन्यद्रव्य। जिसे द्रव्य दृष्टि हुई नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसकी रुचि में द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा का अपना अनादि, उसकी रुचि करता है और दूसरा इष्ट नहीं करता।

वह इसको जो इष्ट नहीं करता है.... वह इसको जो इष्ट नहीं करता है.... अथवा रुचि नहीं करता और उसे इष्ट नहीं करता, ऐसा। आहाहा! यह वस्तु है। एक ओर एक समय की पर्याय राग, एक ओर पूरा आत्मा। उसकी रुचि करता है और **वह इसको जो इष्ट नहीं करता है....** और उसकी रुचि नहीं करता। **अन्य धर्म के समस्त आचरण करता है....** वह आत्मा के आनन्द के भान बिना सम्यग्दर्शन बिना, सम्यग्ज्ञान बिना आत्मा के भान के ज्ञान बिना जितनी क्रियायें सब करे। '**धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं**' ऐसा है न? **तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्ष को नहीं पाता है....** मोक्ष नहीं जाये, मुक्ति नहीं होती। स्वर्ग-बर्ग में धूल में जाये। यह पाँच-पचास लाख पैसेवाला हो और सेठिया करोड़, दो करोड़ धूल का। ऐसा हो और या बड़ा देव हो, धूल। वापस मरकर नरक में जायेगा। समझ में आया?

पाठ है न? '**अह पुण अप्पा णिच्छदि**' इष्ट नहीं करता है। ऐसा अर्थ निकाला न इसमें से? उसे इष्ट नहीं करता। और रागादि के परिणाम को करे, पुण्य, दया, दान, व्रत,

तप के करे, वे सब भटक मरनेवाले हैं, कहते हैं। आहाहा! चार गति में ऐसे भाव तो अनन्त बार किये हैं। नौवें ग्रैवेयक में गया अनन्त बार। तब ऐसे व्रत, दया और तपस्यायें महीने-महीने के अपवास अनन्त बार किये हैं। उससे शुभ स्वर्ग मिले, धर्म नहीं होता।

कहते हैं, इस आत्मा के प्रेम और अन्तर आनन्द के अनुभव बिना जिसे आत्मा पोषाण में आया नहीं और यह पुण्य की क्रिया जिसे पोसाती है, वे सब चार गति में भटकनेवाले प्राणी हैं। कहो, समझ में आया? अन्य धर्म अर्थात् पुण्यादि क्रिया। महाव्रत है, वह पुण्य है। विकल्प उठता है न, वह तो यह दया पालूं, पर को दुःख न दूँ, वह तो राग है, शुभभाव है। परन्तु रागरहित आत्मा का अन्दर अनुभव नहीं। आहाहा! और आत्मा की जिसे रुचि हुई नहीं अथवा आत्मा को इष्ट, प्रेम इष्ट करता नहीं। आहाहा! बहुत ऊँची बात परन्तु बड़ी बात!

प्रभु आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञान का स्वभाव... नौ तत्त्व में दया, दान, व्रत के परिणाम, वे तो पुण्यतत्त्व हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोग, वह पापतत्त्व है। वह पुण्य और पाप दोनों होकर आस्रवतत्त्व है। उनसे रहित भगवान आत्मा है, वह आनन्द-तत्त्व है। आहाहा! ऐसे आत्मा को जो इष्ट नहीं करता और उसे दूसरे में प्रेम—इष्टपना वर्तता है, तो वह चाहे जो धर्म की क्रियायें व्रत, तप और अपवास आदि करे, वह मुक्ति को नहीं पाता, उसे मोक्ष नहीं होता। धूलादि मिले कदाचित्। यह पैसे को धूल कहा जाता है न? यह पाँच-पचास लाख हों, वह सब धूल है, मिट्टी है। और स्वर्ग में जाये तो बड़े सफेद बँगला-मकान वह धूल का है। आहाहा! उसे आत्मा नहीं मिलता, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

संसार में ही रहनेवाला कहा है। है? ऐसे प्राणी आत्मा के आनन्द की रुचि और अनुभव बिना। आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु आत्मा है। आहाहा! सुना भी न हो आत्मा ऐसा। आत्मा कौन? कि दया पाले और व्रत करे, वह आत्मा। कहते हैं कि यह दया का भाव राग है, व्रत का भाव राग है। इससे रहित उसकी जिसे अन्तर में रुचि नहीं, ऐसे आत्मा के आनन्द का जिसे प्रेम नहीं, आत्मा के स्वभाव की जिसे इष्टता हुई नहीं,

उसकी पर में इष्टता और रुचि वर्तती है, वह आत्मा के आनन्द की रुचि बिना धर्म के चाहे जितने आचरण करे, मुक्ति नहीं होगी। संसार में रहेगा, भटकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : रुचि किस प्रकार हो प्रभु ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि करे तो हो। राग की रुचि है, उसे छोड़कर आत्मा की करे तो हो।

मुमुक्षु : आत्मा दिखता नहीं, प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी तो बात चलती है। दिखता नहीं, वह कौन है ? दिखता नहीं—ऐसा निर्णय किसने किया ? वह। आहाहा! मैं दिखता नहीं, ऐसा निर्णय किसमें हुआ ? वह आत्मा में। बापू! आत्मा भी, बापू! इसने अनन्त काल में... आत्मा छोड़कर सब बाहर की बातें। आहाहा! **संसार में रहनेवाला ही है।**

भावार्थ:—इच्छाकार का प्रधान अर्थ आपको चाहना है,.... लो! ओहोहो! सम्यग्दृष्टि दूसरे सम्यग्दृष्टि को इच्छता है तो उसे भी आत्मा की ही इच्छा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इच्छाकार का प्रधान अर्थ आपको चाहना है,....** ओहोहो! प्रभु! आप तो आत्मा हो। शुद्ध आनन्द, वह आत्मा। वह कहीं अन्दर राग है, वह आत्मा नहीं। देह कहीं आत्मा नहीं। ऐसे आत्मा को मैं इच्छता हूँ। इच्छनेवाला भी आत्मा के स्वभाव की ही रुचि करनेवाला है। समझ में आया ? आहाहा!

सो जिसके अपने स्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व नहीं हैं,.... आत्मरुचि भला, आता है न छहढाला में, नहीं ? 'परद्रव्यन ते भिन्न (आपमें रुचि) आत्मरुचि। उस रुचि का अर्थ भी रुचि की व्याख्या नहीं। वह पुण्य-पाप के विकल्प की स्थिति, स्वभाव छोड़कर अन्तर स्वभाव की रुचि, उसका अर्थ पूरा आत्मा रुचि में आ गया। वह भला है। ऐसी रुचि बिना उसे समकित नहीं कहते हैं। जिसे आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का प्रेम नहीं, रुचि नहीं, पोषाण नहीं, और जिसे पुण्य की क्रिया का पोषाण और रुचि है, वह **उसको सब मुनि श्रावक की आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्ष का कारण नहीं है।** ऐसा मुनि हो या ऐसा कोई श्रावक नाम धरावे, परन्तु वह प्रवृत्ति उसे धर्म का कारण है नहीं। आहाहा! गजब बात की, लो!

उसको सब मुनि श्रावक की आचरणरूप प्रवृत्ति.... आचरणरूप प्रवृत्ति सब। '**सेसाइं**' है न? '**धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं**' मुनि और श्रावक नाम धराकर आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप की तो रुचि नहीं। वह रुचा नहीं, सुहाया नहीं, इष्ट किया नहीं। उसे राग और पुण्य की क्रियाओं में इष्टपना-रुचिपना पड़ा है। वह मिथ्यादृष्टि जीव आत्मज्ञान और दर्शन के प्रेम बिना चाहे जितने आचरण करे, मोक्ष का कारण नहीं। अनादि से भटके, वह चार गति का कारण है। फिर भले स्वर्ग में जाये तो भी वहाँ धूल है, सेठाई में जाये वहाँ भी धूल है। वहाँ सर्वत्र अग्नि के अंगारे हैं। सेठ! स्वर्ग में भी अंगारे हैं अनन्त कषाय के। राग के अंगारों से सिंकते हैं स्वर्ग के देव भी। आहाहा! यहाँ पैसेवाला सेठिया करोड़ोंपति और अरबोंपति राग के अंगारों से सिंकता है बेचारा।

मुमुक्षु : गरीब को धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब को अर्थात् रागरहित जीव को धर्म होता है। आत्मा गरीब ही कहाँ है? आत्मा तो तवंगर, बादशाह है। आहाहा! बाहर की गरीबाई और बाहर की सधनता, वह कहीं वस्तु है? वह तो बाहर की चीज़ है और निर्धनता, वह कोई दोष है? और सधनता, वह कोई गुण है? वह तो बाहर की चीज़ जड़ है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है। अपने आत्मा को रुचना नहीं, इष्ट नहीं करना, वह दोष है। और आत्मा को इष्ट और रुचि करना, इसका नाम गुण है, बाकी सब थोथा है। यह १५वीं में आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ६, गुरुवार, दिनांक-१५-११-१९७३
गाथा- १६, १७, १८, प्रवचन-४२

गाथा - १६

अष्टपाहुड़। सूत्रपाहुड़ की १६वीं गाथा।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण॥१६॥

अर्थः—पहिले कहा कि जो आत्मा को इष्ट नहीं करता है, उसके सिद्धि नहीं है,.... १५वीं में कहा न कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन आनन्द, उसकी जिसे अन्तर में रुचि नहीं अर्थात् प्रतीति नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। वे जीव चाहे जितनी क्रियायें करे श्रावक की और मुनि की। वे सब निरर्थक हैं। यह १५वीं में आया न '**णिवरसेसाइं**' यह आ गया। इस कारण से कहा था न! आत्मा शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन पूर्ण आनन्द शुद्ध की जिसे अन्तर्दृष्टि और रुचि नहीं, उसके सब आचरण व्यवहार के निरर्थक हैं। उसमें कोई लाभ है नहीं। इस कारण से ऐसा शब्द है न, '**णिवरसेसाइं**' यहाँ कहा था न १५वीं में।

आत्मा की अन्तर्दृष्टि और रुचि बिना जितने पंच महाव्रतादि क्रियायें श्रावक की बारह व्रत की कियायें, पंच परमेष्ठी की श्रद्धा आदि भाव, पंच परमेष्ठी का विनय, बहुमान आदि आत्मा की रुचि बिना वह सब निरर्थक, निरविशेष निरर्थक है। आहाहा! ऐसा है। **पहिले कहा कि जो आत्मा को इष्ट नहीं करता है,....** है न? वस्तु आत्मा पूर्ण शुद्ध की जो इष्ट, प्रिय, रुचि, दृष्टि, आश्रय करता नहीं। **उसके सिद्धि नहीं है,....** सम्यग्दर्शन के ऊपर जोर है। क्योंकि सूत्र में... सूत्रपाहुड़ चलता है न? सम्यग्दर्शन, वह कर्णधार, मोक्ष के मार्ग का वह कर्णधार है। खेवटिया है। संसार को पार करने के लिये वह जहाज में अधिक मुख्य है। ऐसे तिरने के उपाय में सम्यग्दर्शन मुख्य है। वह सम्यग्दर्शन आत्मा की शुद्ध पूर्ण अभेद अखण्ड एकरूप सहजात्म पूर्णस्वरूप, स्वाभाविक उसकी रुचि अर्थात् उसका पोषाण, उसमें अन्तर सन्मुख होकर उसे रुचना, वह जिसे नहीं तो उसे सब....

इस कारण से कहा न? इस कारण से अर्थात्? पूर्व में जितनी क्रियायें व्यवहार की परीषह सहन की, इत्यादि। पंच महाव्रत की जिसने की और कही, वह सब आत्मा की दृष्टि बिना निरवशेष बाकी रखे बिना सब निरर्थक है। समझ में आया? यह सूत्रपाहुड़ है। भगवान के आगम में इसकी प्रधानता, मुख्यता कही है। पहली श्रेणी में पूर्ण शुद्ध की प्रतीति और रुचि नहीं। जो धर्म की शुरुआत है उसके बिना, उसकी इच्छा नहीं, रुचि नहीं, आत्मा का स्वभाव जो है, ऐसा वह इच्छता नहीं और दूसरी इच्छाओं के कार्य करता है, वह सब निरर्थक है।

इस ही कारण से हे भव्य जीवों! तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो,.... पहले में पहला प्रयत्न तो यह करो, ऐसा कहते हैं। शुद्ध आत्मा पूर्ण आनन्द की, प्रथम में प्रथम करनेयोग्य हो तो यह प्रथम है। उसकी श्रद्धा करो, **उसका श्रद्धान करो,....** श्रद्धान आया। **मन-वचन-काय से स्वरूप में रुचि करो,....** यह वजन है। मन, वचन और काया तीनों से अन्दर हटकर स्वरूप में तीनों प्रकार के भावों से रुचि करो।

मुमुक्षु : .... हटकर ऐसा शब्द नहीं इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अधिक हुआ न भिन्न? मन, वचन, काया से श्रद्धा का अर्थ? मन-वचन-काया से श्रद्धा करना है? यहाँ तो मन, वचन और काया ये '**तिविहेण**' है न? इसका अर्थ कि मन, वचन और काया से अलग होकर—तीनों से अलग होकर आत्मा की श्रद्धा करो। समझ में आया? काया से श्रद्धा करना, वचन से श्रद्धा करना, इसका अर्थ क्या? इसका अर्थ कि तीनों एक ओर के झुकाववाले भाव, उन्हें इस ओर कर डाल। आहाहा! मन से आत्मा की श्रद्धा करना, वाणी से श्रद्धा करना, काया से श्रद्धा करना अर्थात्? परन्तु उसका जोर दिया। नौ-नौ कोटि से और मन, वचन, काया से पर से हटकर स्वभाव में रुचि कर। ऐसा कहते हैं। मन, वचन, काया, कृत, कारित, अनुमोदन सब बाह्य के प्रसंग छोड़कर, यह प्रसंग सब अन्तर में झुका। आहाहा! कहो, पहला यह कर्तव्य। शास्त्र आगम में यह है, ऐसा कहते हैं। सूत्र है न यह सूत्र? पाहुड़। अर्थात् उसमें आगम में यह पहली बात करते हैं। सब व्रत और नियम और परीषह सहन करना, उपसर्ग सहन करना, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करना, विनय करना, शास्त्र

श्रवण और मनन करना इसका, इन सबकी पहले यह रुचि यदि न हो तो वह सब संसार खाते हैं। जिसे मोक्ष करना तो मोक्ष का कारण तो आत्मा है। मोक्ष जिसे आत्मा की पूर्णदशा शुद्ध पूर्णदशा प्राप्त करनी है, उसका कारण तो आत्मा है।

मुमुक्षु : .... है प्रभु कि यह मुझे करनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख होकर स्वभाव को पकड़कर श्रद्धा करना, ऐसा कहते हैं। बात तो यह है।

मुमुक्षु : .... रुचि

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रुचि का अर्थ क्या? रुचि का अर्थ पूरी चीज़ लक्ष्य में आयी, उसका पोषाण हुआ। अन्दर में बात पोषायी। आहाहा! दूसरी कोई बात नौ-नौ कोटि से पोसाती नहीं जहाँ। आहाहा! ... का विकल्प, व्यवहार वह सब... आहाहा! गाथा ८७ में है। यही गाथा है। यही शब्द और यही गाथा। भावपाहुड़ में भाई ने ले ली। ...है। यह शब्दशः शब्द है। भावपाहुड़ की ८७ गाथा। वहाँ भी भाव है सही न? इसलिए भाव में भाव पहला सम्यक् चैतन्यमूर्ति पूर्ण शुद्ध अभेद एकरूप सहजात्मस्वरूप स्वाभाविक स्वरूप, ऐसा। स्वाभाविक स्वरूप पूर्ण। उसकी रुचि, उसका अर्थ? रुचि का अर्थ, उसकी दृष्टि। दृष्टि का अर्थ? कि पूर्ण स्वरूप है, उसे ज्ञान की पर्याय को वहाँ झुकाकर प्रतीति कर, यह पहला कर्तव्य है।

मुमुक्षु : उसमें ज्ञान कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान ही आया न! ज्ञान बिना जाने कौन? ज्ञान बिना जाने कौन और जाने बिना प्रतीति किसकी?

मुमुक्षु : ....नौ पूर्व का अनन्त बार किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। उस ज्ञान की बात अभी नहीं है। वह ज्ञान ही नहीं। यहाँ तो ज्ञान की वर्तमान पर्याय ज्ञान को त्रिकाल को पकड़े, उस ज्ञान की बात है। वह ज्ञान तो कहाँ है यहाँ अभी? यह तो १७-१८ गाथा में नहीं आया? आ गया है। ज्ञान से जाने, पूरा तत्त्व वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, तब उसकी रुचि और प्रतीति होती है। समझ में आया? (समयसार) १७-१८ (गाथा) में आ गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु श्रद्धा तो कुछ जानती नहीं। श्रद्धा कहीं जानती है? श्रद्धा, श्रद्धा को नहीं जानती। श्रद्धा पूरा यह ज्ञेय है, उसे जानती कहाँ है? वह तो प्रतीति। ज्ञेय ज्ञान ने जाना, ऐसी श्रद्धा प्रतीति करती है। प्रतीति तो निर्विकल्प है और उसका विषय निर्विकल्प है। परन्तु स्वयं वस्तु श्रद्धा, समकित स्वयं निर्विकल्प। निर्विकल्प अर्थात्? स्व-पर को जानना, यह उसका स्वरूप नहीं। स्व और पर को जानना, उसका स्वरूप नहीं, ऐसा। विकल्प-राग यहाँ है नहीं। आहाहा! राग बिना की आत्मा की श्रद्धा, वह भी निर्विकल्प है। राग बिना, इसलिए निर्विकल्प —ऐसा नहीं। स्वयं पर को और स्व को जानती (नहीं), इसलिए निर्विकल्प है, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु पूर्ण गुण का स्वभाव, ऐसे पूर्ण गुण अनन्त, उनका एकरूप वह पूर्ण स्वरूप, उसकी रुचि कर। तो रुचि कब हो? उसे जाने बिना रुचि किसकी? उसके ख्याल में आये बिना यह पोसाता है, यह रुचि, दृष्टि किसकी? वह यहाँ कहा है, एक बार सोगानी में। ऐसा कि भाई! यह तो ज्ञान पर के ज्ञान की बात है। अपना ज्ञान तो प्रथम मुख्य ही वह है। परलक्ष्यी ज्ञान की बात उसमें है। अन्दर दृष्टि पहली या ज्ञान पहला? दृष्टि पहली। परन्तु यह जानने में आता है पहला। इसलिए ज्ञान भी पहला। ज्ञान तो अनन्त बार किया है। ऐसा भी लिखा है। वह दूसरी बात है। वह बात यहाँ नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न। वह भी दूसरा ज्ञान। आत्मा का नहीं। पर का ज्ञान, उसमें उसका अर्थ यह। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका .... समझ में आये ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पकड़ना चाहिए न (कि) इसका आशय क्या है? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....ज्ञान तो अनन्त बार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान नहीं। एक भी बार नहीं किया। पर का ज्ञान ग्यारह अंग, नौ पूर्व, वह ज्ञान ही नहीं न! वस्तु वह विकल्प अर्थात्, ज्ञान अर्थात्? स्व-पर को

जाने, ऐसा ज्ञान, विकल्पवाला ज्ञान है। वह ज्ञान स्व को—त्रिकाल को जाने और अपने को जानता है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पन्न होती हुई वह अपने को जानती है और उसका विषय है, उसे जानती है। आहाहा! यह आता है न प्रवचनसार में आता है कि उत्पन्न होता ज्ञान, उत्पन्न होते को कैसे जाने? नट का दृष्टान्त है न! ऐसा कि खम्भे के ऊपर नाचता है स्वयं अपने पैर ऊपर यहाँ रखकर? ऐसा। उसमें ऐसा कि फिर अपने को उत्पन्न हो और अपने को जाने? कहते हैं, हाँ। ज्ञान उत्पन्न होता हुआ, होते काल में, उत्पन्न होते काल में उसके विषय को जानता है और अपने को भी जानता है। स्व-परप्रकाशक है। आहाहा! यह वस्तु ऐसी है।

आचार्य ने ऐसी यहाँ दो गाथायें रखी हैं। यहाँ सूत्रपाहुड़ में, वहाँ भावपाहुड़ में। शब्दश: शब्द अर्थ किया। आहाहा! मूल बात है। वह भी क्या शब्द है, देखो! '**पयत्तेण**' शब्द है। '**जाणिज्जह पयत्तेण**' ऐसा शब्द है न? प्रयत्न से जान, ऐसा कहते हैं। ऐसे स्वसन्मुख के झुकाव में...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। वस्तु ऐसी है, ऐसा '**जाणिज्जह पयत्तेण**' ऐसा है, देखो! बहुत शब्द! आहाहा! '**जेण य लहेह मोक्खं**' '**एएण कारणेण**' इस कारण से। अर्थात् कि समयग्दर्शन बिना अथवा आत्मा के त्रिकाली स्वभाव की रुचि बिना जो कुछ श्रावक और मुनि की आचरण की क्रिया चरणानुयोग में से करता है, उसमें उसे कुछ भव घटे, इसका लाभ नहीं। आहाहा! भव के घटने का लाभ नहीं अर्थात् मोक्ष होने का लाभ नहीं। क्योंकि मोक्ष का कारण वह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो अनित्य है, ऐसा आपने कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनित्य ही है न! अनित्यत्वात् देखो न आया। अनित्यत्वात् ऐसा कहा वहाँ। जिसका फल अनित्य है। अब धूल संयोग मिले, वह तो अनित्य फल है, ऐसा कहते हैं। वह फल तो आत्मा में शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, रमणता हो, वह फल है। व्रत का फल तो अनिष्ट है। यह देह मिले या पैसा मिले या धूल मिले। अनिष्ट फल के कारण से व्रत की क्रिया अनिष्ट है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे कि... आवे नहीं न! मोक्ष का मार्ग है अन्दर में हुआ तब, वीतराग न हो तब उसे आवे?

मुमुक्षु : उसकी अभिप्राय की भूल है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभिप्राय में उसे हेय है।

मुमुक्षु : हेय तो फिर ज्ञान हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो हेय का ज्ञेय नहीं? ज्ञान तो व्यवहार का ज्ञान नहीं? व्यवहार को वह जानता है। हेयरूप से जानता है। आहाहा! बहुत गाथा १६-१६ गाथा। पूर्ण। आहाहा! चारों ओर प्रयत्न करके मन, वचन, काया से अर्थात् उसकी ओर का झुकाव छोड़कर... नौ-नौ कोटि का वह छोड़कर। यहाँ प्रयत्न को झुका दे। आहाहा! समझ में आया?

तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो,.... आहाहा! **मन-वचन-काय से स्वरूप में रुचि करो, इस कारण से मोक्ष को पाओ.... 'जेण य लहेह मोक्खं'** है न? तीसरा पद। यहाँ तो मोक्ष का काम है न? मोक्ष अर्थात् परम आनन्दस्वरूप दशा। उस परम आनन्दस्वरूप दशा का कारण आत्मा है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प, वे कहीं मोक्ष का कारण नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्रत की क्रिया करो, व्रत की क्रिया करो। धीरे-धीरे उसमें शान्ति बढ़ती जायेगी। यहाँ कहते हैं, व्रत अनिष्ट है। उसका फल मोक्ष नहीं, इसलिए वह अनिष्ट फल है और आत्मा का आश्रय करना मोक्ष के लिये, उसका फल इष्ट है। आहाहा! झगड़ों का पार नहीं आवे भाई यह।

कारण से मोक्ष को पाओ.... यह बात है न! आहाहा! संसार की प्राप्ति तो अनन्त बार अनन्त कारण से हुई शुभाशुभभाव से। अब आत्मा की मोक्षदशा परम आनन्ददशा, परम आनन्ददशा। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता।' आया न? पूर्ण शुद्ध और पूर्ण आनन्द की दशा अर्थात् मोक्ष। और मोक्ष में दुःख से सर्वथा मुक्त होना, वह मोक्ष। तो दुःख, वह संसार। सुख की पूर्णता कही मोक्ष, उसका कारण आत्मा। ऐसा यहाँ तो कहना है। आहाहा! यह कारण नहीं। आत्मा के आश्रय बिना जितनी क्रियायें परलक्ष्यी हों,

चरणानुयोग की हों प्रमाण, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। ऐसा कहते हैं। सूत्र को, सिद्धान्त को ऐसा कहना है। भगवान के आगम में, वाणी में—दिव्यध्वनि में यह आया, आगम में यह रचा। वह आगम यहाँ सूत्रपाहुड़ रचा। आहाहा! यह परमागम है। यह सब गाथायें उत्कीर्ण हो गयी हैं।

और जिससे मोक्ष पाते हैं, उसको प्रयत्न द्वारा.... ऐसा। तब कहते हैं होनहार हो वह होता है न! क्रमबद्ध में आयेगा तब होगा न! काललब्धि होगी और भगवान ने देखा होगा तब होगा न? परन्तु इन सबका निर्णय करे कौन?

मुमुक्षु : उसका स्वकाल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वकाल का अर्थ भी स्वकाल का निर्णय करे कौन? त्रिकाल का निर्णय करनेवाला स्वकाल का निर्णय करे। आहाहा! त्रिकाल वस्तु शुद्ध चैतन्यघन, जैसा त्रिकाल एकरूप पड़ा है, उसका ज्ञान और श्रद्धा करने से उसकी वर्तमान पर्याय की श्रद्धा और ज्ञान तब उसे होता है। तब स्वकाल का सब ज्ञान इकट्ठा हो गया। योग्यता का, होनहार का। ...इससे प्रयत्न से कहा है न? वे कहते थे। सर्वज्ञ ने देखा। सर्वज्ञ ने तो सब तीन काल—तीन लोक जाने। वह प्रयत्न करने का कहे कैसे? आहाहा! परन्तु उसे प्रयत्न से होता है तो प्रयत्न करने का न कहे? भगवान ने देखा, वह होता है तो एक आवे, परन्तु वह प्रयत्न से होता है या नहीं वहाँ? और भगवान की श्रद्धा भी तब करेगा या नहीं? आहाहा! ... आज्ञा में उपस्थित नहीं और आज्ञा बाहर उद्यम करे उसे... होगा ऐसा। परन्तु आगम में पुरुषार्थ करे, ऐसा नहीं कहा। अरे! परन्तु... पाँचवाँ सूत्र है, वह आचारांग में। ... वह तीर्थंकर ... पुरुषों का दर्शन है। कि आज्ञा बाहर उद्यम नहीं और आज्ञा में आलस नहीं। ऐसा कहते हैं। ऐई! परन्तु आ गया उसमें कहा, भाई! उसमें तो बहुत चर्चा चली है। आज्ञा बाहर का उद्यम करना नहीं, आज्ञा में उद्यम शिथिल होगा नहीं। आवश्यक नहीं, ऐसा अर्थ हुआ।

मुमुक्षु : सहज ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, सहज है वह भी किस प्रकार से है, यह मानना चाहिए न! ऐसा। सहज तो शब्द आया है। सहज अर्थात् कैसे सहज है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग बात है। यह अभी बात नहीं। यहाँ तो प्रयत्न से होता है, यह कैसे कहा? भगवान सर्वज्ञ तो जानते हैं कि यह जिस समय जिसका जहाँ होगा, वह होगा। तो उसकी वाणी में ऐसा कैसे आया? कि तू प्रयत्न से आत्मा की श्रद्धा कर कि उसमें यह आया। आहाहा! जिसने यह सर्वज्ञ है और सर्वज्ञ ने देखा, तब काललब्धि से होगा, ऐसी जिसे श्रद्धा हो कब? जो वर्तमान की श्रद्धा कब हो? कि त्रिकाल की श्रद्धा करे तो हो। वर्तमान तो एक अंश उसका त्रिकाल का एक भाग है। भाग बिना की त्रिकाली चीज़, उसकी श्रद्धा करे तब भागवाले की श्रद्धा होती है। आहाहा! यह सब ऐसा है भाई! प्रयत्न में है सब।

प्रयत्न उड़ाते थे वहाँ ७२ में। पुरुषार्थ कुछ काम करे नहीं। भगवान ने देखा तब पुरुषार्थ चलेगा। वह भी किसकी बात यह? किसकी भाषा यह? आगम की भाषा ऐसी है? वीतराग की वाणी ऐसी है? आगम में ऐसा कहा वाणी में? यह क्या कहते हैं? आहाहा! बात, वह बात कुन्दकुन्दाचार्य की। शास्त्र और उसकी गाथा!

'**एएण कारणेण**' में यह निकाला कि आत्मा की दृष्टि और सम्यग्दर्शन और रुचि बिना जो कुछ करे, वह सब निरर्थक है। इस कारण से, ऐसा। '**तं अप्पा**' उस आत्मा की श्रद्धा करना। '**तिविहेण**' मन, वचन और काया से कहीं भी मन, वचन और काया, करण में छिद्र पड़े बिना, भंगभेद पड़े बिना। अन्तर में प्रबल पुरुषार्थ से '**जाणिज्जह पयत्तेण जेण य लहेह मोक्खं**' ऐसा लिया। समझ में आया? '**जाणिज्जह पयत्तेण**' आहाहा! श्रद्धा परन्तु '**जाणिज्जह**' ऐसा शब्द रखा वापस, देखो! पहले विकल्प से निर्णय करे तो भी उसमें ज्ञान आता है न। भले अभी मन के संगवाला है, परन्तु उस ज्ञान द्वारा निर्णय करता है न, विकल्पसहित कि यह वस्तु पूर्ण है। ध्रुव है, शुद्ध है।

कहता नहीं था जामनगर में, लड़का नहीं? ध्रुव.. ध्रुव यह भानेज राजकोट। राजकोट क्या? अहमदाबाद। बाबूभाई का भानेज है न। है रसिया, हों! परन्तु जरा दूसरे साधु के साथ बैठे।... उसके मामा ने यह कहा, यह सब बातें सुनकर किसी के साथ झंझट नहीं करना। यह जैनदर्शन ऐसा है उसमें... सब ऐसे हैं। उसके लिये यह नहीं।

यह तो स्वयं को समझने का है। उसके मामा ने शिक्षा की है, हों! अब तो पढ़ता है। इतना सब... अब सब रामजीभाई के पास सब जाते हैं।

कहते हैं, आहाहा! उसने यह पूछा ध्रुव, वह हाथ आता नहीं। परन्तु पहला, कहा, निर्णय तो कर कि यह पर्याय-अवस्था है। इतनी चीज़ है या इससे दूसरी है? वह तो वर्तमान चीज़ हुई। चलता विचार, चलती पर्याय, चलती दशा, वह तो पलटती दशा हुई, क्योंकि पलट जाती है, पलटती है। तो वस्तु जिसके आधार से हो, वह कुछ वस्तु है या नहीं? जो पर्याय जिसके आधार से हो, वह कोई चीज़ है या नहीं? वही आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो न्याय से तो बात चलती है। यह वस्तु ऐसी चीज़। उसकी पर्याय में विचार चलते हैं। वह पर्याय तो पलटती है। बदलती है। वह बदलती किसके आश्रय से बदलती है? कोई उसका आधार है या नहीं? आधार भगवान पूर्णानन्द का आधार, वही निश्चय आत्मा है। पर्याय तो व्यवहार आत्मा है। सच्चा आत्मा तो वह है। यह (पर्याय) तो उपचारिक आत्मा है। आहाहा! समझ में आाय?

एक समय की अवस्था में पूर्ण वस्तु की दृष्टि करना, वह वस्तु तो वह है। निश्चय से उसे ही आत्मा कहा भगवान ने तो। पर्याय को व्यवहार से आत्मा, उपचार आत्मा। उपचार। वास्तविक तो वह चीज़ है। आहाहा! वाद-विवाद—झगड़ा करे, बापू! यह वस्तु। ऐसी बात की है, देखो न! आहाहा! '**अप्पा**' आत्मा की श्रद्धा करना। भगवान देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, ऐसा नहीं कहा इसमें? क्योंकि वह सब श्रद्धा निरर्थक है आत्मा की श्रद्धा बिना। ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? कहो, यह श्रीमद् के लोगों को भक्ति करो... भक्ति करो... यहाँ कहते हैं कि वह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो '**तिविहेण**' ऐसा यहाँ नहीं कहा। ऐई! ऐसी बाहर की श्रद्धा तो अनन्त बार की। आहाहा! समवसरण भगवान का ऐसा होता है। तीर्थंकर का ऐसा होता है, ...में ऐसा होता है। फलाना जरा... सिर काट दे तो फेरफार न माने। यह श्रद्धा अनन्त बार हुई है। इसमें क्या हुआ? परन्तु इसके पहले ऐसा

भगवान पूर्ण वस्तु की श्रद्धा बिना वह श्रद्धा किस काम की ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

गुरुजी कहते हैं कि यह क्या कहलाये ? बोते हैं उसे उखाड़ना नहीं। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि बीज तो यह कहलाता है। वह देव-गुरु की श्रद्धा। यहाँ तो कहते हैं कि वह नहीं। आहाहा! यह तो ऐसी बात है, भगवान! यहाँ तो यह '**तिविहेण**' विकल्प छोड़कर इस ओर कहीं भी ऐसा कि मन-वचन-काया में कहीं रुकना नहीं। उस वस्तु को शब्द चैतन्य को '**तिविहेण सद्दहेह**' '**तं जाणिज्जह पयत्तेण**' यह प्रयत्न से ज्ञात होता है। इससे मोक्ष होता है। इन चारों पद का अर्थ लो! आहाहा! गजब शैली है न! प्रयत्न बिना ? होना होगा वह होगा, बनने का होगा वह बनेगा, इसका निर्णय प्रयत्न बिना आवे ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। परन्तु सहज का अर्थ क्या है ? यह प्रयत्न ही सहज है। नहीं समझ में आया ? यह प्रयत्न करना, वही सहज है। आहाहा!

यहाँ तो इसके लिये तो कहा है न, देखो न! उसमें भी कहा, छह द्रव्य को प्रयत्न से जानना। व्यवहार। योगसार में। यह हो तो यह वाणी आती है। वहाँ भी यह प्रयत्न शब्द प्रयोग किया है योगसार में। परन्तु जिस-जिस स्थान में जो प्रकार है, उसमें पहला यह प्रकार है। इसके पश्चात् सब बात। आहाहा! बारात में कहे भाई! वर को तैयार करना। ऐसा कहे कि बाराती तैयार होओ, वर बाद में आयेगा तैयार होकर ? वर को तैयार करो, बाराती बाद में आवें वे तो। आवे, न आवें। उसे तैयार करो। रेल का समय हो गया है। आहाहा! यहाँ मोक्ष जाने की जिसे इच्छा है। ऐसा है न ? जिसे मोक्ष इष्ट है, उसे आत्मा इष्ट करना पड़ेगा। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

जिससे मोक्ष पाते हैं, उसको प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके जानो। यह वह मन-वचन-काया का अर्थ सर्वत्र चारों ओर से। **सब प्रकार के...** आहाहा! लो! **(भावपाहुड गाथा ८७ में भी यह बात है।)** सूत्रपाहुड़ में डाली। अर्थात् कि आगम में भी इसकी प्रधानती की है। भावपाहुड़ में भी यही भाव पहला, ऐसा कहते हैं। जाति की बात ली है। भाव... ८७ करके फिर ... मत है न। ८८ मत की ली है।

भावार्थः —जिससे मोक्ष पाते हैं.... देखो, यहाँ से लिया। **उस ही को जानना,....** जिससे मोक्ष हो, उसे जानना। जिससे मोक्ष हो। किससे ? कि आत्मा से। धर्म किससे हो ? कि आत्मा से। चारित्र किससे हो ? आत्मा से। केवलज्ञान किससे हो ? आत्मा से। इसलिए आत्मा को पहले जानना, ऐसा। आहाहा! धर्म करनेवाला कौन है, उसे जाने बिना धर्म कहाँ से होता होगा इसे ? आहाहा! यह तो रखा था वहाँ। क्या कहलाता है व्यारा ? व्यारा। सोनगढ़ व्यारा। वहाँ रखा था। आता है यह। यह ... में आता है। किसी ने रखा था। धर्म करनेवाला आत्मा, उस करनेवाले को जाने बिना धर्म नहीं होता। कल्याण करनेवाला आत्मा, वह कल्याण का करनेवाला कौन है ? उसे जाने बिना कल्याण कहाँ से होता था ? आहाहा!

जिससे मोक्ष पाते हैं, उस ही को जानना,.... देखा! **श्रद्धान करना,...** लो! उसे जानकर उसकी श्रद्धा करना। **यह प्रधान उपदेश है,....** मुख्य उपदेश यह है। बाकी सब उपदेश बाद में। आहाहा! **अन्य आडम्बर से क्या प्रयोजन ?** आहाहा! व्रत, नियम, प्रत्याख्यान, भक्ति और मन्दिर और सब ऐसे आडम्बर से प्रयोजन क्या है ? कहते हैं। मूल तो पकड़ में आया नहीं। जिससे मोक्ष हो, जिससे सम्यग्दर्शन हो, उस चीज़ को तो पकड़ा नहीं। दूसरे आडम्बर से क्या ? आहाहा! '**निरवशेष**' आयी थी न, इसका अर्थ किया। १५वीं में आयी थी। '**धम्माइं करेइ णिवरसेसाइं।**' '**अह पुण अप्पा णिच्छदि**' आत्मा इच्छे नहीं, इष्ट करे नहीं '**धम्माइं करेइ**' वह धर्म अर्थात् पुण्यक्रियायें व्रतादि। लो! शब्द तो धर्म शब्द पड़ा है। शब्द तो उसका... धर्म निश्चय धर्म का करनेवाला भगवान आत्मा, उसे जाने बिना दूसरे धर्म पुण्यादि की क्रिया करे, उससे कुछ लाभ नहीं होता।

अन्य आडम्बर से क्या प्रयोजन ? आहाहा! बाह्य के त्याग, व्रत, नियम, अपवास और रसपरित्याग और अनेक प्रकार की विनय... विनय... विनय... शास्त्र की विनय और गुरु की विनय और देव की विनय। ऐसा कहते हैं। यह ऐसे बिना दूसरे आडम्बर क्या है ?

★ ★ ★

गाथा - १७

आगे कहते हैं कि जो जिनसूत्र को जाननेवाले मुनि हैं, उनका स्वरूप फिर दृढ़ करने को कहते हैं:—

बालग्गकोडिमेत्तं, परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते, दिण्णण्णं अक्कठाणम्मि॥१७॥

देखो! यह श्रद्धा ऐसी करना पहले और अब कहते हैं कि मुनि कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या पहली। उसकी श्रद्धा दूसरी रखना। आहाहा!

बालग्गकोडिमेत्तं, परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते, दिण्णण्णं अक्कठाणम्मि॥१७॥

अर्थः—बाल के अग्रभाव की कोटि अर्थात् अणिमात्र भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। लो! ओहोहो! तिल का छिलका, इतना भी जिन्हें परिग्रह नहीं। ...छिलका तो है, ऐसा कहते हैं वे। परन्तु छिलका नहीं, उससे अधिक के ढ़ेर। बड़े ट्रक... ट्रक। यहाँ ट्रक खड़ा हुआ है न। ऐसा ठेठ भरा हुआ घास। परन्तु किसका कहा इतना? ... साधु आये। गौशाला के लिये देखे न? अरेरे! मार्ग यह नहीं। यहाँ तो बाल के अग्रभाग। **'बालग्ग'** शब्द है न? **'बालग्ग' बाल के अग्रभाव की कोटि....** अर्थात् अणिमात्र, वापस ऐसा। **'कोडिमेत्तं' परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है।**

यहाँ आशंका है कि यदि परिग्रह कुछ नहीं है तो आहार कैसे करते हैं? इतना परिग्रह न रखे और आहार लेने जाये। **कैसे करते हैं? इसका समाधान करते हैं— आहार करते हैं सो पाणिपात्र (करपात्र)....** हाथ में। मुनि को कोई पात्र नहीं होता। **अपने हाथ में भोजन करते हैं,....** एक बात। **वह भी अन्य का दिया हुआ....** दूसरे का दिया हुआ। वह भी **प्रासुक...** अचेत। इतने विशेषण दिये। हाथ में, अन्य का दिया हुआ, प्रासुक—अचेत, ऐसा। उसका सचेत हो तो भी नहीं, ऐसा। **प्रासुक अन्न मात्र लेते हैं,....** आहारमात्र लेते हैं। यह वस्त्र और कुछ... वे नहीं लेते यह।

वह भी एक स्थान पर ही लेते हैं,.... ऐसा है न? **'दिण्णण्णं पाणिपत्ते**

अक्कठाणम्मि' इतने बोल रखे हैं। एक ही स्थान में। **वह भी एक स्थान पर ही लेते हैं,....** एक स्थान में, ऐसा। ...खड़े हो वहाँ। खड़े रहते हैं वहाँ और नीचे लाईन में चार-पाँच घर हो... होवे तो निमित्त पड़ते हैं। स्वयं तो एक स्थान में। एक लाईन हो। दालान की एक ही लाईन। दूसरे हों परन्तु स्थान एक जगह खड़े हों। यहाँ लेकर फिर अन्यत्र दूसरी (जगह) जायें और तीसरे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। स्वयं वहाँ रहते हुए वह घरवाला अथवा दूसरा घरवाला आहार लेकर दे। एक स्थान में दे। चार-पाँच घर में जाये, ऐसा नहीं। परन्तु चार-पाँच घर लाईनवाले हों और दे तो एक स्थान में ले। नजर पड़ती हो कि यह श्रावक के घर हैं। नजर पड़ती हो वह वापस... हरितकाय करके लावे, फलाना करके लावे। इससे ऐसा कहा लावे। ऐसी नजर पड़ती हो, वह लाता हो वहाँ से। वनस्पति हरितकाय न हो। एक स्थान में लेंगे।

बारम्बार नहीं लेते.... ऐसा। दो बार और तीन बार। सवेरे चाय, दोपहर में दाल-भात, सब्जी, दो बजे फिर फरसाण। फरसाण तो और शाम को। दोपहर बीच में पपीता और ऐसा। बादाम और....

मुमुक्षु : .... पुरानी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बादाम और पिस्ता लाते नहीं यह लोग? कैसा? काजू। मुरमुरे लाते हों, बादाम ऊँची। वहाँ हो न, वहाँ करते थे। परिचित साधु हो वहाँ। अस्पताल में लाते, वह मेवा लावे मेवा। दोपहर में मेवा। सवेरे चाय। शाम को ... ... और भजिया। लो! यह तो गृहस्थ की बात है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे परन्तु? यह तो जिसे पचे नहीं, उसके लिये। इसे तो— साधु को तो एक ही बार। पचे, न पचे, इसका प्रश्न नहीं। पचे, न पचे, यह प्रश्न साधु के लिये नहीं। गृहस्थ के लिये... काम करता हो तो दो भाग कर देना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो। सुनो। कहने की अपेक्षा ध्यान सुनने में अधिक रखो।

बारम्बार नहीं लेते और अन्य स्थान में नहीं लेते हैं। देखा! स्थान दूसरा नहीं

बदलावे। घर दूसरा लावे दे। एकदम शरीर निभाने को, संयम निभाने जितनी बात है। आहाहा! यह संयम के भाव के लिये शरीर... **और अन्य स्थान में नहीं लेते हैं।**

भावार्थः—जो मुनि आहार ही पर का दिया हुआ प्रासुक योग्य.... वह भी प्रासुक और स्वयं के योग्य हो वह। उसने बनाया हो साधु के लिये, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं। वह योग्य नहीं। **योग्य अन्नमात्र निर्दोष....** आहार-पानी मात्र आहारादि। **एक बार दिन में....** एक ही बार आहार दिन में। दो बार नहीं, रात्रि में नहीं, पात्र में नहीं। **अपने हाथ में लेते हैं....** आहाहा! ऐसा सूत्र में भगवान के आगम में ऐसा कहा है। भगवान के आगम में... श्रद्धा करना पहले और मुनिपना भगवान के आगम में ऐसा कहा है कि श्रद्धा के पश्चात् चारित्र हो तो ऐसे को चारित्र होता है। आहाहा! बहुत विवाद उठा है। सब वस्त्र रखे और यह सब आचार्य भगवन्त। ऐई! आहाहा! बापू! यह वीतराग का मार्ग नहीं। वीतराग केवलियों का यह मार्ग नहीं। स्वयं का कल्पित स्वच्छन्दता से कल्पित किया हुआ वह मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

एक बार दिन में अपने हाथ में लेते हैं तो अन्य परिग्रह किसलिए ग्रहण करें? उसे ... की आवश्यकता है उसे? पैसे की आवश्यकता नहीं और ... करने की आवश्यकता है। बही-बही याद रखना लिखने के लिये। यह इनकार किया। अन्य का क्या काम है उसे? आहाहा! **अर्थात् नहीं ग्रहण करें, जिनसूत्र में इस प्रकार मुनि कहे हैं।** देखो! ऐसे आगम में सिद्धान्त में मुनि... पहले श्रद्धा करना आत्मा की रुचि, दृष्टि करना। यह कहा। और परम आगम में ऐसा मुनिपना अंगीकार करना समकितसहित, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **जिनसूत्र में इस प्रकार मुनि कहे हैं।**

★ ★ ★

गाथा - १८

आगे कहते हैं कि अल्प परिग्रह ग्रहण करे उसमें दोष क्या है? उसको दोष दिखाते हैं:—अब मूल गाथा आयी।

जहजायरूवसरिसो, तिलतुसमेत्तं ण गिण्हदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं, तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्॥१८॥

अर्थ:—मुनि यथाजातरूप है, जैसे जन्मता.... यथाजात अर्थात् जन्मता। **रूप....** अर्थात् बालक। **जन्मता बालक नग्नरूप होता है....** आहाहा! ऐसे मुनि नग्नदशा, वीतरागी मूर्ति, उपशमरस के ढाला ढले हैं जिनके शरीर में भी। आहाहा! उपशमरस आत्मा में इतना प्रगट हुआ है कि वहाँ परम स्वसंवेदनदशा। आहाहा! अपने वेदन की दशा, हों! उनकी नग्नदशा होती है। ऐसा निमित्तपना उन्हें ऐसा ही होता है। वह निमित्त वस्त्र का हो और फलाने का हो... अभी बहुत बचाव करते हैं। मूर्च्छा का कहते हैं। क्योंकि आहार उसमें दे, फिर उसका रहा नहीं, इसका हुआ। परन्तु उसमें ... होने पर मूर्च्छा नहीं, इसलिए ऐसा कि आहार दूसरे दें हाथ में तो ... है। अब यहाँ आया वहाँ तक उसका हुआ। उसका होने पर वह परिग्रह नहीं, ऐसा।

मुमुक्षु : उसका हुआ और परिग्रह नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ में आहार आया ऐसा। न्याय देते हैं। यह कहते है कि वस्त्र का परिग्रह क्यों नहीं? कि जैसे दूसरा आहार दे साधु के हाथ में, जब तक उसके हाथ में था, तब तक उसका था, दिया तो फिर उसका नहीं रहा। अब यहाँ रहा। अब यहाँ रहा होने पर भी उसमें परिग्रहबुद्धि नहीं। इसी प्रकार वस्त्र दूसरे ने दिया, वहाँ तक उसका, इसे दिया तब इसका परिग्रह हुआ, परन्तु उसके ऊपर मूर्च्छा नहीं। भाई! लोग तो ... कहते हैं। अमरचन्दजी यह बचाव करते थे। आया था अखबार (पत्रिका) में। आगरावाले। आगरावाले।

कल ऐसा आया था उसमें आगरा नीचे अमेरिका है। ऐसा कुछ था। उसमें नीचे है। ऐसा आया था। गोला, गोलो कहता है वह। आगरा कहता है। ऐसा यह लोग कहते हैं। उसमें कहा था कुछ। बात सच्ची है।... भगवान ने कही है, वही है। लोगों को भ्रम

है जगत को अभी के विज्ञानियों को। कहीं गये हों और कहीं का माना, कुछ दिखा और कुछ माना। ब्रह्माण्ड की वस्तु को...

यहाँ तो कहते है... आहाहा! **यथाजातरूप है, जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे ही नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है,....** आहाहा! अकेला नग्नरूप नहीं, (परन्तु) अन्दर भावनग्न सहित की बात है। आहाहा! **वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता;....** तिल के छिलके जितना भी हाथ से ग्रहण नहीं करे। तब कहे, यह पुस्तक ग्रहण करे, पिच्छी ग्रहण करे, कमण्डल ग्रहण करे। ऐसा वापस वे दृष्टान्त देते हैं। जिसे उन उपकरण में ममता नहीं, वैसे उसे वस्त्र में ममता नहीं। परन्तु यह झूठी बात है। ममता बिना वस्त्र लेने की वृत्ति है ही नहीं। यह तो उसके बाह्य उपकरण होते हैं। आहाहा! ऐसा है, भाई! प्रतिमा में भी ऐसा कहते हैं। भगवान की प्रतिमा को तुम रथ में बैठाते हो, तो भगवान तो वीतराग हैं। उन्हें रथ में बैठाते हो? कायोत्सर्गवाले। तुम कायोत्सर्गवाले, हम वस्त्र पहने हुए हैं।

मुमुक्षु : तुमको छूट और हमको नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहते हैं। वह ऐसा कहता था। वह जवान साधु नहीं आया था? शान्तिसागर। बहुत वर्ष पहले आया था। मुझे कुछ श्रद्धा नहीं महाराज! एक बार कहे। ... ऊपर श्रद्धा लगे। मैंने कहा, यहाँ तो मार्ग यह है। मुझे कोई श्रद्धा नहीं। ऐसा कहता था। जवान था। वह यह कहता था, हों! कि यह जब भगवान की प्रतिमा को रथ में बैठाओ कायोत्सर्ग में... रथ में बैठाओ उसे, कायोत्सर्गवाले रथ में बैठें? ऐई! उसकी दलील। उसी प्रकार यह कायोत्सर्गवाले को हम वस्त्र पहनाते हैं, उसमें क्या है? अरे! भगवान! मार्ग यह नहीं। पक्ष का व्यामोह ऐसा है। कोई भी बचाव करने में....

अन्त में मोहनभाई आये थे। अन्तिम दिन। चार दिन सुनकर। कैसे? बताना है। ऐसा कि प्रमाद मेरा। ... बचाव... बचाव नहीं। मोहनभाई नहीं? ... सामने देखा। कुछ दरकार नहीं होती। रात्रि में आये। दर्शन तो करें। परन्तु तू कहे ऐसा हुआ। बचाव नहीं। प्रमाद है। ठीक! ... है न। दरकार नहीं होती। आहाहा! डाह्याभाई। ... कनुभाई। कनुभाई कहाँ थे तब? हीराभाई का पुत्र... कनुभाई।

मुमुक्षु : अहमदाबाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ थे। वहाँ ही थे अभी। आहाहा! अरे! भगवान! देह मनुष्य की देह समय-समय में काल के सन्मुख जाये, उसमें ऐसी बात सुनने का अवकाश नहीं, उसे अन्तर दृष्टि करने का अवकाश कहाँ है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता; और यदि कुछ थोड़ा-बहुत लेवे ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है।**.... आहाहा! अचेल नहीं कहा। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। क्योंकि जिसे तीन कषाय का अभाव होकर जहाँ दशा मुनि की प्रगट हुई है, उसे वस्त्र लेने का विकल्प ऐसा आस्रव इतना आस्रव वहाँ होता ही नहीं। उसे... आहाहा! धन्यदशा! जहाँ स्वरूप की दृष्टिपूर्वक जहाँ स्वरूप की रमणता, जहाँ प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का प्रगट हुआ, उसकी भूमिका में ऐसा विकल्प न हो कि वस्त्र लूँ, पात्र लूँ, ऐसा विकल्प तो तीव्र आस्रव है। आहाहा! उसे आहार-पानी आदि का विकल्प, वह मन्द आस्रव होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : कमण्डल.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमण्डल पानी का वे रखते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आस्रव नहीं। उसे रखने की जो वृत्ति है शुभ, वह आस्रव है। परन्तु इतना शुभ होने पर भी उसे तीन कषाय के अभाव का संवर-निर्जरा भी अवरोधक नहीं उसे। उस संवर-निर्जरा को नजर नहीं करता। भूमिका में इतना होता है। आहाहा! यह नव तत्त्व की भूल होती है इसमें। वस्त्र रखकर मुनिपना माने, उसे नव तत्त्व की भूल है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि जिसे तीन कषाय के अभाव की दशा मुनिपने की प्रगट हुई, ऐसी संवर-निर्जरा की जिसकी दशा है, उसे वस्त्र लेने की वृत्ति है तो उसे संवर-निर्जरा ऐसी हो, उसकी उसे श्रद्धा नहीं। और उसमें विकल्प ऐसा नहीं होता और ऐसा हो, ऐसे आस्रव की भी खबर नहीं। और जिसे संवर इतना प्रगट हुआ हो, उसने आत्मा का कितना आश्रय लिया हो, उसकी भी उसे खबर नहीं। उसे जीव के आश्रय की, प्रगट हुए संवर-निर्जरा की, उसे मन्द-आस्रव के बदले तीव्र आस्रव की उसमें

बन्ध हो अल्प, उसके बदले ऐसे भाव से तीव्र बन्ध हो हो तो बन्ध की और अजीव का संयोग कितना हो मुनि को ? कि अमुकमात्र आहार-पानी आदि का। उसके बदले ... अजीव की उसे खबर नहीं। अजीव कितना होता है वह। वह नव तत्त्व की भूल है। निगोद कहा है, इसलिए एकदम इतने के लिये नहीं। नव तत्त्व की और उसे वीतराग की आज्ञा की भी उसे श्रद्धा नहीं। वीतराग की आज्ञा को भी विरुद्ध माना है, शास्त्र की आज्ञा को विरुद्ध माना है। गुरु से विरुद्ध माना है। तीनों से विरुद्ध है। ऐसी बात है। मार्ग ऐसा है। उसमें कोई फेरफार करे, वह वस्तु नहीं। समझ में आया ? विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ७, शुक्रवार, दिनांक-१६-११-१९७३
गाथा- १८, १९, २०, २१, प्रवचन-४३

यह अष्टपाहुड़। इसकी सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं न कि मुनि का रूप बाह्य में तो नग्न होता है। उसे वस्त्र का टुकड़ा या तिल का तुषमात्र भी नहीं होता। और उसे रखकर मुनिपना माने, यहाँ तो स्पष्ट बात की है, निगोद में जायेगा। आहाहा! क्योंकि वीतराग की आज्ञा मुनिपने की तो नग्न की और अट्ठाईस मूलगुण और तीन कषाय का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त कुछ भी वस्त्र रखकर मुनि माने, मनावे तो वह स्थिति एकेन्द्रिय की है, ऐसा कहते हैं। अर्थ हो गया है।

भावार्थः—मुनि यथाजातरूप दिगम्बर निर्ग्रन्थ को कहते हैं। जैनशासन में, वीतरागमार्ग में तो जैसा जन्म माता ने दिया, वैसा ही दिगम्बर निर्ग्रन्थ को साधु कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन बात लगे व्यवहार सम्प्रदाय को। **वह इस प्रकार हो करके भी कुछ परिग्रह रखे तो जानो कि इनके जिनसूत्र की श्रद्धा नहीं है,....** सूत्रपाहुड़ है न? सूत्रपाहुड़ में तो भगवान ने मुनि को तो नग्नदशा ही कही है। अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है। भावसहित, हों! अकेला द्रव्य नहीं। प्रचुर आनन्द के वेदनसहित उसकी दशा नग्न (कि जो) शास्त्र में वर्णन की, उससे विरुद्ध माने तो उसे जैनधर्म की श्रद्धा नहीं।

जिनसूत्र की श्रद्धा नहीं है, मिथ्यादृष्टि है; इसलिए मिथ्यात्व का फल (तो) निगोद ही है। मिथ्यात्व का फल ही संसार और निगोद है। **कदाचित् कुछ तपश्चरणादिक करे....** अपवास, व्रतादि व्यवहार **उससे शुभकर्म बाँधकर स्वर्गादिक पावे,....** जाये एकाध भव स्वर्ग में अथवा निकलकर कोई सेठिया आदि हो। **तो भी फिर एकेन्द्रिय होकर संसार ही में भ्रमण करता है।** आहाहा! श्रीमद् ने इसे मान्य रखा है। मान्य रखा है और इसके अर्थ में यह है और वहाँ पाठ यह है। यह सब गाथायें मान्य रखी हैं।

यहाँ प्रश्न है कि—मुनि के शरीर है,.... तिलतुषमात्र कहा, तिल के छिलके जितना। तो पूरा शरीर तो है। **आहार करता है, कमण्डलु, पिच्छी, पुस्तक रखता है,....** देखो! **यहाँ तिल-तुषमात्र भी रखना नहीं कहा,....** यहाँ तो तिल का छिलका—तिल

का छिलका इतना भी रखने का निषेध किया और ऐसा तो सब रखते हैं। **सो कैसे ?** तो उसके लिये क्या समाधान है ? ऐसा पूछता है, हों! तो उसकी क्या रीति है उसमें ?

इसका समाधान यह है कि—मिथ्यात्वसहित.... यह रखने से, वस्त्र रखने से मुझे लाभ होता है, ऐसी मिथ्यात्वबुद्धिसहित **रागभाव से अपनाकर अपने विषय-कषाय पुष्ट करने के लिये....** मिथ्यात्वसहित और रागभाव से। दो।

मुमुक्षु : ....रागभाव हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु ऐसा कि वह राग है। मिथ्यात्वसहित रागभाव। ऐसा।

मुमुक्षु : मिथ्यात्वरहित का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। क्योंकि वहाँ वस्तु मेरी है, ऐसा माने तब तो मिथ्यात्वसहित रागभाव है। **अपनाकर...** ऐसा। अपना मानकर। और वह **अपने विषय-कषाय पुष्ट करने के लिये....** विषय कषाय, शरीर के पोषण के लिये रखे, **उसको परिग्रह कहते हैं, इस निमित्त कुछ थोड़ा-बहुत रखने का निषेध किया है....** इस कारण से कुछ थोड़ा और बहुत, उसका निषेध किया है। **केवल संयम के निमित्त का तो सर्वथा निषेध नहीं है।** अच्छा स्पष्टीकरण किया है। संयम के हेतु में निमित्तपने उसका निषेध नहीं। सर्वथा निषेध नहीं।

शरीर तो आयुपर्यन्त छोड़ने पर भी छूटता नहीं है,.... अब यह शरीर की व्याख्या करते हैं। **शरीर तो आयुपर्यन्त छोड़ने पर भी छूटता नहीं है, इसका तो ममत्व ही छूटता है,....** ममता छूटे, शरीर छोड़ा जाये नहीं। आहाहा! **सो उसका निषेध किया ही है।** उसका तो निषेध ही किया है। **जब तक शरीर है, तब तक आहार नहीं करे तो सामर्थ्य ही नहीं हो,....** व्यवहार की बात है जरा ? **शरीर है, तब तक आहार नहीं करे तो सामर्थ्य ही नहीं हो, तब संयम नहीं सधे,....** निमित्त से बात है न अभी यहाँ ? **इसलिए कुछ योग्य आहार विधिपूर्वक....** कुछ योग्य उसे चले ऐसा और वह विधिपूर्वक। **शरीर से रागरहित होते हुए....** शरीर में प्रेम नहीं, ममता नहीं। **शरीर को खड़ा रखकर....** यह तो व्यवहार की बात तो ऐसी आवे न ? शरीर का निभाव इस प्रकार से होता है, दूसरे प्रकार से नहीं रहता। ऐसा उसे विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं। **संयम साधते हैं।** यह शरीर

की व्याख्या की। ऊपर कहा न शरीर, आहार, कमण्डल, पिच्छी, पुस्तक। उसकी व्याख्या में। पहला शरीर, उसकी उन्हें ममता नहीं, ऐसा।

अब **कमण्डलु बाह्य शौच का उपकरण है,....** कमण्डल जो मुनि रखते हैं, वह तो बाह्य शौच—शरीर की स्वच्छता। **यदि नहीं रखे तो मल-मूत्र की अशुचिता से....** पेशाब और विष्टा की मलिनता से **पंच परमेष्ठी की भक्ति वन्दना कैसे करे ?**

मुमुक्षु : उनको भी भक्ति, वन्दना तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होती है न। भक्ति, वन्दन नहीं ? वह भाव है जब तक, तब तक होता है। भक्ति होती है, वन्दन होता है, स्तुति होती है। है यह शुभभाव। **और लोकनिंद्य होय।** पेशाब और विष्टासहित शरीर हो तो लोक में निन्दा हो। **पिच्छी दया का उपकरण है,....** दूसरी बात। कमण्डल की पहले की, अब पिच्छी। यह दया का उपकरण है। **यदि नहीं रखे तो जीवसहित भूमि आदि की प्रतिलेखना किससे करे ?** ...यत्न करना, यदि पिच्छी न हो तो किस प्रकार करे ? **पुस्तक ज्ञान का उपकरण है,....** तीसरा। पुस्तक है, वह ज्ञान का उपकरण है। **नहीं रखे तो पठन-पाठन कैसे हो ?**

मुमुक्षु : ध्यान में रह जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में सदा ही रह नहीं सकते। ... हो सके ? ध्यान में रह जाये, तब तो एकदम केवलज्ञान हो जाये। रह सकते ही नहीं न! ध्यान में न हो, तब उन्हें स्वाध्याय शास्त्र की होती है। ध्यान और स्वाध्याय दोनों उनके पास होते हैं। अन्दर में ध्यान में उपयोग तो एक अल्पकाल रहे, फिर पठन-पाठन के लिये शास्त्र की आवश्यकता पड़ती है।

इन उपकरणों का रखना भी ममत्वपूर्वक नहीं है,.... हेतु यहाँ है। वे उपकरण रखते हैं परन्तु ममतापूर्वक नहीं। ... **आहार-विहार पठन-पाठन की क्रियायुक्त जब तक रहे....** देखो! अब आया। मुनि आत्मा के ध्यान में रहे और ध्यान में नहीं रह सके, तब ऐसी पठन-पाठन की क्रिया उन्हें होती है, ऐसा कहते हैं। और **जब तक रहे, तब तक केवलज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है,....** आहाहा! स्वाध्याय भी हो और स्वाध्याय जब तक हो, तब तक केवलज्ञान न हो। आहाहा! क्योंकि वह विकल्प है, शुभराग है।

इन सब क्रियाओं को छोड़कर शरीर का भी सर्वथा ममत्व छोड़ ध्यान अवस्था लेकर तिष्ठे,.... स्व का आश्रय लेकर अन्दर स्थिर हो, पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को ध्येय बनाकर ध्यान में स्थिर हो। **अपने स्वरूप में लीन हो....** ऐसा **लेकर तिष्ठे, अपने स्वरूप में लीन हो....** ऐसा। **तब परम निर्ग्रन्थ अवस्था होती है,....** परम निर्ग्रन्थ अर्थात् रागरहित अवस्था। **तब श्रेणी को प्राप्त हुए मुनिराज के केवलज्ञान उत्पन्न होता है,....** लो! **अन्य क्रियासहित हो, तब तक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, इस प्रकार निर्ग्रन्थपना मोक्षमार्ग जिनसूत्र में कहा है।** भगवान ने वीतराग की वाणी में—जिनसूत्र में तो ऐसा निर्ग्रन्थपना कहा है।

श्वेताम्बर कहते हैं कि भवस्थिति पूरी होने पर सब अवस्थाओं में केवलज्ञान उत्पन्न होता है.... आता है यह। **वह कहना मिथ्या है....** पुस्तक है न वह। पुस्तक नहीं? वह पुस्तक। उसमें आता है। उसमें आवे, भवस्थिति पूरी हो तब। ऐसा कि यह क्रियायें पहली करके नहीं हुआ, उसका कारण कि भवस्थिति पूरी हो, तब उसे ऐसी क्रिया से ही धर्म होता है। वह पुस्तक पड़ी है। यहाँ है सही। उसमें ऐसा है। ऐसा कि अभी तक ऐसी क्रियायें कीं, पंच महाव्रत आदि और धर्म नहीं हुआ। तब कहे भवस्थिति जब पक जाये, तब उससे धर्म होता है। ऐसा है। उसमें लेख है। यहाँ आयी है, यहाँ रखा है। समझ में आया? वह बात सच्ची नहीं है।

यह कहना मिथ्या है, जिनसूत्र का यह वचन नहीं है,.... वीतराग की वाणी का वचन नहीं। आहाहा! **इन श्वेताम्बरों ने कल्पित सूत्र बनाये हैं....** कल्पित बनाये सब। ३२, ४५, ८४। भगवान की वाणी नहीं। कल्पित कल्पना से स्त्री को मुक्ति, भगवान वस्त्रसहित केवलज्ञान, वस्त्र से मुनिपना, स्त्री को मुक्ति और तीर्थंकर भगवान को दो माता-पिता, यह सब कल्पित रचा है। कहो, गिरधरभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...की बात है। यह उल्टे प्रकार से धर्म करते होंगे? धर्म, धर्म की रीति से टिकेगा या उल्टी रीति से टिकेगा? वीतराग की वाणी का तो विरोध किया, तत्त्व का विरोध करके नये शास्त्र बनाये। अपना सम्प्रदाय चलाया। वह धर्म टिकाने के लिये नहीं।

मुमुक्षु : गृहीत मिथ्यात्व के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गृहीत मिथ्यात्व ही है। शास्त्र का बनानेवाला—श्वेताम्बर शास्त्र बनानेवाला गृहीत मिथ्यादृष्टि है। लगे, ठीक न लगे, उसका जाने। क्योंकि उसमें वस्त्र, पात्र, भगवान के माता-पिता दो ठहराये, वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। केवली का कहा हुआ नहीं, मुनि का कहा हुआ नहीं, समकिती का कहा हुआ नहीं। अकेले अगृहीत मिथ्यादृष्टि का कहा हुआ नहीं। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! यह सब सूत्र बनाये ३२, ४५, वे तो गृहीत मिथ्यादृष्टि ने बनाये हुए हैं और भगवान का नाम उसमें दिया है। ऐसी बात है। क्या करे? आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! किसी व्यक्ति के लिये ऐसा नहीं। सूत्र की ... है न सूत्रपाहुड़।

मुमुक्षु : सूत्र में क्या कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। सूत्र में यह कहा नहीं। वस्त्र, पात्र रखकर मुनिपना, स्त्री को मुक्ति, एक भगवान को दो माता-पिता, यह सब कल्पित विपरीत अपना सम्प्रदाय चलाने के लिये बातें की हैं। धर्म के लिये नहीं। ऐसा है, भाई!

कल्पित सूत्र बनाये हैं, उनमें लिखा होगा। फिर यहाँ श्वेताम्बर कहते हैं कि जो तुमने कहा वह तो उत्सर्ग-मार्ग है,.... वह तो उत्सर्ग-मार्ग है। **अपवाद-मार्ग में वस्त्रादिक उपकरण रखना कहा है,....** अपवाद मार्ग है, कहते हैं। उसे अपवाद होता है, ऐसा कहते हैं। भले उत्सर्ग का अपवाद होता है, ऐसा। परन्तु वह अपवाद ही नहीं है। यह कहते हैं। **जैसे तुमने धर्मोकरण कहे, वैसे ही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं, जैसे क्षुधा की बाधा आहार से मिटाकर संयम साधते हैं, वैसे ही शीत आदि की बाधा वस्त्र आदि से मिटाकर संयम साधते हैं, इसमें विशेष क्या?** ऐसा प्रश्न करते हैं। **इसको कहते हैं कि इसमें तो बड़े दोष आते हैं तथा कोई कहते हैं कि काम-विकार उत्पन्न हो, तब स्त्री-सेवन करे तो इसमें क्या विशेष? इसलिए इस प्रकार कहना युक्त नहीं है।** आहाहा! मार्ग को बदल डाला।

क्षुधा की बाधा तो आहार से मिटाना युक्त है, आहार के बिना देह अशक्त हो जाता है तथा छूट जावे तो अपघात का दोष आता है;.... आता है न प्रवचनसार में।

परन्तु शीत आदि की बाधा तो अल्प है, यह तो ज्ञानाभ्यास आदि के साधन से ही मिट जाती है। अन्तर के अभ्यास में वह सर्दी-बर्दी का कुछ लक्ष्य नहीं रहता। ...क्षुधा के लिये तो आहार की आवश्यकता पड़ती है। शीत मिटाने के लिये वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है, ऐसा नहीं। अन्दर के ज्ञानाभ्यास में रहे तो वह भी सर्दी और गर्मी लगती नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द-आनन्द, ज्ञानस्वरूप अपना आत्मा। उसमें अन्दर में एकाग्र रहे अथवा शास्त्र अभ्यास रखे तो भी उसका उपयोग वहाँ रहे। बाहर की सर्दी-गर्मी लगे नहीं, ऐसा कहते हैं। मार्ग बहुत खोटा चढ़ गया कठोर। श्वेताम्बर, उसमें वापस स्थानकवासी निकले, उसमें वापस तेरापंथी निकले तुलसी। सब जैनशास्त्र से भ्रष्ट से भ्रष्ट होकर निकले हैं।

मुमुक्षु : जैनशासन का पूरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : नोंच डाला है। निन्दनीय कर दिया है। पालन न कर सके तो मार्ग है, उसकी श्रद्धा तो करे। परन्तु यह तो न पाल सके, इसलिए इस प्रमाण साधुपना पालन करो।

मुमुक्षु : यह भी अपवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अपवाद नहीं होता। यह तो निन्दा है। यह निन्दनीय है। आहाहा! कहेंगे बाद में। निन्दनीय है। श्लोक रह गया पूरा। १९में। १९ गाथा। तुरन्त ही इसका उत्तर है वहाँ। यह तो **'गरहिउ जिणवयणे'** जिनवचन में तो यह निन्दनीय है। १९-१९ (गाथा का) तीसरा पद।

अपवादमार्ग कहा वह तो जिसमें मुनिपद रहे ऐसी क्रिया करना तो अपवादमार्ग है, परन्तु जिस परिग्रह से तथा जिस क्रिया से मुनिपद भ्रष्ट होकर गृहस्थ के समान हो जावे, वह तो अपवादमार्ग नहीं है। दिगम्बर मुद्रा धारण करके कमण्डलु-पिच्छी सहित आहार-विहार-उपदेशादिक में प्रवर्ते, वह अपवादमार्ग है.... वह अपवादमार्ग है। कौन? **दिगम्बर मुद्रा धारण करके....** नग्न। **कमण्डलु-पिच्छी सहित आहार-**

विहार-उपदेशादिक में प्रवर्ते वह अपवादमार्ग है और सब प्रवृत्ति को छोड़कर ध्यानस्थ हो शुद्धोपयोग में लीन हो जाने को उत्सर्गमार्ग कहा है। प्रवचनसार में है। उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग।

इस प्रकार मुनिपद अपने से सधता न जानकर.... देखो आया। **किसलिए शिथिलाचार का पोषण करना?** पालन न कर सके तो सम्यग्दर्शन रखना। ऐसा मानना मुनिपना, है नहीं मुनिपना न। **मुनिपद की सामर्थ्य न हो तो श्रावकधर्म ही का पालन करना,....** उसमें कहाँ दिक्कत है? तो **परम्परा से इसी से सिद्धि हो जाएगी।** लो, परम्परा की व्याख्या की। श्रावकपने से परम्परा अर्थात् फिर आगे बढ़कर जायेगा, उसका नाम परम्परा, ऐसा। श्रावकपने द्वारा मोक्ष जायेगा, ऐसा है? यह परम्परा शब्द की व्याख्या देखो! श्रावकपना चौथे या पाँचवें गुणस्थान में रहे तो उसे परम्परा मोक्ष होगा अर्थात् फिर छोड़कर चारित्र से मुक्ति होगी। कहीं चौथे-पाँचवें की दशा से मुक्ति होगी? इसी प्रकार व्यवहार से परम्परा जो कहा है, उसका इस प्रमाण अर्थ करना। यह तो डाला है मक्खनलालजी ने बहुत डाला है। व्यवहार से, व्यवहार से, व्रत और नियम से परम्परा मोक्ष है।

यहाँ देखो न कितना सरस लिखा है! **श्रावकधर्म का पालन करना, परम्परा से इसी से सिद्धि हो जावेगी।** इसका अर्थ कि श्रावकपने की दशा सम्यग्दर्शन की दशा है, वह आगे चारित्र प्राप्त करके केवल (ज्ञान) प्राप्त करेगा। कहीं श्रावक की दशा में से केवल (ज्ञान) पायेगा? देखो! परम्परा की गजब व्याख्या! **जिनसूत्र की यथार्थ श्रद्धा रखने से सिद्धि है....** भगवान की, शास्त्र कहे उसकी बराबर श्रद्धा रखना। समझ में आया? जैसा मुनिमार्ग है, ऐसी उसे बराबर श्रद्धा चाहिए। भगवान ने यही कहा जिनसूत्र में तो। वह जिनसूत्र ही नहीं। ऐसा कहते हैं। ... वह जिनसूत्र ही नहीं। आहाहा! भारी कठिन लगे। कहो, तम्बोली! यह क्या तुम्हारे भाई को यह सब वहाँ? बेचारे नरम हैं परन्तु अब छोड़ नहीं सकते। कहने आये थे कि सब ऐसा है। गलत मार्ग है। लोगों का कल्याण रुक जाता है। व्रत और तप से धर्म नहीं माननेवाले का। आहाहा! कहाँ जायेंगे मिथ्यात्व के पोषक? उसे ऐसा मार्ग! आहाहा! ... बहुत कठिन।

भगवान के कहे हुए सिद्धान्त की **यथार्थ श्रद्धा रखने से सिद्धि है....** उसमें

मुनिपने की दशा भगवान के सूत्र में तो ऐसी नग्न (दिगम्बर) कही है। अज्ञानी के शास्त्र में वस्त्र-पात्र डालकर कहा है, वह कल्पित है, मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए हैं। आहाहा! कठिन काम भारी! इस ओर तो बड़ा भाग वह स्थानकवासी और श्वेताम्बर। पृष्ठ ५४ है। **इसके बिना अन्य क्रिया सब ही संसारमार्ग है,....** आहाहा! जिनसूत्र की वीतराग की श्रद्धा रखे बिना दूसरी क्रियायें चाहे जो करे, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, मन्दिर और धूमधाम बनावे सब, वह **सब ही संसारमार्ग है,....** वह भटकने का मार्ग है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत सरस टीका लिखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत सरस। प्रमाण ऐसा कैसा दिया, देखो न! परम्परा की व्याख्या कैसी की! ... वही मोक्ष स्थिति है। चौथे गुणस्थानवाला समकिती श्रद्धा रखे, मार्ग रखे। मार्ग तो यह है। तो परम्परा का कहेंगे कि बाद में उसे छोड़कर वीतराग चारित्र ग्रहण करके लेगा, ऐसा। इससे भाव से मोक्ष जायेगा? आहाहा! आगे बढ़कर। उस व्यवहार से मोक्ष होगा। आहाहा! **मोक्षमार्ग नहीं है—इस प्रकार जानना।**

★ ★ ★

गाथा - १९

आगे इस ही का समर्थन करते हैं:—यह बात गाथा में विशेष ... आयेगा।

जस्स परिग्गहगहणं, अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे, परिगहरहिओ णिरायारो ॥१९ ॥

आहाहा! **जिसके मत में लिंग जो वेश उसके परिग्रह का अल्प तथा बहुत ग्रहण करना कहा है....** जिसके वेश में थोड़ा भी वस्त्र-पात्र रखना कहा है, **यह मत तथा उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है,....** वह मत और उसकी श्रद्धा करनेवाले सब निन्दनीय हैं। वह मत भी निन्दनीय है और उसकी मान्यता करनेवाले भी निन्दनीय हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग है। जिसके मत में लिंग जो वेश, उसमें कुछ भी वस्त्र-पात्र आदि परवस्तु रखने की, लकड़ी का बड़ा दण्ड रखना और....

मुमुक्षु : कुत्ते हों तो क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुत्ते हों तो। यह तो वेश ही कुवेश है। ऐसा मत और उसकी श्रद्धावाले दोनों निन्दनीय हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट बात करते हैं यहाँ तो देखो! आहाहा! गर्हित-निन्दनीय है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी दोनों निन्दनीय धर्म है और तुलसी—तेरापंथी। तीनों वीतराग के मार्ग की अपेक्षा से निन्दनीय धर्म है। ऐसा मार्ग है, भाई! व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं, व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं, व्यक्ति के प्रति समभाव रखकर यह स्वरूप मानना। आहाहा! अरे! ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ऐसा स्पष्ट करे और बचाव करके (दूसरे) दूसरा करे। मार्ग नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

'सो गरहिउ जिणवयणे' ऐसा कहते हैं। **क्योंकि जिनवचन में परिग्रहरहित ही निरागार है,....** जिसमें मुनिदशा प्रचुर आनन्द के वेदन में पड़ा होता है, तब बाहर आवे तो उसे पंच महाव्रतादि के विकल्प होते हैं। और मोरपिच्छी, कमण्डल आदि से काम लेने की उसकी वृत्ति होती है। बस। इसके अतिरिक्त जिनवचन में दूसरा कहे, वह निन्दायोग्य है। **मत तथा उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है, निन्दायोग्य हैं, क्योंकि जिनवचन में परिग्रहरहित ही निरागार है,....** वीतराग की वाणी में निर्ग्रन्थपना वीतरागदशा, नग्नदशा, उसे मुनिपना और मोक्ष के मार्ग की एकता कही है। **निर्दोष मुनि है,...** लो! वह निर्दोष मुनि हैं। आहाहा! उसकी श्रद्धा तो करे कि जिनवचन से विरुद्ध की श्रद्धा तो मरी जायेगा। वीतराग की आज्ञा से विरुद्ध की श्रद्धा से विरुद्ध की श्रद्धा, बापू! तेरा (भव) का अन्त नहीं आयेगा। दुनिया मानेगी। ओहोहो! क्या त्यागी हुए, कैसे मुनि! स्त्री, पुत्र छोड़कर। एक वस्त्र का, आयेगा आगे, टुकड़ा रखकर हो तीर्थंकर, परन्तु मुक्ति नहीं पायेगा। तीर्थंकर हो वह तीन ज्ञान के धनी, जहाँ तक वस्त्र रखेगा, तब तक मुनिपना नहीं आयेगा। मुक्ति नहीं होगी। तीर्थंकर को नहीं होगी। आहाहा! ऐसा मार्ग है। दुनिया के साथ मिलान खाना कठिन पड़ता है।

मुमुक्षु : कैसे मिलान खाये ? मिलान खाये ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलान किसका खाये परन्तु ? ...आहाहा! सूत की डोरी। लो न, क्या कहलाता है वह ? नेतर। नेतर। नेतर की सोय, छाल। दोनों को लपेटकर कहीं डोरी होती है ? इसी प्रकार भगवान की वाणी और अज्ञानी की वाणी दोनों को इकट्ठा

करके डोरी होती है ? समन्वय होगा ? अभी समन्वय बहुत चला है। किसी के साथ विरोध नहीं करना। शान्ति से....

मुमुक्षु : इसका नाम समन्वय। किसी के प्रति विरोध नहीं करना, द्वेष नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी भगवान आत्मा है। साधर्मी रूप से आत्मा साधर्मी है। आत्मा रूप से, हों! पर्यायरूप से नहीं। यह कहा है न ? सब आत्मायें वन्दनीक हैं, ऐसा कहा है। वस्तु है, वह तो वन्दनीक है न! वस्तु है वह, हों! आत्मा... वह तो वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसे वन्दनीक कहा है। फिर ऐसा करते हुए आगे बढ़े तो उससे पंच परमेष्ठी वन्दनीक, उसमें से दो निकालकर अरिहन्त-सिद्ध, उसमें से निकालकर अरिहन्त, उसमें से निकालकर आत्मा है। आता है न। सब आत्मा है। आहाहा!

निर्विकल्प रस से भरपूर... निर्विकल्प चैतन्यरस से भरे प्रभु। आहाहा! वह आत्मा। वह आत्मा तो साधर्मी है। आहाहा! धर्म आत्मा की अपेक्षा से, हों! पर्याय की अपेक्षा से अन्तर है, इतना अन्तर जानना। आहाहा! सर्व जीव है... नहीं आता ? ज्ञानसम। उसमें योगसार में। वह सर्व जीव ज्ञान स्वरूप से कहा है न! भूतार्थ को... जाननस्वभावी वस्तु है सब, समभाव कर। उसमें अन्तर है, वह पर्याय में अन्तर टाला है। अब फिर पर्याय का पहले ज्ञान कर। आहाहा!

भावार्थः—श्वेताम्बरादिक के कल्पित सूत्रों में.... सब आचारांग और सूयगडांग और ठाणांग और समवाय भगवान के नाम से चढ़ाये हैं। **कल्पित सूत्रों में वेश में अल्प-बहुत परिग्रह का ग्रहण कहा है,....** उसकी बात है, कहते हैं। **वह सिद्धान्त तथा उसके श्रद्धानी निंद्य है।** आहाहा! बड़े आचार्य नाम धरावे, उपाध्याय नाम धरावे, गणी नाम धरावे। यह क्या है इसमें ? यह तो व्रत और तप से धर्म न माने, उसे अधिक कठिन लगता है, लोगों को। दिगम्बर धर्म, वह सम्प्रदाय नहीं। वह वस्तु का स्वरूप ही इस प्रकार का है। आहाहा! अब दूसरे भी यह पावे, ऐसी जिसे भावना हो, वह लड़कियों को दूसरे में डाले, इसका अर्थ क्या हुआ ? ऐई! उसे अन्दर का धर्म का प्रेम नहीं। बात यह है। जो ऐसा सत्यधर्म का स्वयं को बैठा हो तो दूसरों को धर्म बैठाने की बात माने न ? आहाहा! उसके बदले लड़कियों को डाले....

मुमुक्षु : लड़की और गाय जहाँ ले जाये, वहाँ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाये परन्तु डालनेवाला कौन? ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! उसे धर्म की श्रद्धा नहीं। ऐसी बात है यह।

यहाँ तो वस्तुस्थिति वीतराग के मार्ग में जो आयी है, ऐसी यदि तुझे बैठी हो तो दूसरे व्यक्ति भी वह धर्म बैठे ऐसी तेरी श्रद्धा होगी या नहीं? तो उसने तेरे घर में ऐसी लड़की, उसे तू दूसरे में डाले, दूसरे लोगों को धर्म पावे तो कहते हैं यह पावे तो अच्छा और घर की लड़की यह धर्म न पावे और अन्यत्र डाल दे। दरकार नहीं है। समझ में आया? लो, ऐसी बात है यह तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है। अरे! ऐसा वीतराग का मार्ग। वीतराग परमेश्वर ने कहा, वह जिनसूत्र में यह कहा। ऐसी जिसे अन्तर श्रद्धा हो। भले व्यवहार श्रद्धा अभी। परन्तु उसे यह दूसरे... स्वयं पावे, दूसरे भी ऐसा पावे, ऐसा उसे होगा या नहीं? या दूसरे को इससे भ्रष्ट करना, ऐसा होगा? बड़ा अन्तर है, हों! यह जरा। ऐई! पैसे के लिये नहीं। वह समान वर खोजे इज्जतदार जरा। और पढ़ा-गुना हो न। माने। अपने को ऐसा कि यहाँ आने देंगे। आने दिया। फिर कर डाले आगे-पीछे। यह थोड़ा-बहुत रखे वर्ष। फिर पक्की कण्ठी बँधायेंगे और पक्के श्वेताम्बर होंगे। आहाहा!

हुआ था न, वह भाई नहीं वडिया? वह भाई गुजर गये न? कैसे चुनीलाल। वडिया-वडिया अपने उत्तमचन्द। वह चुनीलाल गुजर गये, उस चुनीलाल के घर में उत्तमचन्द की मौसी की पुत्री है। उत्तमचन्द अपने नहीं, वडियावाले नहीं? रायचन्द। वह फिर आवे, अपने यहाँ आवास रखे। वह व्याख्यान में सब आवे। फिर एक बार पूछा उसकी मौसी की पुत्री सगी न। क्यों बहिन यह बात कैसी लगती है? बात तो ठीक लगती है। परन्तु हम हमारा धर्म छोड़ेंगे नहीं। हमारा जो वैष्णव धर्म है, वह कभी छोड़ेंगे नहीं। चुनीभाई थे न, गुजर गये बेचारे। ...उनके मकान में ही उतरते थे। वडिया। ऐई! भाई आये हैं न यह। वडिया... वडिया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजर गये ? असाध्य।

यहाँ तो ऐसा कहना है, भाई! जिसे जिनसूत्र, जिसे जिनवाणी और जिसे जैन परमेश्वर रुचे हैं, उसे तो यह बात दूसरे को भी रुचे, ऐसी भावना हो कि उसमें से भ्रष्ट करके घर की प्रिय पुत्री को डाल दे दूसरे में ? थोड़े समय पश्चात् आने देंगे... आने देंगे... आने देंगे, परन्तु कर डालेंगे ठीक से फिर। हाँ, अपने तो यह सत्य बात है। यह तो अवसर आया, इसलिए जरा। ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह सिद्धान्त और उसके श्रद्धानी निन्द्य है। आहाहा! ऐसे निन्द्य मार्ग में ऐसे मार्गवालों में से बेचारे जब... जाओ खड्डे में गिरो। तुम्हारा चाहे जो हो। इसका अर्थ मेरा भी चाहे जो हो। बात ऐसी है, हों! उसका योगफल खोजे तो ऐसा निकलता है।

मुमुक्षु : अभी तो कॉलेज में पसन्दगी कर लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अलग बात है। वह दूसरी बात है। यह तो सब ख्याल में नहीं ? उसमें माँ-बाप बेचारे क्या करें ? वह तो सीधा कर ले, ऐसे बहुत दृष्टान्त सुने हैं न। अपने घर में ही सुने हैं न। बहिन की पुत्री अपने, उसके बुआ की पुत्री... वह पढ़ी-गुनी सब हुआ। गयी वहाँ हैदराबाद। कोई लड़का है। आये थे वहाँ अहमदाबाद, हों! हैदराबाद। अब उसमें माँ-बाप क्या करे ? उसमें नहीं। वह अलग बात है। चन्दुभाई के बुआ का पुत्र। बहिन है न। अहमदाबाद है। वह वहाँ आये थे। हम जहाँ उतरे थे न बाबूभाई के घर में। वह लड़की, बहिन आये थे और उनकी बहू आयी थी। दोनों आये। ५१ रुपये रखे। ... बुआ की पुत्री। उसने विवाह किया है किसी को पूछे बिना। विवाह में कोई व्यक्ति नहीं। नहीं माँ, भाई या कोई नहीं। जाओ। उसमें क्या करें माँ-बाप ?

मुमुक्षु : अपवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपवाद नहीं। वह अपवाद भी उसमें नहीं। वह दूसरा करे उसमें अपवाद भी नहीं। वह अपवाद भी नहीं कहलाता। आहाहा! दूसरे करें, वह अपवाद नहीं। वस्तु हो ऐसी कहलाये न। वह करे अपने आप, उसमें इसे क्या ? उसे नहीं करना। यह बात है। ऐई! यहाँ तो भाई जितने प्रतिशत होंगे उतने आयेंगे। आहाहा! जादवजीभाई! ऐसा परमात्मा का मार्ग! आहाहा! भाग्य है न, जगत को सुनने को मिला।

उसकी श्रद्धा और ज्ञान करनेवाले, वे बराबर ऐसे निन्द्य काम न करने दे। ऐसी बात है, भाई! परन्तु लोगों को अपनी इज्जत प्रमाण, अच्छी इज्जत हो, पैसा कुछ ठीक हो, वह खोजने जाये, जय नारायण। यहाँ तो वह **'गरहिऊ'** आया न, उस ऊपर से जरा। आहाहा! जिनवचन में सूत्र से विरोध मान्यतावाले और सूत्र से विरुद्ध सिद्धान्त, वे सब निन्दनीय हैं। आहाहा!

श्वेताम्बरादिक के कल्पित सूत्रों में वेश में अल्प-बहुत परिग्रह का ग्रहण कहा है, वह सिद्धान्त तथा उसके श्रद्धानी निन्द्य हैं। जिनवचन में परिग्रहरहित को ही निर्दोष मुनि कहा है। निन्द्य के सामने निर्दोष। वीतरागमार्ग में—तीन लोक का नाथ परमात्मा, उनके मार्ग में तो मुनिपना वस्त्र और पात्र के कण बिना का—रहित को ही निर्दोष मुनि कहा है। आहाहा! उसे निर्दोष कहते हैं। वे सदोष हैं, इसलिए निन्द्य हैं। यह श्रद्धा सुधारने की बात है यह। समझ में आया? वह अलोखाचर थे न अलोखाचर जसदण। बड़े दरबार। तीन लाख की आमदनी तब, हों। अंक तो यह बढ़ गया न अब तो बाहर। तो वह पुत्री दे वह गरीब लड़के को देखकर दे। परन्तु वह रिवाज भी सही। बड़े साधारण को दे। साधारण को। परन्तु यह तो इस प्रकार से खोजे। परन्तु उसे ऐसा खोजे वह कि उसे उसके—लड़की के आधीन रहे। आहाहा! एक था नहीं मोढ़का का क्या नाम? मोढ़का का थे। आते मेरे पास उसके दामाद। बकरा चराता भाई! बकरा चराता और लड़का अच्छा था। इसलिए उसने उसे पुत्री दी। वह हमारे पास बोटाद में बहुत आता था। मोढुका का है। नाम है। वह बेचारा कहे, हम तो ऐसे एक जरा उसमें दरबार की ओर से कन्या मिली, उसमें हम घुस गये हैं। होशियार था। नाम भूल गये। ... नाम था। वह....

मुमुक्षु : काठी में दो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो हों। अल्प साधारण, उसको दे। परन्तु वह इस प्रकार से दे। उसे कन्या दे, उसे एकाध गाँव दे। इसलिए उसका धनी और निर्वाह मिले।

मुमुक्षु : बाई जीवित हो तब तक।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित तब तक। फिर ले लेवे जमींदार। नहीं, फिर वह पैदा हुआ हो न सब? २५-५० वर्ष रहा हो उसमें से पैसा-बैसा हुए हों वे रहे। जमीन दी हो

वह ले लेवे। यह काळासर है, मोढुका है। मोढुका का कौन नहीं प्रेमचन्दभाई? मोढ़का का कौन वह? ...दामाद। नाम आता था। अपने पास बहुत आता वहाँ बोटाद आता था बेचारा। वह भी ऐसा कहे कि पुत्री को स्वतन्त्र रहे और कोई दूसरा आधीन न कर ले और इसके आधीन रहे, इसके लिये। तो धर्मीजीवी मान्यतावाला तो पुत्री को धर्म रहे ऐसी स्थिति का भाव हो न उसे। वरना उसे धर्म की कीमत ही नहीं, इसका अर्थ यह (हुआ)। समझ में आया? यह शास्त्र में आता है, हों! वह समगति। समगति आता है। अपने जैसा धर्म हो पाया हुआ हो, उसे दे। ऐसा शास्त्र में लेख आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन जो दुनिया से पूरा... आहाहा!

यहा बाह्य वस्त्रादि रखकर मुनिपना माने, वह वन्दन के योग्य नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव हैं। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! काठियावाड़ में इनके दो जोर, उसमें यह मार्ग आया अब अन्दर में। आहाहा! ...तेरी मौसी की पुत्री और चिमनभाई की बहू। उसे पूछा कि तुमने... हाँ हम आते हैं सही परन्तु हमारा मार्ग वैष्णव नहीं छोड़ेंगे। मार्ग हम वैष्णव है हमारा। हमारी कण्ठी और मार्ग हमारा यह है। कहो,...

मुमुक्षु : नारणगढ़वाले को। ....अग्रवाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न अग्रवाल। देते हैं। यह तो भाई जिसे धर्म का, सूत्र का, सिद्धान्त का, वीतराग का, वाणी का जिसे प्रेम है, उसे तो दूसरे जीव प्रेम उसमें पावे, ऐसी बात हो या नहीं? इतनी बात है। दूसरे की पुत्री लेना, वह अलग वस्तु है। वह तो बेचारी पावे समुचा यह। परन्तु ऐसा उसे प्रेम ही हो अन्दर। आहाहा! स्वयं मुश्किल-मुश्किल से पाँच, दस, पन्द्रह वर्ष में सुनकर बात बैठी हो कि यह मार्ग सच्चा है। अब उस बेचारी को दूसरे मार्ग में डालना। क्या हो? ऐसी बात है, बापू! वस्तु का स्वरूप इस प्रकार से है, हों! वह संसारमार्ग तो भी मार्ग में भी यह रीति है।

★ ★ ★

गाथा - २०

पंचमहव्वयजुत्तो, तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो, सो होदि हु वंदणिज्जो य॥२०॥

इसका नहीं बनाया, नहीं? गुजराती नहीं इसका। अष्टपाहुड़ का इसमें किया है इनने देखो। इन्होंने किया है। अगासवालों ने किया है। हरिगीत बनाया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब नहीं। यह तो इन्होंने गुजराती काव्य बनाया है। भाई ने काव्य बनाये हैं। अगासवालों ने काव्य बनाये हैं। इन्होंने काव्य बनाये हैं या नहीं? 'यथाजात स्वरूप जे तलमात्र... करे जो ग्रहे अल्प अधिक कीमती निगोद... लहे।' 'जे लिंगमां कदी अल्प के बहु परिग्रह स्वीकार जो तो अे जिनवचनमां परिग्रह रहित अणगारतो।' इन्होंने किया हुआ है यह सब। थोड़ासा अन्तर होगा। ठीक करते हैं। ... स्वाध्याय जैसा करते हैं। यह। आया न!

मुमुक्षु : पण्डितजी ने एक-दो पृष्ठ किये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किये हैं। यह तो दिखा गये हैं। परन्तु अभी तो पूरा कर डाले तो चले तो सही। उसमें देखो न, यह सब किया है। स्वाध्याय में काम आवे।

अर्थः—जो मुनि पंच महाव्रत युक्त हो.... जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित और तीन कषाय के अभावसहित **पंच महाव्रत युक्त हो और तीन गुप्ति संयुक्त हो, वह संयत है,....** आहाहा! **संयमवान है और निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है....** वह निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है। **वह ही प्रगट निश्चय से वन्दनेयोग्य है।** धर्म में साधुरूप से वन्दन करनेयोग्य उसे होताा है। आहाहा!

भावार्थः—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रत सहित हो और मन, वचन, कायरूप तीन गुप्तिसहित हो.... व्यवहार डाला है। **वह संयमी है, वह निर्ग्रन्थस्वरूप है,....** निर्ग्रन्थ। **वही वन्दनेयोग्य है।** साधुरूप से, मुनिरूप से वह वन्दनयोग्य है। दूसरे ऐसे वस्त्र आदि (सहित के) मुनि वन्दनयोग्य हैं नहीं।

आहाहा! भारी कठिन मार्ग है यह। यह तो ... गुप्त हो गया है न! अकेला पंथ। **वही वन्दनेयोग्य है।** आहाहा!

जो कुछ अल्प-बहुत परिग्रह रखे.... थोड़ा और बहुत भी परिग्रह रखे तो **सो महाव्रती संयमी नहीं है,....** वह महाव्रती और संयमी नहीं। **यह मोक्षमार्ग नहीं है और गृहस्थ के समान भी नहीं है।** वह तो गृहस्थ के समान भी नहीं। ऐसा रखकर माने, वह तो गृहस्थरूप से नहीं। गृहस्थ तो बेचारे रखे और माने कि हम गृहस्थ हैं। हम मुनि नहीं। हमारा मार्ग मोक्ष का नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान जितना हमारा स्वरूप अस्थिरता जितना मोक्षमार्ग है। चारित्र हमारे पास नहीं है। ऐसा तो वह कहे। यह तो गृहस्थ समान भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पाँच समिति।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखकर चलना वह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें सब आ गया। ... सब वहाँ। तीन गुप्ति, आ गया न उसमें?

सो महाव्रती संयमी नहीं है, यह मोक्षमार्ग नहीं है और गृहस्थ के समान भी नहीं है। आहाहा! वस्त्र और पात्र...

मुमुक्षु : .... हमसे तो अच्छे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हमसे अच्छे। बात सच्ची। तेरी मिथ्यादृष्टि... आहाहा! वह देखो न दूसरे को सबके साथ समन्वय करना। अब यह किस प्रकार से समन्वय हो? यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं कि ऐसे हों, वह मिथ्यादृष्टि है। जिनसूत्र से बाहर निकल गये, भगवान की वाणी दिगम्बर सिद्धान्त जो वीतराग के कहे हुए, उससे कल्पित बनाकर। अब उसे भी मिथ्यादृष्टि नहीं कहा जाये, ऐसा कहते हैं। यदि उसे मिथ्यादृष्टि कहे तो स्वयं मिथ्यादृष्टि हो जाये। अरर! काल वह काल... क्या काम करता है? यह तो धर्म की बात है। संसार की बात है? यह तो धर्म की बात है, बापू! धर्मबुद्धि से आदर करना, वह मुनि वस्त्र रखकर कहते हैं कि मिथ्यात्व होता है। आहाहा!

अब इनके वेश की बात करते हैं। वेश तो मुनि का वेश होता है जैनशासन में। दूसरा उत्कृष्ट श्रावक का वेश होता है। त्यागीरूप से वेश की बात है।

★ ★ ★

गाथा - २१

आगे कहते हैं कि पूर्वोक्त एक वेश तो मुनि का कहा अब दूसरा वेश उत्कृष्ट श्रावक का कहा है:—क्षुल्लक, ऐलक इत्यादि। त्यागी के वेशरूप की बात है, हों!

दुइयं च उत्त लिंग, उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते, समिदीभासेण मोणेण॥२१॥

आहाहा! आवे न, ऐसा डाले नहीं, यह तो आ जाये।

अर्थ:—द्वितीय लिंग अर्थात् दूसरा वेश उत्कृष्ट श्रावक जो गृहस्थ नहीं है, इस प्रकार उत्कृष्ट श्रावक का कहा है, वह उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है,.... अकेला गृहस्थाश्रम नहीं, ऐसा कहते हैं। वेश है न! यह तो वेश की बात लेनी है न! श्रावक है, वह कहीं उसका वेश नहीं। श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक। ग्यारहवीं प्रतिमा होती है। **वह भ्रमण करके भिक्षा द्वारा भोजन करे....** भ्रमण करके भिक्षा द्वारा भोजन करे। **और पत्ते अर्थात् पात्र में भोजन करे....** लो! लंगोटी... और पात्र हो, दोनों हो उसे। वह तो श्रावक है। जैनदर्शन में ऐसा रखे, उसे उत्कृष्ट श्रावक कहा है। **पात्र में भोजन करे....** लो! भोजन करे तो पात्र में करे। **तथा हाथ में करे....** वह करे भले।

समितिरूप प्रवर्तता हुआ.... यह गृहस्थ की बात है। वह समिति से ही प्रवर्ते। जीव को देखकर चले इस प्रकार से। **भाषासमितिरूप बोले अथवा मौन से रहे।** बोले तो बराबर जैसा स्वरूप है, वैसा कहे। बचाव न करे। अब ऐसा है, वह भी एक मुनिपना है। ... ऐसा नहीं करे। बराबर जैसा हो, वैसा बोले। वरना मौन रहे। आहाहा! भावार्थ आयेगा, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ९, रविवार, दिनांक-१८-११-१९७३
गाथा- २१ से २५, प्रवचन-४४

इस अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ है। २१वीं गाथा का भावार्थ। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर ने जो मार्ग कहा, वह मार्ग दिगम्बर में वह मार्ग चला आता है। अरिहन्त तीर्थंकर सर्वज्ञ महावीर प्रभु ने, जो अनन्त तीर्थंकरों ने मार्ग कहा, वह दिगम्बर धर्म में वह मार्ग चला आता है। ऐसी बात है, भाई! उसमें **एक तो मुनि का यथाजातरूप कहा....** भगवान ने-तीर्थंकरदेव ने मुनि उसे कहा कि जिसका यथाजात—माता से जन्मा हो वैसा। लिंग सहज ऐसा। यह अनादि का वीतराग का यह मार्ग है। यथाजात। वैसा माता से जन्मा, वैसा वेश मुनि को होता है। उसे वस्त्र और पात्र मुनि को होते नहीं। उसे जैनशासन में मुनि कहा जाता है। पक्षपात के कारण बहुत पंथ पड़ गये हैं। बहुत कठिनाई हो गयी है समझने के लिये तो।

दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावक का कहा,.... दूसरा रूप उत्कृष्ट श्रावक। एक कोपीन तथा एक वस्त्र धारण करे, उसे दूसरा वेश कहा गया है। ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक। **एक वस्त्र तथा कोपीनमात्र धारण करता है....** यह दूसरा वेश मुनि से नीचे। **और भिक्षा-भोजन करता है,....** और क्षुल्लक लंगोटी अथवा एक वस्त्र रखे और भिक्षा भोजन करे। **पात्र में भी भोजन करता है, और करपात्र में भी करता है,....** हाथ में भी आहार ले और पात्र हो तो उसमें भी ले। **समितिरूप वचन भी कहता है....** वीतराग ने जो मार्ग कहा, उस रीति से-समिति से वचन बोले। **मौन भी रहता है, इस प्रकार यह दूसरा वेश है।** वीतरागमार्ग में पुरुष के यह दो वेश हैं।

★ ★ ★

गाथा - २२

आगे तीसरा लिंग स्त्री का कहते हैं:—इसकी बात करते हैं।

लिंगं इत्तीणं हवदि, भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था, वत्थावरणेण भुंजेदि॥२२॥

अर्थ:—स्त्रियों का लिंग इस प्रकार है—स्त्री का वेश भगवान ने ऐसा कहा। **एक काल में भोजन करे,....** एक बार भोजन ले। **बार-बार भोजन नहीं करे, आर्यिका भी हो तो एक वस्त्र धारण करे....** आर्यिका। **और भोजन करते समय भी वस्त्र के आवरण सहित करे, नग्न नहीं हो।** यह दूसरा वेश वीतराग शास्त्र में परमात्मा ने कहा। उसे एक वस्त्र हो, सोलह हाथ का कपड़ा एक ही हो। बहुत सूक्ष्म बात है। सम्प्रदाय बहुत पड़ गये हैं। सम्प्रदाय में से सत्य वस्तु वीतराग की है वह ... उसे जाने। सूक्ष्म बात है।

भावार्थ:—स्त्री आर्यिका भी हो और क्षुल्लिका भी हो; वे दोनों ही भोजन तो दिन में एक बार ही करें,.... आर्यिका हो, वह एक वस्त्र धारण किये हुए ही भोजन करे नग्न नहीं हो। इस प्रकार तीसरा स्त्री का लिंग है। तीन लिंग वीतराग शासन में कहे हैं। एक मुनि नग्न हों, एक उत्कृष्ट श्रावक ग्यारह प्रतिमाधारी कोपीन और एक वस्त्र रखे और एक स्त्री वस्त्र रखे। एक। एक वस्त्र। यह श्वेताम्बर बाद में निकले हैं दिगम्बर में से और श्वेताम्बर में से फिर स्थानकवासी निकले हैं। वह जैनशासन से बाहर हुए हैं। बहुत कठिन बात है। दो हजार वर्ष पहले से। श्वेताम्बर पंथ निकला, तब से जैनशासन के बाहर है वह । सूक्ष्म बात है, भगवान! इस बात को बैठाना। ऐई! जयन्तीभाई!

तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने अनादि मार्ग तो नग्नपना शरीर का, अन्दर में तीन कषाय का अभाव और पंच महाव्रतादि के विकल्प, उसे मुनि कहा है भगवान ने तो। कहो, जयन्तीभाई! श्वेताम्बर निकले बारह (वर्ष का) बड़ा दुष्काल पड़ा। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में। उस बारह वर्ष दुष्काल में श्वेताम्बर पंथ दिगम्बर में से निकला। उन्होंने सब कल्पितसूत्र बनाये। वे भगवान के कहे हुए नहीं। ३२ सूत्र, ४५ और ८४ ये तीन प्रकार हैं। यह सब कल्पित शास्त्र है। समकिती के कहे हुए नहीं। सूक्ष्म बात, भगवान! बहुत कठिन। गिरधरभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर बने। किसी प्रकार धर्म नाम धराता हो तो फिर कुछ करे तो सही न। भगवान के पश्चात् छह सौ वर्ष में सनातन दिगम्बर धर्म सर्वज्ञ ने कहा हुआ, उसमें से शासन से भ्रष्ट होकर पंथ निकला है और कल्पित सूत्र बनाये ८४। ४५ श्वेताम्बर ने मान्य रखे। उसमें से स्थानकवासी तो अभी निकले हैं ५०० वर्ष पहले। श्वेताम्बर में से निकले। उन्होंने ३२ सूत्र मान्य रखे ८४ में से। बनाये थे ८४। अरे! यह बात कहाँ कहे ? किसे कहे ? सुनना कठिन पड़े। जयन्तीभाई!

यहाँ तो कहते हैं त्रिलोकनाथ जैनशासन परमात्मा अनन्त तीर्थंकरों ने जो मार्ग कहा, वह तो नग्न दिगम्बर मुनि का मार्ग है। वस्त्र का एक धागा रखकर मुनिपना माने, मनावे, मानते हुए को भला जाने। ऐसी गाथा आ गयी है १८ में। वह निगोद की गति है, उसे एकेन्द्रिय (गति है)। यह अधिक स्पष्ट करते हैं २३ में।

★ ★ ★

गाथा - २३

आगे कहते हैं कि—वस्त्र धारक के मोक्ष नहीं है, मोक्षमार्ग नग्नपना ही है:—
आहाहा! अकेला नग्न नहीं, हों! अन्तर में आनन्द की दशा प्रगट हो उत्कृष्टता बहुत। आत्मा के आनन्द का वेदन जिसे थोड़ा अनुभव आनन्द का हो, अतीन्द्रिय आनन्द का। सिद्ध में जो आनन्द है, ऐसा ही आनन्द उसे होता है। इतना नहीं परन्तु वैसा। आहाहा! मुनि किसे कहें ? उसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते हैं, पंच महाव्रत, छह आवश्यक (आदि)। वह राग है, इतना होता है। बाह्य में नग्नदशा होती है। इसके अतिरिक्त उसे मोक्ष नहीं। वस्त्र का टुकड़ा रखकर भी मुनिपना हो नहीं सकता।

'ण वि सिज्झदि वत्थधरो' कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, यह उनके कथन हैं। आहाहा! संवत् ४९ में यह कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि भरतक्षेत्र में यहाँ हुए। और भगवान परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में सीमन्धर प्रभु। भगवान विराजते हैं मनुष्यरूप से। पाँच सौ धनुष का देह है। सीमन्धर भगवान। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७०

लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं, ऐसे करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है, विराजते हैं। उस समय संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। वहाँ आठ दिन रहकर आकर यह शास्त्र बनाये हैं। कहो, सुमनभाई! बहुत बदलना भारी कठिन।

परन्तु इतना तो कहो कि यह परिवर्तन करके बैठे, तब इसका कुछ कारण होगा या नहीं? स्थानकवासी में तो बहुत मान था। परन्तु मार्ग ही दूसरा अन्दर। यह मार्ग ही नहीं, कहा। यह मार्ग है अन्दर से। '**ण वि सिज्झदि वत्थधरो**' यह शब्द सब है, 'नग्गे मोक्खो भणियो' श्रीमद् में। दो बार है।

ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

अर्थः—जिनशासन में.... जैनशासन—त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के शासन में **इस प्रकार कहा है कि—वस्त्र को धारण करनेवाला सीझता नहीं है,...** वस्त्र धारण हो, उसे मुनिपना नहीं होता, उसे मुक्ति नहीं हो सकती। आहाहा! अवलदोम (अटपटा) मार्ग पूरा फेरफार। ऐई!

मुमुक्षु : मेरा जन्म भी वहाँ ही हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका जन्म वहाँ ही है। इस देह का जन्म वहाँ था। हमारे पिताजी के पिताजी तो प्रमुख। गढडा के सेठिया... शरीर। गृहस्थ व्यक्ति। ...गृहस्थ व्यक्ति ... राजा की बात है। गृहस्थ वह क्या कहलाये? रुई की पेढ़ी खोले। आदमी भेजे। दो महीने का ब्याज दो हजार पैदा करे... तुम्हारे जैसे मजदूर नहीं। वे कहते थे। बुढ़िया—हमारे पिताजी की माँ... दो महीने के दो हजार पैदा करे। दस महीने सगे-सम्बन्धियों में जाये, सगे-सम्बन्धी यहाँ आवे। तुम्हारे तो बारह महीने मजदूरी।

मुमुक्षु : ....करोड़ों रुपये कहाँ से हों?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब करोड़ हो या धूल हो, वह तो पूर्व का पुण्य हो तो होता है वहाँ। वह कहीं होशियारी से, व्यवस्था अच्छी करे इसलिए पैसा होता है? वह तो अनन्त पूर्व का पुण्य पड़ा हो और यदि गलने लगे तो इतना संयोग दिखाई दे। उसमें पैसे से क्या हुआ? करोड़ और अरबोंपति है अभी। वह तो यह बनिया में। दो तो बड़े

अरबपति। एक तो मर गया अभी। शान्तिलाल खुशाल। पानसणावाला नहीं ? अरबोंपति। दस मिनिट में मर गया मुम्बई अभी। धूल में क्या करे वहाँ ? चालीस लाख का तो बँगला है। लाख-लाख की आमदनी है प्रतिदिन की लाख की, हों! एक-एक लाख की। उसमें क्या धूल में ? अब वह तो पूर्व का पुण्य हो तो जलकर राख हो जाये। बाहर से दिखाई दे।

यदि तीर्थंकर भी हो तो.... आहाहा! **तो जब तक गृहस्थ रहे, तब तक मोक्ष नहीं पाता है,....** जब तक वस्त्र रखे और गृहस्थपना है। वहाँ तक उसे वस्त्रसहित में मुनिपना नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! तीर्थंकर भी हो। दूसरे केवली और सामान्य मुनियों की तो क्या बात ? **तीर्थंकर भी हो तो, जब तक गृहस्थ रहे, तब तक मोक्ष नहीं पाता है, दीक्षा लेकर दिगम्बररूप धारण करे....** श्वेताम्बर में ऐसा आता है कि भगवान ने दीक्षा ली और इन्द्र ने वस्त्र दिया। सब कल्पित शास्त्र बनाये। वस्त्र उसने दिया। वस्त्र होता ही नहीं। इन्द्र ने बारह महीने दिया, रहा, फिर बारह महीने में हट गया, गिर गया। ऐसा कहते हैं। श्वेताम्बर में और इससे अधिक कहते हैं। कल्पसूत्र में। दिया था, फिर उसके मामा को क्या कहलाये ? ब्राह्मण मित्र था, वह आया तो आधा फाड़कर उसे दिया। यह सब गप्प-गप्प। सब ऐसी कल्पना। क्या हो परन्तु अभी ? लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती सत्य शोधने की। होली पूरे दिन कमाना... कमाना... कमाना... कमाना... २०-२२ घण्टे वहाँ सुहावे। एक-दो घण्टे वापस कहीं सुनने जाये वहाँ वापस ऐसी की ऐसी उल्टी बातें मिले। उसे बेचारे को निर्णय करने का समय नहीं ऐसे मनुष्यभव में।

लिखा है श्रीमद् ने। वहाँ (सुनने) घण्टे भर जाये वहाँ उसे कुगुरु लूट लेते हैं उल्टी बातें करके। आहाहा! श्रीमद् ने ऐसा लिखा है। अरे! ऐसा मनुष्यदेह चला जाता है। आयुष्य क्षण-क्षण में मृत्यु के समीप जाता है। उसमें वीतराग ने कहा हुआ मार्ग, उसे जानने में, निर्णय में नहीं, उसका क्या होगा, बापू! यह वहाँ कहाँ कोई सिफारिश बाहर की काम आवे, ऐसी नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, **दीक्षा लेकर दिगम्बररूप धारण करे, तब मोक्ष पावे, क्योंकि नग्नपना**

ही मोक्षमार्ग है,.... आहाहा! **शेष सब लिंग उन्मार्ग है।** वस्त्रसहित मुनिपना माने, मनावे, वह सब उन्मार्ग—वीतरागमार्ग से उल्टा मार्ग है। तीन लोक के नाथ ने कहे हुए मार्ग से शत्रुओं ने खड़ा किया हुआ विरुद्ध मार्ग है। आहाहा! नवनीतभाई! ऐसा है। श्रीमद् ने लिखा है। यह शब्द पड़ा है वहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ... नग्गे मोक्खो भणियो। आहाहा! अकेली नग्नदशा नहीं। अन्तर में आनन्द का अनुभव होकर सम्यग्दर्शन। यह शरीर, वाणी, मन से भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग से भिन्न और वर्तमान ज्ञान की पर्याय को अन्तर में झुकाकर जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, ऐसा समकिती, वह गृहस्थाश्रम में धर्मी कहलाता है। परन्तु जब वह साधु हो, तब अन्तर में वस्तु में पूर्णानन्द का पिण्ड प्रभु है, उस पूर्णानन्द में बहुत एकाग्र होता है। इसलिए उसकी पर्याय—वर्तमान दशा में अतीन्द्रिय आनन्द की लहरें आती हैं। ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द की लहरसहित जिसे बाह्य में नग्नदशा हो, उसे जैनशासन में मुनि कहा है। ऐसा भारी कठिन काम, भाई! ...भाई! ऐसा है।

नग्नपना ही मोक्षमार्ग है,.... है न पाठ, देखो न! '**णग्गो विमोक्खमग्गो**' नागा बादशाह से आघा। आहाहा! धन्य अवतार जिसका। जिसे चारित्र प्रगट हुआ है, उसकी दशा शरीर में नग्न हो जाती है। वस्त्र रखे और चारित्र हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत डाँवाडोल हो गया है और बहुत डाँवाडोल हो गया है। इसलिए बेचारे साधारण प्राणी को... एक तो कमाने में फँसकर दो-पाँच हजार पैदा हो, दस हजार (पैदा हो)। वहाँ प्रसन्न हो जाता है। महीने में दो हजार पैदा हो तो, ओहो! अपने पच्चीस हजार की आमदनी, पाँच-दस लाख की पूँजी है। लड़के भी अब कमाने में चढ़ गये हैं। अपने सफल। सेठ! धूल में भी नहीं सफल, सुन न अब! हैरान होकर मर गया ऐसा का ऐसा अनन्त काल में। और धर्म के बहाने मिले तब उसे सब ऐसी बातें मिले। आहाहा! वस्त्रसहित मुनिपना, वस्त्रसहित (स्त्री) साध्वी, यह सब बातें जैनशासन से विरुद्ध हैं। समझ में आया? जादवजीभाई! ऐसा है यह। है इसमें? पुस्तक है या नहीं?

मुमुक्षु : चतुर्विध....

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर्विध संघ नहीं यह ? साधु के चार... है। और आर्यिका हो इसलिए... नहीं गिनाती ? आर्यिका हो, उसे पंचम गुणस्थान होता है। वस्त्रसहित हो, उसे पंचम गुणस्थान होता है। उसे मुनिपना नहीं हो सकता तीन काल में जैनशासन में।

मुमुक्षु : ....धक्का मारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है। बहुत कठिन हो गया। बहुत पूरा मार्ग दो हजार वर्ष से बदल गया। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। वस्त्ररहित निभ नहीं सके, उसमें से यह पंथ निकला दुष्काल में। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में। यह श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी कहलायें वे। उस समय तो स्थानकवासी थे ही नहीं। यह एक मार्ग निकला जैनशासन की आज्ञा को तोड़कर। फिर स्थानकवासी तो उसमें से अभी पाँच सौ वर्ष (पहले) निकले। मूर्ति को उत्थापित करके (निकले) । वह सब मार्ग जैनशासन नहीं है। आहाहा ! कठिन।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया। शब्द आये थे। सब वाँचा है न हमने तो। छोटी उम्र में दुकान पर सब बहुत वाँचते थे। 'ढुंढत ढुंढत ढुंढ लियो सब वेद पुराण किताब में। ढुंढत है तब ही पावक बिन ढुंढे नहीं पावक कोई।' यह सब उस श्लोक में—उसमें है। वह पुस्तकें सब वाँची हैं न एक-एक। दुकान के ऊपर वे शास्त्र वाँचते थे। घर की दुकान थी पिताजी की। पालेज। सब वाँचते दुकान में। ७० के वर्ष में पहले। दीक्षा तो ७० में हुई। सब बहुत देखे हुए। अध्यात्म कल्पद्रुम। उसमें नाम दिया है, हों ! उन बीस (सत्श्रुत के) बोल में। श्रीमद् के नाम हैं न २० ? उसमें अध्यात्म कल्पद्रुम हैं। वह २० नहीं शास्त्र के नाम ? वे सब दिगम्बर के और एक यह अध्यात्म कल्पद्रुम वैराग्य का है और एक है वह योगदृष्टि। वह अलग। वह ... यह तो अध्यात्म कल्पद्रुम वैराग्य का है। वाँचा है न, दुकान पर वाँचा है। ६५-६६ की बात है। १९६५-६६ (संवत्)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुन्दरजी। सुन्दर। मुनि सुन्दर। हजार शतावधान करते। दो हजार। है। उसमें कुछ नहीं।

यहाँ तो वीतरागदेव के शासन का मार्ग मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। यह तीसरे नम्बर में (आनेवाले) कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं कि भाई! जैनशासन में तीर्थंकर हो, जब तक वस्त्र रखे, तब तक उन्हें मुनिपना नहीं होता। तीन ज्ञान के धनी माता के गर्भ में... तीर्थंकर तो स्वर्ग में से, स्वर्ग में से या नरक में से आवे। यह श्रेणिक राजा नरक में से आयेंगे। अभी श्रेणिक राजा हैं न पहले नरक में? सम्यग्दृष्टि तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। त्याग नहीं था, व्रत, चारित्र नहीं था, परन्तु सम्यग्दर्शन में आत्मभान अनुभवदृष्टि। आनन्द के भान में सम्यग्दर्शन हुआ है और उसमें तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। परन्तु नरक का आयुष्य पहले बँध गया था, नरक में गये। चौरासी हजार वर्ष स्थिति अभी है। वहाँ से (निकलकर) पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी में तीर्थंकर। भगवान महावीर जैसे होंगे। वे सब ही तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। तीर्थंकर जब तक वस्त्रसहित हैं, तब तक उन्हें मुनिपना नहीं होता। आहाहा! ऐसा भगवान ने नग्न को मोक्ष कहा और नग्न से दूसरा मार्ग सब उन्मार्ग है, विपरीत मार्ग है, जैनशासन से उल्टा मार्ग है। मानना हो वह माने, न मानना हो वह न माने। स्वतन्त्र है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

भावार्थः—श्वेताम्बर आदि वस्त्रधारक के भी मोक्ष होना कहते हैं.... है? श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी। श्वेताम्बर में से स्थानकवासी निकले, स्थानकवासी में से यह तेरापंथी निकले। यह तुलसी... तुलसी नहीं? तेरापंथ। आचार्य तुलसी है। लाख मनुष्य हैं उनके लाख, दो लाख। वे सब मार्ग मोक्ष कहते हैं वस्त्रसहित साधु को। **वह मिथ्या है, यह जिनमत नहीं है।** वह वीतराग का मार्ग नहीं है। भारी कठिन पड़े। अब आज रविवार है तो तुम्हारे सब लोग आये हैं। अब उसमें त्रम्बकभाई आये हैं वापस रविवार को आज। मार्ग तो भगवान का ऐसा है, हों। आहाहा! ऐसा है। दूसरे को दुःख हो। हो इसका अर्थ क्या? सत्य तो यह है। अनन्त तीर्थंकर महाविदेह में भगवान ने भी यही मार्ग प्ररूपित किया है। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ एक ही मार्ग है। दिगम्बर धर्म एक ही धर्म। वहाँ दूसरा किसी धर्म का वेश और भेश नहीं। मन्दिर दिगम्बर के, अभिप्राय उल्टा हो। ...साक्षात् विराजते हैं। आहाहा!

वीतराग के दिगम्बर के अतिरिक्त कोई मन्दिर नहीं, कोई भेश नहीं, वेश नहीं।

आहाहा! यह एक ही मार्ग है वहाँ। यह मार्ग यहाँ था। भगवान (के बाद) छह सौ वर्ष में दो बड़े भाग पड़ गये। सरल बताया तो लोग चल निकले। आहाहा! ऐसा मार्ग है। श्रद्धा में तो ले अभी पहले। जब तक उल्टी श्रद्धा है, तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। जैन ही नहीं है। आहाहा! वस्त्रवाले को मुनि माने, वस्त्रसहित मुनि स्वयं माने, वह जैन नहीं। उसे जैन की श्रद्धा ही नहीं। यहाँ तो बात ऐसी है। कहो, समझ में आया? आहाहा! वह जिनमत नहीं, ऐसा लिखा न? अन्यमति है। चाहे तो श्वेताम्बर हो, स्थानकवासी हो या तेरापंथी हो, जैनमत ही नहीं, अन्यमत है। मिथ्यादृष्टियों का वह मत है। वीतराग का वह मत नहीं। ऐई! जयन्तीभाई! कालावड में ऐसा हो, सुने तो भड़के। कहो, धीरुभाई! नागनेश में भी भड़के वे सब। ...भाई वाँचते थे वहाँ। ...भाई थे वे वाँचते थे। लालचन्दभाई है न। है न अभी, नहीं? लालचन्दभाई।

मार्ग ऐसा है। किसी का तिरस्कार या अनादर करने की बात नहीं। अपने को समझने की बात है। समझ में आया? आहाहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त-मुनिराज ने यह मार्ग कहा है। वस्त्र का एक टुकड़ा भी रखकर मुनिपना माने... यह आया है अपने अठारह गाथा में। वह निगोद में जायेगा, एकेन्द्रिय होगा। एकाध भव कदाचित् शुभभाव हो और स्वर्ग में जाये, वहाँ से मरकर पशु में जायेगा। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग। जगत को गले उतारना। वह जिनमत ही नहीं। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो स्पष्ट लिखा है, पाँचवें अध्याय में। टोडरमलजी ने। अन्यमत में ही डाला है। जैसा मुसलमान का अन्यमत है, वेदान्त का अन्यमत है, विशेष का अन्यमत है ऐसा श्वेताम्बर और स्थानकवासी का अन्यमत है। जैनमत नहीं। आज माने, कल माने, चाहे जब माने। यह मानने से ही छुटकारा है। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २४

अब स्त्री को दीक्षा नहीं होती, यह बात सिद्ध करते हैं। स्त्री को साधुपना आता ही नहीं तीन काल में। बहुत अन्तर बातों का। यहाँ तो एक रांडीरांड—विधवा मानो कुछ न हुआ, चलो चलो अपने दीक्षा ले लेंवे। रोटियाँ शुरु हो जायें और फिर यहाँ तुम्हारी सेवा करूँगा कहेंगे। वहाँ सेवा नहीं करे। यह झुण्ड इकट्ठे किये हैं सब। यह सब मिथ्यादृष्टि के झुण्ड हैं। जैन के वे नहीं। आहाहा! कठिन, भारी कठिन लगे।

आगे, स्त्रियों को दीक्षा नहीं है, इसका कारण कहते हैं:— स्त्री की देहवाले को साधुपना आता ही नहीं। आहाहा!

लिंगम्मि य इत्थीणं, थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ, तासिं कह होइ पव्वज्जा॥२४॥

अर्थः—स्त्रियों लिंग अर्थात् योनि में.... अर्थात् शरीर के भाग में उसमें जीव पंचेन्द्रिय निरन्तर उत्पन्न होते हैं। आहाहा! **स्तनांतर अर्थात् दोनों कुचों के मध्यप्रदेश में....** पंचेन्द्रिय जीव होते हैं स्तन के अन्तर में। दोनों काँखों में उसे पंचेन्द्रिय जीव होते हैं। **नाभि में सूक्ष्मकाय अर्थात् दृष्टि के अगोचर जीव कहे हैं, इस प्रकार स्त्रियों के प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा कैसे हो ?** उसे साधुपना नहीं होता तीन काल में। 'णमो लोए सव्व साहूणं' उसमें वह आ नहीं सकते, कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

दीक्षा कैसे हो ? अभी तो जो विधवा हुई और या कुँवारी हो तो, आओ दीक्षा ले लो तुम। ओहोहो! कहाँ दीक्षा थी ? दीक्षा गृहीत मिथ्यात्व का पोषण है वहाँ तो। आहाहा! बहुत कठिन काम। सब झुण्ड इकट्ठे हुए हैं मिथ्यादृष्टि के हैं। आहाहा! **स्त्रियों के योनि, स्तन, कांख, नाभि में पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति निरन्तर कही है,....** भगवान ने तो पंचेन्द्रिय निरन्तर कहे हैं उसमें। ऐसे पंचेन्द्रिय मरे, वहाँ साधुपना कहाँ से आवे ? आहाहा! **इनके महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो ?** महाव्रत की दीक्षा उसे हो नहीं सकती। लो! ...भाई! आज तो यह आया है आज तुम आये न, सब। ऐसा है, भगवान! शान्ति से। अरेरे! क्या हो ? अनन्त सन्तों ने, तीर्थंकरों ने तो यह कहा है, भाई! यह कोई पक्ष

की, वाड़ा की बात नहीं। आहाहा! यह तो सत्य का स्वरूप ऐसा है, उसे प्रसिद्ध किया है। आहाहा!

महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो? महाव्रत कहे हैं, वह उपचार से कहे हैं,.... वह क्षुल्लिका और आर्यिका होती है न, एक वस्त्र रखकर। उसे महाव्रत उपचार से कहे जाते हैं। एक वस्त्र रखे। यह तो अभी तो पोटले के पोटले वस्त्र बड़े। और मुम्बई रहनेवाले को तो इतने वस्त्र रखे कि अलमारियाँ भरे अन्दर से। वहाँ वे देनेवाले बहुत हों मुम्बई में। एक व्यक्ति कहता था पाँच सौ की कम्बल लाना, कहे। पाँच सौ की, परन्तु तुम्हारे क्या काम? तो कहे, लाना तो सही तुम तुम्हारे। अरेरे! क्या कहे? एक कम्बल का टुकड़ा वस्त्र का रखे तो भी मुनि नहीं होता। पुरुष हो तो भी। स्त्री को तो ऐसे वस्त्र और वह सब पंचेन्द्रिय की हिंसा अन्दर होती है, मुनिपना नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन पावे तो वह श्राविका हो सकती है। सम्यग्दर्शन पावे तो। यह आत्मा का दर्शन, ज्ञान की पर्याय से अन्दर जाकर ज्ञाता को ध्रुव को पकड़े, सर्वज्ञस्वभाव को पकड़े। ज्ञान की दशा वर्तमान प्रगट है, उस द्वारा ध्रुव सर्वज्ञस्वरूप जो भगवान आत्मा का सर्वज्ञस्वरूप है आत्मा का, ऐसे सर्वज्ञ ध्रुव को पकड़े, उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! अकेले देव-गुरु-शास्त्र को माने तो वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा! बात में बहुत अन्तर। 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो नहि मळे अने अेक त्रांबियाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि मुझे और तुझे बात-बात में अन्तर है, प्रभु! आहाहा! कहो, गिरधरभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सर्वज्ञ कहे। रात्रि में बहुत बात निकली थी परन्तु तुम नहीं थे। बहुत बात निकली थी। अवसर पर न हो। कहो, समझ में आया? यह कब कैसे निकले वह कुछ... आहाहा!

भगवान आत्मा तो सर्वज्ञस्वभाव है उसमें। यदि सर्वज्ञपना न हो तो पर्याय में— अवस्था में सर्वज्ञपना आवे कहाँ से? परमेश्वर केवली तीर्थंकर सर्वज्ञ हुए। सर्व—ज्ञ। तीन काल—तीन लोक को जाना परमेश्वर अरिहन्तदेव ने। उस केवलज्ञान का सर्वज्ञपना

हुआ तो आवे कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? आहाहा! अन्दर आत्मा के अन्तर स्वभाव, स्वत्त्व, स्वशक्ति, स्वगुण, उसका सर्वज्ञ गुण ही है, सर्वज्ञस्वभाव ही है, सर्वज्ञ शक्ति ही है, सर्वज्ञ गुण है। उसे अन्दर में पकड़ने से। आहाहा! वर्तमान ज्ञान की दशा—पर्याय जिसे कहते हैं भगवान, वह अन्तर में सर्वज्ञ गुण को पकड़े, एकाग्र हो, तब उसे सम्यग्दर्शन में आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! तब तो उसे अभी सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा!

यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र को मानो समकित। फिर पुस्तक का आदर करो। पुस्तक का आदर करे। नहीं आदर करते बारह व्रत की पुस्तक? लिखा हुआ खबर है न, सब। कितनी ही पुस्तकें हमारे आती हैं। भाई! पुस्तक रहने दे। यह आत्मा क्या है, उसे तो देख। अब पुस्तक में क्या था तेरा? बाहर के व्रत हमने लिये हैं। देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, हमको समकित है। और व्रत आदरो। लो! दोनों झूठे हैं। आहाहा! अनन्त काल के जन्म-मरण का अन्त और मिथ्यात्व का नाश, वह कहीं साधारण बात है? ओहोहो! जिसकी दशा में पूरा आत्मा स्वीकृत हो। आहाहा! वह निर्णय आवे अन्दर से। पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ आदि स्वभाव से उस ज्ञान को सर्वज्ञ कहा। परन्तु प्रत्येक गुण पूर्ण ही है न! सुख भी पूर्ण, शान्ति पूर्ण, वीतरागता पूर्ण, स्वच्छता पूर्ण, प्रभुता पूर्ण। क्योंकि वस्तु हो, उसका गुण अपूर्ण और विपरीत नहीं होता। यह सर्वज्ञ गुण कहा, परन्तु इस प्रकार से केवल सुख, केवल शान्ति, वे सब अन्दर पूर्ण हैं। आहाहा! ऐसा जो आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह। वीतराग के अतिरिक्त दूसरे आत्मा कहते हैं कल्पित, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

ऐसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जिसकी दृष्टि में, ज्ञान में आया और जिसका निर्णय और वेदन शान्ति का हुआ... आहाहा! उसे तो अभी समकिती—चौथा गुणस्थानवाला कहते हैं। आहाहा! अभी उसका ठिकाना न हो और साधु हो गये और श्रावक हो गये बड़े। बिना एक के शून्य चढ़ाये। आहाहा! यहाँ परमात्मा यह कहते हैं, भाई! पूरा संसार का भटकना, चौरासी के अवतार। आहाहा! दु:खी, नरक में दु:खी, पशु में दु:खी। आहाहा! नरक की एक क्षण की वेदना। ... नरक में अनन्त बार गया इस

मिथ्यात्वसहित, उसका वेदन। शरीर की इतनी गन्ध वहाँ आवे शरीर की। उसका एक टुकड़ा लाकर यहाँ रखे तो आसपास अनेक कोस के मनुष्य गन्ध में मर जायें। ऐसा शरीर वहाँ नरक में (होता है)। आहाहा! उसमें जिसमें ३३-३३ सागर निकाले। एक क्षण जाना कठिन, उसमें भाई! तूने ३३ सागर निकाले। भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरे भूतकाल के दुःख तूने वेदन किये और देखनेवाले को आँख में आँसू आवे, ऐसे दुःख थे। भूल गया। बाहर आया तो हो गया। आहाहा! ऐसे दुःखों में से छूटना हो तो प्रभु आनन्द का सागर प्रभु आत्मा अन्दर विराजता है। आहाहा! कैसे आवे इसे विश्वास? पर्याय में खड़ा हो उसे द्रव्य का विश्वास कैसे आवे? आहाहा!

वह पर्याय अर्थात् क्या? द्रव्य अर्थात् क्या? जय भगवान। क्या होगा? द्रव्य अर्थात् पैसा। धूल में भी नहीं। अब तेरे पैसे का यहाँ क्या काम है? वस्तु जो है त्रिकाली वस्तु, उसे भगवान द्रव्य कहते हैं। आहाहा! अकेला आनन्द और ज्ञान और पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... एक-एक शक्ति पूर्ण, ऐसी अनन्त शक्ति का एकरूप, वह आत्मा है। ओहो! ऐसे आत्मा को अन्तर में पकड़े, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की ऐसी श्रद्धा जिसे हो, वह अन्दर में पकड़ सके, ऐसा कहना है यहाँ। समझ में आया? वस्त्रसहित मुनिपना माने, केवली को आहार माने, स्त्री को मुक्ति माने और स्त्री तीर्थंकर मल्लिनाथ, ऐसे तो मिथ्यादृष्टि जीव को समकित होता नहीं। आहाहा! जिसके देव में ऐसी दशा, उसे अन्दर परिपूर्ण में जाने का अवसर ही कहाँ है उसे? समझ में आया? वहाँ तो वह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में लिखा है। जिसके देव ईश्वर और ऐसे कर्ता, उसके भगत को क्या? ऐसा कुछ लिखा हुआ है। अर्थात् उसकी श्रद्धा ऐसे जो हीनवाले, उसे परमात्मा माने और उसकी भक्ति करे तो उसकी भक्ति में क्या होगा? आहाहा! वह है एक जगह ऐसा शब्द। भूल गये। ऐसा कि ईश्वर ऐसे को माननेवाले हों। पाँचवें अध्याय में (लिखा है)। उसकी भक्ति में क्या हो? ऐसा है यह शब्द। याद आते आ गया है कहीं। ऐसे दीन को माननेवाले, हल्की दशा को देवरूप से माननेवाले, उसकी श्रद्धा में क्या हो? वह तो भिखारी है बेचारे। आहाहा!

इस प्रकार जिसका मार्ग वीतराग, वीतरागदेव, निर्ग्रन्थ मुनि, नग्न मुनि और भगवान के कहे हुए सिद्धान्त अनेकान्त धर्म, वह जिसे बैठा हो... आहाहा! उसे अन्तर में जाने

का अवकाश है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, ऐसी स्त्री को दीक्षा नहीं होती। लो! है न?

परमार्थ से नहीं है, स्त्री अपने सामर्थ्य की हद को पहुँचकर व्रत धारण करती है.... सम्यग्दर्शनसहित **इस अपेक्षा से उपचार से महाव्रत कहे हैं।** उपचार अर्थात् आरोप से कथन है। वह वस्तु नहीं। उसे महाव्रत होते नहीं। अर्यिका हो, एक वस्त्र रखे, समकितसहित हो, उसे महाव्रत का उपचार कहने में आता है। छठवाँ गुणस्थान स्त्री को होता ही नहीं। जिसका देह स्त्री का, उसे छठवाँ गुणस्थान साधुपने का तीन काल में होता नहीं। यह सब उल्टी मान्यतावालों ने ठहराया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह तो... चरण छूते हैं। वह तो सब बात है छोटी-बड़ी।...

★ ★ ★

गाथा - २५

आगे कहते हैं कि यदि स्त्री भी दर्शन से शुद्ध हो तो पापरहित है, भली है:— जो सम्यग्दर्शन—ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धासहित जिसे आत्मा का दर्शन हो, समकिती स्त्री हो तब तो वह पापी नहीं। प्रव्रज्या नहीं होती, परन्तु पानी नहीं है। यह मिथ्यात्व का पाप जिसने छोड़ा है। आहाहा! जिसने महा मिथ्यात्वपाप अनन्त संसार का मूल मिथ्यादर्शन शल्य, वह जिसने आत्मा के अवलम्बन से छोड़ा है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के लक्ष्य में रखकर जिसने आत्मा का आश्रय लेकर... आहाहा! स्त्री का देह हो, भले वस्त्रसहित हो। मुनि नहीं हो, परन्तु सम्यग्दर्शन हो सकता है। आहाहा!

जइ दंसणेण सुद्धा, उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं, इत्थीसु ण पव्वया भणिया॥२५॥

अर्थः—स्त्रियों में जो स्त्री दर्शन अर्थात् यथार्थ जिनमत की श्रद्धा से शुद्ध है.... जिनमत की श्रद्धा। सच्चे मुनि वस्त्ररहित होते हैं, स्त्री को मुनिपना नहीं होता और आत्मा के आश्रय से जिसे दर्शन हुआ है, वह जैनमत में है। आहाहा! **स्त्रियों में जो स्त्री**

दर्शन अर्थात् यथार्थ जिनमत की श्रद्धा से शुद्ध है.... जिनमत अर्थात् यह जैनदर्शन। कहा न, यह आ गया है पहला। जिसे अन्तर तीन कषाय—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी का नाश किया है। अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे उफान आता है अन्दर। आहाहा! दूध का उफान तो पोला होता है। पाँच सेर दूध हो, उसे उकलने रखो तो पोला ऊँचा होता है। वह कहीं कसवाला दूध नहीं होता। अधिक डबल हो गया, इसलिए दस सेर होगा? वह तो पोला नहीं, वह तो मजबूत आनन्द अन्दर से प्रगट होता है। आहाहा!

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है। खबर कहाँ है इसे? यह अतीन्द्रिय आनन्द में से एकाग्र होने से मुनि को तो उग्र आनन्द आता है। जिसे ऐसे नदी में बह जाये, बाघ चबा जाये तो दुःख नहीं, ऐसी उसकी दशा है। आहाहा! अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित चारित्र है। यह तो सम्यग्दर्शनसहित स्त्री है। वह **श्रद्धा से शुद्ध है, वह भी मार्ग से संयुक्त कही गयी है।** तो वह मोक्षमार्ग से सहित है। परन्तु ऐसा। जैनदर्शन की पद्धति है, उसकी श्रद्धा और आत्मा की रीति है सम्यग्दर्शन पाना, वह श्रद्धा। आहाहा! **वह भी मार्ग से संयुक्त कही गयी है।**

जो घोर चारित्र, तीव्र तपश्चरणादिक आचरण से पापरहित होती है.... सम्यग्दर्शनसहित सीताजी, राजमती इत्यादि घोर पाप को छोड़कर घोर अन्दर राग के अभावरूप तपस्या जिसने की अन्दर। अकेले अपवास नहीं। आनन्द की लहर में इच्छा का निरोध होकर जिसने अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट किया है। आहाहा! **आचरण से पापरहित होती है, इसलिए उसे पापयुक्त नहीं कहते हैं।** स्त्री पापयुक्त नहीं। आहाहा! भगवान की माता, तीर्थंकर की माता महाज्ञानी होती है, समकिती होती है। आहाहा! मुनिपना उसे नहीं आता, परन्तु सम्यग्दर्शन ऐसा मार्ग है, ऐसा श्रद्धान कर अन्तर के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, वह पापी नहीं है। भले स्त्री हो। उसे प्रव्रज्या नहीं। यह दूसरा अर्थ ऐसा किया है कि प्रव्रज्या नहीं परन्तु पाप भी नहीं है। नीचे कहा। प्रव्रज्या-प्रव्रज्या ऐसा पाठ है पाठान्तर। आता है वहाँ। पव्वया नहीं तो प्रव्रज्या नहीं, ऐसा पाठ है। आहाहा!

मिथ्यात्व का महापाप, वह पाप छूट गया, कहते हैं। अन्तर दर्शन से। और

वीतरागमार्ग जैसा है देव-गुरु-शास्त्र ऐसी श्रद्धासहित जिसने आत्मा की श्रद्धा की है। भले स्त्री हो, मुनिपना भले न आ सके, परन्तु वह पापी नहीं है। प्रव्रज्या नहीं तथा पापी भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? सीताजी हुए, राजमती, वह सब आर्यिका थीं। पाँचवें गुणस्थान में थीं। मुनि नहीं। स्वर्ग में गये। मरुदेवी माता, ऋषभदेव भगवान की माता वे मोक्ष नहीं गयीं। हाथी के हौदे मोक्ष हुआ, यह सब बातें खोटी हैं। वह तो आत्मा के सम्यग्दर्शनसहित स्वर्ग में गयी हैं। समझ में आया? बहुत फेरफार किया है। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह वह क्या है? बापू! मार्ग यह है, भाई! अनादि का तीर्थंकर केवली परमात्मा, यह तो तीर्थंकर का जैनशासन है। यह कहीं कोई कल्पित बात नहीं। वस्तु का स्वरूप है। ऐसा परमेश्वर ने जैनशासन में कहा। आहाहा! स्त्री को मुक्ति नहीं, साधुपना नहीं, परन्तु वह पापी है—ऐसा भी नहीं सम्यग्दर्शनसहित हो तो। देखो न! जितना है उतना मापते हैं। समझ में आया? आहाहा!

'**घोरं**' शब्द है न? '**चरिय चरित्तं**' अर्थात् आचरण बहुत आनन्द का उग्र आचरण होता है। घोर तपस्यायें, महीने-महीने के उपवास आदि। सीताजी को बहुत थी। एक वस्त्र रखे। तपस्यायें बहुत हों। अन्तर की, हों! आनन्दसहित की दृष्टिसहित। शुद्ध उपयोग को बढ़ाने के लिये। उसे पापी नहीं कहा जाता। आहाहा! बहुत अन्तर परन्तु इसमें, हों! सोलह-सोलह आना (शत-प्रतिशत) जैनशासन से विरुद्ध है। ऐई! मनसुखभाई! आहाहा! अत्यन्त विरुद्ध है। वह तो अब यह बाहर खुल्ला आया हुआ यह।

भावार्थः—स्त्रियों में जो स्त्री सम्यक्त्व सहित हो.... आहाहा! स्त्री का शरीर हो, उसे मुनिपना—साधुपद तो तीन काल में आता ही नहीं, परन्तु उसे समकित न हो, ऐसा नहीं है। इसलिए ऐसे वेश में समकित माने और मुनि हो, उसे तो समकित होता ही नहीं। वह तो गृहीत मिथ्यात्व है। वस्त्रसहित मुनिपना माने, मनावे, उसे तो समकित होता ही नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु जिसे मुनिपना है नहीं, मुनिपना वस्त्रसहितपने माना भी नहीं, दूसरे को भी वस्त्रसहित मुनिपना माना नहीं। नग्नपना वह मुनिमार्ग है, ऐसा जिसने माना है, ऐसे को जो आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है तो उसे पापी नहीं कहा जाता। धर्मी है। आहाहा!

देखो न, माता, तीर्थंकर का जन्म होता है, इन्द्र आते हैं। नमो रत्नकूखधारिणी! पहला तो उसे हे माता! ऐसे रत्न को कूख में रखनेवाली जननी! तुझे पहला मेरा नमस्कार। इन्द्र नमस्कार करता है। सम्यग्दर्शनसहित है। इन्द्र एकावतारी है। शकेन्द्र और उसकी पत्नी सौधर्मदेवलोक में, पहला देवलोक है न सौधर्म? बत्तीस लाख विमान हैं। समझ में आया? भावार्थ है उस ओर। **स्त्रियों में जो स्त्री सम्यक्त्वसहित हो और तपश्चरण करे....** समकितसहित तपस्या करे **तो पापरहित होकर स्वर्ग को प्राप्त हो....** स्वर्ग में जाये। बारहवें देवलोक में। ओहोहो! वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर पुरुष होकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष जाये। वहाँ से निकलकर, राजपरिवार में, सेठिया परिवार में पुरुष होकर, दिगम्बर मुनि होकर मोक्ष जाये। स्त्री के शरीर से नहीं जाये।

इसलिए प्रशंसा योग्य है.... लो! सम्यग्दर्शन तो प्रशंसा योग्य है। इन्द्र आकर नमस्कार करते हैं। **परन्तु स्त्रीपर्याय से मोक्ष नहीं है।** स्त्री का शरीर हो और साधुपद आवे और केवल (ज्ञान) हो, वह तो तीन काल में नहीं है। जैनशासन में उसका निषेध किया है। वीतराग के ज्ञान में ऐसा आया, ऐसा भगवान ने कहा था। उसमें से फेरफार करके यह सब शास्त्र नये बनाये। आचारांग और सूयगडांग और दश... वह सब कल्पित शास्त्र। भगवान के कहे हुए वे हैं ही नहीं। भगवान के कहे हुए में तो ऐसा मुनिपना माना है। उसमें स्त्री को समकितसहित हो, मोक्ष भले न जाये, चारित्र नहीं इसलिए, परन्तु स्वर्ग में जाये। वहाँ से एकावतारी होकर मोक्ष में जाये।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १०, सोमवार, दिनांक-१९-११-१९७३
गाथा- २६, २७, (चारित्रपाहुड़) १, २, ३, प्रवचन-४५

सूत्रपाहुड़ है २६वीं गाथा। मुनिपना वस्त्ररहित होता है, ऐसा पहले सिद्ध किया है। दूसरा श्रावक का, उत्कृष्ट श्रावक वह लिंग होता है... तीसरा स्त्री का लिंग होता है, स्त्री का त्यागी का, सम्यग्दर्शनसहित। उसे मोक्ष नहीं होता, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

गाथा - २६

चित्तासोहि ण तेसिं, ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं, इत्थीसु ण संकया झाणा॥२६॥

अर्थः—उन स्त्रियों के चित्त की शुद्धता नहीं है,.... वह मोक्ष को अथवा साधुपद को चाहिए, वैसी शुद्धता उन्हें नहीं होती। एक बात। **वैसे ही स्वभाव ही से उनके ढीला भाव है,....** स्वभाव ही ढीला है। **शिथिल परिणाम है और उनके मासा अर्थात् मास-मास में रुधिर का स्राव....** यह शंका (आदि) तीन बोल हैं। **'उससे स्त्रियों के ध्यान नहीं है।' 'ध्यान होता है, वह चित्त शुद्ध हो,....** तीन लिये सुलटे। **चित्त शुद्ध हो, दृढ़ परिणाम हो, किसी तरह की शंका न हो....** तीन बोल लिये। तब ध्यान एकाग्र अन्दर हो सकता है।

स्त्रियों के तीनों ही कारण नहीं हैं, तब ध्यान कैसे हो? मुनिपना ही नहीं होता तो फिर केवलज्ञान को प्राप्त करने का उसे होता नहीं। **ध्यान के बिना केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो....** अन्तर आनन्दस्वरूप में एकाग्रता, शंका बिना निःशंकरूप से ध्यान न हो तो केवलज्ञान कैसे हो? **केवलज्ञान के बिना मोक्ष नहीं है,....** पूर्ण आनन्दस्वरूप का ध्यान पूर्ण, उसके बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। **श्वेताम्बरादिक मोक्ष कहते हैं, वह मिथ्या है।** लो! श्वेताम्बर आदि अर्थात् स्थानकवासी, वे श्वेताम्बर में आते हैं। दूसरे भी स्त्री को मोक्ष और साधुपना कहते हैं, वे मिथ्या हैं। वह झूठी श्रद्धा और झूठी मान्यता है।

★ ★ ★

गाथा - २७

अब अन्तिम गाथा। **आगे सूत्रपाहुड़ को समाप्त करते हैं, सामान्यरूप से सुख का कारण कहते हैं:—**कुछ ग्रहण करने का निषेध किया है न! अल्प (या) बहुत ग्रहण न करे।...तिलतुषमात्र भी ग्रहण न करे। और ग्रहण करे तो वह निन्दनीय है। ऐसा आया था न? १८-१९। उसका स्पष्टीकरण करते हैं कि किंचित् ग्रहण करे सही, परन्तु उसके योग्य हो वह। अत्यन्त जो ग्रहण का निषेध किया था १८-१९ (गाथा) में कि कुछ ग्रहण नहीं करता और ग्रहण करे तो मुनि निन्दनीक कहलाये। तब कहे, उसे वह नहीं ग्रहण करनेयोग्य, परन्तु कुछ ग्रहणयोग्य है। वह सूत्र का अन्तिम सार गाथा का सार कहते हैं।

गाहेण अप्पगाहा, समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता, ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥२७॥

अर्थ:—जो मुनि ग्राह्य अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य.... पहले इनकार किया था (कि) अल्प कुछ न ग्रहण करे। परन्तु इतना ग्रहण करे। आहार, पानी, औषध उसमें आवे। **ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक से तो अल्पग्राह्य हैं,....** अल्प ग्राह्य **'गाहेण अप्पगाहा'** ग्रहणयोग्य परन्तु अल्प ग्राह्य, ऐसा कहते हैं। आहाहा! १८-१९ में कहा था न, कुछ न ग्रहे तिलतुषमात्र। और १९ में तो ऐसा कहा था। आया है न, **'अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स। सो गरहिउ जिणवयणे'** उसका यहाँ स्पष्टीकरण किया है। अन्तिम सूत्र में भगवान की आज्ञा और भगवान के शास्त्रों में मुनि को ग्रहणयोग्य ऐसे जो आहार-पानी वह अल्प ग्रहण करे, ऐसा कहते हैं।

जैसे कोई पुरुष.... दृष्टान्त देते हैं। **बहुत जल से भरे हुए समुद्र में से....** समुद्र भरा हो पानी का समुद्र। **अपने वस्त्र को धोने के लिये वस्त्र धोनेमात्र जल ग्रहण करता है,....** थोड़ा पानी ले लेवे। उसी प्रकार सामग्री जगत में तो अनन्त पड़ी है बाहर। मुनि के योग्य आहार-पानी आदि थोड़ा ग्रहण करे। आहाहा! ऐसा कहते हैं। यह वीतराग के सिद्धान्त उसे कुछ ग्रहण करने का निषेध किया, उसे ऐसा ग्रहणयोग्य में भी अल्प ग्रहे। पेट भरकर आहार-पानी नहीं। ऐसा कहते हैं। शरीर के निर्वाह जितना आहार-पानी ग्रहण करे।

जिन मुनियों के इच्छा निवृत्त हो गयी है,.... यह दूसरे पद का। ग्रहण का इतना आहारादि। बाकी तो सब इच्छा निवृत्त हो गयी। आहाहा! मुनिपद किसे कहते हैं वीतरागपद ? आहाहा! **इच्छा निवृत्त हो गयी, उनके सब दुःख निवृत्त हो गये।** इच्छा गयी और सब दुःख निवृत्त हो गया। 'क्या इच्छत खोवत सबै है इच्छा दुःख मूल।' यह ऐसा कहते हैं कि उसके योग्य जो आहारादि हों, वह थोड़ा ग्रहण करे। ग्रहणयोग्य थोड़ा ग्रहण करे, ऐसा कहते हैं। बाकी तो सब इच्छा निवृत्त हो गयी है। मुनि को कोई इच्छा ऐसी नहीं। शिष्य करने की या इज्जत प्राप्त करने की, पुस्तक छपाना, उसे बाहर प्रसिद्ध करना, फलाना, वह सब इच्छा उन्हें होती नहीं। एक शरीर का निर्वाह जितना आहार-पानी, वह थोड़ा ग्रहण करे ग्रहणयोग्य को। बाकी इच्छा निवृत्त हो गयी, वह दुःख से निवृत्त हो गया। आहाहा! इच्छा दुःख है। 'क्या इच्छत खोवत सबै है इच्छा दुःख मूल' इच्छा दुःख का मूल है। आहाहा!

मुनियों के इच्छा निवृत्त हो गयी, उनके सब दुःख निवृत्त हो गये। इच्छा, वह दुःख है और इच्छा से निवृत्त हो गया। स्वरूप आनन्द में जिसकी मस्ती है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में जो मस्त है, वह दुःख से निवृत्त है।

मुमुक्षु : ऐसा मुनिपना होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मुनिपना होता है।

भावार्थ। सिद्धान्त वीतराग के कहे हुए में ऐसा मुनिपना होता है, ऐसा कहते हैं। सूत्र है न सूत्रपाहुड़। और इसके अतिरिक्त दूसरे सूत्र में कहा, वे सूत्र सिद्धान्त ही नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात है भारी कठिन। **जगत में यह प्रसिद्ध है कि जिसके सन्तोष है, वे सुखी हैं,....** सन्तोष सुखी, ऐसा नहीं कहा जाता जगत में ? सन्तोषी सदा सुखी। मुनि को कहा जाता है। जिसे आत्मा का आनन्द है, सन्तोष है। ऐसा नहीं आता कोई काम भारी (जवाबदारी) सिर पर नहीं लेते। प्रवचनसार में आता है। कोई काम हाथ से तुम्हारे लिखना पड़ेगा। इतना पाठशालाओं के लिये कुछ तुम्हें कहना पड़ेगा। वह कोई क्रिया आधीन नहीं है। सिर पर काम मुनि लेते ही नहीं। आहाहा! निवृत्त... निवृत्त... निवृत्त... वे दुःख से निवृत्त हैं।

जिन मुनियों के इच्छा निवृत्त हो गयी उनके.... उनके संसार के विषयसम्बन्धी इच्छा किंचित्मात्र भी नहीं है,.... वह तो है ही नहीं। **देह से भी विरक्त हैं....** अपना आनन्दस्वरूप जो भिन्न, उसमें रक्त है। देह से विरक्त है। आहाहा! **इसलिए परम सन्तोषी है,....** विषय की इच्छामात्र नहीं और देह से विरक्त है। इससे वे परम सन्तोषी हैं। आहाहा! **और आहारादि कुछ ग्रहण योग्य हैं....** आहार-पानी आदि लेनेयोग्य हैं। **'गाहेण अप्पगाहा'** है न? ग्रहणयोग्य .... ग्रहे, ऐसा। उसमें भी अल्प ग्रहे, ऐसा। **उनमें से भी अल्प को ग्रहण करते हैं, इसलिए वे परम सन्तोषी हैं,....** यह सिद्धान्त का अन्तिम सार कहते हैं। आहाहा!

वे परम सुखी हैं,.... परम सन्तोषी, परम सन्तोषी, आनन्द... आनन्द... आनन्द... **यह जिनसूत्र के श्रद्धान का फल है,....** वीतराग सिद्धान्त के कहे प्रमाण वे करें, उसका फल यह है। सन्तोषपने ग्रहणयोग्य थोड़ा लेकर सन्तोष करे, ऐसा कहते हैं। यह वीतराग के सूत्र में सिद्धान्त का फल है। **अन्य सूत्र में यथार्थ निवृत्ति का प्ररूपण नहीं है,....** अस्ति-नास्ति की। आहाहा! भगवती (सूत्र) में कहा वह... साधु आहार लेने जाये, दस कम्बल ले। दस पात्र ले, दस ओघा ले। आहार कहाँ होता है? वह भगवतीसूत्र बहुत मान्य है। ... पूजा करे न? भारी कठिन काम। वह सूत्र ही नहीं है। उसमें वस्त्र रखना और पात्र रखने का कहा, परन्तु इतने दस-दस पात्र। भगवतीसूत्र में। आहाहा! एक स्वयं रखे और नौ मुनि को दे—आचार्य को। दस लड्डू ले आवे। लाडवा समझते हो? लड्डू। एक रखे, नौ दे। ... आहाहा! बहुत बदल डाला है। श्वेताम्बर ने धर्म का रूप, कुरूप कर डाला। उनके सामने यह बात है। क्योंकि वे निकल गये थे न। कुन्दकुन्दाचार्य ने यह बनाया, उस समय श्वेताम्बर निकल गये थे, १०० वर्ष पहले। उनके सामने यह सब बात है।

इसलिए कल्याण के सुख को चाहनेवाले को.... कल्याण के सुख। आनन्द का कल्याण, उसका सुखस्वरूप, उसके **चाहनेवाले को जिनसूत्र का निरन्तर सेवन करना योग्य है।** आहाहा! भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त की सेवा, उसका ज्ञान, श्रद्धान, वह परिचय करनेयोग्य है। आहाहा! **ऐसे सूत्रपाहुड़ को पूर्ण किया।** दो पाहुड़ पूरे हुए।

जिनवरकी ध्वनि मेघध्वनिसम मुखतैं गरजे,
गणधरके श्रुति भूमि वरषि अक्षर पद सरजै;
सकल तत्त्व परकास करै जगताप निवारै,
हेय-अहेय विधान लोक नीकै मन धारै।
विधि पुण्यपाप अरु लोकको मुनि श्रावक आचरन पुनि।
करि स्व-पर भेद निर्णय सकल, कर्म नाशि शिव लहत मुनि ॥१ ॥

'**जिनवर की ध्वनि**' यह सूत्र है, वह जिनवर की ध्वनि है, ऐसा कहते हैं। उसमें से निकले हुए हैं। कल्पित नहीं। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की ॐ ध्वनि में। '**जिनवर की ध्वनि मेघध्वनिसम**' जैसे वर्षा का प्रपात गिरे, मूसलधारा, उसी प्रकार भगवान की ध्वनि में मूसलधारा बरसात आयी है। '**मेघध्वनिसम मुखतैं गरजे,**' मुख से कहे। ऐसी भाषा व्यवहार से। पूरे शरीर में से आती है। भाषा तो लोग समझे न, इसलिए ऐसा कहते हैं। मुख से आती है। पूरे आत्मा में ॐ, ऐसी पूरी गर्जना मेघध्वनि की भाँति गर्जना आती है। आहाहा!

'**गणधरके श्रुति भूमि**' गणधररूपी भूमि में वह सुनने का मिला है। '**वरषि**' उस गणधररूपी भूमिका में वह दिव्यध्वनि बरसी, पड़ी। '**अक्षर पद सरजै;**' उसमें से अक्षर और पद बनाये, रचे। अक्षर अर्थात् क, ख, ग आदि। पद अर्थात् जुड़ान। अनन्त अरिहन्त। अरिहन्त, यह शब्द कहलाता है। समझ में आया? पद-पद। पद को बनाया, अक्षर को और पद को गणधर ने सृजित किया। तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि गणधररूपी भूमिका में बरसी, गणधरों ने अक्षर और पद को सृजित किया। आहाहा! '**सकल तत्त्व परकास करै**' सकल तत्त्व का प्रकाश करे वाणी। '**जगताप निवारै,**' जगत की आकुलता टाले। वाणी में जग की आकुलता टालने की बात आती है। निराकुल पद आत्म पावे और आकुलता टाले, यह वीतराग की वाणी में आता है।

'**हेय-अहेय विधान लोक नीकै मन धारै।**' त्यागनेयोग्य और आदरनेयोग्य विधान अर्थात् विधि। '**लोक नीकै मन धारै।**' बराबर लोक में क्या है? छोड़नेयोग्य क्या? आदरनेयोग्य क्या? उसे नीके बराबर धारे। '**विधि पुण्यपाप अरु लोकको मुनि**' पुण्य-

पाप के भाव को जाने। वह विकार है, हेय है। और '**अरु लोककी मुनि श्रावक आचरन**' लौकिक आचरण, मुनि आचरण और श्रावक आचरण को बराबर जाने। '**करि स्व-पर भेद निर्णय**' और स्व और पर की भिन्नता का निर्णय करके। आहाहा! '**सकल, कर्म नाशि**' यह निर्णय करके फिर चारित्र हुआ। '**सकल, कर्म नाशि शिव लहत मुनि।**' शिवपद को मुनि लहे। लो, यह मांगलिक किया। '**शिव लहत मुनि।**'

वर्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल।
भव्य पाय शिवमग लहै नमूं तास गुणमाल॥२॥

'**वर्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल।**' त्रिलोकनाथ वीतराग के वचन महावीर परमात्मा के वर्तते हैं। पंचम काल में वे वचन वर्तते हैं। आहाहा! '**भव्य पाय शिवमग लहै**' भव्य जीव, उन वचनों को पाकर और '**शिवमग लहै**' शिव का मार्ग पावे। उस वाणी में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या आयी है। आहाहा! मोक्षमार्ग को पावे। '**नमूं तास गुणमाल।**' उसके गुण की माला को गुण की धारा को मैं नमता हूँ। नमस्कार करता हूँ। आहाहा!

इति पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषावचनिका के हिन्दी अनुवादसहित श्री कुन्दकुन्दस्वामी विरचित सूत्रपाहुड़ समाप्त। लो! बहुत अच्छे दो (पाहुड़) चले। ओहोहो! जैनदर्शन, वह दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन। इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैनदर्शन ही नहीं। आहाहा! भारी कठिन बातें। उनके कहे हुए सूत्र भी कल्पित सूत्र हैं। बड़ा भाग वह और उसमें रहना। रहते कहाँ हैं उसमें वे? वह तो अपने में है। आहाहा! जितने सब साधु, साध्वी नाम धरावे स्थानकवासी या मन्दिरमार्गी, वे सब गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा है। उसमें आ गया है सब। समकिती तो नहीं, मुनि तो नहीं, परन्तु अकेले अगृहीत मिथ्यादृष्टि भी नहीं, साथ में गृहीत इकट्ठा है। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ध्वनि द्वारा जो मार्ग कहा, वह इन्होंने पूरा बदल डाला। पूरा रूप ही बदल डाला। यह सूत्र का सार कहा अन्त में।

—३—
चारित्रपाहुड़

अब चारित्रपाहुड़। उसमें चारित्र पहले लिया। पश्चात् सूत्र लिया। उस टीका में। वह बड़ी टीका। दर्शनपाहुड़, पश्चात् चारित्र, पश्चात् सूत्रपाहुड़ बराबर है। पहले दर्शनपाहुड़ पहले कहा। दर्शन अर्थात् जैनदर्शन। और उसमें सम्यग्दर्शन मुख्य वापस, ऐसा। जैनदर्शन उसे कहते हैं। ओहोहो! जहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मोक्षमार्ग की एकता हो और अट्ठाईस मूलगुण और नग्नपना वर्ते, वह जैनदर्शन है। आहाहा! इसके अतिरिक्त सब अजैन है, जैन नहीं। कहो, श्वेताम्बर तपगच्छ। ऐई! कान्तिभाई! अब क्या दिक्कत है? शुरुआत।

मुमुक्षु : इण्डिया-पाकिस्तान जैसा भेद है। विरोध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो ऐसा है, भाई! शान्ति से सत्य की शरण ले तो मार्ग यह है। ढूंढ़िया या स्थानकवासी श्वेताम्बर तपगच्छ सभी मूल में से सड़े हुए गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। यह सनातन जैन दिगम्बर दर्शन, वह सनातन सत्य है। ऐसी बात है। आहाहा!

अब चारित्रपाहुड़। बहुत सरस बात। चारित्र के बाद बोधपाहुड़। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ जिन बंदूं मन वच काय।
चारित धर्म बखानियो सांचो मोक्ष उपाय॥१॥

पण्डित जयचन्द्रजी (मंगलाचरण) करते हैं।

कुन्दकुन्दमुनिराजकृत चारितपाहुड़ ग्रन्थ।
प्राकृत गाथाबंधकी करूं वचनिका पंथ॥२॥

‘**वीतराग सर्वज्ञ जिन बंदूं**’ जिन्हें राग का नाश होकर वीतरागता हुई है, जिन्हें अल्पज्ञता का नाश होकर सर्वज्ञ हुए हैं। आहाहा! ऐसे वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर परमात्मा को मैं वन्दन करता हूँ। ‘**मन वच काय।**’ मन से, वचन से और काया से—तीन से, ऐसे वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव को वन्दन करके ‘**चारित धर्म बखानियो**’ कुन्दकुन्दाचार्य ने चारित्रधर्म का बखान किया है। ‘**सांचो मोक्ष उपाय।**’ वह सच्चा मोक्ष का उपाय है। चारित्र, वह मोक्ष का उपाय है। क्योंकि दर्शन-ज्ञान के साथ चारित्र होता ही है। ‘**सांचो**

मोक्ष उपाय।' भगवान ने दिव्यध्वनि में कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य ने चारित्र को बखाना। उसे कहा है न वहाँ। चारित्र खलु धम्मो। वह खलु धम्मो और यह अन्तिम चरणानुयोग में यह मुनिमार्ग के प्रणेता हम खड़े हैं। यह हमने जाना है (कि) मुनिपना कैसा होता है, अनुभव किया है। अनुभव में दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसमें विकल्प कैसे होते हैं, उसके जाननेवाले मार्ग के प्रणेता हम यह खड़े। आहाहा! चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में आता है। प्रवचनसार अन्त में। '**कुन्दकुन्दमुनिराजकृत**' यह चारित्रपाहुड कुन्दकुन्दाचार्य मुनिराज ने किया हुआ है। मुनिराज अर्थात् आचार्य। '**चारितपाहुड़ ग्रन्थ।**' चारित्र प्राभृत, चारित्र का सार। '**प्राकृत गाथाबंधकी**' उसकी वचनिका। देशभाषामय वचनिका।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके अब चारित्रपाहुड़ प्राकृत गाथाबद्ध की.... यह प्राकृत गाथा ली है यह। **देशभाषामय...** प्रचलित भाषा में **वचनिका का हिन्दी अनुवाद लिखा जाता है।** हिन्दी, उसका अनुवाद किया है। **श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रथम ही मंगल के लिये इष्टदेव को नमस्कार करके चारित्रपाहुड़ को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं:—**

'**सव्वण्हु**' शब्द उठाया पहले से। आहाहा! धर्म के मूल तो सर्वज्ञ हैं न! धर्म चारित्र और उसके मूल कहनेवाले तो सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा पद (अपने) आप कल्पित करके कहा, वह कहीं चारित्र का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १-२

सव्वणहु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं ॥१॥

णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मोक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥२॥ युग्मम्॥

कहूँगा, ऐसा कहते हैं। मोक्ष के आराधन के लिये, ऐसा कहा न? पूर्णानन्द की प्राप्ति के सेवन के लिये चारित्र को मैं कहूँगा।

अर्थः—आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्त परमेष्ठी को नमस्कार करके.... अरहन्त

परमेष्ठी को नमस्कार करके चारित्रपाहुड़ को कहूँगा। अरहन्त परमेष्ठी कैसे हैं ? अब उनके विशेषण। **अरहन्त ऐसे प्राकृत अक्षर की अपेक्षा तो ऐसा अर्थ है—अकार आदि अक्षर से तो अरि अर्थात् मोहकर्म, रकार आदि अक्षर की अपेक्षा रज अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म, उस ही रकार से रहस अर्थात् अन्तराय कर्म—इस प्रकार चार घातियाकर्मों को हनना-घातना....** लो, इतना निकाला उसमें से। अरि में से। अरि में से इतना निकाला। आहाहा! अरि अर्थात् मोहकर्म। उसमें से 'र' यह ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय रज। उसमें से रहस। 'र' में से निकाला रहस। आता है न, बहुत जगह आता है।

अन्तराय कर्म—इस प्रकार चार घातियाकर्मों को हनना-घातना जिनके हुआ.... जिन्होंने इन चार कर्मों का घात किया। **वे अरहन्त हैं।** लो! यह अर्हंत की व्याख्या की। अर्हंत है न? अर—हन्त। अरहन्त—घात किया। 'अ' अर्थात् अरि—मोहकर्म, 'र' अर्थात् रज। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय। 'र' में से निकाला रहस—अन्तराय। इन चार को घाता, उसे अरिहन्त कहा जाता है। **संस्कृत की अपेक्षा अर्हं ऐसा पूजा अर्थ में धातु है....** अर्हं—पूजनेयोग्य। **वह भव्य जीवों से पूज्य है।** अरिहन्त, वे भव्यजीव को पूज्य है। आहाहा!

परमेष्ठी कहने से परम इष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पूज्य हो, उसे परमेष्ठी कहते हैं.... परम इष्ट। उत्कृष्ट पूजनेयोग्य हों, वे अरिहन्त भगवान हैं। लो, यह परद्रव्य है और उत्कृष्ट पूजनेयोग्य है।

मुमुक्षु : उपदेशक कैसे हों?

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे हों? पूजनेयोग्य यदि हों तो उत्कृष्ट वे हैं, ऐसा। निश्चय पूज्य तो स्वयं आत्मा है। परन्तु व्यवहार से पंच परमेष्ठी लेना है न? उसमें उत्कृष्ट पूज्य वे अरिहन्त भगवान हैं।

परमेष्ठी कहने से परम इष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पूज्य हो, उसे परमेष्ठी कहते हैं अथवा परम जो उत्कृष्ट पद में तिष्ठे.... दूसरा अर्थ किया। **परम जो उत्कृष्ट पद में तिष्ठे, वह परमेष्ठी है।** पूजनेयोग्य, इसलिए परमेष्ठी और उत्तम पद में स्थित हैं, इसलिए परमेष्ठी। दो अर्थ किये। **इस प्रकार इन्द्रादिक से पूज्य अर्हंत परमेष्ठी हैं।** इन्द्रों से भी पूज्य, गणधरों

से पूज्य, साधु से पूज्य, महा उत्तम लोक के प्रमुखों से भी जो पूज्य हैं, वे अर्हंत परमेष्ठी हैं। ऐसे अरिहन्त परमेष्ठी जिसे सम्प्रदाय में मिले जैन में, वे जहाँ-तहाँ व्यर्थ प्रयास करते हैं। रजनीश में व्यर्थ प्रयास करे और वह सांईंबाबा। ओहोहो!

मुमुक्षु : मुम्बई में तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसे परमेष्ठी जिसे णमो अरिहंताणं। आहाहा! ऐसे परमेष्ठी के नाम में वाडा में तो जन्मे न? उसे ऐसे भगवान को छोड़कर अन्यत्र जहाँ-तहाँ... यह और अभी पुनर्जन्म की बात हुई थी रजनीश। सुना है? पुनर्जन्म।

मुमुक्षु : अपना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना। ... अपने यहाँ नहीं। वहाँ सुना था। ... आया था सब बड़ा लेख। पुनर्जन्म। बीच में सात सौ वर्ष अद्धर शरीर बिना रहा। इससे पहले सात सौ वर्ष... लेख आया है। और उस समय के जो-जो जन्मे जीव दूसरे, उससे सात सौ वर्ष का माप निकलता है मेरे। अद्धर रहा शरीर बिना। पूर्व में बौद्ध भगवान, बौद्ध भी पूर्व में दो हजार वर्ष पहले ऐसे थे। दो हजार यह करेगा। बौद्ध ७८ वर्ष पहले फलाना थे। कृष्ण दो हजार वर्ष पहले फलाना थे। और महावीर भगवान को दिव्यध्वनि... इन तीनों के वर्ष कहे हैं। इतने वर्ष पहले वह यह भव इसका था। कहो अब इन तीनों को... यह तुम्हारी बात चलती है, यह रजनीश। बहुत निकाली हैं पुनर्जन्म की बातें। यह जांबुड़ी (ने) पढ़ा था, आया था। आहाहा!

मुमुक्षु : .... भव बतावे ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह उसका भव बताता है। कहते है वह। उसमें सात सौ वर्ष शरीर बिना रहे, यह गप्प है न सब। सात सौ वर्ष शरीर बिना रह सकता है? भगवान महावीर मोक्ष....

मुमुक्षु : अपर्याप्त में शरीर बिना नहीं रह सकता?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी शरीर तो है न अपर्याप्त में भी। सात सौ वर्ष कहाँ से रहे? गप्प मारकर कल्पना खड़ी की। बड़ा लेख है बड़ा। ऐसे प्रसिद्ध पुरुष स्वयं स्वत: अपनी बात करते हैं जातिस्मरण की। धर्म का बड़ा लेख था, हों! मैंने कहा यहाँ पढ़ा

है। जाम्बुड़ी में। भगवान की बात की है, बुद्ध की की है और कृष्ण की। ये सब पूर्णपुरुष होकर आये हुए थे। वे पूर्ण होकर आये हैं ऐसा। ऐसा नहीं आया? मैं भी लगभग पूर्ण होकर ही यह मेरा अवतार है। लगभग शब्द। और अन्त में मुझे ऐसा था। ऐसा लिखा। उसमें तीन दिन पहले किसी ने खून किया, इसलिए वे तीन दिवस के संस्कार यहाँ जन्मने के बाद मेरी माता कहती थी कि तीन दिन तक बोले नहीं, तीन दिन तक दूध पीया नहीं। वहाँ वे तीन दिन बाकी रह गये न? उसका यहाँ पूरा किया।

मुमुक्षु : एक दिवस वांचन वहाँ किया है....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तीन दिन बाकी रहे और मार डाला। यह पढ़ा है तुमने? यहाँ कहाँ से आया? वह अन्तिम क्षण में मार डाला। परन्तु वह तो अच्छा किया है। विरोधी नहीं था, ऐसा लिखा है। वह मारनेवाला विरोधी नहीं था, ऐसा लिखा है। वे दिन, यहाँ जन्मने के बाद तीन दिन दूध पीया नहीं, फिर तीन दिन रोया नहीं। मेरी माता कहे, यह तीन दिन वहाँ पूरे किये कहे। सब ऐसा लम्बा-लम्बा है। पढ़ा नहीं? कौन जाने... आया था। जाम्बुडी।

मुमुक्षु : ऐसे ही जगत चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे ही चलता है। तीन लोक के नाथ अरिहन्त को पूर्ण ज्ञान में वाणी की ध्वनि उठे। आहाहा! ऐसे प्रभु की गोद छोड़कर दूसरे की गोद में जाये, (वह) माता छोड़कर कुत्ती का (दूध) पीता है। बहुत बहुत बहुत सब परन्तु बिना ठिकाने का। भगवान कहाँ, कृष्ण कहाँ और बौद्ध कहाँ? सबको परिचय में आ गये तब कहा न। बीच के भव का मुझे ख्याल है। दूसरे भव का। इसलिए सात सौ वर्ष का मैं अनुमान करता हूँ।

मुमुक्षु : सात सौ वर्ष बिना शरीर के....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना शरीर के रहा अद्धर। यह सब बहुत लम्बा था। हिन्दी। आहाहा! बहुत जातिस्मरण उसे। आहाहा! वह अन्यमति कहते हैं न, थोड़ा मरने के बाद यहाँ ऊपर रखे रहे अमुक तक पाँच महीने।

मुमुक्षु : गप्पा मारना, फिर थोड़े क्या मारना?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसी कल्पना हुई।

मुमुक्षु : कल्पना में ऐसा आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बस यह कल्पना। ऐसा सीधे कहे नहीं। उसकी कल्पना में यह भ्रमणा हो गयी। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे... आवे। बात हो गई न! ... ऐसा है और ऐसा है। ऐसे स्वप्न आवे, ऐसी कल्पनायें आवे। सब गप्प ही गप्प। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **इस प्रकार इन्द्रादिक से पूज्य अरहन्त परमेष्ठी हैं।** आहाहा! गणधर और इन्द्रों आदि से भी पूज्य तो अरिहन्त परमात्मा हैं। आहाहा! महावीर की आज्ञा। और यह महावीर की आज्ञा... यह कहते हैं। दस लक्षण पर्व में यह किया है। महावीर की वाणी। वह तो गीता की वाणी, वह सब करे खींचड़ा। गजब बात करते हैं। काल ऐसा कोई। व्यक्ति का बेचारे का मस्तिष्क साधारण। धर्म उसकी पर्याय में अव्यवस्थित हो गया सब। वस्तु सिद्ध त्रिकाल है। नित्यानन्द प्रभु की पर्यायों में परिणमन के प्रकार हैं। वे भगवान अरिहन्तदेव सब तीन काल-तीन लोक देखकर... ऐसा मार्ग है।

सर्वज्ञ हैं, सब लोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थों को प्रत्यक्ष जाने.... अरिहन्त की व्याख्या की और सर्वज्ञ... वे सर्वज्ञ हैं। आहाहा! **सब लोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थों को....** लोक-अलोक क्षेत्र, चराचर—गति और स्थित ऐसे पदार्थ को प्रत्यक्ष जाने, **वह सर्वज्ञ है।** प्रत्यक्ष जाने, वह सर्वज्ञ है। लो! रतनसूरी कहते हैं न कि वर्तमान पर्याय को जाने। भूत-भविष्य की शक्ति है, ऐसा जाने। अरे! चीज़ बात ऐसे प्रत्यक्ष ऐसे तीन काल की पर्यायें ऐसे प्रगट परिणमी हैं, ऐसा ज्ञान जानता है। ज्ञान किसे कहे? वह है, वह तो परोक्ष हो गया। तीनों काल के तीन लोक के उसकी प्रगट अवस्था वर्तमान और भूत में प्रगट हुई, भविष्य में प्रगट होगी, ऐसे प्रगट देखते हैं। होगी प्रगट, ऐसा नहीं। उसका अन्त नहीं, वह भी ऐसे प्रगट देखते हैं। अन्त तो है ही नहीं यहाँ। आहाहा! वस्तु की ऐसी स्थिति है। अब यह जैन में रहे हुए कोई ऐसी गड़बड़ करे। दिगम्बर है। मक्खनलालजी ने जवाब दिया। दूसरा ठिकाना न मिले।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें उस पंचाध्यायी की अभ्यास है, इसलिए आ गया। स्वरूपाचरण चौथे में है। वह ज्ञानचेतना चौथे में है। तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष भगवान जानते हैं, यह सब बात आयी है। पुस्तक है न। आयी है। आगम प्रकाश में। आगम मार्ग प्रकाश, बाकी गड़बड़-घोटाला उल्टा। आहाहा! **सर्वज्ञ हैं, सब लोकालोकस्वरूप....** सब लोकालोक। इससे अनन्तगुना हो तो भी जाने। वह है। उसमें है। इतना है परन्तु अनन्तगुना हो तो भी ज्ञान जाने। परमात्मप्रकाश में है। रतनचन्दजी इनकार करते हैं। है न। वीरडी का। वह कहे, नहीं। लोकालोक से अधिक नहीं, इसलिए निमित्त नहीं, इसलिए जानता नहीं। वहाँ तो वजन निमित्त में आया। कहाँ निकाला! जानने की शक्ति है। जाननेवाला है न, जाननेवाला, भाई! वह पर्याय का स्वकाल... है। इससे अनन्तगुना जाने तो भी जानने के स्वभाव में मर्यादा क्या? आहाहा! मर्यादा क्या? ऐसा वह स्वरूप है। सर्वज्ञ जानना और मानना, बापू! अलौकिक बात है। वह कहीं साधारण बात नहीं। आहाहा! अन्तर में मानना, हों! वह पर्याय का इतना सामर्थ्य है, वह जिसमें से आवे, ऐसे द्रव्य के स्वभाव को माने, तब उस पर्याय को माना कहलाये। एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने, वह शक्ति में से व्यक्तता आयी है। उस शक्ति की प्रतीति करे, तब उसे व्यक्ति की प्रतीति होती है। आहाहा!

सर्व लोकालोक को चराचर को प्रत्यक्ष जाने, वह सर्वज्ञ। पहले बोल की व्याख्या हुई सर्वदर्शी। **सब पदार्थों को देखनेवाले हैं।** सामान्य भेद किये बिना। वह सर्वदर्शी। पहले सर्वज्ञ लिया, पश्चात् सर्वदर्शी लिया। शक्ति में पहले सर्वदर्शी लिया। भाई! ४७ शक्ति। पहले सर्वदर्शी ली, पश्चात् सर्वज्ञ। सर्वदर्शी के पश्चात् जानकर कहा चारित्र ऐसा लेना है न? इसलिए सर्वदर्शी पहले ली। सामान्य-विशेष शक्ति। आहाहा! **सब पदार्थों को देखनेवाले हैं।** भगवान। यहाँ कुछ नहीं। लगभग पूर्ण होकर ही मैं अवतरित हुआ हूँ। ऐसा कहे। दूसरे सब पुरुष पूर्ण होकर अवतरित हुए हैं। कृष्ण, बौद्ध और महावीर। लो ठीक! और यहाँ आया... यहाँ लाये हैं।

निर्मोह हैं, मोहनीय नाम के कर्म की प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है.... आहाहा! देखा! निर्मोह में से। **मोहनीय नाम के कर्म की प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है....** यह

निर्मोह—मिथ्यात्वरहित, ऐसा हुआ। आहाहा! निर्मोह है भगवान। मिथ्यात्व के भाव से रहित है। **वीतराग हैं, जिनके विशेषरूप से राग दूर हो गया हो....** विशेषरूप से। पूर्ण वीतराग, वीत-राग। राग से रहित हो गये हैं। वीतराग। विशेषरूप से राग... वीत अर्थात् रहित। वीत अर्थात् विशेष से रहित। यहाँ वित्त को पैसा कहते हैं। पैसे के रागी वीतराग कहलाये सब। यहाँ साधु... सब वीतराग हो तुम। ...परन्तु हम वीतराग? बापू! वित्त अर्थात् पैसे के रागी हो, वह तुम वीतराग हो। वित्त अर्थात् पैसा होता है। वीतराग हैं सब। वित्त अर्थात् पैसे के रागी और एक वीतराग—राग से रहित। आहाहा!

यहाँ तो वीतराग विशेषरूप से राग दूर हो गया। **उनके चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से (-उदयवश) हो ऐसा राग-द्वेष भी नहीं है।** ऐसा। निर्मोह कहा है न पहला? मिथ्यात्वरहित, वह तो वीतराग कहा, ऐसा। यह तो चारित्रमोह से रहित, ऐसा। दो अर्थ किये। '**णिम्मोहा**' में मिथ्यात्वरहित, वीतराग में चारित्रदोषरहित। **चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से हो ऐसा राग-द्वेष भी नहीं है।** परमेष्ठी। यह परमेष्ठी पहला अर्थ आ गया। परम परमेष्ठी।

त्रिजगद्वंद्य है,... वे परमेष्ठी हैं न परमेष्ठी? यह पहले आ गया। परमेष्ठी—परम इष्ट, परम पूज्य। परम पद में रहे हुए अथवा परमपूज्य, यह पहला अर्थ ले लिया। परमेष्ठी, पश्चात् यह परमेष्ठी आये ऐसा। **कर्म के उदय से हो ऐसा राग-द्वेष भी नहीं है। त्रिजगद्वंद्य हैं, तीन जगत के प्राणी तथा उनके स्वामी....** त्रिजगद्वंद्य **तीन जगत के प्राणी तथा उनके स्वामी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्तियों से वन्दनेयोग्य हैं।** आहाहा! इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती से भी वे पूज्य हैं, ऐसा कहते हैं। सामान्य जीव से तो पूज्य हैं, परन्तु अग्र जो है मुख्य इन्द्र, गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव। जिन्हें जगत बड़ा कहता है, उन सब बड़ों को भी वे परमात्मा पूज्य कहलाते।

इस प्रकार से अरहन्त पद को विशेष्य करके.... देखा! इस प्रकार वह परमेष्ठी था न। उन्हें **विशेष्य करके अन्य पदों को विशेषण करने पर....** ऐसे अरिहन्त पद विशेष और सब उसके विशेषण। **सर्वज्ञ पद को विशेष्य करके अन्य पदों को विशेषण करने पर इस प्रकार भी अर्थ होता है,....** सर्वज्ञपद का विशेष्य और दूसरे उसके विशेषण ऐसे भी होते हैं। समझ में आया? अरहन्तपद का विशेष्य दूसरे पद विशेषण,

ऐसा भी होता है। विशेष्य विशेषण समझ में आया? जब सर्वज्ञ कहते हैं, तब विशेष्य अर्थात् कहना है यह, ऐसा। और पश्चात् उसके विशेषण यह। परमेष्ठी ... और सर्वज्ञ कहते हैं। तो सर्वज्ञ वह मुख्य चीज़ और उसके सब विशेषण यह। सर्वदर्शी निर्मोह वीतराग इत्यादि। ऐसा भी इसका अर्थ होता है। समझ में आया? ऐसा सब है। विशेष्य और विशेषण आते हैं उसमें। विद्यालय में नहीं आता? व्याकरण में आता है। क्या?

परन्तु वहाँ अर्हंत भव्य जीवों से पूज्य हैं.... अधिक यह लेना। अर्हंत। त्रिजग वंदित हैं न? **अर्हंत भव्य जीवों से पूज्य हैं....** भव्य जीव को पूज्य है, अभव्य को नहीं। उसकी महिमा जिसे जगी है, ऐसे जीवों से महिमावन्त प्रभु पूज्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इस प्रकार विशेषण होता है।** लो! **चारित्र कैसा है?** अब चारित्र आता है न, दूसरे पद की व्याख्या? **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन आत्मा के परिणाम हैं,....** लो! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, यह आत्मा त्रिकाल ध्रुव है, उसके ये परिणाम हैं, उसकी यह पर्याय है, उसकी अवस्था है। लो, वह कहे सम्यग्दर्शन गुण है, उसे तुम पर्याय कहते हो। ... थे, वे गुजर गये बेचारे। क्षुल्लक-क्षुल्लक।

यहाँ तो कहते हैं कि तीन तो परिणाम हैं, गुण नहीं। मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह तो पर्याय है-परिणाम है-अवस्था है। **उनके शुद्धता का कारण है,.... परिणाम हैं, उनके शुद्धता का कारण है,....** वह चारित्र है कैसा? ऐसा लिया न? चारित्र कैसा है, ऐसा लिया न? **ये तीन आत्मा के परिणाम हैं, उनके शुद्धता का कारण है,....** उस परिणाम का शुद्धता का कारण वह चारित्र, ऐसा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो परिणाम, उसकी शुद्धता का कारण चारित्र है, कहते हैं। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में रहकर ऐसा अर्थ करते हैं। है न पाठ में? '**सोहिकारणं**' है न? '**णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं**' यह कहते हैं। चारित्र कैसा है? कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र यह तीन आत्मा के परिणाम, उसकी शुद्धता का कारण है। यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता का कारण चारित्र है, ऐसा कहते हैं। आता है न विशेष?

चारित्र अंगीकार करने पर सम्यग्दर्शनादि परिणाम निर्दोष होता है। चारित्र—स्वरूप की वीतरागता ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान परिणाम निर्दोष होता है। **चारित्र मोक्ष के आराधन का कारण है,....** '**मोक्खा शरण हेउं**' दूसरी गाथा का तीसरा पद।

मोक्ष की सेवा का कारण आराधना का कारण है। आहाहा! **इस प्रकार चारित्र के पाहुड़ (चारित्र प्राभृत) ग्रन्थ को कहूंगा,....** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **आचार्य ने मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा की है।**

★ ★ ★

गाथा - ३

आगे सम्यग्दर्शनादि तीन भावों का स्वरूप कहते हैं:—अब तीन का स्वरूप कहते हैं। चारित्र तीनों की शुद्धि का कारण। अब तीन का क्या स्वरूप है, ऐसा कहते हैं पहले।

जं जाणइ तं णाणं, जं पेच्छइ तं च दंसण भणियं।
णाणस्स पिच्छियस्स य, समवण्णा होइ चारित्तं॥३॥

लो! यहाँ तो वहाँ से शुरु किया है। **'जं जाणइ तं णाणं,'** यहाँ शुरु किया पहला। शब्द वहाँ से शुरु किया। ... **'जं जाणइ तं णाणं, जं पेच्छइ तं च दंसण'** देखे और श्रद्धा करे, ऐसे दोनों अर्थ हैं। **'पेच्छइ'** है न? देखे और श्रद्धा करे, वह दर्शन। और **'णाणस्स पिच्छियस्स य, समवण्णा होइ चारित्तं।'** आहाहा! **ज्ञान और दर्शन के समायोग से चारित्र होता है।** एकाग्र होता है। दर्शन-ज्ञान में ऐसे तो दर्शन-ज्ञानसहित एकाग्र होता है, उसका नाम चारित्र है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान बिना चारित्र नहीं होता। पहले ऐसा सिद्ध करने के लिये तीनों की शुद्धि का वह कारण है। **'णाणस्स पिच्छियस्स य, समवण्णा'** समापना। दो का योग हुआ दोनों का। उसमें इसका नाम चारित्र, स्वरूप में स्थिरता। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित स्वरूप में स्थिरता को यहाँ चारित्र कहा जाता है।

भावार्थ:—जाने, वह तो ज्ञान और देखे, श्रद्धान हो वह दर्शन.... दोनों अर्थ किये न? पाठ में है। **दोनों एकरूप होकर स्थिर होना चारित्र है।** समायोग का अर्थ किया। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की एकता अन्दर होना, वह चारित्र। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ११, मंगलवार, दिनांक-२०-११-१९७३
गाथा- ४, ५, प्रवचन-४६

अष्टपाहुड में चारित्रपाहुड है। चौथी गाथा।

गाथा - ४

एए तिण्णि वि भावा, हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे, जिणभणियं दुविहं चारित्तं ॥४॥

अर्थः—ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे,.... अर्थात् क्या कहा? कि जो आत्मा वस्तु है, पूर्ण ज्ञान, आनन्दस्वभाव स्वरूप, उसमें से जिसने सर्वज्ञपद स्वभाव में—शक्ति में था, वह प्रगट किया, उसे यहाँ जैन परमेश्वर तीर्थंकर अरिहन्त कहा जाता है। उन अरिहन्त की वाणी में—मुख में यह आया कि यह आत्मा जो वस्तु है, एक समय में पूर्ण अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड, उसका ज्ञान करना, उसकी श्रद्धा करना, उसमें रमना, यह तीन मोक्ष का मार्ग है। '**एए तिण्णि वि भावा,**' कहा न? यह आत्मा वस्तु है पूर्ण अनन्त एक वस्तु पूर्ण अखण्ड आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है। उसकी पर्याय—अवस्था में भूल है। भूल न हो तो भूल टालना और आनन्द को प्राप्त करना, यह रहता नहीं। भूल है परन्तु वह भूल दशा में है, हालत में। त्रिकाली वस्तु में वह भूल नहीं। त्रिकाल वस्तु तो पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन, उसका ज्ञान... उसकी बात करेंगे अक्षय अमेय। सूक्ष्म बात है, भगवान!

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो ज्ञान में देखा, जाना, वह कहा। यह बहुत सूक्ष्म बात है। इसने सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा कभी इसने ज्ञान और श्रद्धा में लिया ही नहीं। समझ में आया? जन्म-मरण के परिभ्रमण के चक्र मिटाने के लिये यह उपाय है। यह वस्तु स्वयं आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्तगुणों का एकरूप वह आत्मा है। उसका ज्ञान... उसका ज्ञान करना। उसका दर्शन—श्रद्धा और उसमें रमणता।

ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे,.... है तीनों पर्याय। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था। त्रिकाली वस्तु जो है ध्रुव पूर्ण, उसका ज्ञान-दर्शन और चारित्र यह है तीन वर्तमान दशा। सूक्ष्म बात है, भाई! ये तीनों ही भाव **ये अक्षय और अनन्त जीव के भाव हैं,....** आहाहा! त्रिकाली की बात नहीं। उसका जो ज्ञान, श्रद्धान और चारित्र, उसकी बात है। वस्तु जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने वस्तु-आत्मा कही, ऐसे अनन्त आत्मायें हैं। वह एक आत्मा परिपूर्ण अनन्त स्वभाव सम्पन्न, उसका ज्ञान। वह ज्ञान भी अक्षय और अनन्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय में अक्षय....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में अक्षय अनन्त है। वह वस्तु। आहाहा! पूर्ण अनन्त। अनन्त-अनन्त बेहद गुणों का पिण्ड आत्मा, उसके ज्ञान में भी अनन्तता आ जाती हैं। आहाहा! वस्तु स्वयं भगवान आत्मा, उसमें एक गुण (ऐसे) अनन्त-अनन्त गुण संख्या से हैं। आहाहा! वीतराग के अतिरिक्त, सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं है नहीं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त देव ने जो आत्मा का ज्ञान, दर्शन और चारित्र कहा, वह ज्ञान त्रिकाली वस्तु का ज्ञान, उस ज्ञान में अनन्तता आ जाती है। अक्षय—नाश न हो और अपरिमित ऐसा पर्यायभाव होता है। आहाहा!

कहते हैं, तीनों भाव। भगवान पूर्णानन्द प्रभु में अनन्त शक्तियों का संग्रह है, पिण्ड है वह। अनन्त शक्ति एक-एक शक्ति में भी अनन्त सामर्थ्य है। ऐसी एक-एक शक्ति का अनन्त सामर्थ्य, ऐसी अनन्त शक्ति का एकरूप वस्तु, उसका ज्ञान, वह अक्षय है। वह ज्ञान नाश नहीं पाता, अपरिमित है—जिसे मर्यादा नहीं। आहाहा! समझ में आया? धीरुभाई! सूक्ष्म बात है अभी। दोपहर में कुछ चला था। आहाहा!

अक्षय और अनन्त जीव के भाव हैं,.... सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ, ऐसा वाणी में कहते हैं। आहाहा! कि उस आत्मा की जो श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीनों हैं तो उसकी वर्तमानदशा—उसकी हालत—प्रगट हुई पर्याय। उस एक-एक समय की उस पर्याय में अक्षयपना और अनन्तपना है। आहाहा! क्योंकि वस्तु स्वयं अक्षय और अनन्त स्वभाव से है, उसका ज्ञान भी पर्याय में अक्षय और अनन्त हो गया है। आहाहा!

अरे! इसने सब जाना, जगत को जाना, आत्मा कौन है (यह नहीं जाना), वह भी सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा कहते हैं वह। दुनिया कल्पना से आत्मा... आत्मा की बातें बहुत करते हैं अभी तो। वह नहीं।

अरिहन्त देव ने, सर्वज्ञ प्रभु ने। सर्व—ज्ञ। जिन्हें तीन काल तीन लोक का एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ज्ञान था तीन काल-तीन लोक का। उन्हें इच्छा बिना परमात्मा की वाणी आयी। उस वाणी में ऐसा आया कि प्रभु! तू अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! अनन्त गुण और एक-एक गुण की अनन्त शक्ति। ऐसा जो तेरा तत्त्व, उस तत्त्व को ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान होता है। आहाहा! उस ज्ञान की दशा अक्षय और अनन्त है। वह अवस्था क्षय पावे, ऐसी नहीं, तथा हदवाली नहीं। आहाहा! भारी कठिन, भाई! ऐसे उसकी श्रद्धा—देखना। वस्तु जो पूर्ण परमात्मस्वरूप अनन्त गुण, उसे देखना अथवा श्रद्धा करना, वह भी अक्षय और अनन्त है। उस श्रद्धा में अक्षयपना और अनन्तपना है। और उसमें जो रमणता-चारित्र, वह भी अक्षय और अनन्त है। क्षय न पावे और चारित्र की पर्याय में अनन्तपना, अपरिमितपना—बेहदपना सामर्थ्य है उसमें। आहाहा! गजब! आहाहा! इन सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात लोगों ने कल्पित अनेक प्रकार का आत्मा कहा है, वह तो अनादि से मानते हैं, परन्तु सत्य वस्तु है नहीं।

भगवान परमेश्वर सीमन्धर भगवान तो महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञरूप से विराजमान हैं। यहाँ महावीर आदि परमात्मा अरिहन्त पद में थे, तब तो वाणी थी। शरीर छूट गया, अशरीरी सिद्ध हो गये हैं। णमो सिद्धाणं में मिल गये है। सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं वे णमो अरिहंताणं में हैं। आहाहा! उनकी वाणी में आया कि यह मुनि स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। साक्षात् इस देह से, हों! आठ दिन वहाँ रहे, वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे है। भगवान के मुख से यह बात सुनी और सन्त, गणधर जो चार ज्ञान के धनी, उनके निकट.... आकर यह रचे। आहाहा! उसमें ऐसा कहते हैं कि परमात्मा जो जिनेश्वरदेव हैं, वे ऐसा कहते हैं कि आत्मा की जो श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह पर्याय में अक्षय और अनन्तपना है। आहाहा! कोई कहे कि और ज्ञान की दशा में अनन्तपना तो ठीक, परन्तु देखना और श्रद्धा करना, उसे चारित्र में अनन्तपना

कैसे? आहाहा! अरे! यह अनन्त है, बापू! आहाहा! परिपूर्ण आत्मा अनन्त गुण का बेहद जिसका प्रमाण, (ऐसे) अनन्त का प्रमाण क्या? आहाहा! ऐसे अनन्त गुणों की श्रद्धा, वह प्रथम सम्यग्दर्शन, उसमें अनन्तता और अक्षयता आ जाती है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रम भले हो, परन्तु है ... उसमें अनन्तता है। अनन्त है। स्वरूपाचरण हो या स्थिरता विशेष हो, है वह चारित्र की पर्याय में अनन्तता, अनन्त गुण और अनन्त ... जिसमें श्रद्धा, ज्ञान होकर रमता है, उस रमणता में वह अनन्तता आ गयी है। आहाहा! बात दूसरे ढंग कैसी की है, देखो न!

बात यह है कि यह वस्तु स्वयं आत्मा है, वह वस्तु एक, परन्तु उसकी शक्तियाँ-स्वभाव क्या? वस्तु वह तो हुई। परन्तु उसका स्वभाव क्या? जैसे शक्कर एक वस्तु। परन्तु उसका स्वभाव क्या? कि मिठास, सफेदाई, सुगन्धता। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक वस्तु है—पदार्थ। उसमें वस्तु अर्थात् अनन्त-अनन्त शक्तियाँ जिसमें बसी हुई हैं। आहाहा! उन अनन्त-अनन्त शक्तियों में एकरूपता वह द्रव्य-वस्तु है। उसके ज्ञान में अनन्तता आयी है। आहाहा! अनन्त कितने गुण तो कहे थे न! आकाश है सर्वव्यापक। लोक में तो है, परन्तु पश्चात्... पश्चात्... पश्चात्... पश्चात्... कुछ होगा या नहीं? यह जगत हो जाने के पश्चात्... ऐसा तो कुछ अनन्त योजन में नहीं। ऐसा तो असंख्य योजन में ऐसा (जगत) है। जड़-चैतन्य का संग्रह... लोक। पश्चात् खाली-खाली। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... और अनन्तगुणा खाली भाग है, वह आकाश है। और उस आकाश का कहीं अन्त नहीं। अन्त हो तो पश्चात् क्या? अलौकिक बातें हैं। यह आकाश नाम का पदार्थ भी व्यापक है। दशों दिशाओं में। कहीं इसका अन्त नहीं, छोर नहीं। छोर हो तो पश्चात् क्या?

यह सर्वव्यापक आकाश भी जहाँ अनन्त है, उसके जितने प्रदेश हैं। प्रदेश अर्थात् यह अनन्त व्यापक है ऐसे लोकालोक। उसमें एक परमाणु—पॉईन्ट यह टुकड़ा। यह तो बहुत रजकण का पिण्ड है। बहुत टुकड़े करके अन्तिम टुकड़ा परमाणु जिसे परमात्मा

कहते हैं, वह इतने आकाश में जितने में रुकता है, उसका नाम एक प्रदेश कहा जाता है एक रजकण। इतने में रहे उसे। ऐसे अनन्त प्रदेश आकाश के हैं। उससे अनन्तगुणे एक आत्मा में अनन्त (गुण) हैं। धीरुभाई! आहाहा! क्यों आज नहीं आये? सर्दी हो गयी है। कहो, समझ में आया? ऐसे जो अनन्त... अनन्त... आहाहा! गुण का एकरूप, वह वस्तु। ऐसे गुण का जिसे गुण का ज्ञान हुआ, उसे जिसने ज्ञान की वर्तमानदशा से ज्ञेय बनाया तो ज्ञेय तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... इसलिए उसकी ज्ञान की पर्याय में भी अनन्तता आ गयी। आहाहा! अक्षयता आ गयी। जैसे वस्तु अक्षय है—क्षय नहीं, उसी प्रकार पर्याय अक्षय हो गयी है। आहाहा!

ऐसी उसकी श्रद्धा हुई सम्यग्दर्शन (हुआ)। सम्यक् अर्थात् सच्चा दर्शन। जैसा भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, वैसी जिसे सच्ची प्रतीति अन्दर में भान होकर हुई, उस श्रद्धा में भी अक्षय और अनन्तता आ गयी। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है। रुपयों में अरबों हो... परन्तु यह तो पार नहीं होता।

मुमुक्षु : यह महिमा सम्यग्दर्शन की है, प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा सम्यग्ज्ञान और दर्शन और चारित्र—तीनों की। इनकी अपेक्षा महिमा भगवान आत्मा की।

मुमुक्षु : परन्तु महिमा करनेवाली तो पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : करनेवाली पर्याय, परन्तु यह महिमा इसकी करती है न? आहाहा! गजब काम भाई ऐसा। अभी बेचारे को मुश्किल से पकड़ना कठिन। अरे! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त के सम्प्रदाय में जन्मे, परन्तु अरिहन्त को क्या कहना है, उसकी इसे खबर नहीं होती। समझ में आया? यह करना, व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, इसमें रुक गया। वस्तु क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! यह वस्तु के भान बिना का सब आचरण मिथ्या आचरण है। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु आत्मा अनन्त ज्ञान, उसका ज्ञान स्वभाव है। वह स्वभाव भी अनन्त है। दर्शन स्वभाव है त्रिकाल, हों! वह भी अनन्त है। आनन्द स्वभाव भगवान आत्मा आनन्द स्वभाव है आत्मा। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत्, ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ

है। वह आनन्द भी अनन्त है। ऐसे अनन्त-अनन्त गुण, वह एक-एक गुण अनन्त (सामर्थ्यवान) है। आहाहा! स्वभाव है, उसका माप क्या? उसकी हद क्या? उसकी मर्यादा क्या? ऐसा जो भगवान आत्मा अनन्त संख्या से गुण का पिण्ड है, उसे जो ज्ञान में ले, आहाहा! वह ज्ञान स्वयं अक्षय और अनन्त है। द्रव्य अक्षय और अनन्त, गुण अक्षय और अनन्त, ऐसी उसकी पर्याय अक्षय और अनन्त हुई, कहते हैं। आहाहा! कठिन परन्तु ऐसी बातें भी। ऐसा करना, ध्यान करे। परन्तु किसका अभी वस्तु समझे बिना? वस्तु कैसी है, उसकी खबर बिना ध्यान कैसे होता होगा तुझे? समझ में आया? ध्यान, वह तो चारित्र है। परन्तु उसे ज्ञान और दर्शन हुए बिना चारित्र कहाँ से आयेगा? आहाहा!

कहते हैं कि **अक्षय और अनन्त जीव के भाव हैं,....** आहाहा! एक लाईन में इतना भरा है। लो, धीरुभाई! पहले वह तत् में आया, अब इस लाईन में इतना सब आया। आहाहा! पाठ है न। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है। आहाहा! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये हैं। पहले भगवान, दूसरे गणधर, तीसरे कुन्दकुन्दाचार्य। जैन धर्मोस्तु मंगलं। आहाहा! जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, वह कोई वाडा नहीं। वह वस्तु का स्वरूप ही यह अनन्त-अनन्त आनन्द और शक्ति से भरपूर पदार्थ, उसका आश्रय लेकर राग-द्वेष और अज्ञान को जीतना, उसका नाम जैन। समझ में आया? 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यह वचन से समझ ले जिन वचन का मर्म।' आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा।' अर्थात्? भगवान आत्मा वीतरागी मूर्ति प्रभु है। अर्थात्? अकषायरसस्वरूप है। अर्थात्? विकार बिना का त्रिकाली आनन्द का कन्द प्रभु है। आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, उसे ज्ञान में लेकर जो ज्ञान हो, उस ज्ञान में भी अक्षय और अनन्तता आ गयी है। परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। प्रभु! तेरे अनन्त गुण के पिण्ड को उस ज्ञान में लिया तो उस तेरी ज्ञानपर्याय में अक्षय अनन्तता आ गयी है, कहते हैं। आहाहा! कहो, धीरुभाई! ऐसा मार्ग है यह। ऊपर-ऊपर से बैठे, ऐसा नहीं यह। आहाहा! अभी तो बहुत प्रकार है। घर में ऐसा हो... घर में ऐसा हो। आहाहा!

यहाँ तो विकल्प का नाश हो, ऐसा जो कहना, परन्तु उस विकल्प का नाश इसे

किस अस्तित्व के आश्रय से होता है ? उस अस्तित्व की जहाँ खबर नहीं, उसे विकल्प का नाश कभी तीन काल में नहीं होता। विकल्प छोड़ दो, विकल्प छोड़ दो। विकल्प का छोड़ना और नाश होना, वह किसके आश्रय से ? अस्ति तत्त्व, वह तो नास्ति हुई। विकल्प का नाश करना, वह तो नास्ति हुई, परन्तु अस्ति क्या, ऐसा पहले कहा। अस्ति क्या वह तत्त्व है ? समझ में आया ? अस्ति अर्थात् है। है अर्थात् मौजूदगी चीज़, सत्ता। सत्ता वह क्या है ? कि जिस सत्ता का आश्रय लेने से विकल्प अर्थात् राग की एकता टूट जाती है, उसे निर्विल्पकता होती है। समझ में आया ? आहाहा !

सीढ़ियों-सोपानों पर पैर रखे तो नीचे से उठें। परन्तु रखने का स्थान कहाँ है, उस सत्ता की खबर नहीं। वह कहाँ से विकल्प से छूटेगा ? आहाहा ! समझ में आया ? यह परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्यदेव परमात्मा ने अस्ति-तत्त्व कहा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान को कर। आहाहा ! उसका ज्ञान कर, उसकी श्रद्धा कर, वहाँ विकल्प की वृत्तियाँ टूटी, वहाँ एकता नहीं रहेगी। आहाहा ! यों तो विकल्प छोड़ने जाये कि विकल्प छोड़ूँ... छोड़ूँ, वह तो नास्तिभाव हो गया। लक्ष्य वहाँ रहा। परन्तु अस्तितत्त्व इतना है, उसके लक्ष्य बिना विकल्प का नाश किसी प्रकार से तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : .... बहुत कठिन ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है वहाँ। ऐसे विचार करके सम्यक्‌रूप से विचार करे तो इसे बैठे कि राग जो विकल्प है, वह राग है। अब राग का नाश किस प्रकार से हो ? राग के ऊपर लक्ष्य रखकर राग का नाश होगा ? ऐसे वर्तमान दशायें हैं, उस दशा पर लक्ष्य रखकर राग का नाश होगा ? इसलिए परमात्मा कहते हैं कि एक क्षण में परम आनन्द की मूर्ति प्रभु है, अनन्त-अनन्त गुण संख्या से, हों ! कोई थोड़े गुण कहे, वह तो इसने आत्मा जाना नहीं। आहाहा ! अनन्त-अनन्त बेहद अपरिमित संख्या से गुण का पिण्ड प्रभु। आहाहा ! उसमें जिसने ज्ञान की पर्याय को उसमें रोका, उस ज्ञान की पर्याय में अनन्तता और अक्षयता आयी, वहाँ राग की एकता टूट जाती है। वहाँ विकल्प टूट जाते हैं। तोड़ना नहीं पड़ता। यह तो भाषा। तोड़ना अर्थात् ? अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा है, ऐसे सत् का जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ आगे विकल्प उत्पन्न होता ही

नहीं। आहाहा! उत्पन्न होता नहीं, उसे नाश किया—ऐसा व्यवहार से कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह आत्मा ऐसा।

....में आता है न एक और अनेक। आया था न? वह है। उसका गुण है अथवा अनेक पर्याय है। उस अनेक पर्याय का निर्णय एकरूप में अन्दर गये बिना... आहाहा! अनेक का सच्चा ज्ञान। अनेक स्वयं हों! अनन्तगुण है न? वे अनन्त हैं, वे अनेक कहलाते हैं और द्रव्य है, वह एकरूप कहलाता है। दोपहर में चला था न। इसका अर्थ यह है। एकरूप वस्तु है, उसमें अनन्त गुण होने पर भी अर्थात् कि वर्तमान उसकी दशा में अनन्त गुण की अवस्था होने पर भी... अनन्त अवस्था है। एक समय में अनन्त। वह अनन्त, वह अनेक और वस्तुरूप से एक। उस वस्तु की ओर की अन्तर्दृष्टि होने से अनेकपने की पर्याय एकपने में जाने से, उसे एक की प्रतीति अनन्तपने की प्रतीति में लेकर आती है। आहाहा! यह तो और अनेकपना हुआ। आहाहा! गजब शैली। वीतराग केवलियों की कथन वस्तु सिद्ध, ज्ञान में सिद्ध हुई ऐसी ही वाणी उन्हें आती है। आहाहा!

कहते हैं, **ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे, ये अक्षय और अनन्त जीव के भाव हैं,....** जीव की पर्याय है वह—जीव की दशा है, वह आत्मा की अवस्था है। आहाहा! समझ में आया? **इनको शोधने के लिये....** अब क्या कहते हैं? जो वस्तु है पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड, उसका ज्ञान, उसका दर्शन और उसका चारित्र। वह अक्षय अनन्त है, उसे शुद्धता अर्थात् निर्मलता करने के लिये, यह तीन पर्याय को निर्मल करने के लिये। आहाहा! **जिनदेव ने दो प्रकार का चारित्र कहा है।** वीतराग परमेश्वर जिनदेव, जिनेन्द्रदेव ने दो प्रकार की चारित्र की मर्यादा बतलायी है। आहाहा! यह तो धीर का मार्ग है, धीरुभाई! यह उतावलिया का मार्ग नहीं है। आहाहा! अनन्त काल हुआ परिभ्रमण करते हुए। जिसकी आदि नहीं, अन्त नहीं। अनादि... अनादि... अनादि... आहाहा!

मुमुक्षु : धीरा अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धी अर्थात् बुद्धि और 'र' अर्थात् प्रेरणा। सम्यग्ज्ञान की बुद्धि को आत्मा की ओर प्रेरित करना, उसका नाम धीर कहा जाता है।

मुमुक्षु : प्रभु मैं जानूं धीर... मैं ऐसा समझा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीर। धी अर्थात् बुद्धि। इसने अर्थ पूछा भाई ने। धी अर्थात् बुद्धि। अर्थ है टीका में। कलश में टीका है। अष्टपाहुड़ में यह सब शब्द शास्त्र में है। अष्टपाहुड़ में संस्कृत में टीका है। धीर और वीर की व्याख्या है। दोनों। धी अर्थात् बुद्धि। जो ज्ञान की बुद्धि को आत्मा की ओर प्रेरित करे, उस बुद्धि को धीर कहा जाता है। यह नाम धीर नहीं। आहाहा! यह ज्ञान पहला नहीं आया? यह ज्ञानादि तीन भाव। यह ज्ञान है, वह धी है। धी कहो, ज्ञान कहो, बुद्धि कहो। आहाहा! उसे अन्तर में झुकाना, उसका नाम प्रेरणा की कहा जाता है। आहाहा! अनन्त अनन्त गुण के ओर की बुद्धि को झुकाना और उसका स्वीकार करना, उसे यहाँ धीर कहा जाता है। यह ज्ञानी, वह धीर है; अज्ञानी, वह धीर नहीं। आहाहा! और वीर भी उसे कहा जाता है। वीर—वीर्य, वीर्य को प्रेरे। 'र' अर्थात् प्रेरणा। जिसकी वर्तमान आत्मबल की पर्याय को अन्तर में प्रेरे, उसे वीर कहा जाता है। जगत के लोगों को घात करे और दुश्मनों को मारे, वे सब नपुंसक हैं, वीर नहीं। राग को रचे और पुण्य-पाप के भाव को रचे, वह वीर नहीं। वह नपुंसक है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसी बातें हैं। आहाहा! पर को तो घात सकता नहीं, परन्तु अन्दर पुण्य के, पाप के, शुभ-अशुभभाव को रचे, वह भी नपुंसक है। वह वीर नहीं। क्लीब है। शास्त्र में—समयसार में आता है। वीर तो उसे कहते हैं कि जो भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी ओर ज्ञान को वीर्य से झुकावे। आहाहा! उसे यहाँ वीर और धीर कहा जाता है, जिसके फल में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान आदिक तीन भाव.... भाव अर्थात् पर्याय, वर्तमान प्रगट हुई अवस्था। **ये अक्षय और अनन्त जीव के भाव हैं, इनको शोधने के लिये जिनदेव ने....** पाठ है न। '**जिणभणियं**' चौथा पद है। वीतराग ने कहा है। तीन लोक के नाथ अरिहन्त परमेश्वर वीतराग, सौ इन्द्र के पूजनीक समवसरण धर्मसभा में... आहाहा! जिनकी सभा में सिंह और बाघ, जिनकी सभा में नाग और बाघ, जिनकी सभा में वासुदेव और बलदेव और इन्द्र, उनकी सभा में भगवान ने '**जिणभणियं**' वीतराग ने यह कहा था। आहाहा! कहो, समझ में आया?

वाह! यह गाथा तो जोरदार है न! '**जिणभणियं दुविह चारित्तं तिण्हं पि सोहणत्थे**' अर्थात्? भगवान आत्मा का ज्ञान, उसका दर्शन और उसका जो चारित्र, उसकी शुद्धि के लिये—निर्मलता के लिये वीतराग ने दो प्रकार का चारित्र कहा है। वह दो प्रकार का बाद में आयेगा पाँचवीं गाथा में। समझ में आया? आहाहा! '**जिणभणियं' जिनदेव ने दो प्रकार का चारित्र कहा है।**

भावार्थ:—जानना, देखना और आचरण करना ये तीन भाव.... भावार्थ है न भावार्थ? जानना, देखना अर्थात् श्रद्धा करना और आचरण करना, यह चारित्र। **ये तीन भाव जीव के अक्षयानन्त हैं, अक्षय अर्थात् जिसका नाश नहीं है,....** आहाहा! यहाँ तो यही बात उठायी है। जो प्रगट हुआ ज्ञान नाश न हो। क्योंकि उसमें अनन्तता है, अक्षयता है, ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा! अमेय अर्थात् अमाप....

सब लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान है, इस प्रकार ही दर्शन है,.... एक समय की पर्याय में लोकालोक जाने ऐसी सामर्थ्य है। आहाहा! लोक-अलोक है, ऐसा सिद्ध भी किया। जगत है और जगत के बाहर खाली चीज़ (आकाश) है। दोनों अस्ति है। उनकी उस अस्ति को ज्ञान की पर्याय जानती है। स्व आत्मा को जानते हुए वह सब उसमें ज्ञात हो जाते हैं, ऐसी एक समय की ज्ञान की पर्याय में साधक को अनन्त पर्याय में अनन्त आ जाता है, लोकालोक ज्ञान आ जाये। यह दर्शन। ऐसी श्रद्धा में अनन्तता आ जाती है। अनन्त को श्रद्धता है और अनन्त को जाना, ऐसा जो ज्ञान उसे भी श्रद्धना में लिया है। आहाहा! अर्थात् उस श्रद्धा में भी अनन्तता आ गयी है।

इस प्रकार ही चारित्र है.... ऐसा अन्तर में जानना और प्रतीतिसहित स्वरूप में चरना, चरना अर्थात् रमना, रमना अर्थात् जमना। अन्दर से आनन्द का आहार लेना। आहाहा! ऐसा जो चारित्र है। **तथापि घातिकर्म के निमित्त से अशुद्ध हैं,....** कहते हैं कि अभी पूर्णता शुद्ध नहीं। क्योंकि कर्म एक निमित्त है। निमित्त के लक्ष्य से वह अशुद्ध हो गया है। पर्याय में अशुद्धता है। वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध है। परन्तु पर्याय अर्थात् हालत—दशा, वह कर्म के निमित्त के लक्ष्य से। कर्म ने किया नहीं। स्वयं पर के अस्तित्व के जुड़ान में वह अशुद्ध हुआ है। लो!

जो ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप हैं.... अशुद्ध हैं, जो ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप हैं इसलिए श्री जिनदेव ने.... इसके लिए वीतराग भगवान ने। **इनको शुद्ध करने के लिये....** आहाहा! **इनका चारित्र (आचरण करना) दो प्रकार का कहा है।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५

आगे दो प्रकार का कहा सो कहते हैं:—अब दो प्रकार का चारित्र अर्थात् क्या?

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं, पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
विदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि॥५॥

अर्थ:—प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरणरूप चारित्र है,.... लो, यह पहला। समकित का आचरणरूप चारित्र। अर्थात्? अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी जो अन्दर सम्यग्दर्शन की प्रतीति, उसका जो आचरण, सम्यक् आचरण, दर्शनाचार समकित आचार। आहाहा! यह चारित्र। लो, समकित में भी सम्यक्चरणचारित्र है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ है न, और उतना अन्दर स्वरूप में अनन्त गुण की प्रतीति के साथ इतना चरण-रमणता है। इतनी प्रतीति हुई। अकेली प्रतीति नहीं, उसके साथ रमणता भी है। सम्यग्दर्शन होने पर—प्रथम धर्म होने पर पहले में पहला धर्म होने पर उस भगवान पूर्णानन्द की प्रतीति में स्थिरता का अंश है प्रतीति के साथ। यह उसे समकितचरणचारित्र कहते हैं। लो, यह तो पहले आवे। फिर चारित्र का आचरण। परन्तु पहले समकितचरण आचरण। आहाहा! (अभी) विवाद चलता है न इसमें। समकित चरण-चारित्र हो, परन्तु स्वरूपाचरण नहीं होता। और ऐसा कहे। ऐसे विवाद। वस्तु की समझ नहीं।

अनन्त काल व्यतीत किया है न इसने अज्ञान में घूंट-घूंटकर। जिसका पार नहीं, ऐसे काल में भटकता-भटकता। अर्थात् यह संस्कार जिसे नहीं, उसे यह ऐसा कठिन लगे। आहाहा! कहते हैं, प्रभु! जिनदेव ऐसा कहते हैं। वीतराग परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया है कि **प्रथम सम्यक्त्व का आचरणरूप चारित्र है,....** अर्थात् पूर्णानन्द का

नाथ परमात्मा अनन्त गुण का अस्तित्व सत्त्व, उसकी जो अन्तर्मुख होकर प्रतीति, उसके साथ स्वरूप की स्थिरता का अंश भी होता है। वह समकितचरणचारित्र कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह चारित्र निर्विकल्प है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प है। निःशंक आदि सब। ... बात है। आहाहा! वस्तु है, ऐसी जहाँ प्रतीति हुई, तो प्रतीति स्वसन्मुख होकर हुई। परन्तु प्रतीति कहीं स्थिरता हुए बिना प्रतीति किस प्रकार होगी? ... एकाग्रता इतना हुई है न? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना अंश एकाग्र हुआ न इतना? आहाहा! जिसे परमात्मा स्वयं ध्रुव सत् है। स्वयं ही परमात्मा है। एक-एक आत्मा स्वयं परमात्मा है। आहाहा! ऐसे तो अनन्त आत्मायें हैं। सब होकर एक नहीं। खण्ड-खण्ड कर डाला। यह कहते हैं कि अखण्ड एक वस्तु पूर्ण परमात्मा शक्ति का पिण्ड आत्मा, उसकी जो प्रतीति, उसका जो दर्शन, उसे जो देखना, उसका जो देखना अर्थात् कि उसे श्रद्धान करना, उसमें जो स्थिरता का अंश इकट्ठा है, उसे समकितचरणचारित्र कहा जाता है। यह मिथ्यात्व के नाश करने का यह उपाय है। कहो, समझ में आया? भ्रमणा जो अनादि की पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि, निमित्तबुद्धि, एक अंश जितना माना, राग जितना माना, निमित्त है, उसके कारण मैं हूँ—ऐसी भ्रमणा अज्ञानी की है। वह स्वयंसिद्ध प्रभु ऐसा आत्मा अनन्त गुणरूप एक है। अनन्त गुणरूप एक है द्रव्यरूप से वस्तु। उसकी अन्दर में प्रतीति स्वसन्मुख की, उसमें जितने अंश में स्थिरता के साथ सामान्य-विशेष, उसका नाम स्वरूप समकितचरण, समकित का चरना-रमना, ऐसा चारित्र साथ में होता है। आहाहा! यह तो चौथे गुणस्थान की बात है। समकित चौथा गुणस्थान। साधु तो और अलौकिक दशा है। आहाहा! समझ में आया? यह चरण चारित्र में आयेगा। साधु तो अलौकिक जिसकी दशा। जंगल में बसे, नग्न हो, वस्त्र का धागा न हो, अन्दर आनन्द की दशा इतनी पुष्ट और रुष्ट की है अन्दर में। जिसे आहार-पानी लेने की एक वृत्ति उठती है। वस्त्र और पात्र रखने की वृत्ति उसे नहीं होती। आहाहा! वह इतना आनन्द में

झूलता होता है। वह जंगल में अकेले बसते हैं। एक मोरपिच्छी, कमण्डल हो। बाकी दूसरा कुछ नहीं। मोरपिच्छी तो दया... इस कारण से। कमण्डल तो मूत्र और मल हो, उसे साफ करना। (पानी) पीने-बीने के लिये नहीं। आहाहा! यह चारित्र का आचरण, यह तो अलौकिक बात है। आहाहा! जिसे मुनि कहते हैं, वह दशा। यह तो समकित चरण चारित्र की व्याख्या चलती है। गृहस्थाश्रम में भी हो, छियानवें हजार स्त्रियों में दिखाई दे। आहाहा! परन्तु है वह अपने समकितचरणचारित्र में। कठिन काम ऐसा।

प्रथम तो सम्यक्त्व का आचरणरूप चारित्र है,.... समकित का आचरणस्वरूप चारित्र है। **वह जिनदेव के....** जिनदेव ने वीतराग परमात्मा ने **ज्ञान-दर्शन-श्रद्धान से किया हुआ शुद्ध है।** उसका ज्ञान से शुद्धता, श्रद्धा से शुद्धता, ज्ञान, दर्शन और श्रद्धान। यह दर्शन देखना आदि। शुद्ध है ज्ञान। समकित चरणचारित्र। उसका सच्चा ज्ञान है, इससे शुद्ध है, उसका सच्चा दर्शन-देखना प्रतीति, इसलिए शुद्ध है। आहाहा! गजब परन्तु प्रत्येक ग्रन्थ... शैली से वस्तु... भाषा वापस कैसी! '**जिणणाणदिट्ठिसुद्धं**' आहाहा! मुनि स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य सन्त छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। नग्न दिगम्बर जंगल (वासी)। अकेली नग्नदशा आनन्द में। तो भी आधार (देकर) कहते हैं वीतराग परमेश्वर ऐसा कहते हैं।

जिनदेव के... परमात्मा वीतरागदेव परमात्मा अरिहन्त, उन्होंने **ज्ञान-दर्शन-श्रद्धान से किया हुआ शुद्ध है।** कैसे शुद्ध है? सम्यक्त्व आचरणस्वरूप चारित्र शुद्ध है। ज्ञान से शुद्ध है, दर्शन से शुद्ध है, श्रद्धा से शुद्ध है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन पड़े जगत को। ऐसा अस्तित्व है, उसे दृष्टि में लेना, ऐसा अस्तित्व मार्ग वस्तु है, उसके आश्रय बिना, उसकी सत्ता के पूर्ण ऐसे स्वभाव के स्वीकार बिना, विकल्प की एकता तीन काल में नहीं टूटती। शून्य लगे शून्य जैसा, विकल्प टूटे शून्य हो गया। यह विकल्प और यह टूटे, तब तो परमार्थ दशा समकित चरण चारित्र पर्याय में आवे। आहाहा! समझ में आया? अब यह साधारण बेचारे व्रत करते हों और अपवास-बपवास करते हों, उसमें धर्म मानते हों, उसमें अब यह कहाँ? उसमें धूल भी धर्म नहीं, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कब था? निश्चय के भान बिना व्यवहार कैसा? वह सब राग है। बिना एक का शून्य है। वस्तु जो है जैसी और जैसे, उसकी दृष्टि तुझे ज्ञान में आये बिना, उसमें रमणता आवे कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? समकितरूपी आचरण चारित्र, वह वीतरागदेव ने ज्ञान और दर्शन और श्रद्धा से हुआ शुद्ध कहते हैं। उसका ज्ञान भी यथार्थ हुआ है, देखना यथार्थ और श्रद्धा यथार्थ। उससे समकित चरण चारित्र शुद्ध है। आहाहा!

दूसरा संयम का आचरणस्वरूप चारित्र है,.... अब यह दूसरा। संयम का आचरणस्वरूप। मुनि जो नग्न दिगम्बर सन्त वनवासी, उनका जो अन्तर में स्वरूप की रमणता। संयमरूपी। वह समकितरूपी आचरण था। यह संयमरूपी आचरण है। सम-सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप में लीनता की जमावट जम गयी हो, जिससे उसे नग्नदशा के अतिरिक्त दूसरी दशा नहीं होती। आहाहा! भारी काम, भाई! कहो, समझ में आया? वस्त्र और पात्र रखकर मुनि हैं और साधु हैं, ऐसा कहते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। दृष्टि मिथ्या भ्रम है अज्ञानी का। समझ में आया? गजब! दोनों के स्पष्टीकरण आयेंगे, हों!

संयम का आचरणस्वरूप चारित्र है, वह भी जिनदेव के ज्ञान से दिखाया हुआ शुद्ध है। अर्थात्? भगवान ने ज्ञान से बताया, उसे चारित्र भी ज्ञान से बराबर बतलाया है। यह शुद्ध चारित्र वीतरागता। उसे ज्ञान से बतलाया है, ज्ञान से शुद्ध है। आहाहा! भगवान ने ज्ञान से शुद्ध है, ऐसा जाना और जाननेवाले ने भी यह वस्तु ज्ञान और दर्शन से शुद्ध है रमणता, ऐसा उसने जाना। समझ में आया? यह गजब ऐसा। स्त्री, पुत्र छोड़े, धन्धा छोड़ बैठे, तो कहे समकित नहीं, चारित्र नहीं। परन्तु अन्दर में अभी राग की एकता टूटे बिना स्वरूप में स्थिरता की चारित्रदशा आवे कहाँ से? जिसने वस्तु ही कैसी है, यह देखी नहीं, जानी नहीं, दिखी नहीं, उसके दिखे बिना स्थिर होना किसमें? चारित्र तो स्थिर होना है, चरना है। चरना। जैसे पशु चारा चरते हैं न? तो वह चारा हो, उसे चरे न? नहीं, उसे चरे अद्धर से? इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यघन की प्रतीति, ज्ञान हुए हैं और फिर उसमें चरते हैं, आनन्द का अनुभव करते

हैं। आहाहा! उसे यहाँ चारित्र कहते हैं। पावसेर दूध पीवे, दो पूड़ी खाये और कहे चारित्र है।

वह था न ८० के वर्ष में आया था। नहीं था, कौन तुम्हारे नहीं? मुम्बई में वह। चुनीलाल ... भावनगरवाला। (संवत्) १९८० के वर्ष में आया था वहाँ हमारे पास बोटाद में। यह तो कितने वर्ष हो गये? ५०। ८० में आया था ८० में बोटाद। फिर कहे, दो पूड़ी या ऐसा खाऊँ, परन्तु पावसेर दूध पचता नहीं था। (अधिक) पचता नहीं था। खबर है। वहाँ आये थे। ... है न? है? गये या हैं? यह तो ५० वर्ष पहले मुझे मिले थे। हम उपाश्रय में नहीं थे तब। साथ में है, वहाँ आये थे। आवे तो सही न सब। सेठिया तो सब एक बार... कुछ भान नहीं होता बेचारों को। यह पैसेवाले मानो। क्या कहते थे? आहाहा!

मुमुक्षु : तार....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह तार। खबर है। यह शान्तिलाल खुशाल। खुशालदास कैसे थे। यह वह अपने दरबार नहीं ... वे कहते थे कि खाली खुशालदास को बेचारे को देखा है, उसके बाप को। साधारण। पानसणावाले। बहुत साधारण। और अभी ही कहा न भाई उसके बहनोई हैं न अपने। उन्होंने कहा कि दो हजार रुपये हमने दिये तब दुकान की थी ९९ में। कहाँ? गोवा में। उनके बहनोई आते हैं न! है न बहिन की लड़की अपने ५० ब्रह्मचारणियों में, उनकी पुत्री है। ब्रह्मचारिणी है, उनकी बहिन की पुत्री। वे कहते थे कि हमारे बड़े भाई ने दो हजार भाग में गोवा में दुकान डाली। दो हजार देकर लो। यह ३० वर्ष की क्रीड़ा। पूर्व का पुण्य था तो थोड़ी स्थिति हुई और जाओ भटकने चार गति में। यह दस मिनिट में गुजर गया बेचारा। मुम्बई। सुना है भाई? फूलचन्दभाई! दस मिनिट में। उसकी बहू के लिये आये थे न। कुछ वह था। बहू को वह क्या कहलाता है? हेमरेज... हेमरेज। उसमें डेढ़ बजे उठे। (और कहा) जरा दुःखता है। उसके बहनोई तो अपने आता हैं न पोपटलाल। गये अभी। यहाँ आकर फिर गये। महीने तक तो बहू को कहा नहीं था। बीमार थी न। मर गये, कहा नहीं। महिलायें मिलने जायें तो सफेद वस्त्र बाहर निकाल डाले। सफेद वस्त्र पहने हों न मर जाये तब। तो अन्दर जाये तो

सफेद निकाल डाले। और पूछे तो? महीने तक तो खबर नहीं पड़ने दी (कि) पति मर गया। बीमार थी न। दस मिनिट। मुझे कुछ दु:खता है। ६१ वर्ष की उम्र। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आये वहाँ तो समाप्त हो गया। देह की स्थिति तो जिस समय में पूरी होनेवाली है, उस समय में होनी है। आगे-पीछ एक समय तीन काल तीन लोक में नहीं होता। आहाहा! जो अवधि है देह छूटने की, उस अवधि के समीप जाता है ऐसे। यह कहता है कि मैं बड़ा होता हूँ, भगवान कहते हैं कि देह छूटने के समीप जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, बिल्कुल खोटी। सब गप्प ही गप्प। सब सुना हुआ है न! ऐसा कि श्वास कम ले... खबर है न सब बातें। अनेक यहाँ तो ६० वर्ष हुए दीक्षा को। सब बातें संसार में से मैंने तो जानी हैं। घर की दुकान। वे कहते थे न हमारी लाठी में थे एक विट्ठल सेठ। विट्ठल लाठी में थे। वे धीरे-धीरे चले। उम्र बड़ी थी परन्तु धीरे-धीरे चले। ७१ की। मैंने कहा, यह बहुत धीरे-धीरे क्यों चलते हैं? ७१ की बात है। दीक्षा ली न! ७० में दीक्षा। यह ६० पूरे हुए हैं, इस मागसर कृष्ण नौवीं को ६० पूरे। यह नौवीं आयी न तब दीक्षा को ६० पूरे हुए, हों! २३ वर्ष में दीक्षा ली।

यह कहे कि धीरे-धीरे चले तो श्वास कम लिये जायें तो आयुष्य बढ़े। भाई कहते। तब, हों भाई! गप्प ही गप्प। भगवान तो कहते हैं कि जिस समय में देह छूटने का काल, उस समय में देह छूटेगी ही। लाख तेरे देव आवे और देव उतरें, इंजेक्शन लगावे, एक समय बढ़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पहले कर ले यह, नहीं तो चला जायेगा, ऐसा यहाँ कहते हैं। चले गये बेचारे। आहाहा! चिमनभाई को ... यह तो ५८ की उम्र। चिमनलाल अपने मुम्बई में है न! पैसेवाले हैं। जोरावरनगर के चिमनभाई हिम्मतलाल। उनके बड़े भाई थे। परसों था न उनका आहार परसों था। बड़े भाई आये थे। ५८ वर्ष की उम्र। लो! मेरी दीक्षा के बाद तो जन्म। सेठ! ६० में दीक्षा ली। आहाहा! दुकान के ऊपर ही मैं तो शास्त्र पढ़ता था। घर की दुकान थी न पिताजी की दुकान। पालेज। पालेज है। आता है न। बीच में पालेज नहीं आता? भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज। वहाँ दुकान थी हमारे पिताजी की। तो मैं ५९ से ६७—९ वर्ष दुकान पर रहा। ६८ में छोड़ी और ७० में दीक्षा। दुकान चालू है। दुकान बड़ी है। ढाई लाख की

वार्षिक आमदनी है दुकान में। बड़ी दुकान है। यह तो पूर्व के पुण्य की बातें थोथा है। उसमें कुछ होशियार हो। फूलचन्दजी बहुत बुद्धिवाले कहलाते हैं तीनों भाईयों में। ऐसा सुना है। यशोधरजी! ऐसा सुना है। कोई कहता था, हों! छोटे भाई बहुत बुद्धिवाले हैं। कहीं बुद्धि से मिलता होगा यह सब? यह तो पूर्व का पुण्य होता है न, रजकण, उनका उदय आवे तब गोटी बैठ जाती है। उसमें वह आवे तो यह मानता है कि मैंने होशियारी से व्यवस्था की, इसलिए (सम्पत्ति) आयी।

मुमुक्षु : परन्तु व्यवस्था तो करनी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं कर सकता। ऐई! धीरुभाई! यह बहुत व्यवस्था के करनेवाले हैं।

मुमुक्षु : यह तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं करते। अभिमान करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा दो प्रकार का चारित्र कहते हैं। आहाहा! एक तो वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी प्रतीति को देखना, उसका आचरण अर्थात् स्थिर होना। वह समकित चरण आचरण। वह तो चौथे गुणस्थान में गृहस्थाश्रम में भी होता है। राजपाट में पड़ा है। छह खण्ड का मालिक चक्रवर्ती भरत। छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक। तो भी अन्तर में वह मेरी चीज़ नहीं, मैं भिन्न हूँ। मुझमें तो शुद्ध आनन्दकन्द है, उसमें मैं हूँ। ऐसा समकित आचरण उन्हें वर्तता था। आहाहा! अज्ञानी त्यागी होकर बैठे, परन्तु उस राग की क्रिया को अपनी माने और स्वभाव का भान नहीं तो वह भी मिथ्यादर्शन का चारित्र, वह मिथ्या है। आहाहा! अब इन दो की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १२, बुधवार, दिनांक-२१-११-१९७३
गाथा- ५, ६, प्रवचन-४७

भावार्थः—चारित्र को दो प्रकार का कहा है। चारित्र को दो प्रकार का कहा है। **प्रथम तो समकित का आचरण कहा।** पहला तो समकित का आचरण कहते हैं। इसके बिना चारित्र का आचरण उसे हो नहीं सकता। वह समकित का आचरण अर्थात् क्या? सर्वज्ञ के **आगम में तत्त्वार्थ का स्वरूप कहा....** एक तो सर्वज्ञ किसे कहते हैं, यह निर्णय करना पड़े और उनका शास्त्र क्या कहलाता है, यह निर्णय करना पड़े। सर्वज्ञ और सर्वज्ञ का आगम और उसमें कहे हुए तत्त्व। **सर्वज्ञ के आगम में...** तो सर्वज्ञ पहले निर्णय करना पड़े न (कि) सर्वज्ञ कौन है? जिसे एक समय में तीन काल-तीन लोक अखण्डरूप से पर्याय में जानने में आये हैं, ऐसा जो सर्वज्ञपना, उसके कहे हुए आगम, सिद्धान्त और उन्होंने कहे हुए तत्त्व—ऐसा पहले इसे निर्णय करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : सबका निर्णय ही करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? वस्तु क्या है, उसका निर्णय करना और स्थिर होना। यह दो वस्तु। वस्तु कैसी है उसका निश्चय, निर्णय, निःसन्देह, निःशंक और पश्चात् स्थिर होना, यह करने का है। आहाहा! करने का दूसरा क्या हो? आया न **'णियमेण य जं कज्जं'** नियम से जो करनेयोग्य है वह यह। नियमसार में आया है तीसरी गाथा में। आहाहा! इसे निश्चय से करनेयोग्य हो तो यह आत्मा क्या चीज़ है? आत्मा किसे कहते हैं? आत्मा सर्वज्ञ के आगम में क्या कहा है? उसका इसे निर्णय करना पड़ेगा। यह समकित चरण चारित्र में **वह जो आगम में तत्त्वार्थ का स्वरूप कहा....** देखा न, उसमें तत्त्वार्थ का—जीव, अजीव, आदि नौ पदार्थ। भगवान के आगम में कहे वे नौ तत्त्व।

मुमुक्षु : दूसरे ने कहे वे नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे ने कहे वे नहीं। यहाँ तो यह बात है। दिगम्बर धर्म में

सर्वज्ञ आगम में जो कहे, वे तत्त्व। ऐसी बात इसमें कहते हैं। समझ में आया?

इन्होंने कहे हुए तत्त्वार्थ अर्थात् आत्मा, संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव, पुण्य, पाप, बंध, अजीव का स्वरूप जो सर्वज्ञ के शास्त्र में कहा है, उसे **यथार्थ जानकर...** वापस। उसे बराबर जानकर। **श्रद्धान करना...** उसे बराबर जानकर, सर्वज्ञ को, सर्वज्ञ के आगम को, सर्वज्ञ के आगम में कहे हुए तत्त्वार्थ को। आहाहा! यह तो सादी भाषा है। वापस इसका यथार्थ निर्णय। यथार्थ ज्ञान कहा न? साधारण बात जान ली, ऐसा नहीं। यथार्थ जैसा है वैसा। देव का स्वरूप, गुरु का स्वरूप, तत्त्वार्थ का स्वरूप जैसा है, वैसा उसे सम्यक् सत्य निर्णय करना पड़ेगा, सुखी होना हो तो। यह दुःख के पंथ में पड़ा है अनादि से।

श्रद्धान करना और उसके शंकादि अतिचार मल दोष कहे,.... इसमें जो शंका आदि दोष कहे हैं, उन्हें टाले। **उनका परिहार करके शुद्ध करना....** परिहार करके सम्यग्दर्शन को शुद्ध करना, सम्यक्चरणचारित्र को शुद्ध करना। आहाहा! **तथा उसके निःशंकितादि गुणों का प्रगट होना....** शंकादि अतिचार का परिहार निःशंकादि गुणों का प्रगटपना। अस्ति-नास्ति की है। शंकादि दोषों का नाश—त्याग, निःशंकादि गुणों की अर्थात् पर्याय की प्रगटता। गुण शब्द से पर्याय है। **यह सम्यक्त्वचरण चारित्र है....** यह सम्यग्दर्शन का चरण-चारित्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुक्ति से....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्ति की ही बात की। व्यवहार की बात है कहाँ यहाँ? कहो, समझ में आया? व्यवहार, वह कुछ वस्तु नहीं। वस्तु यह है, वही वस्तु है। व्यवहार, वह तो विकल्प है, वह कोई पदार्थ नहीं। उसमें यह आ गया। पुण्य-पाप के विकल्प का भी निर्णय करना, यह आ गया। निर्णय करना। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार में दुःखी... दुःखी... दुःखी... हो रहा है। आहाहा!

जहाँ तक बाहर की अनुकूलता हो, वहाँ तक इसे ऐसा लगता है, हम सुखी हैं। ठीक पड़े, खड़े हैं। कुछ अपने व्यवस्थित में हैं। परन्तु जिस क्षण प्रतिकूलता आती है, आहाहा! चिल्लाहट मचा जाता है। मस्तिष्क घूम जाता है। आहाहा! चतुर जोरदार वह

मस्तिष्क घूम जाता है। दो-दो वर्ष, पाँच-पाँच वर्ष रोग चले। घर के लोग उकता जाये कि अब इसमें जीनेवाला तो है नहीं। इसके लिये पैसा खर्च करना, रुकना तो सब मुफ्त में जायेगा। बैगार... आहाहा! लोग मध्यस्थ से देखे तो खबर पड़े। निश्चित हो जाये कि अब तो इसमें बचनेवाला नहीं है। चाहे जितने पैसे खर्च करें, चाहे जो इसके लिये रुकें तो अपना समय जाता है। धीरुभाई! ऐसा है, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे... चाहे जो हो नहीं। आहाहा! उस समय अकेले तड़पते हुए, कोई सहायक नहीं, मदद नहीं, सहायता करनेवाला तो आत्मा, उसकी तो खबर नहीं होती। आहाहा! तड़पते-तड़पते चिल्लाहट मचाता है। आवाज में मचा न सके तो अन्दर में पुकार... पुकार... हाय... हाय! ऐसे भव इसने अनन्त किये। भाई! इसने आत्मा का सम्यग्दर्शनचरणचारित्र प्रगट नहीं किया। इसलिए पहले में पहले सम्यक्चरणचारित्र की व्याख्या यह है। आहाहा!

कहते हैं कि **और जो महाव्रत आदि....** पहली सम्यक्चरणचारित्र की बात की। कि सर्वज्ञ ने कहे हुए आगम में कथित तत्त्वार्थ, उन्हें यथार्थ जानकर श्रद्धा करना। जानकर श्रद्धा करना, ऐसा कहा है। ज्ञान में आये बिना किसकी श्रद्धा? समझ में आया? वस्तु इसके ख्याल में न आवे, जानकर उसकी श्रद्धा? ख्याल में भाव में भासन हो कि यह आत्मा है, यह जड़ है, यह पुण्य-पाप के भाव हैं; ऐसी संवर, निर्जरा, मोक्ष की दशा उसे कहते हैं, ऐसा उसके भान में यथार्थपने ज्ञान होकर श्रद्धान करे, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? प्रथम में प्रथम यह कर्तव्य है। बाकी सब थोथे थोथा है जगत में। आहाहा!

दूसरा। **महाव्रत आदि अंगीकार करके....** शब्द तो यहाँ से लेंगे न शास्त्र अब सब? मूल तो अन्दर में स्वरूप की स्थिरता, वह चारित्र है। परन्तु ऐसे महाव्रत हों। यहाँ महाव्रत अर्थात् जो महाव्रत अंगीकार करे, उसे अन्दर स्थिरता कितनी होती है? उसका साथ में ले लेना। जिसे महाव्रत के परिणाम हों विकल्प, उसे अन्दर निर्विकल्पता स्थिरता कितनी होती है, यह साथ में जान लेना। समझ में आया? परन्तु वे लोग आक्षेप

देते हैं न, इसलिए देखो, यह चारित्र है। महाव्रत, वह चारित्र। परन्तु व्यवहार से स्वरूप की स्थिरता बतलाने के लिये यह एक साधन है।

मुमुक्षु : व्यवहार कारण निश्चय को....

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते हैं उसको। उसका वजन कहाँ है? जिसे पंच महाव्रत के परिणाम हों सच्ची रीति से प्रगट, उसे अन्दर में चारित्र की स्थिरता तीन कषाय के अभाव की होती ही है। उसे चारित्र कहा जाता है। परन्तु यह महाव्रत द्वारा... जिसे महाव्रत के ऐसे परिणाम हुए, उस द्वारा कहा न वहाँ? प्रवचनसार में नहीं? प्रवचनसार में कहा। ...द्रव्यं चरण चारित्र, नहीं आया? चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में। द्रव्य के लक्ष्य से या विकल्प को लक्ष्य कर। यह आता है। परन्तु द्रव्य अर्थात् निर्मल पर्याय। वहाँ निर्मल पर्याय (को) द्रव्य लेना है। निर्मल पर्याय को जानकर और या उसके साथ शुरुआत का विकल्प है, उसे जानकर, आहाहा! यह वहाँ महाव्रत के विकल्प, ऐसा लेना।

जिसे अन्दर वर्तमान महाव्रत के परिणाम विकल्परूप से वर्तते हो, उसे अन्तर में चारित्र निर्मल स्थिरता होती ही है। समझ में आया? उसे यहाँ लेना है। अकेले महाव्रत के परिणाम हों और अन्दर चारित्र समकित नहीं, वह वस्तु नहीं। आहाहा! **महाव्रत आदि अंगीकार करके सर्वज्ञ के आगम में कहा वैसे संयम का आचरण करना,....** भगवान ने कहा अनन्त स्वरूप में लीनता, आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लीनता, रमणता,... जम जाना, उसका नाम संयमचरण चारित्र है। आहाहा!

और उसके अतिचार आदि दोषों को दूर करना,.... अस्ति पहले लिया। उसमें पहला वह लिया। शंका आदि नाश करके नि:शंक आदि करना, ऐसा लिया। यहाँ संयम का आचरण करना और अतिचार आदि दोषों को दूर करना, ऐसा। वह तो यह अस्ति-नास्ति की बात। **संयमचरण चारित्र है, इस प्रकार संक्षेप से स्वरूप कहा।** लो! है न मूल पाठ? '**जिणणाणसदेसियं**' '**सदेसियं**' है। संक्षेप में कहा।

★ ★ ★

गाथा - ६

आगे सम्यक्त्वचरण चारित्र के मल दोषों का परिहार करके आचरण करना कहते हैं:—बहुत बात यह मुद्दे की रकम की यह बात है। भगवान सर्वज्ञ के कहे हुए सिद्धान्त, उनके कहे हुए तत्त्व। देव का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान और शास्त्र ने कहे हुए तत्त्वार्थ का ज्ञान। समझ में आया? बहुत बात आयी है। वाड़ा बाँधकर बैठे। विवाद... विवाद... अमिलनसार लगे। अमिलनसार नहीं, बापू! वस्तु ऐसी है। सर्वज्ञ... सर्वज्ञ अर्थात् एक समय में जिसे ज्ञान और दर्शन... एक समय में जिसे दर्शन और ज्ञान, दर्शन भेद बिना देखे, ज्ञान भेद से जाने। उसे अद्‌भुत रस कहा है।

जो दर्शन आत्मा की पर्याय, उसी समय की तीन काल-तीन लोक को भेद बिना सामान्यरूप से देखे। यह जीव है और अजीव है, कुछ भेद नहीं। आहाहा! और उसी समय की ज्ञान की पर्याय, एक-एक द्रव्य, गुण, पर्याय, पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद भिन्न-भिन्न करके एक समय में इतना सब जाने। आहाहा! दर्शन और ज्ञान की अद्‌भुतता है। समझ में आया? दर्शन और ज्ञानवाले जीव ने जो वाणी की, कही, उस वाणी को आगम कहते हैं। और उस आगम में जो तत्त्वार्थ कहे, उनका यथार्थ ज्ञान करके उसकी श्रद्धा करना। आहाहा! उसमें बहुत जानने में रुकना पड़े। यह बी.ए. में पढ़ते हुए कितने वर्ष नहीं जाते? एम.ए. और बी.ए.। पढ़ते हुए... कहाँ तक पढ़ेगा? पच्चीस वर्ष की उम्र तक। आहाहा! तो इसे अनन्त संसार का नाश करना है और आत्मा की वस्तु की प्राप्ति करना, इसके लिये थोड़ा काल इसके लिये चाहिए या नहीं? जिसके स्वप्न में भी वह आवे। श्रद्धा, ज्ञान यह मार्ग है... यह मार्ग है... जिसे रात-दिन का घोलन हो, उसे रात्रि में यह स्वप्न आवे। कहो, समझ में आया?

आता है न जिसे स्वप्न में भी ... ऐसा आता है न अष्टपाहुड में? नग्नपना, मुनिपना। नग्नपना, मुनिपना जिसे स्वप्न में भी ... आगे आता है। आहाहा! उसे स्वप्न में भी जो नग्नपना दिखता है, वह क्या करे? आहाहा! वह तो धर्मात्मा को तो नग्नपने की दशा मुनि की स्वप्न में आवे तो प्रसन्न हो और खुशी हो। ओहो! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। **सम्यक्त्वचरण चारित्र के मल दोषों का परिहार....**

एवं चिय णाऊण य, सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ।
परिहार सम्मत्तमला, जिणभणिया तिविहजोएण॥६॥

'**जिणभणिया**' ऐसा शब्द आचार्य डालते हैं। आहाहा! जिनेश्वर ने कहा है, भगवान ने कहा है, भाई! आहाहा! पहले यह आ गया। केवली '**जिणभणिया**'। जिनेश्वर तीर्थंकरदेव वे जब केवलज्ञान प्राप्त करें, तब ही उपदेश करते हैं। आहाहा! पहले दर्शनपाहुड में आ गया। केवली '**जिणभणिया**' तीर्थंकर का आत्मा जब केवलज्ञान—पूर्ण (ज्ञान) प्राप्त करे तब, उसे '**भणिया**', तब वे उपदेश करते हैं। इसके बिना उनका उपदेश नहीं होता। आहाहा! दूसरे छद्मस्थ कहे, परन्तु उनके कहे हुए का अनुवाद करे। अनुसरकर कहे, ऐसा। अनुसरकर कहे। उन्हें अनुसरण करना नहीं है, वे तो सीधा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अर्थः—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर.... देखो! '**णाऊण**' है न? '**णाऊण**' **ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को....** समकितचरण चारित्र। उसे जानकर। ऐसा सम्यक्त्वचरण चारित्र तो नरक में भी है। नारकी में है। सातवें नरक के नारकी समकिती में है। आहाहा! जिसे एक कण आहार का मिलता नहीं, पानी की बिन्दु मिलती नहीं, जिसकी तृषा में साधारण पानी के अनन्त समुद्र डालो तो भी उसकी तृषा न टूटे, इतनी तो तृषा। आहाहा! यह बर्फ के, बर्फ के पानी पिघलाकर उसे दे, तो भी उसकी तृषा न बुझे, इतनी तृषा है। आहाहा! और मिलती नहीं एक बूँद। ऐसी असुविधा में भी सम्यक्चरण चारित्र प्रगट करता है। यहाँ तो सब व्यवस्था है तो इसको निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! दुनिया के अनाज के ढ़ेर, खिलावे तो जिसे क्षुधा न मिटे, इतनी तो क्षुधा है। उसे कण मिलता नहीं। ऐसे नरक के नारकी भी भगवान आत्मा अन्दर समकितचरण चारित्र प्रगट करते हैं। आहाहा! उसे बाहर के साधन ठीक हो तो करे, ऐसा कुछ है नहीं।

और बाहर की बहुत प्रतिकूलता हो... आहाहा! कोई सेवा-चाकरी करनेवाला न हो। अकेला अविवाहित—सन्तानहीन। पाँच रुपये पैदा करने की शक्ति न हो, कोई लूला हो, कोई ... गया हो, चलने की शक्ति न हो। आहाहा! ऐसे स्थान में भी आत्मा

सम्यग्दर्शनचरण चारित्र कर सकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु है न स्वयं। पदार्थ आत्मा अनन्त आनन्द का नाथ, उसकी उसे अन्तर्मुख दृष्टि करके रुचि करके और यह नि:शंकादि पर्याय प्रगट करना, इसका नाम सम्यक्चरण चारित्र कहा जाता है। पशु को होता है। आहाहा! असंख्य तिर्यंच हैं। उन्हें भी होता है। चिड़िया, कौआ, पशु, पक्षी को होता है। ढाई द्वीप बाहर कितने ही (तिर्यंच हैं)। जिन्हें अनाज तो कुछ अभी खाये वह खाये। पश्चात् पड़ा है अनाज उसके लिये? यह चिड़िया देखो बेचारे। दिन में मिला, वह मिला। रात्रि में चार पहर बैठे रहेंगे। पानी की बूँद नहीं, आहार का कण नहीं। उन्हें रात्रि को आहार नहीं होता। तब इतना त्याग है। चिड़िया... बच्चा रात्रि में दे कोई? पानी की बूँद दे कोई? घास-अनाज का कण दे? उसे अनाज होता है न। घास नहीं होती। आहाहा! ऐसी स्थिति में पक्षी के प्राण हों, वहाँ भी आत्मप्राण अन्दर जीवित है न। उसके अन्तर सन्मुख हो जाते हैं।

मुमुक्षु : हमारी क्या भूल है प्रभु?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं करता इसलिए। कहीं इसे पर्याय में, राग में इसे रस है। कहीं इसे रस है रस। कहीं अटका है, इसलिए अन्दर नहीं जाता। बात तो ऐसी ही है। आहाहा! काललब्धि की बातें। मूल तो यह है। रुचि को कुछ रुच गया है अन्दर। इसे खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं **सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर....** आहाहा! **मिथ्यात्व कर्म के उदय से हुए शंकादिक दोष सम्यक्त्व को अशुद्ध करनेवाले मल हैं....** आहाहा! अभी तो सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र की खबर नहीं होती। आहाहा! यह कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानना, जानना कि यह खोटे हैं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को जानना कि यह सच्चे हैं। उसमें कितना अन्तर पड़ेगा? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अपने अन्तर में उतरने की बात सूक्ष्म है। आहाहा! कहते हैं **मिथ्यात्व कर्म के उदय से....** उदय अर्थात् स्वयं शंका करता है, इसलिए उसे उदय कहा जाता है, ऐसा। **शंकादिक दोष सम्यक्त्व को अशुद्ध करनेवाले मल हैं....** यह आत्मा की श्रद्धा को दोष उत्पन्न करनेवाले, अशुद्धता उत्पन्न करनेवाले मल हैं। **ऐसा जिनदेव ने कहा है,....** वीतराग परमेश्वर

त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा। भाई! तुझे मिथ्यात्व के उदय में जुड़ने से जो शंकादि होते हैं, वे समकित को अशुद्ध—मलिन करनेवाले हैं।

इनके मन, वचन, काय के तीनों योगों से छोड़ना। मन, वचन और काया तीनों योग से भगवान आत्मा का शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसकी दृष्टि करके ऐसे शंकादि दोष टालना। अर्थात् उत्पन्न हो नहीं। आहाहा! पहली यह भूमिका की बात आती है। धर्म की पहली भूमि। चारित्र तो बाद में होगा। यह न हो, वहाँ चारित्र नहीं होता।

भावार्थः—सम्यक्त्वाचरण चारित्र.... लो, यह आचरण हुआ। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन निर्विकल्प अभेद की अन्तर्दृष्टि से समकितचरण चारित्र है। वह आचरण चारित्र है। स्वरूप का आचरण हुआ। दर्शन आचार। है न? आहाहा! इस दर्शन आचार बिना का चारित्र आचार हो सकता नहीं। उसकी मूल की खबर न हो, फिर ऊपर से यह व्रत ले लिये और साधु हो गये हम। फिर नीचे उतरना भारी कठिन। आहाहा! **सम्यक्त्वाचरण चारित्र, शंकादि दोष सम्यक्त्व के मल है, उनको त्यागने पर शुद्ध होता है,....** लो! शंका को ... शंका का स्पष्टीकरण करेंगे नीचे।

इसलिए इनको त्याग करने का उपदेश जिनदेव ने किया है। निःशंक आत्मा आनन्दस्वरूप, राग दुःखरूप, चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो, वह दुःखरूप, वस्तु भगवान आत्मा आनन्दरूप। बस, उसमें सब आ गया। पुण्य और पाप, आस्रव और बन्ध, वह दुःखरूप है। संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह सुखरूप और वस्तु त्रिकाली सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह तत्त्वार्थ का ज्ञान करके, यह श्रद्धा कर—ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा आनन्दरूप का आश्रय करके जो संवर, निर्जरा और मोक्ष हो, वह आनन्द की पर्याय भी आनन्दरूप और पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, वह विकार दुःखरूप। यह सुखरूप, यह सुख का साधन... यह नौ तत्त्व का यथार्थ ज्ञान करके। आहाहा!

मुमुक्षु : संक्षिप्त में ऐसी बात आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात तो ऐसी ही है न। परन्तु इसने दरकार नहीं की दरकार। आहाहा!

'एवं चिय णाऊण' शब्द है न? जानकर। जान, तेरे ज्ञान में बात आनी चाहिए

न, कि यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसके आश्रय से होनेवाली दशा संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह आनन्द की दशा है और पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध, वह दु:खदशा है। आहाहा! बस आनन्द और दु:ख में नौ तत्त्व का ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? यह पुण्य और पाप का भाव उत्पन्न हो, वह दु:खरूप है। नवनीतभाई! आहाहा! और भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति चैतन्य सुखरूप धाम है। ऐसी जिसने प्रतीति की, उसकी पर्याय में भी आनन्द आया। ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु, उसकी जिसने सन्मुख होकर आश्रय लिया, उसकी पर्याय में भी उस जाति की जाति अन्दर में आयी। आनन्द की जाति आयी, उसे संवर-निर्जरा कहते हैं। वह शुद्धि की उत्पत्ति, उसे संवर; शुद्धि की वृद्धि, उसे निर्जरा और शुद्धि की पूर्णता को मोक्ष (कहते हैं)। आहाहा! और पुण्य-पाप के भाव जो अशुद्ध, उसमें अटका, वह भावबन्ध भी अशुद्ध। वह आस्रव, उसे पुण्य-पाप के बन्ध सब उसमें आ गया। आहाहा! वह दु:खरूप। भगवान सुखरूप। उसके आश्रय से होनेवाली दशा सुखरूप, पूर्णदशा आनन्द, वह भी सुखरूप। धीरुभाई! यह सब समझना पड़ेगा। यह बाहर में सब गप्प चलती है। सब वहाँ बातें करें। ओहोहो! कितनी.... यह वस्तु बिना सब थोथे थोथा है। आहाहा!

जिनदेव ने ऐसा कहा। कहा न कि उसने मलादि का त्याग करके, '**त्यागने पर शुद्ध होता है, इसलिए इनको त्याग करने का....** कैसे? समकित में शंकादिक दोष है। आहाहा! आत्मा कैसे होगा? संवर-निर्जरा कैसे होगी? पुण्य-पाप दु:खरूप कैसे होंगे? ऐसी जो शंका, उसका त्याग करना। आहाहा! नि:शंक रीति से पुण्य और पाप भाव दु:खरूप है। नि:शंक रीति से भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप सुखरूप है। एक आया था न। और ऐसा प्रभु जिसने स्वीकार किया, जिस दशा ने उसे स्वीकार किया, जिस पर्याय ने उसे—पर्यायवान को स्वीकार किया, वह पर्याय भी सुखरूप हुई। मोक्ष का मार्ग, वह सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष का मार्ग, वह दु:खरूप नहीं कि अररर! यह सहन करना पड़े। यह सब बातें संसार की करे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तलवार की धार।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाँडा (तलवार) की धार नहीं, यह तो है खांड की धार।

खांड-खांड। खांड की धार से। तलवार की नहीं। खांडा की धार अर्थात् तलवार। यह खांड की धार। भगवान आनन्द की खान है, उसमें आश्रय करे, वहाँ पर्याय खांड—आनन्द की निकले। आहाहा! उसमें दु:ख नहीं होता, उसके आश्रय से हुई दशा में दु:ख नहीं होता। वह सुख ही होता है। ऐसी नि:शंकता आदि भाव को प्रगट करके, शंका आदि दोष को टालना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा बैठना मुश्किल अब इसमें तो। कुछ करना हो तो मुश्किल लगे। यह करना, सूझ पड़ती नहीं। यह सूझ पड़ती है। दो-पाँच लाख रुपये दिये, लोग जाने, तख्ती लगावे, नाम पड़े।

मुमुक्षु : अखबार में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अखबार में आवे। देखो! तू वहाँ गया, अखबार में? तू तो यहाँ है। आहाहा! इसने सत्य को सत्य के सत्त्व का जैसा है, वैसा इसे निर्णय करना पड़ेगा। यह निर्णय स्वसन्मुख होकर करे, उसका नाम निर्णय। आहाहा! जिस निर्णय में जिस निर्णय में जो वस्तु में है, उसका एक अंश आवे निर्णय में, तब उसका निर्णय किया कहलाता है। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द की खान, ऐसा वह पदार्थ, उसे जानकर श्रद्धा करना। कहते हैं कि उसे जानकर श्रद्धा करना, ऐसा कहा न? '**णाऊण**' आहाहा! जाने बिना क्या? इसके ज्ञान में वह चीज़ ही आयी नहीं। उसे जाने बिना 'यह है' ऐसा किस प्रकार मानना? आहाहा! मार्ग ऐसा अलौकिक है। उसका फल भी अलौकिक है न! आहाहा! मार्ग प्रगट होने में आनन्द और पूर्ण होने में पूर्ण आनन्द। ... मार्ग। आहाहा! तत्काल।

सम्यक्त्वाचरण चारित्र, शंकादि दोष सम्यक्त्व के मल हैं, उनको त्यागने पर शुद्ध होता है,.... '**तिण्हं पि सोहणत्थे**' शब्द आया था न चौथी गाथा में। तीसरा पद। '**तिण्हं पि सोहणत्थे, जिणभणियं दुविह चारित्तं**' यह चलता है इसमें। उसके भी ... शुद्धि के लिये। ऐसा कहा न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि के लिये '**जिणभणियं दुविह चारित्तं**' भगवान ने दो प्रकार का चारित्र, समकितचरण चारित्र और संयम की शुद्धि के लिये यह दो कहे हैं। समझ में आया? क्या कहना चाहते हैं, यह पकड़ने में अभी तो यह क्या? चन्दुभाई! आहाहा!

वे दोष क्या हैं, वह कहते हैं—जिनवचन में वस्तु का स्वरूप कहा.... वीतराग की वाणी में जो आत्मा पुण्य-पाप, संवर-निर्जरा, मोक्ष आदि कहे। **उसमें संशय करना....** संशय करना। कैसे होगा ? यह शंका दोष है। सर्वज्ञपना कैसे होगा ? मोक्ष की दशा क्या होगी ? आत्मा ऐसा अनन्त आनन्दस्वरूप, अनन्तगुण से कैसे होगा ? ऐसी जो शंका मलरहित हो। वह समकितचरण चारित्र, उसकी शुद्धि के लिये यह कहा है। आहाहा ! निर्मल के लिये यह बात की है अन्दर में... भगवान आत्मा... शंका नहीं। उस शंका को निकाल, ऐसा कहते हैं न ? संशय करना। ऐसा परमात्मा एक समय में अनन्त गुणवाला यह तत्त्व है और... कहा है। ... ... उसके वे हैं न। दादर-दादर। ऐई ! कामदार ! है या नहीं ? है। दादर नहीं, वह संघवी ? ...कामदार। लड़का बहुत अच्छा। ... ऐसी ... बेचारे को गृहस्थ। छोटे-छोटे लड़के १४-१४ वर्ष के। दादर रहते हैं दादर। ... आहाहा ! आज तो गजब ... एकदम... यह... गाँव का वीरान यह क्या ? लोग यह सब अपने परिचित सब समझनेवालों को। गुजराती। तीन हजार, बत्तीस सौ लोग। बाहर के आये हुए। बड़ा पाण्डाल आठ हजार लोगों का। यह क्या ? वे कहते थे। ...भाई को वे। आहाहा !

मार्ग तो यह है, बापू ! शहर में कहा जाये, जंगल में कहा जाये, गाँव में कहा जाये या पादर में कहा जाये। यह जंगल बाहर भी है न। गाँव की अपेक्षा बाहर। ऐई... दो दिन में पौने दो लाख का खर्चा। ... एक लाख दिये। सवेरे कहते थे। बाहरवाले कम खर्च बतावे और अन्दरवाले अधिक बतावे। आमदनी में अन्दरवाला थोड़ा बतावे, बाहरवाला अधिक बतावे। ऐसा कुछ नहीं। गाँववाले खर्च अधिक कहे, आमदनी कम कहे। क्योंकि आये हों... बाहरवाले आमदनी अधिक कहे और खर्च कम कहे। बराबर आवे और जैसा हो वैसा। उसमें तो दो लाख का खर्चा हुआ। अभी तो पौने तीन लाख ... ढाई लाख तक... दो लाख का खर्चा, पौने दो का खर्चा। ऐसा करते-करते बाहरवाले कहे, एक लाख और साठ हजार का खर्च होगा। ढाई लाख रुपये हुए, ऐसा आया। अरे !

मुमुक्षु : अनुमान हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुमान से नहीं। अन्दर से जरा खींचतान थी। वह तो... हो अनुमान में तो अन्तर पड़े। वह अलग बात है। और वह अन्दाज करके अधिक खींचे

और यह कम खींचे। इसलिए। यह तो जगत बात है। यहाँ तो बोलते हों उसमें... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वीतराग के मार्ग के अन्दर भगवान ने जो आत्मा कहा, वह अनन्त गुणवाला और एक-एक गुण अनन्त सामर्थ्यवाला, उसकी जो शंका हो, उसे टालना कैसे? वस्तु ऐसी ही है। ऐसा सम्यग्दर्शन का चरण, सम्यग्दर्शन का चरण, इसने कदम भरे। आहाहा! सम्यक्चरण चारित्र, ऐसा कहा न? सम्यक् ने कदम भरे। आहाहा! नि:शंकता अर्थात् शंका के नाश के। आहाहा! पहले यह करना है। बाकी सब बातें थोथी हैं। आहाहा! ऐसी बात सुनने को मिलना मुश्किल है। ... भाई! वहाँ यह मिले, ऐसा है? मुम्बई में। आहाहा! वस्तु आत्मा स्वयं प्रभु है न, उसकी प्रत्येक शक्ति प्रभुत्व धारण करती है। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति अर्थात् गुण। गुण अर्थात् स्वभाव। अथवा सत् का वह सत्त्व। उस एक-एक सत्त्व में अनन्त सामर्थ्य है। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तिवाला अनन्त सामर्थ्य का धनी प्रभु है। उसकी प्रभुता की एक-एक शक्ति में शंका नहीं करना। और पूरा प्रभुत्वस्वरूप, उसमें शंका नहीं करना। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! कितना जोर है इसमें!

वर्तमानदशा में ऐसा आत्मा का स्वीकार करना, और वर्तमानदशा का भी स्वीकार होना कि यह संवर यह ही है, समकित यह ही है, यह निर्जरा शुद्धि बढ़ी, वही निर्जरा है। समझ में आया? इसकी सिद्धि पूर्ण होगी, इसलिए उसका नाम मोक्ष होगा। यह अस्ति से बात ली है। नास्ति से फिर ऐसा होने पर वह नास्ति हो जायेगी। पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध का अभाव होता जाता है, ऐसा। उसे शंका आदि जो हो, उसे टालना। कहो, समझ में आया? यह तो वस्तु, इसका मोक्ष का मार्ग और बन्ध का मार्ग, वह सब इसमें आ गया। नौ तत्त्व में बन्ध का मार्ग वह पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध, वह बन्धमार्ग है। मोक्षमार्ग संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह मोक्ष का मार्ग। बस। इसका व्यय, उसका उत्पाद, इसके आश्रय से। उसे बराबर जानकर, उसमें शंका को स्थान नहीं। ऐसा संशय दूर करके नि:शंकरूप से आत्मा का आश्रय करके।

इसके होने पर.... किसके होने से? यह शंका। **सप्त भय के निमित्त से....** शंका

होनेवाले को ... सात प्रकार के भय उत्पन्न होते हैं। निःशंक में निर्भय लिया है और यह निर्भय। **सप्त भय के निमित्त से....** यह प्राप्त करता है। निःशंकता कहो, निर्भयता कहो; शंका कहो या भय कहो, ऐसा। आहाहा! गजब बातें! ऐसी सब सुनने को मिलना मुश्किल पड़ती है। वस्तु भगवान आत्मा जो वस्तु है और उसका आश्रय होकर संवर, निर्जरा, मोक्ष है, उसे जो करनेयोग्य ... है, उसमें यदि शंका हो तो उसे भय होता है। क्योंकि अन्दर में जो निर्भय वस्तु है, उस पर रह नहीं सकता। अन्दर से भय होता है। क्या होगा मेरा? यह क्या? यह क्या? समझ में आया? स्वयं जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसका संवर, निर्जरादि का मार्ग, उसमें उसे शंका पड़ती है। वह शंका पड़े तो भय में आया। भय में आया वह। भ्रमण के भय में आया। अन्दर की वस्तु में से हट गया। समझ में आया? आहाहा! निर्भय में से हट गया। निःशंक में से हट गया, वह शंका में आया, भय में आया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! यह एक बात की। निःशंक की—शंका के त्याग की।

कितना ही तो जानपना। अब तो भाई! बहुत वर्ष हो गये न लोगों को, बहुत नये आये... अब तो बहुत लड़के भी तैयार हो गये हैं, लो! कोई वे भी ... ओहोहो! बड़े बातें करे, वैसी बातें वापस प्रेम से करे, हों! वापस ऐसा नहीं। ऐसा मार्ग यह है मार्ग। ... लड़का है। बाबूभाई की जाति का। १४ वर्ष का है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा! ऐसा कहे। वहाँ पढ़ाते हैं। यह गायन ८५वीं... बोले थे ... लोग इकट्ठे हुए। ... लेने आना रे। ८५वीं... आना। यह गायन है, ऐई! कामदार! इसके बाप ने—चम्पक ने। ... भाई ने बनाया। 'फतेहपुर... आवजो और हिम्मतनगर आवजो और मोरबी आवजो और लींबडी आवजो और वढवाण...' बहुत सब नाम। '८५वीं चालो रे...' ऐसी कुछ भाषा है। आहाहा! यह तो आत्मा की गहरी-गहरी बात है बापू! आहाहा! उजला की उजवणी है। भगवान उजला निर्मलानन्द प्रभु, उसकी उजवणी की बात है यह तो। वहाँ आना सब, ऐसा आमन्त्रण है। आहाहा! थोड़ा परन्तु उसमें परम सत्य आना चाहिए। समझ में आया? और परम सत्य का अंश न आवे, वहाँ उसे क्या हुआ? दूसरी बात।

भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है,.... जिसे आत्मा में सुख है और मोक्षमार्ग

में सुख है—ऐसा बैठा है, उसे भोग की वांछा कैसे हो? भोग अर्थात् संसार के विषय भोग तो दु:खरूप है, जहर के प्याले हैं। आहाहा! समकिती विषय-वासना के परिणाम में आवे, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। वह तो है, उसके जानने में रहा हुआ है और उस वासना का जिसे अन्दर से प्रेम नहीं। आहाहा! उसमें उसे प्रसन्नता, धर्मी को भोग में प्रसन्नता नहीं। इसलिए भोग की अभिलाषा करना, वह आत्मा के स्वभाव में नि:कांक्षता का गुण नाश होता है। अनन्त आनन्दस्वरूप की अभिलाषा करे, वह भोग की अभिलाषा करेगा? ऐसा कहते हैं। संवेग-निर्वेग आता है न! समझ में आया? आहाहा!

स्वभाव अपना है, उसमें नि:कांक्षरूप से अन्दर में रहे, वह कांक्ष अर्थात् पर में नहीं, वहाँ उसकी बुद्धि जाती है। आहाहा! आसक्ति हो, वह अलग वस्तु है। परन्तु उसमें सुखपना है, ऐसी बुद्धि होना, वह भोग की कांक्षा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग कठिन, भाई! आहाहा! **भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है,....** भोग की अभिलाषा। आहाहा! स्वर्ग के सुख की, विषय के भोग की कांक्षा, जिसमें सुख नहीं, उसकी कांक्षा, वह तो बड़ा दोष है। समझ में आया? सम्यक्चरण चारित्र में तो आनन्दस्वरूप की अभिलाषा होगी या भोग की अभिलाषा होगी? आहाहा! जिसमें भोग रुचि उड़ गयी है। सम्यक्चरण चारित्र में समकिती को पूरी दुनिया के भोग की रुचि उड़ गयी है। भोग हो आसक्ति का, रुचि उड़ गयी है। यह गजब, भाई! वासना में हो, परन्तु उसकी वांछा नहीं कि यह चाहिए। आहाहा! उसमें रुचि नहीं। जहररूप से आयी न अन्दर! रह नहीं सकता, सहन नहीं कर सकता, इसलिए उसमें आ जाता है, परन्तु जहर में जैसे आया तो उसकी कांक्षा नहीं। आहाहा! अज्ञानी को, कहते हैं, भोग की कांक्षा होती है। यह दोष है, भाई!

भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है, इसके होने पर भोगों के लिये स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। पर के रुचि के भोग की आकांक्षा में स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। आहाहा! यह सबमें डाला था न उसमें? **सप्त भय के निमित्त से स्वरूप से चिग जाये....** उसमें ऐसा डाला था। इसमें ऐसा डाला। कांक्षा करने से पर की रुचि करने से भोग में स्वरूप से हट जाता है। आहाहा! अब इसमें स्त्री, पुत्र और पैसा और इज्जत बढ़ी, ऐसा उत्साह किस काम का? ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले इस प्रकार का स्वरूप है, वह

शंका-निःशंक की वृत्ति का ऐसा ज्ञान तो करे, ज्ञान में तो ले। फिर अन्दर में प्रयोग करके करे, तब अनुभव होता है। आहाहा! जिसने जाना ही नहीं कि यह क्या चीज़ है? आहाहा!

क्या कहते हैं? जिसे कांक्षा—इच्छा होती है भोग की। रुचि, हों! वह तो स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। क्योंकि स्वरूप में आनन्द है, ऐसी उसे दृष्टि और रुचि नहीं रहती। आहाहा! चाहे तो कीर्ति की हो, विषय की हो, पाँच इन्द्रिय के भोग की, पाँच इन्द्रिय के भोग की बात है, हों! आहाहा! अणीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, उसके भोग की—अनुभव की जहाँ दृष्टि हुई। भोग अर्थात् अनुभव, उसे भोग की रुचि की कांक्षा कैसे होगी? आहाहा! और होवे तो वह स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। भोग की रुचिवाला निर्भोग चिदानन्द अणीन्द्रिय का भोग, उससे हट जाता है। समझ में आया? ओहोहो! जिनदेव ने ऐसा कहा था। परमेश्वर ने, परमेश्वर के शास्त्र में ऐसा कहा है और यह पदार्थ का स्वरूप भी ऐसा है। आहाहा! यह दो बोल हुए। दो बोल हुए न निःशंक और निःकांक्षित। ... आयेगा तीसरा बोल....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १३, गुरुवार, दिनांक-२२-११-१९७३
गाथा- ६, प्रवचन-४८

छठवीं गाथा। चारित्रपाहुड, छठवीं गाथा है न? भावार्थ चलता है भावार्थ। **सम्यक्त्वाचरण चारित्र, शंकादि दोष सम्यक्त्व के मल हैं, उनको त्यागने पर शुद्ध होता है, इसलिए इनको त्याग करने का उपदेश जिनदेव ने किया है।** अब इसमें न्याय क्या है, यह देखो! कि जो आत्मा भगवान ने—परमात्मा केवली ने देखा, वह अनन्त गुण का पिण्ड है, वस्तु है एक, परन्तु उसमें गुण अनन्त हैं और उसकी परिणति वह वर्तमान पर्याय भी अनन्त। जब ऐसा है, तब ऐसा कहते हैं कि दुःख को टाल। तो दुःख को टाल और उसके बदले निर्दोष दशा प्रगट कर। इसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय में यह होता है। आत्मा की पर्याय—अवस्था में दोष टलना और निर्दोष का होना, उसकी पर्याय में होता है। पर्याय का स्वरूप ही जिसमें नहीं और आत्मा... आत्मा करे, वह आत्मा उसे सच्चा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय में दोष?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष पर्याय में ही होता है न! और धर्म भी पर्याय में होता है। न्याय समझ में आता है? दोष है जो यह... यदि दोष न हो, तब तो उसे आनन्द होना चाहिए। क्योंकि आत्मा का स्वभाव ऐसा कहीं दुःख नहीं। स्वभाव तो आनन्द है। परन्तु वह आनन्द, वह गुण है। ऐसे-ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड वह द्रव्य है। तो जिसे अभी द्रव्य क्या, गुण क्या और पर्याय क्या—इसका जिसे ज्ञान नहीं और जिसके शास्त्र में यह बात नहीं, उसकी एक भी बात सच्ची नहीं हो सकती। समझ में आया? क्योंकि ध्वनि ऐसी आती है कि तुम कुछ धर्म करो। अथवा विकल्प टालो। उसमें यह ध्वनि में क्या आया? कि विकल्प है, वह राग है, उसे टालो। तो इसका अर्थ कि वह टल सकता है, ऐसी दशा में है। राग उसकी दशा में है। इसलिए दशा पलट सकती है, उसमें है। परन्तु वह राग टालो, ऐसा कहने से जिसकी पर्याय में रागरहित होकर अरागी दशा प्रगट हो, वह पर्याय में होता है। और उस पर्याय में श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आदि अनन्त गुण की

पर्याय निर्मल हुई और मलिनता गयी, तो वह अनन्त पर्यायें जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द की, उसमें गुण हो तो उसमें से पर्याय आवे न! तो जिसकी श्रद्धा की पर्याय, ज्ञान की अवस्था, आनन्द की अवस्था, अस्तित्व की, वस्तुत्व की, कर्ता, कर्म आदि की पर्यायरूप परिणमा, तब वे सब गुण अन्दर हैं, कायम रहनेवाले गुण हैं, उसमें से पर्याय होती है। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। इसकी खबर नहीं और अद्धर से बातें करे आत्मा और आत्मा। समझ में आया? क्योंकि एक ध्वनि उठे कि तुम आत्मध्यान करो। इसलिए पहले यह दृष्टान्त दिया। अब इसमें कितना भरा है।

—कि तेरी दशा में खोटे दोष हैं तो ध्यान करो। तो वह पर्याय हुई, पलटती दशा हुई। तो जिस दशा में दोष है, उस दोष को टालने के लिये पर्याय में अन्तर का ध्यान करो। तो पर्याय है, वह तो क्षणिक अवस्था है। अवस्था ही जिसे अभी खबर नहीं कि अवस्था क्या? उसे द्रव्य और गुण का ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता। यह बात जरा सूक्ष्म है। यह तो आया न दोष टालने का कहा न? तब दोष टालने का, वह कौन सा? कि जिसकी दशा में... दशा में। वस्तु त्रिकाल और गुण में न हो। गुण और द्रव्य तो ध्रुव है। वस्तु है, वह ध्रुव है और उसकी शक्तियाँ जो गुण, ज्ञान आदि वे ध्रुव हैं। पलटती दशा में दोष और निर्दोषता हो सकती है। तो पलटती दशा अर्थात् अवस्था अर्थात् पर्याय अर्थात् हालत अर्थात् अंश। उस अंश में दोष टाल, इसका अर्थ कि दोष टल सकते हैं, उसके स्थान में निर्दोष दशा आ सकती है, वह निर्दोष दशा आवे कहाँ से? सदोष टलती है उसमें से आवे?

तब निर्दोषदशा का धाम अन्दर अनन्तगुण का धाम द्रव्य है, उसमें से आती है। आहाहा! धीरुभाई! यह तो वह मेट्रिक में यह सब लॉजिक समझ में आ जाये, परन्तु यह दूसरे प्रकार की बात है। यह पढ़ा है... कोई भी व्यक्ति ऐसे धर्म के नाम से ऐसा कहे कि तुम दोष टालो अथवा आत्मा का ध्यान करो। तो उसमें कौनसी आवाज कितनी उठे? कि उसका ध्यान स्वभाव-सन्मुख का नहीं था और उसका ध्यान राग और परसन्मुख था, तब उसे ध्यान करो, ऐसा हुआ। इसका अर्थ यह पर्याय-पलटती दशा का यह सब कार्य है। और वह पलटती दशा, उस पलटती दशा में जब श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि पर्यायरूप एक समय में ऐसा अनन्तपना परिणमता है, उस परिणमन का

स्थान कौन? किसके आधार से वह परिणमता है? दोष टला और दु:खदशा निर्मल हुई। परन्तु वह निर्मल हुई किसके आधार से?—कि गुण के आधार से। एक-एक श्रद्धा सम्यक् हुई, वह श्रद्धा गुण के आधार से; शान्ति हुई चारित्रगुण के आधार से; आनन्द हुआ, वह आनन्दगुण के आधार से। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण हैं, और उस गुण को जहाँ लक्ष्य में नहीं लिया हो कि अनन्त गुण हैं। पर्याय... पर्याय इतनी बात करे तो भी झूठा....

अकेले गुण, गुण की बात करे तो भी झूठा। क्योंकि गुण की बात जाननेवाली तो पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! यह तो दोष टाले, इसमें कितना समाहित किया है! कि उसे वर्तमान में वीतराग ने कहा हुआ जो आत्मा द्रव्य, गुण और पर्याय... और उस प्रकार से न हो तो वस्तु सिद्ध होती ही नहीं। दोष टालना और दोष के स्थान में निर्मलता आना, वह पर्याय में होता है, अवस्था बदलने में (होता है)। परन्तु वह बदलना किसके आधार से होता है? वह त्रिकाली गुण अनन्त माने, उसके आधार से वह बदलना होता है और अनन्त गुण का आधार एकरूप द्रव्य माने, एकरूप वस्तु है अनन्त गुण का एकरूप। उसकी दृष्टि हुए बिना अनन्त गुण का निर्मल परिणमन नहीं होता और मलिन परिणमन नहीं जाता। समझ में आया? यह कहते हैं।

सम्यक्त्वाचरण चारित्र.... जिसे यह सम्यग्दर्शन जो पर्याय है सम्यग्दर्शन—धर्म की दशा, वह सम्यक् पर्याय है। गुण नहीं। गुण प्रगट नहीं होते और गुण का अभाव नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? सम्यक्त्व शुद्ध चैतन्य द्रव्य जो अखण्ड प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड। अनन्त गुण जो संख्या से, उसके आश्रय से पर्याय में अनन्त निर्मलदशा प्रगट हुई, गुण की प्रगट हो, उस पर्याय में पूरा आत्मा है ऐसा वह प्रतीति में आया है। उसका नाम सम्यक्चरण चारित्र कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यक्त्वाचरण चारित्र। वस्तु अनन्तगुण का पिण्ड, उसका एकरूप, उसकी जो प्रतीति अर्थात् स्वरूप प्रगट होना एकता, राग की एकता टूटकर—दोष की एकता टूटकर गुणस्वरूप भगवान की एकतारूप दशा हो, उसका नाम सम्यक्त्व चरण अर्थात् परिणमन का चारित्र कहा जाता है। आहाहा! भाषा तो सादी है, परन्तु अब ... भाव जरा कठिन पड़े न! अभ्यास नहीं न, और दूसरा उल्टा अभ्यास बहुत। जगत के कहे हुए, जगत ऐसा कहता है न, फलाना ऐसा कहते हैं। वीतराग क्या कहते हैं, उसकी इसे खबर नहीं।

यह कहते हैं, **सम्यक्त्वाचरण चारित्र....** अर्थात् कि आत्मा जो द्रव्य—वस्तु है, उसके जो अनन्त गुण हैं, उसका भेद लक्ष्य में न लेकर, अभेद दृष्टि होने पर उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? भाषा सादी गुजराती, परन्तु कितनों को ऐसा कि अपने को कुछ समझ में नहीं आता गुजराती तिकड़म। यह तो साधारण भाषा है। समझ में आया? आहाहा! कोई हिन्दी और इसमें बहुत अन्तर नहीं है। आहाहा! सम्यक्त्वाचरण चारित्र अर्थात् कि वस्तु जो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके अन्दर में सन्मुख होकर, उसमें ज्ञान होकर, उसमें प्रतीति और उसमें लीनता का अंश, वह सम्यक्चरण चारित्र कहा जाता है। आहाहा!

यह **शंकादि दोष सम्यक्त्व के मल हैं....** उसमें जो शंका आदि हो तो, यह सम्यग्दर्शन—सच्ची श्रद्धा जो त्रिकाल की अन्दर हुई, उसमें यह मैल कहलाता है। **उनको त्यागने पर शुद्ध होता है,....** उस मल के नाश से वह सम्यग्दर्शन की पर्याय निर्मल और शुद्ध होती है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए इनको त्याग करने का उपदेश जिनदेव ने किया है।** वीतराग ने ऐसा कहा कि दोष को टाल। तो इसका अर्थ कि निर्दोष की पर्याय प्रगट कर, तो इसका अर्थ कि निर्दोष पर्याय का धाम त्रिकाल का आश्रय जो लिया हो, उसमें से निर्दोष दशा आती है। यह बात वीतराग के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं होती तीन काल में। यह द्रव्य, गुण और पर्याय नाम भी उसे नहीं होते। आत्मा... आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग अरिहन्तदेव ने जो कहा हुआ आत्मा, वह ऐसी जाति का आत्मा है, द्रव्य, गुण और पर्यायवाला। समझ में आया? ऐसे आत्मा की जिसे अन्दर प्रतीति हुई, ज्ञान में ज्ञात होकर बराबर प्रतीति हुई, उसमें जो एकाग्रता का अंश, स्थिरता का (अंश) यह उसे सम्यक्चरण चारित्र कहा जाता है। यह धर्म की पहली दशा है। आहाहा! **जिनदेव ने किया है।** यह त्याग करने का उपदेश भगवान ने किया। इसका अर्थ कि यह राग की दशा अथवा आशंका की दशा नाश हो सकती है। नि:शंक की दशा प्रगट करके। आहाहा! और नि:शंक और शंका दोनों पर्याय में होते हैं। और उस पर्याय का उत्पन्न होना... गुण त्रिकाल उसका गुण है, श्रद्धागुण के आधार से नि:शंकता, चारित्रगुण के आधार से स्थिरता, आनन्दगुण के आनन्द का अंश, वीर्यगुण के आधार

से स्वरूप की रचना की वीर्य की पर्याय। ऐसे अनन्त गुण की पर्याय का आधार अनन्त गुण है।

मुमुक्षु : अनन्त गुण सिद्ध हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त गुण हैं। वरना तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होगी। आहाहा!

एक वस्तु वस्तुरूप से है, ऐसा न्याय से लो। और अनन्त वस्तुएँ हैं, उनरूप नहीं। यह एक वस्तु आत्मा, आत्मारूप से है और शरीररूप से नहीं, रजकणरूप से नहीं, दूसरे अनन्तरूप से नहीं। तो इसपने नहीं एक ऐसा धर्म, ऐसे अनन्तपने नहीं, ऐसे अनन्त धर्म हैं। समझ में आया? यह तो अपेक्षित धर्म अनन्त कहे। बाकी सामान्य-विशेषगुण अनन्त हैं। आहाहा! सामान्य अर्थात्? जो गुण आत्मा में भी हों और जो गुण जड़ में भी हों। जैसे अस्ति (पना)—अस्तित्व। वह आत्मा में भी है और अस्तित्व जड़ में भी है। वह सबमें हो, उसे सामान्य गुण कहा और एक में हो और दूसरे में न हो, आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसमें हो और दूसरे में न हो, उसे विशेषगुण कहते हैं। आहाहा! वस्तु इस प्रकार से न हो तो किसी प्रकार से वस्तु सिद्ध नहीं होगी। बिना भान के सब आत्मा के नाम से अभी बहुत चला है। दिन-प्रतिदिन उल्टा। समझ में आया? आहाहा!

परमेश्वर ने यह कहा, उसमें यह वस्तु सिद्ध होती है। पर्याय, गुण और द्रव्य तथा पर्याय का पलटना और द्रव्य, गुण का कायम रहना। इस प्रकार से न हो तो वह दोष टल नहीं सकते और धर्म कर नहीं सकता। आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय। अब द्रव्य, गुण और पर्याय के नाम भी न आवे। जो वस्तु मुख्य है, उसके नाम न आवे। आत्मा ऐसा करो, क्या करे परन्तु आत्मा? आत्मा अर्थात् क्या? उसमें पर्याय का पलटना, वह क्या? और उस पर्याय का पलटना किसके आधार से? उसमें जो-जो पर्याय पलटे, वह गुण क्या? और उस गुण का एकरूप क्या? समझ में आया? आहाहा! यह जिनदेव ने उसे उपदेश कहा।

वे दोष क्या है, वह कहते हैं—जिन वचन में वस्तु का स्वरूप कहा उसमें संशय करना शंका दोष हैं.... सर्वज्ञ परमात्मा ने जो पर्याय, गुण और द्रव्य का स्वरूप ऐसे अनन्त द्रव्य की व्याख्या की, उसमें शंकादोष। जीव के वस्तु में शंका होना। **इनके**

होने पर सप्त भय के निमित्त से.... अब क्या कहते हैं ? वस्तु जो है, वह निर्भय वस्तु है। क्योंकि अस्तित्व है, उसमें भय क्या ? वस्तु अस्तित्व, गुण अस्तित्व और पर्याय अस्तित्व। ऐसे अस्तित्व की जिसे श्रद्धा हुई, उसे भय क्यों ? परन्तु उसमें शंका करे, तब तो भय आ जाये। क्योंकि ऐसा है, ऐसी उसे प्रतीति नहीं रही, इसलिए भय हुआ। समझ में आया ? ऐसी व्याख्या!

कहते हैं, **इनके होने पर सप्त भय के निमित्त से....** द्रव्य वह वस्तु, गुण अनन्त और मेरी पर्याय निर्मल। थोड़ी मलिनता है, कितनी ही निर्मलता हुई है, ऐसा है, ऐसी यदि प्रतीति न हो और शंका करे तो उसमें से हट गया। स्वरूप में से हट गया। जो वस्तु निर्भय, नि:शंक है, उसमें से हट गया। मेरा अस्तित्व कैसा होगा ? ऐसा उसे भय हुए बिना नहीं रहे। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : वह भय कब मिटे प्रभु ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस वस्तु की दृष्टि करे तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्या दशा ?

मुमुक्षु : यह .... गुण

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण, उसमें क्या हुआ ? यह कहते हैं कि यह सुनते हैं उसमें क्या ? कुछ है या नहीं ? तो यह सुनना, वह तो दूसरी चीज़ है। सुनने के पश्चात् करना तो इसे है। आहाहा! ऐसा मार्ग! आहाहा! ऐसा निर्मल मार्ग वीतराग परमेश्वर ने (कहा)। कहते हैं कि ... शंका छोड़। शंका छोड़ का अर्थ ? नि:शंक हो। नि:शंक का अर्थ ? जो वस्तु गुण और पर्याय जैसे हैं, वैसे हैं, ऐसा ही है, उसमें फेरफार नहीं और यदि यह शंका हुई तो उसके अस्तित्व को रखने के लिये उसे भय हुआ। ऐसा। आहाहा! समझ में आया ?

यह नि:शंक गुण और शंका के दोष के नाश की व्याख्या चलती है। आहाहा! ख्याल में बात आये बिना यह क्या और यह क्या और त्याग, इसकी खबर बिना वह त्याग किसका करे ? किसे प्रगट करे ? आहाहा! तो मेरा अस्तित्व इतना है। अनन्त गुण

का एकरूप, ऐसा मेरा अस्तित्व और उसकी पर्याय में अनन्त गुण की परिणति, वह मेरा अस्तित्व, वह मेरा अस्तित्व। ऐसी जो नि:शंकता, वह समकितचरण चारित्र का गुण है। आहाहा! और यदि उसमें शंका की तो वस्तु का ऐसा अस्तित्व है, उसमें उसे शंका हुई। इसलिए निर्भयरूप से वस्तु है, नि:शंकरूप से वस्तु है, नि:शंकपने अस्तित्व है, उसमें भय हो गया, उसे शंका पड़ गयी। आहाहा! ऐसी बात है। वह तुम्हारे मेट्रिक-बेट्रिक में सब गप्प मारी है। आहाहा!

मुमुक्षु : मेट्रिक में (ही) नहीं धर्म में गप्पा मारे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की बात है। अभी धर्म के नाम से कालाबाजार है। यह तो अभी कहता हूँ न कि सब चीज़ों में मिलावट बहुत बढ़ गयी है अभी। बहुत चीज़ों में। दूध में पानी, फलाना में यह। इसी प्रकार यह धर्म में कालाबाजार हो गया है। कालाबाजार अर्थात्? कि जिस पर्याय में पुण्य के भाव होते हैं दया, दान, व्रत, भक्ति, उसे धर्म मनावे, वह कालाबाजार है। भाई ने कहा न कि मेट्रिक तो एकओर रहा। आहाहा! बात सच्ची है। बात तो ऐसी ही है। बहुत बार कहते हैं। भेळसेळ का एक पत्र आया था। मिलावट। मिलावट ऐसा एक लेख आया है। मिलावट। भावनगर में फलाना का... यह केसर, केसर होती है न। केसर में ताणाबाणा निकाल लिये और मिलाया वापस केसर। यह चावल में कणी मिलावे, मिर्ची में वह बीज... बीज.. अधिक। मण मिर्च हो और अधमण बीज हो अन्दर बोरी में। ऐसे-ऐसे अनेक घी में यह तुम्हारा... तेल में। तिल के तेल के बदले मूंगफली का तेल। प्रत्येक में मिलावट है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी आया था न, कहा न भावनगर में ... किराने की दुकान थी। ४५ ... ली। रुपये-रुपये भार। रुपये में रुपये भार। जाँचा। जाँचने पर सात-सात पीस मिलावट बिना के और बाकी सब मिलावटवाले। यह भावनगर का कहा किराने की दुकान में। उसी प्रकार यहाँ भी धर्म के नाम से सब मिलावट कर डाली।

मुमुक्षु : ऐसी दुकान होती है। मिलावट करने की मुम्बई में दुकान होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुकान होती है।

मुमुक्षु : खोखा में यह डालो तो यह होगा... इसमें यह डालो... इसमें यह डालो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिर्ची—काली मिर्ची है न, उसमें पपीता के दाने डाले। पपीता के। काले होते हैं न काले। आहाहा! दगा यह भी दगा (कपट)। आहाहा! इसी प्रकार यह धर्म के नाम से कहते हैं ... प्रभु! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ... आहाहा! जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, उन्होंने यह वस्तु कही कि भाई! तेरी चीज़ तो द्रव्यरूप है, गुणरूप है और पर्यायरूप है। द्रव्यरूप एक, गुणरूप अनन्त, पर्यायरूप अनन्त। आहाहा! यह पर्याय की निर्मलता अन्दर हो, उसे धर्म कहते हैं। परन्तु पुण्य के, दया, दान के विकल्प जो भक्ति, पूजा के भाव, वे भी मलिनभाव हैं, राग है। वह धर्म नहीं तथा वह धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा! उसे धर्म के कारण में मिलाकर धर्म के नाम से मिलावट करते हैं। आहाहा!

अथवा सर्व एक आत्मा सब होकर एक है। यह मिलावट कर डाली। जीव को खण्ड-खण्ड कर दिया। सब होकर एक है। यहाँ तो एक ही आत्मा द्रव्यरूप अखण्ड परिपूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है। ऐसा न मनाते हुए सब होकर एक व्यापक है, यह बड़ी कालाबाजार की मिलावट की। सेठ! ऐसा सत्य है। सत्य का स्वरूप... एक-एक भगवान आत्मा वस्तु है न? तो वस्तु है, उसके गुण परिपूर्ण ही होते हैं। उसकी पर्याय, हालत में दोष और निर्दोषता बदलना होता है। परन्तु वस्तु बदले नहीं। वस्तु तो त्रिकाल रहती है। द्रव्यरूप से रहती है और गुणरूप से त्रिकाल रहती है। जिसमें द्रव्य और गुण की व्याख्या ही एकदम नहीं, उसे द्रव्य, गुण का ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता। आहाहा! और उसकी पर्याय—पलटती दशा को पर्याय कहते हैं, अवस्था कहते हैं, दशा कहते हैं, उस दशा की स्थिति एक समय ही होती है। त्रिकाल द्रव्य, गुण की स्थिति ध्रुव त्रिकाल होती है और अवस्था की स्थिति एक समय की ही होती है। दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। एक समय अर्थात् 'क' बोलते हैं उसमें असंख्य समय जाते हैं। 'क' बोलते हैं उसमें असंख्य समय जाये। उसमें एक समय, उसकी पर्याय की अवस्था की स्थिति एक समय ही होती है। कठिन बात। क्या है यह! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **जिन वचन में वस्तु का स्वरूप कहा, उसमें संशय करना शंका दोष**

है;.... आहाहा! **इनके होने पर सप्त भय के निमित्त से स्वरूप से चिग जाये वह....** स्वरूप के अस्तित्व से हट जायेगा शंका करके। आहाहा! निर्भय भगवान भण्डार अनन्त गुण का भण्डार ऐसा आत्मा, उसे प्रतीति में न रहकर शंका होगी, हट जायेगा। आहाहा! **भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है....** कहते हैं कि भगवान आत्मा में आनन्दस्वरूप भगवान है। उसके अनुभव को छोड़कर, भोग छोड़कर, किसी भी परवस्तु का अनुभव—भोग करना। विषय में, राग में, पुण्य में, परिणाम में यह **भोगों की अभिलाषा....** परवस्तु को भोगने की इच्छा। आहाहा! ऐसी जो कांक्षा, (वह) दोष है। कांक्षा—इच्छा, वह दोष है।

इसके होने पर भोगों के लिये.... परवस्तु के राग को और विषय को, भोग को, पैसे की इज्जत के भाव को भोगने के लिये **स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है।** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव भोग, आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का भोग चाहिए पर्याय में, क्योंकि अतीन्द्रियस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है, उसका भोग अर्थात् उसकी पर्याय में उसका अनुभव चाहिए। उसका भोगना चाहिए। उसके बदले उसे छोड़कर परवस्तु को भोगने की अभिलाषा, वह स्वरूप से भ्रष्ट है। यह ... गजब काम! आहाहा! कहो, समझ में आया? समझ में आया अर्थात्? ... साबले मध्य कहलाता है न? विश्राम का वाक्य।

हमारे मामा थे न वृद्ध, वह बहुत बोलते थे तब। यह तो ७२-७३ वर्ष पहले की बात है। मामा यह बोले साबले मध्ये। ऐसा बोले। पहले ऐसा बोले थे। साबले मध्ये। मैंने कहा कि भाई! यह साबले मध्ये तुम क्या कहते हो, कुछ समझ में नहीं आता। वे वृद्ध बोलते साबले मध्ये, ऐसा बोलते। अर्थात् क्या? जिस वृद्ध को पूछा, उन्हें नहीं आया। फिर दूसरे थे, उन्होंने कहा कि विश्राम का वाक्य है कि साहब की भली मति हो जो। साबले मध्ये ऐसा बोलते। बेचारे पुराने व्यक्ति। हमारे मामा थे। पुत्र नहीं था। यह तो नयी से विवाह किया। उसे एक पुत्र हुआ तो पुत्र मर गया। मकान-बकान, पैसेवाले व्यक्ति। बहुत मकान, दुकानें। तब। ... वे बेचारे बोलते थे। हमारे सगे मामा ..भाई! साबले मध्ये ऐसा बोले। मामा! यह तुम क्या बोलते हो? यह हमको खबर नहीं। हम

तो साबले मध्ये कहते हैं। दूसरा एक साथ में था, वह कहे साबले मध्ये का अर्थ यह है। बात करते-करते, साहेब को भली मति हो जो। आहाहा! यह पुरानी रुढ़ि है। इसी प्रकार यहाँ, समझ में आया? यह साबले मध्ये में जाता है। तुमको समझ में आता है यह?

कहते हैं, भगवान... आहाहा! देखो! आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति—ऐसे अनन्त गुण ध्रुव हैं। और उसे अनुभव करना, पर्याय में उसका अनुभव करना, वह तो सम्यग्दृष्टि का कार्य है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि अर्थात् वस्तु जैसी पूरी है, वैसी प्रतीति ज्ञान में हुई। आहाहा! अर्थात् उसे अनुभव करने के लिये तो आनन्द और शान्ति रही। पश्चात् अशान्ति आवे, राग आवे, परन्तु उसे भोगनेयोग्य है, ऐसी रुचि उसमें से उड़ जाती है। समझ में आया? आत्मा अमृत का सागर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अन्दर ख्याल में, अनुभव में, भान में, श्रद्धा में, ज्ञान में ज्ञेयरूप से आया, उसे धर्मी जीव को तो आत्मा का भोग, अनुभव वह उसकी अभिलाषा होती है। उसे जो परवस्तु स्त्री, परिवार, स्त्री, कीर्ति, पैसा, धूलधमाका, यह बड़ा मकान बँगला। ४०-४० लाख के मकान देखो न, था न उसमें। मर गया है। गोवा। शान्तिलाल खुशाल। पण्डितजी! शान्तिलाल खुशाल नहीं वह गोवा में? चालीस लाख का बँगला स्वयं का एक। दस-दस लाख के (दूसरे) थे। वह चला गया बेचारा।

यह भोगना, उसे भोगना ऐसा भाव ही मिथ्यादृष्टि का होता है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि आत्मा आनन्द का नाथ, उसे भूलकर तू यह पर को भोगने का भाव, रुचि, दृष्टि, वह मिथ्यात्व सूचित करता है। आहाहा! कठिन काम, भाई! जिसे आत्मा के आनन्द के अनुभव के अतिरिक्त परवस्तु के भोगने में रुचि जिसे है, उसे आत्मा के आनन्द के अनुभव की रुचि नहीं। आहाहा! उसे राग होता है, भोगने की क्रिया भी हो, परन्तु उसमें रुचि नहीं है। धर्मी की रुचि राग में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! क्योंकि राग में सुख नहीं। सुख तो आत्मा में है। समझ में आया? कठिन बातें भाई ऐसी!

कहते हैं। क्या कहा यह? **भोगों की अभिलाषा कांक्षा दोष है....** स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु, उसके अनुभव के भोग के अतिरिक्त परवस्तु को भोगने का भाव,

उसे कांक्षा कहा जाता है। **इसके होने पर भोगों के लिये....** पर के राग को और विषय-वासना को प्रेम से भोगने के लिये **स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है।** आहाहा! जिसे इस विषय के राग में, पैसे के राग में, कीर्ति के भाव में, मकान के भाव में कुछ मैं इसे भोगूँ, ऐसी जो भोगने की रुचि, दृष्टि, विकार को भोगने की रुचि और दृष्टि कांक्षा, वह स्वरूप से भ्रष्ट होता है, उसे होती है। आहाहा! यह ऐसी जवाबदारी है।

मुमुक्षु : भोग लो, प्रयोग कर लो, धर्म कर लो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन भोगे? धूल को? अग्नि में लकड़ी डालते हुए, लकड़ी डालो और अग्नि बुझ जायेगी, इसी प्रकार भोग भोगो तो फिर तृप्ति हो जायेगी। धूल में भी नहीं होगी।

मुमुक्षु : भोगने योग्य नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पहले यह करने की बात है। पश्चात् आसक्ति होती है। समकिती आत्मज्ञानी को चक्रवर्ती का राज हो। भरत चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियाँ थी, परन्तु वह राग का आसक्ति भाव, वह भोगनेयोग्य है, यह दृष्टि नहीं थी। यहाँ तो राग को भोगनेयोग्य है, ऐसी जो भोग की जिसे पर की दृष्टि है, उसे आत्मस्वरूप से भ्रष्ट कहते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

राग तो होता है। भरत चक्रवर्ती, तीर्थंकर हो, लो न! ऋषभदेव भगवान ८३ लाख पूर्व तक गृहस्थाश्रम में रहे। ८३ लाख पूर्व। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। तो ८३ लाख (पूर्व) रहे गृहस्थाश्रम में, तथापि उस राग में प्रेम नहीं। लंगड़े की भाँति राग साथ में आता है। आहाहा! समझ में आया? वेश्या का प्रेम कैसा होता है पैसादार के साथ? वह राजकुमार हो या गरीब हो, पैसा दे दस-पन्द्रह-बीस रुपये, वहाँ उसे प्रेम करे; इसी प्रकार धर्मी को पर के प्रति प्रेम ऐसा वेश्या जैसा होता है। समझ में आया? आता है न भाई, नहीं? छहढाला में। वह दृष्टान्त दिया है न। आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। 'नगर नारी को प्यार...' यह। वह वेश्या नगर नारी।

छहढाला में आता है। भाई को पूरा कण्ठस्थ है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि धर्मी उसे कहते हैं। आहाहा! कि जिसे आत्मा का आनन्द रुचा है और उस आनन्द में ही अनुभव की जिसे अभिलाषा और दृष्टि है, परन्तु जो भोग के अनुभव की दृष्टि हो तो स्वरूप से भ्रष्ट है वह। आहाहा! कठिन बात, भाई! कहो, पुत्र अच्छे हुए, पैसे पचास लाख, करोड़, दो करोड़ हुए, कर्मी पुत्र जगे। कर्मी जगे अर्थात् कर्म के करनेवाले, ऐसा। धर्मी नहीं। उसके कारण उसे उत्साह आ जाये अन्दर से। आहाहा! तो कहते हैं कि प्रभु आत्मा जो आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय रस, उसका उसे प्रेम, रुचि छूट गयी है। तब उसे पर के भोगने का प्रेम रुचि से हुआ है। समझ में आया? आहाहा! वीतराग की वाणी में एक-एक न्यायों में कितना मर्म भरा है!

कहते हैं, **भोगों की अभिलाषा...** कल आ गया है अपने यह। यह तो अधिक विस्तार। मल और दोष के ऊपर से आया। आहाहा! **इसके होने पर...** यह पर्याय में होता है, हों! गुण में नहीं। गुण तो त्रिकाली है। बदलती दशा में कांक्षा होती है। **इसके होने पर भोगों के लिये स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है।** आहाहा! भगवान आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द के रस का रसीला प्रभु, वह यदि राग का रसीला हो तो आनन्द के रसीला से वह छूट जाता है। आहाहा! उसे दृष्टि मिथ्यात्व हो जाती है। ऐसी बात है। समझ में आया?

वस्तु स्वयं प्रभु पर से निर्मल ध्रुव चीज़ है और उसमें तो अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता। ऐसी अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। तो ऐसी शक्ति की जिसे प्रतीति और भान हुआ, उसे तो उस शक्ति का पर्याय में अनुभव करना, ऐसी उसे दृष्टि और रुचि होती है। उसे छोड़कर राग का भोगना, ऐसी रुचि उसे नहीं होती। और उस राग की रुचि से भोगने का भाव हो, उसे स्वरूप से .... भ्रष्ट हो गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : जवाबदारी बहुत बढ़ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी नहीं। वस्तु की मर्यादा ही ऐसी है। परन्तु वस्तु की

स्थिति ही ऐसी है उसमें... आहाहा! भाई! धर्म अर्थात् क्या? धर्म अर्थात् पर्याय वर्तमान। वह पर्याय अर्थात् क्या? जो त्रिकाली वस्तु को जिसने स्वीकार किया और त्रिकाल को पर्याय ने कब्जे में किया। आहाहा! वर्तमान पर्याय ने भूतार्थ को ज्ञानी की दशा से त्रिकाल को जहाँ कब्जे में किया, उसे कहते हैं, त्रिकाल में रहा हुआ गुण, उसकी पर्याय में अनुभव का भोग का भाव उसे होता है। आहाहा! उसे जो परवस्तु को भोगने की रुचि और एकताबुद्धि हो गयी हो तो स्वरूप की एकता उसे टूट जाती है। समझ में आया?

स्वरूप से भ्रष्ट.... स्व-रूप। अपना आनन्दस्वरूप है प्रभु आत्मा का। उसकी जिसे प्रतीति हुई, उसे स्वरूप के अनुभव के अतिरिक्त पर के भोगने का भाव होता नहीं। आसक्ति हो, वह अलग वस्तु है। आसक्ति अलग वस्तु है और रुचि से भोगने का भाव, वह अलग चीज़ है। आसक्ति में अस्थिरता होती है, परन्तु रुचि में उस अस्थिरता का प्रेम होता है। समझ में आया? गधे का दृष्टान्त दिया था। वह गधे पर बैठाकर निकालते हैं न? यह तो उसमें दृष्टान्त आया था। वह कोतवाल गुनहगार को गधे पर बैठावे और चले, वह कहीं उसे प्रेम है? गधे पर बैठने का प्रेम है? परन्तु बैठता तो है, बैठा तो है। आता है न यह? दृष्टान्त है।

और यह दिल्ली में बना था एक (प्रसंग)। दिल्ली में एक वर विवाह करने आया। उस कन्या के पिता के पास माँगा। फलाना यह चाहिए, फलाना यह चाहिए, अभी यह सब क्या कहलाता है वह? ... अधिक माँगा होगा। ऐसा कुछ माँगा था। विवाह के समय, विवाह के समय, हों! अब वह बेचारा लड़की का पिता साधारण। देर क्यों लगी कि यह क्यों नहीं आते? क्या कहते हैं? गाँव के जवान लड़के इकट्ठे हुए। यह खानदानी व्यक्ति वह लड़की का पिता बेचारा। परन्तु इतना सब माँगे पचास हजार रुपये, उसको अधिक चाहिए। गाँव के लड़के इकट्ठे हुए। एक अच्छा गधा लाये। चलो वरराजा। चलो, चलो बाहर। गधे पर बैठाया। चल तुझे विवाह कराते हैं। मूर्ख! विवाह के समय बेचारे ऐसे व्यक्ति को तू ऐसा करता है? यह तो जवानों की लाज छूट जाती है। सब जवान ऐसे होंगे? ऐसी हमारी इज्जत जाती है तुझमें। भगवानजी! गधे पर

बैठाकर घुमाया गाँव में। जाओ विवाह करना कुत्ती और गधेड़ी से अब। यह कन्या तुझे नहीं मिलेगी। अब वह बैठा है तो रुचि से बैठा है ? मेरा ऐसा कहना है।

इसी प्रकार ज्ञानी को—धर्मात्मा को राग आवे सही, परन्तु उसे रुचि से नहीं। समझ में आया ? पोसाता नहीं, परन्तु पोसाये बिना (भी) राग आये बिना रहता नहीं और अज्ञानी को तो वह राग पोसाता है। समझ में आया ? आहाहा! यह उसकी बात! आहाहा! श्रीमद् ने नहीं कहा ? क्या भगवान की वाणी! क्या उनकी उज्ज्वलता! लिखा है। उज्ज्वल... वीतराग की वाणी, वीतराग में क्या कहना! आहाहा! उनकी एक-एक बात में टंकोत्कीर्ण न्याय खड़े होते हैं। आहाहा! उनके एक-एक बोल में यह अनन्त रहस्य भरा होता है उसमें। आहाहा! जिसकी विकल्परहित दशा वीतराग हो गयी और उस सर्वज्ञपने की भूमिका में वीतरागता आ गयी। आहाहा! ऐसे अरिहन्त परमात्मा, उनकी वाणी में। ऐसा कहा न ? उसका उपदेश किया कि इसका त्याग करो। आहाहा! समझ में आया ?

कांक्षा का त्याग कर, ऐसा कहते हैं और अन्तर के आनन्द के अनुभव का प्रेम कर। आहा! तेरा नाथ अन्तर में शान्ति से भरपूर है। प्रभु है भाई! तुझे तेरी महिमा की कीमत नहीं। तेरी महिमा की (पूरी बात) सर्वज्ञ की वाणी में नहीं आयी। ऐसा तो बड़ा प्रभु अन्दर है। एक बीड़ी में फँस जाये। एक बीड़ी पीवे वहाँ ओहोहो! मस्तिष्क तर हो जाये। डेढ़ कप चाय पीवे सवेरे तो मस्तिष्क स्थिर हो। तो सुनने का मजा रहे। चाय न पीवे तो मजा न रहे। ... मार डाला। आहाहा! प्रभु! तू ऐसा नहीं, भाई! तेरी प्रभुता को तो कोई पहुँच नहीं सकता, ऐसी चीज़ है। ऐसी जिसे प्रभुता अन्दर में रुचि और बैठी, उसे समकितचरण चारित्र कहा जाता है। उसके चारित्र में पर के भोग की कांक्षा होती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन भी जिसे सड़े हुए तिनके जैसे लगें। सड़ा हुआ कुत्ता, बिल्ली जैसा। इन्द्राणी के भोग। यह तो सब अनाज खाये हुए पिण्ड बैठ... जाये। रोटियाँ....

मुमुक्षु : धान के पिण्ड।

पूज्य गुरुदेवश्री : धान के पिण्ड। वह तो इन्द्राणी स्वर्ग की, उसके भोग। सड़ा

हुआ, बिल्ली सड़ गयी दिखाई दे, वैसा भोग दिखता है धर्मी को। आहाहा! क्योंकि आत्मा में आनन्द है, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसे फिर पर के भोग में प्रेम हो, यह कैसे रहे? आहाहा! समझ में आया?

भोगों के लिये स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। दो बोल हुए। नि:शंक और निकांक्षित। यह तो दोष की बात की। **वस्तु के स्वरूप अर्थात् धर्म में ग्लानि करना जुगुप्सा दोष है,....** वस्तु जैसी है, उसमें ग्लानि करना। पहले पूरी अस्तित्व की शंका थी, दूसरे में राग का प्रेम था, तीसरे में द्वेष है। आहाहा! वस्तु के स्वरूप की (अर्थात्) धर्म में ग्लानि। भगवान अनन्त गुणरूप से अनन्त अन्दर शान्तिरूप से एक क्षण में अनन्त शक्ति का भण्डार, उसके प्रति अरुचि होना, वह ग्लानि है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा एक क्षण में अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रभुत्व, स्वच्छत्व, विभुत्व, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, (अधिकरण)—ऐसी अनन्त शक्ति का सागर प्रभु। उसके प्रति 'यह नहीं'—ऐसी अरुचि होना, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप यह एक समय में पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द, पूर्ण सर्वज्ञ, पूर्ण सर्वदर्शी, पूर्ण आनन्द। उसे सर्व लागू किया। सबको पूर्ण है। सर्व आनन्द प्रगट, पूर्ण प्रगट। पूर्ण वीर्य, पूर्ण कर्ता-करण शक्ति अनन्त। ओहोहो! यह जिसे अन्तर में नहीं रुचती उसे उसके प्रति ग्लानि है, द्वेष है। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा धर्म! आहाहा! अभी तो पकड़ में आना कठिन पड़े, करना तो कहीं रह गया। मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरा धर्म दूसरे प्रकार आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा प्रकार तो यही प्रकार है। प्रकार एक ही प्रकार है। वह का वह आवे तत् और अतत् तथा एक-अनेक परन्तु वह क्या है? परन्तु सत् और असत्, एक और अनेक आया है न? तो यह तत् और अतत् तथा एक-अनेक यह चार गुण है। भाई! ४७ में। यह तो इसे जहाँ होता हो इस प्रकार से लिया जाये न? तत्—यह है... यह है... ऐसा तत् नाम का गुण है। ४७ में। यह है। पर्याय ने ऐसा जाना कि यह

है। तो यह पर्याय है ... यह है। यह तत् नाम का गुण है वह। परन्तु अतत् (अर्थात्) यह नहीं, ऐसा अतत् गुण उसमें है।

मुमुक्षु : पर से अतत् ऐसा गुण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण है। आहाहा! यह सब इसकी बात है। आहाहा! .... आहाहा! एक है। आया न! 'एक' गुण है उसमें। वस्तु एकरूप है द्रव्यरूप से। गुण और अनन्त पर्याय के अंश के समुदाय से वह 'एक' गुण है उसका। यह 'एक' गुण की प्रतीति करने जाता है, वहाँ गुणी की होती है। आहाहा! और गुणी की प्रतीति होने पर उस गुण की प्रतीति करनेवाला जो है, वह तो अनन्त पर्याय है। वह अनेक गुणों में आ गया इकट्ठा। आहाहा! ४७ शक्ति में तो गजब बातें हैं। अब चला आयेगा। आहाहा!

जुगुप्सा करना दोष है,.... आहाहा! कहते हैं, जुगुप्सा—ग्लानि। ऐसी वस्तु जो अनन्त गुण का प्रेम, वह वस्तु जो चाहिए, उसका जो प्रेम चाहिए, उसके बदले यह नहीं, ऐसा और ऐसा, यह ग्लानि है, उसे वस्तु के प्रति द्वेष है। आहाहा! ऐसा आत्मा? एक आत्मा ऐसा भगवान पूर्ण! वह जिसे बैठता नहीं, उसे आत्मा के प्रति द्वेष है—ग्लानि है। आहाहा! जिसके प्रति निर्विचिकित्सा होनी चाहिए, ग्लानिरहित आदर चाहिए पूर्णानन्द प्रभु इतना ही है वह। एक-एक शक्ति से पूर्ण और ऐसी अनन्त शक्ति का सागर प्रभु है। उसकी जिसे अन्तर में ग्लानि है, सुहाता नहीं। सुहाता नहीं उसका रुचिवान होता नहीं, उसे सुहाता नहीं। उसे ग्लानि है। आहाहा! इसमें ऐसी बात है, धीरुभाई! आहाहा!

अरे! ऐसे अवतार में भाई! तेरी जाति की भात न पड़े तो फिर कहाँ जायेगा तू? आहाहा! इस ज्ञान की पर्याय में, श्रद्धा की पर्याय में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण की पुकार है। निःसन्देह, निःशंक स्वीकार पूर्ण है। उसे ग्लानि कैसे हो? आहाहा! इतना आत्मा एक? सब होकर एक कहो। अरे! भगवान! ऐसा नहीं, प्रभु! तू सुन भाई! तेरे एक स्वरूप में अनन्त गुण परमात्मा ने कहे हैं और ऐसा है। उसके गुण का तुझे आदर न होकर, उसका तुझे अनादर होता है। सब मिलाकर एक हो तब तो ठीक। यह ग्लानि है, उसे तत्त्व के प्रति। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! परन्तु गजब शैली, हों!

अधिकार बतावे, मजबूती बतावे। गजब की शैली। वीतराग सर्वज्ञ, वह भी दिगम्बर सन्तों में यह बात है। आहाहा!

एक बात। **इसके होने पर धर्मात्मा पुरुषों के पूर्व कर्म के उदय से बाह्य मलिनता देखकर मत से चिग जाना होता है।** क्योंकि धर्मात्मा पुरुष में भी कोई रागादि ऐसा दोष हो, उसे देखकर उसकी जुगुप्सा करना, ग्लानि करना तो वह धर्मात्मा की ग्लानि है। उसे धर्म की ग्लानि है। क्योंकि छद्मस्थ है, धर्मात्मा हो, ज्ञानी हो, तथापि कोई इस प्रकार के रागादि का दोष दिखाई दे, मानादि का भाव दिखाई दे तो उसकी ग्लानि नहीं करना। ... बाहर प्रसिद्ध नहीं करना, खुल्ला नहीं करना, ऐसा कहते हैं। यह थोड़ा कह देते हैं स्वयं ही... इसलिए बाहर की बात को... करना नहीं। यह जरा धर्म प्राप्त हुए की बात है, हों!

मुमुक्षु : पूर्व कर्म उदय है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय का जुड़ान है, ऐसा उसका अर्थ है। यह लिखा है। इसमें आगे आयेगा कहीं। **उदय के वश होने से....** उस ओर है, देखो उस ओर पृष्ठ पर। तीसरे पेरेग्राफ में पाँचवीं लाईन। ऊपर है। **उदय के वश होने से....** ऐसा। **मिथ्यात्व के उदय से....** लिखा है न।

मुमुक्षु : पूर्व कर्म के उदय के वश।

पूज्य गुरुदेवश्री : वश। इसका अर्थ यह। है न? यह अपने यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं, वह यहाँ लिख दिया है। आहाहा! कर्म का उदय तो जड़ है, परन्तु उसकी ओर झुकाव किया है न, वह उसके वश हो गया है, ऐसा उसका उदय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। यहाँ चारित्र की बात नहीं। यहाँ तो समकितचरण की बात है। सुनकर विचार में रुकना ... करते। यह तो समकितचरण की बात है। चारित्र की बात नहीं। अभी समकितचरण के, समकित चौथे गुणस्थान के समकितचरण चारित्र होता है, उसकी व्याख्या है। उस चारित्र की व्याख्या नहीं। वह बाद में आयेगा। कहो, समझ में आया? बराबर ध्यान रखकर सुनना। ऐसी बात है भाई यह! एक न्याय

बदले तो पूरी चीज़ बदल जाती है। आहाहा! बड़ा हीरा कसौटी पर चढ़ाते हैं। यह तीन बोल हुए।

देव-गुरु-धर्म तथा लौकिक कार्यों में मूढ़ता.... यह चौथा दोष है। सच्चे देव अरिहन्त त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त दूसरे को देव मानना, वह मूढ़ता है। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्हें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि प्रगट हुए हैं, सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, वे देव। इसके अतिरिक्त दूसरे को देव मानना, मूढ़ता है। गुरु मूढ़ता। गुरु निर्ग्रन्थ मुनि, वीतरागी मुनि होते हैं। नग्न मुनि दिगम्बर चारित्रवन्त के गुरु की अपेक्षा से। जिसे चारित्र आनन्दसहित नग्नदशा और अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव, ऐसी मुनिदशा, में मूढ़ता (अर्थात्) उसे गुरु न मानकर अज्ञानियों ने कुछ कल्पित को गुरु मानना मूढ़दशा है। समझ में आया? जिसे भगवान ने कहे हुए आत्मा की खबर नहीं, भगवान ने कहे हुए आत्मा के गुण की खबर नहीं, उसकी पर्याय की खबर नहीं। विपरीतता क्या है, उसकी खबर नहीं। ऐसे गुरु को गुरु मानना, वह सब मिथ्यात्व की मूढ़ता है। आहाहा! समझ में आया?

और धर्म। अहिंसा धर्म है। राग बिना की दशा उत्पन्न हो, उसका नाम अहिंसा है। धर्म में मूढ़ता। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसके आश्रय से होनेवाली जो अहिंसकदशा—रागरहित दशा उत्पन्न होती है, उसका नाम धर्म है, उसका नाम अहिंसा है। उसमें मूढ़ होने से पर की दया पाली और पर की अहिंसा, वह धर्म है, (ऐसा मानना), वह मूढ़ दशा है। आहाहा! ऐसा है, भाई! **यथार्थ स्वरूप को न जानना, सो मूढ़दृष्टिदोष है,....** लो! आहाहा! जैसा देव, गुरु और धर्म का स्वरूप है, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह, उससे यथार्थ न मानकर। है न? **यथार्थ स्वरूप को न जानना, सो मूढ़दृष्टिदोष है,....** वह सब दोष है।

इसके होने पर.... विशिष्टता सबमें यह ली है सबमें। **अन्य लौकिक जनों से माने हुए सरागी देव,....** देखो! लोग माने रागवाले, ...वाले मिथ्यादृष्टि **हिंसा धर्म और सग्रन्थ गुरु....** वस्त्रसहित हो, उसे चारित्रवन्त मानना। वस्त्रसहित हो, उसे निर्ग्रन्थ मुनि अर्थात् वीतरागी मुनि है यह। (ऐसा मानना मूढ़ता है।) वीतरागी मुनि तो निर्ग्रन्थ होते

हैं। मुनि उसे—सग्रन्थ को मानना, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! **तथा लोगों के बिना विचार किये ही मानी हुई अनेक क्रियाविशेषों से....** जगत में होती है न बाहर की क्रियायें? **विभवादिक की प्राप्ति के लिये प्रवृत्ति करने से यथार्थ मत से भ्रष्ट हो जाता है।** आहाहा! ऐसे बाहर के वैभव से आकर्षित हो उससे, आहाहा! इससे ऐसा होगा... इससे ऐसा होगा। इससे इतनी सेठाई मिलेगी और इससे फिर स्वर्ग में जाऊँगा। ऐसी जो वांछा मूढ़दृष्टि को होती है, वह स्वरूप से भ्रष्ट हो गये हैं। यह अमूढ़दृष्टि की व्याख्या की। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १४, शुक्रवार, दिनांक-२३-११-१९७३
गाथा- ६, ७, प्रवचन-४९

छठवीं गाथा का भावार्थ चलता है। उसमें ऐसा कहते हैं कि आत्मा में दो प्रकार के चारित्र होते हैं। एक सम्यक्चरणचारित्र, एक संयमचरणचारित्र। अर्थात् क्या? समकितचरण चारित्र की व्याख्या चलती है। भगवान ने जो आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड (देखा है), ऐसी जो अनादि-अनन्त अविकल्प-निर्विकल्प वस्तु की दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, इसका नाम समकितचरण चारित्र है। पहली धर्म की सीढ़ी। सर्वज्ञ परमेश्वर। ... आया है न उसमें? '**जिणभणिया**' छठवीं गाथा में आया है। '**जिणभणिया**' वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, उन्होंने कहा कि यह आत्मा... भिन्न-भिन्न आत्मा है। वे सब होकर एक नहीं। इसी प्रकार यह आत्मा सर्वव्यापक नहीं। सर्वव्यापक हो, तब तो सब एक हो जाते हैं। यह आत्मा भिन्न वस्तु प्रत्येक से—शरीर से, वाणी से, मन से और वास्तव में तो यह पुण्य-पाप के विकल्प-भाव हैं, उनसे भिन्न है। यह अनादि-अनन्त, आदि-अन्त रहित चीज़ / वस्तु ध्रुव, उसमें पर्याय को एकाकार करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह धर्म की पहली सीढ़ी है। कहो, समझ में आया?

ऐसा देखा न, अन्तर वस्तु है, वहाँ अन्तर ऐसा करे तब उसका लक्ष्य वहाँ जाता है न? या ऐसे बाहर जाये तब लक्ष्य जाता है? व्यापक हो तो बाहर जाये तो सब लक्ष्य का तो एकाग्र हो। जितने में है, उतने में लक्ष्य करे तो ध्यान करे तो उसमें एकाग्र हो सकता है। इतने में है, वह शरीरप्रमाण आत्मा असंख्य प्रदेशी। और उसमें अनन्त गुण है। वस्तु एक, गुण अनन्त, उसकी पर्याय अनन्त अवस्थायें। परन्तु वह सब उसमें असंख्य प्रदेश में इतने क्षेत्र में सब है। उसकी अन्तर में वस्तु की दृष्टि, वस्तु की ज्ञान की की पर्याय में उसका ज्ञान और उसमें प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे धर्मी को मिथ्यात्व आदि दोषों को टालना चाहिए। ऐसा चलता है न? आहाहा! ऐसी जिसे दृष्टि और धर्मात्मदशा हुई, उसे जगत के तत्त्व अज्ञानियों ने कहे हुए, उसमें कोई शंकादि

हो तो टालना। तो वह निर्मल सम्यक्धर्म होगा। यहाँ तक अपने आया है। शंका... यहाँ तक आया है न?

मुमुक्षु : अमूढ़दृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्मात्मापुरुष... यह?

मुमुक्षु : देव-गुरु-धर्म तथा लौकिक कार्यों में मूढ़ता....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आ गया है। इस ओर से। ६३ पृष्ठ पर।

देव-गुरु-धर्म तथा लौकिक कार्यों में मूढ़ता.... सच्चे देव की जिसे खबर नहीं, सर्वज्ञदेव परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, वह दिव्यशक्ति, ऐसे देव में जिसे मूढ़ता है, भान नहीं। गुरु में भान नहीं। निर्ग्रन्थ गुरु जिसे आत्मज्ञानसहित चारित्र वर्तता हो, ऐसे गुरु और धर्म अहिंसा। पुण्य के, पाप के भाव की उत्पत्ति न होना, ऐसा जो स्वभाव की शान्ति की उत्पत्ति होना, वह धर्म। और लौकिक कार्य जगत में। इसमें न जाये तीन में और जगत के कार्य में। अनेक प्रकार जहाँ वहाँ... आयेंगे नाम आयेंगे।

यथार्थ स्वरूप को न जानना सो मूढ़दृष्टिदोष है, इसके होने पर अन्य लौकिक जनों से माने हुए.... अज्ञानियों ने माने हुए **सरागी देव,...** रागवाले देव और उसे देव माने। **हिंसाधर्म...** राग का भाव करे और माने कि उसमें धर्म होता है, वह हिंसाधर्म। वस्तु तो यह ही है न, दूसरा क्या है? वस्तु स्वयं निर्विकल्प आनन्दकन्द, उसमें राग का उत्पन्न होना, वही हिंसा है। आहाहा! स्वरूप की शान्ति वहाँ पर्याय में घात होती है, हों! ... शान्ति तो है। बहुत सूक्ष्म बात! वस्तु का स्वरूप ऐसा हो गया। इसे हाथ आया नहीं अनन्त काल में।

इसके होने पर.... सरागी देव, हिंसाधर्म और सग्रन्थ गुरु.... वस्त्र, पात्र रखे और श्रद्धा उल्टी हो और माने कि यह गुरु हैं। वह मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? **लोगों के बिना विचार किये ही मानी हुई अनेक क्रियाविशेषों से....** लौकिक मूढ़ता। आगे आयेगा नीचे... सवेरे सूर्य उगे और पूजा। जय भगवान। वहाँ कहाँ देव था सूर्य? सूर्यग्रहण में स्नान करना। यह आयेगा नीचे चौसठ पृष्ठ पर। दूसरे

पेरेग्राफ में है दूसरे में। ग्रहण में स्नान करना। यह ग्रहण-ग्रहण आता है न, (उसमें) स्नान करना। वह मिथ्याभाव है। आहाहा! संक्रान्त में दान देना। संक्रान्ति है न यह ? मकरसंक्रान्ति... धर्म। उसमें दान देने से लाभ। यह सब मूढ़ जीव मानते हैं। यह लौकिक। **अग्नि का सत्कार करना,....** ... अग्नि में रखते हैं न ? यह रखते हैं अग्नि में। हमें अग्निदेव को पूजकर फिर खाना। मूढ़ जीव है। भान नहीं होता। अग्नि तो अन्दर परमाणु उपजेंगे और अन्दर तो अग्नि में जीव है। एकेन्द्रिय जीव है अन्दर। ... जड़ परमाणु मिट्टी है। अग्नि के अन्दर एकेन्द्रिय जीव है। दियासलाई सुलगावे न दियासलाई से बीड़ी पीने को ? उसमें असंख्य अग्नि के जीव हैं, वे दियासलाई से सुलगते हैं उसमें। यह सिगरेट-बिगरेट पीवे न ठीक से ऐसे की न। वह उसमें अग्नि के जीव हैं। एक-एक जीव। एक शरीर है, उसमें एक-एक जीव, ऐसे असंख्यशरीरी। अग्नि का तिनका दिखता है, उसमें असंख्य शरीर हैं। उसने—अग्नि को वह रखे थोड़ा... रखकर फिर खाये। मूढ़ता है, कहते हैं।

मुमुक्षु : यह सब लौकिक पद्धति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ लौकिक। परन्तु यह मूढ़ता है। भान बिना के जीवों को। बहुत देखे हैं, सब खाने बैठे न, तब रखे अग्नि... में। आहाहा! देहली-देहली अर्थात् यह घर में प्रवेश करते हुए, दुकान में प्रवेश करते हुए पैर नहीं लगते ? दरवाजे को पैर लगे दरवाजे को। धन्धा—बन्धा ठीक चले न—धन्धा इकट्ठा रहे और पैसा-बैसा हो। गृहस्थ में वे पैर लगे न ?

मुमुक्षु : तीन बार पैर लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वह दरवाजा होता है न, दरवाजा, उसे पैर लगे। मूढ़ जीव हैं। ऐसे के ऐसे अज्ञानी। मूढ़ दृष्टि में मर गये हैं बेचारे।

देहली, घर,... घर पूजे घर। **कुंआ,...** पूजे। **गाय की पूँछ को नमस्कार करना,....** है न ? **गाय की पूँछ को नमस्कार करना, गाय के मूत्र को पीना,....** गाय तो पवित्र है। उसकी पूंछ में ३३ करोड़ देव हैं। ऐसा माने अज्ञानी। आहाहा! यह लौकिक मूढ़ता है। यह **रत्न...** को पूजे। यह दिवाली में नहीं पूजते ? लक्ष्मी पूजन। लक्ष्मी पूजन करते हैं न

दिवाली में। वह मूढ़ता है। **घोड़ा...** घोड़ा को पूजे। आदि वाहन को पूजे। अच्छा वाहन हो न। **पृथ्वी...** को पूजे, पीपल को पूजे। **वृक्ष...** अर्थात् पीपल। पीपल आदि पूजते हैं न ? बाकी नहीं रखा ? **शस्त्र,...** को पूजे। अच्छा शस्त्र हो न, उसे पूजे। **पर्वत...** को पूजे, लो। उसकी **सेवा-पूजा करना, नदी-समुद्र को तीर्थ मानकर....** नदी और समुद्र, वह तीर्थ है। उसमें स्नान करे तो पाप धुलते हैं। **उनमें स्नान करना, पर्वत से गिरना,....** पर्वत से गिरना। **अग्नि में प्रवेश करना इत्यादि....** लौकिक कृत्य है, वह सब मूढ़ता है। उसमें पाप बँधता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी जाति है। यह लौकिक लाईन है। यह बात सच्ची है। वह तो चारित्र के दोष की इस प्रकार की होती है। परन्तु यह तो श्रद्धा में भ्रष्ट होकर पूजे, ऐसा कहते हैं। ...देव है। समकिती हो। आत्मज्ञान हो, तथापि वह ... आता है। ...उसे ? उस रत्न को हजार देव सेवा करते हैं। ऐसे चौदह रत्न होते हैं। आदर करे। वह आदर करते हैं। उसे पूजने से मुझे लाभ होगा, ऐसा कुछ नहीं। ... के रत्न... चक्रवर्ती होते हैं न, उनके भण्डार में रत्न उपजते हैं। जिसकी एक हजार देव तो सेवा करते हैं। यह देखकर, सुनकर जाये घर में। आदर करे। जैसे मेहमान आवे और आदर करे न, उसमें कुछ धर्मबुद्धि नहीं। लाभबुद्धि उसमें कुछ धर्म से लाभ होगा, ऐसा नहीं है। राजा मुसलमान हो, उसे सलाम करे। अन्नदाता! ऐसा न कहे उसे ? वह जगत का अशुभभाव है। अस्थिरता का भाव है। वह कहीं मिथ्यात्वभाव नहीं है। अब ऊपर-ऊपर।

विभवादिक की प्राप्ति के लिये प्रवृत्ति करने से यथार्थ मत से भ्रष्ट हो जाता है। पैसा मिले, पुत्र होगा, पुत्री होगी, कीर्ति रहेगी। लज्जा नहीं जाये। उसके कारण से ऐसे सबको पूजे तो वह स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है। भगवान आत्मा अनन्तस्वरूप उसके सहित की दृष्टि उसे नहीं रहती। आहाहा! **धर्मात्मा...** ऊपर लिया है चौथे में। **धर्मात्मा पुरुषों में कर्म के उदय से कुछ दोष उत्पन्न हुआ देखकर....** सम्यग्दृष्टि हो। ६४ के ऊपर लाईन। ६४ की पहली लाईन। पहली लाईन का अन्तिम शब्द। **धर्मात्मा पुरुषों में...** जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, आत्मा चैतन्यमूर्ति का भान हुआ है और वस्तु की स्थिरता में पाँचवें-छठवें गुणस्थान के अन्दर स्थिरता भी हो, ऐसे धर्मात्मा को कोई

रागादि का दोष... हो जाये तो उसे प्रसिद्ध नहीं करना, ऐसा कहते हैं। **देखकर उनकी अवज्ञा करना सो अनुपगूहन दोष है,....** दोष को ढँकता नहीं, खुल्ला करता है, यह दोष है। धर्मात्मा की ऐसी पद्धति ... बिगड़ जाये। आदर न करे कोई। ऐसी क्रिया हो साधारण तो।

सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो, सम्यक्चारित्र हो, आत्मा का भान हो, उसमें तो उसे राग के कारण सहज दोष लग गया हो तो दूसरे समकिती धर्मात्मा उसकी अवज्ञा न करे। **इसके होने पर धर्म से छूट जाना होता है।** धर्मात्मा का कोई ऐसा दोष बाहर करे, वह अपने धर्म से स्वयं भ्रष्ट हो जाता है। **धर्मात्मा पुरुषों को कर्म के उदय के वश से धर्म से चिगते देखकर उनकी स्थिरता न करी सो अस्थितिकरण दोष है,....** धर्मीजीव हो और कोई अस्थिरता हो जाये, उसके श्रद्धा-ज्ञान में, तो उसे ठिकाने लगाये। मार्ग ऐसा है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने आत्मा आनन्दस्वरूप रागरहित (देखा), उसकी दृष्टि में से हटना नहीं। उसे रखना। उसे अस्थिर होता, उसे स्थिर करता है। स्थिरता न करे तो उसे धर्म के प्रति प्रेम नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करता है कहाँ? यह तो भाव की बात है। ऐसा विकल्प होता है। कर नहीं सकता। करने की बात नहीं। परन्तु उसे भाव ऐसा होता है कि अस्थिरता होती हो तो उसे समझावे इतना। हो, न हो, उसके कारण से। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मूल बात रखकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल बात रखकर। उसे धर्म की दृष्टि हुई है, ऐसे धर्मात्मा को कोई ऐसे प्रसंग आये हों अस्थिरता से, तो उसे ठिकाने लगाये (स्थिर करे)। विकल्प ऐसा आता है कि भाई! यह मार्ग नहीं, ऐसा करो। करे, न करे (वह) उसके कारण से। समझ में आया? यह उपदेश में भी क्या है? उपदेश तो वाणी है। विकल्प और वाणी। आवे, जाने कि यह विकल्प है, हेय है। वाणी का कर्ता ... ऐसी बात कठिन लगे।

अस्थितिकरण दोष है, इसके होने पर ज्ञात होता है कि उसको धर्म से अनुराग

नहीं है.... ऐसा यहाँ बतलाना है। वह धर्मात्मा हो, उसकी अस्थिरता होती हो तो उसे स्थिर करे, ऐसा उसे भाव आता है, और न आवे तो उसे धर्म के प्रति प्रेम नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी कठिन बातें। सम्यग्दर्शन की बात से यह कठिन बात है, हों! ... दोष है, लो। **धर्मात्मा पुरुषों से विशेष प्रीति न करना अवात्सल्य दोष है,....** धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव के प्रति वात्सल्य होता है, प्रेम। अवात्सल्य रहे, द्वेष रहे तो वह धर्मी है नहीं। अपने से कोई धर्म में बढ़ गया। आहाहा! और उसे द्वेष हो जाये (तो) उसे स्वयं को धर्म के प्रति प्रेम नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

धर्मात्मा पुरुषों से विशेष प्रीति न करना.... विशेष प्रीति न करना... यह **अवात्सल्य दोष है, इसके होने पर सम्यक्त्व का अभाव प्रगट सूचित होता है।** आहाहा! समझ में आया? देखो न, यह है न निहालभाई। निहालभाई। वे ... रहते हैं कलकत्ता। कलकत्ता न? बड़ी दुकान है। बनिया गृहस्थ हैं। वे यहाँ आये और धर्म पाये हैं। दूसरी और कितनों को ऐसी बात आयी हो तो न रुचे, ऐसा कौन जगा अब भाई? ... ... बहुत पढ़ा हुआ, बहुत पढ़ा हुआ, बहुत पढ़ा हुआ... संसार के किनारे आ गये। ऐसा प्रिय जीव मस्तिष्कवाला व्यक्ति। उनके पढ़े हुए... बहुत सब। आत्मधर्म हाथ आया। कहे, ओहो! अर्घ चढ़ाकर... पाटनीजी ने दिया। पाटनी न? नेमिचन्द पाटनी। उन्होंने दिया था। फिर यहाँ आये। फिर ऐसा कि समिति के कमरे में ... ज्ञान और राग दो बिल्कुल भिन्न हैं, इतना कहा था। यह उन्हें अन्दर रह गया। शाम से सवेरे। दो भाग हैं। ... है या नहीं? तुम्हारे पास है? दो भाग? यहाँ अपने नहीं? ... तीसरा भाग ऐसा का ऐसा रखा है। उसे देखकर कितनों को द्वेष आ गया। अब यह कौन जगा नया ज्ञानी? चाहे जो जगे, उसमें क्या है? बालक आठ वर्ष का जगे, उसमें धर्मी को देखकर प्रेम होता है। यह बढ़ गया, इसलिए उसका द्वेष हो, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? वे तो बहुत काम कर गये। बहुत पढ़ा हुआ जैन का, यहाँ का, वेदान्त का, बाबा, योगी के पास गये, ध्यान किया। ॐ... ॐ... जप बहुत किया। पश्चात् यहाँ जहाँ ऐसी बात उन्हें आत्मधर्म मिला और... ओहो! वस्तु तो यह है। यहाँ आये थे। उन्हें देखकर कितनों को द्वेष हो गया, लो! यहाँ आये थे।

धर्मात्मा पुरुषों से विशेष प्रीति न करना अवात्सल्य दोष है, इसके होने पर

सम्यक्त्व का अभाव प्रगट सूचित होता है। धर्म का माहात्म्य शक्ति के अनुसार प्रगट न करना अप्रभावना दोष है,.... अन्दर प्रभावना, प्र—उसकी सविशेष... इसका नाम प्रभावन है। यह प्रभावना न करे तो उसे ... होता है कि उसे आत्मा की दृष्टि है नहीं। **इसके होने पर ज्ञात होता है कि इसके धर्म के माहात्म्य की श्रद्धा प्रगट नहीं हुई है।** लो, गजब! भ्रष्ट होता है, ऐसी शैली ली है। **इस प्रकार ये आठ दोष सम्यक्त्व के मिथ्यात्व के उदय से....** देखो, यहाँ शब्द पड़ा है। यह यहाँ का शब्द है।

(उदय के वश होने से) होते हैं, जहाँ ये तीव्र हों वहाँ तो मिथ्यात्वप्रकृति का उदय बताते हैं.... जिसे श्रद्धा तीव्र हो, उसमें तो मिथ्यात्व का दोष ही है उसे। जहाँ वह तीव्र हो वहाँ। **सम्यक्त्व का अभाव बताते हैं....** तब तो उसे समकित है ही नहीं। वस्तुस्वरूप आनन्द और शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प उसकी ... हो और धर्मात्मा के प्रति द्वेष आदि करता हो, यह तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? निहालभाई को देखा है या नहीं? देखा था न? मुम्बई में। यह ७५ में नहीं? ... २० के वर्ष। २०-२० (संवत् २०२०)। वहाँ व्याख्यान में सामने थे। ...घोलन ... मैं संसार में पंगु हूँ। दो समय शरीर को टिकाने को आहार दे दो, ऐसा कहे। यह (द्रव्यदृष्टिप्रकाश) में है। उसमें है। यह तीनों (भाग) इकट्ठे हैं, हों! मुझसे कुछ भी आशा मत रखो। पंगु समझकर दो समय का भोजन शरीर को टिकाने के लिये दो। ... यह तीनों (भाग) इकट्ठे हैं, हो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे शंका आदि तीव्र हो, वह तो मिथ्यादोष है। भोग की आकांक्षा तीव्र हो, वह भी मिथ्यात्व है। ऐसा धर्मात्मा के प्रति द्वेष हो, वह भी तीव्र मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **और जहाँ कुछ मन्द अतिचाररूप हों तो सम्यक्त्व-प्रकृति नामक मिथ्यात्व की प्रकृति के उदय से हों, वे अतिचार कहलाता है,....** दोष लगे। **वहाँ क्षायोपशमिक....** क्षायिक समकित न हो, परन्तु क्षयोपशम अनुभव दृष्टि हो ऐसे पुरुष **परमार्थ से विचार करे तो अतिचार त्यागने ही योग्य हैं।** ... भले छोटे हैं परन्तु...

इन दोषों के होने पर अन्य भी मल प्रगट होते हैं, वे तीन मूढ़तायें हैं.... अज्ञानी को मूढ़ता होती है। **१. देवमूढ़ता, पाखण्डमूढ़ता, लोकमूढ़ता। किसी वर की इच्छा से....** वर अर्थात् फल। फल की इच्छा से **सरागी देवों की उपासना करना,....** सरागी देव अज्ञानी ऐसे। **पाषाणादि में स्थापना करके पूजना देवमूढ़ता है।** यह ... शंख शंख। दक्षिण शंख पूजते हैं लोग।

मुमुक्षु : बहुत थोड़े होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़े होते हैं, खबर है न! वह ... पूजता था मोरबी का, नहीं? नदी के किनारे वहाँ शंख फूँककर ही पूजा करता था। स्थानकवासी जैन। मोरबीवाला नहीं वनेचन्द? वनेचन्द। सब देखा है न। रखते थे स्थानकवासी ऐसे। मूर्ति को पूजे नहीं ऐसे बाहर, परन्तु उसे दक्षिणा शंख मिला ... शंख, उसे पूजे। पैसा बैसा... धूल भी नहीं होता। उसे पूर्व का पुण्य हो तो होता है। उसके कारण माने अज्ञानी मूढ़ है। उसमें कुछ नहीं। ऐसे अरबोंपति बहुत हो गये हैं नहीं पूजते वे लोग भी (हो गये हैं)। उसमें क्या है? आहाहा! यह तो पूर्व के पुण्य की बात है। देव दे गये हैं कुछ? अम्बाजी माने। नहीं मानते? अम्बाजी, शिकोतेर, भवानी को। मूढ़ता है, कहते हैं।

मुमुक्षु : क्षेत्रपाल को माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्रपाल। यह दिगम्बर में क्षेत्रपाल मानते हैं। ऐसा बड़ा पत्थर हो न सामने मन्दिर में जाकर उसे पैर लगे। सिन्दूर चोपड़ा हुआ हो मन्दिर में। दक्षिण में-महाराष्ट्र में बहुत है, मन्दिर में भगवान को बाद में पूजने जाये, परन्तु पहले पत्थर ऐसा हो। जय क्षेत्रपाल। बहुत मूढ़ता।

मुमुक्षु : पद्मावती....

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्मावती को पूजे।

मुमुक्षु : मन्दिर बनावे बड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पद्मावती को साथ में रखे, एक साधु थे ... आयी थी। दिगम्बर साधु साथ में रखते हैं। भगवान के... साथ में रखे। धर्म का उस अज्ञानी को कुछ भान नहीं होता। पद्मावती रक्षण करेगी। यह देवमूढ़ता है।

ढोंगी गुरुओं से मूढ़ता.... ढोंगी गुरु परिग्रह रखे, वस्त्र-पात्र रखे, पैसा रखे और साधु हैं और हम मुनि हैं, त्यागी हैं, ऐसा मनावे। समझ में आया? **परिग्रह, आरम्भ,....** परिग्रह रखे, आरम्भ करे। एकेन्द्रिय आदि हिंसा करावे। लो! **हिंसादि सहित पाखण्डी (ढोंगी) वेशधारियों का....** वेश धारण किया हो जहाँ साधारण बाबा का या त्याग का, उसे **सत्कार, पुरस्कार करना पाखण्ड-मूढ़ता है।** आहाहा! समझ में आया? शास्त्र में तो यह आया अलिंगग्रहण में नहीं? कि जो कोई अमेहनाकार—आत्मा को सर्वव्यापक माने क्षेत्र से, वह पाखण्ड है। प्रवचनसार, १७२ गाथा। सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में यह आया है। अमेहनाकार है।

१७२ गाथा है। कितना? १५-१५। १५वाँ बोल है। (कुल) २० बोल हैं। **लिंग द्वारा अर्थात् कि अमेहनाकार द्वारा जिसका ग्रहण अर्थात् कि लोक में व्यापकपना...** आत्मा लोक में व्यापक है, ऐसा माननापना। वह अलिंगग्रहण है। **इस प्रकार आत्मा पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला-लोकव्याप्तिवाला नहीं, ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।** आहाहा! अभी यह चला है न! एक आत्मा है, सर्वव्यापक है। महापाखण्ड है, कहते हैं। वीतराग देव सर्वज्ञ ने देखा एक-एक आत्मा अन्दर पूर्ण है, उसके बदले व्यापक मानते हैं, पाखण्डियों ने माना हुआ है, ऐसा कहते हैं। यह पाखण्ड मूढ़ता है। आहाहा! देखो, आया?

लोकमूढ़ता—अन्यमतवालों के उपदेश से तथा स्वयं ही बिना विचारे कुछ प्रवृत्ति करने लग जाये, वह लोकमूढ़ता है। यह पहले कहे गये वह। अभी पढ़ गये न? **सूर्य को अर्घ देना,....** यह सब पढ़ गये वह। लोग लौकिक की प्रवृत्ति में दौड़ गये हैं। सवेरे सूर्य को सूर्यनारायण जय भगवान। दांतुन करते हुए करते हैं न, भाई! मूढ़ है सब, कहते हैं। सवेरे नहीं करते, सेठ? यह तो सब बात हो तो सब आवे न! गाय को पूजे। सब आ गया है।

अब, **छह अनायतन हैं....** यह छह धर्म के स्थान नहीं। समकिती उन्हें नहीं मानता। **कुदेव...** है वह। जिसे सर्वज्ञपना परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथपना प्रगट नहीं हुआ और ऐसे देव जो हैं, वे सब कुदेव हैं। आहाहा! **कुगुरु...** है। जिसकी श्रद्धा आत्मा की, वीतराग कहते हैं, उससे विरोध है, वे सब कुगुरु हैं। चाहे तो वेशधारी हो या चाहे

तो गृहस्थाश्रम में हो। आहाहा! **कुशास्त्र...** भगवान ने कहे हुए शास्त्र से विरुद्ध जिनकी कथनी है, वे सब कुशास्त्र हैं। **और इनके भक्त....** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानना, वह मिथ्यात्व है, अनायतन (अर्थात्) वे धर्म के स्थान नहीं। आहाहा! और उनके भक्त, उन्हें मानना, वह अनायतन है, धर्म के स्थान नहीं। उसे मिथ्यात्व लगता है, ऐसा कहते हैं। कहो, गिरधरभाई!

झण्डा ऊँचा रहे हमारा। यह तुम्हारे पिता निकले थे तब नागरभाई। ९९-९९। वे उतरे थे न हम। भूदरभाई। भूदरभाई के मकान में। तो ये निकले ... चंद और तुम्हारे नागरभाई और ये सब। झण्डा ऊँचा रहे हमारा। ....गृहस्थ मानते हों। तुम्हारी वह लड़की ... नहीं? वह तो आती थी बेचारी वहाँ आयी थी। वहाँ चर्चा करती थी। ... आहाहा! इस मार्ग को पाना... सुनना मुश्किल पड़े, ऐसी चीज़ हो गयी है पहली। आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन रहे और वहाँ से आकर यह सब शास्त्र रचे।

यह **कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और इनके भक्त—ऐसे छह हैं, इनको धर्म के स्थान जानकर....** यह धर्म के अपने हैं, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया? **इनकी मन से प्रशंसा करना,....** मन से प्रशंसा... कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र सब वीतराग की आज्ञा के बाहर हैं। ऐसों की प्रशंसा करना, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **वचन से सराहना करना,....** वाणी से ठीक है... ठीक है... भाई यह भी ठीक है भाई ऐसा कहे। सब मार्ग होते हैं। ऐसा अज्ञानी ऐसी सराहना करे तो वह मूढ़ जीव है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञदेव निर्ग्रन्थ गुरु सर्वज्ञ की वाणी का ... धर्म, इसके अतिरिक्त दूसरे की किंचित् भी मन से प्रशंसा करे, वाणी से प्रशंसा (करे)—सराहना करे।

काय से वन्दना करना। ये धर्म के स्थान नहीं हैं, इसलिए इनको अनायतन कहते हैं। अनायतन अर्थात् आयतन नहीं। धर्म के घर नहीं। वे सब अधर्म के घर हैं। आहाहा! फिर यह आठ बोल की बात आती है। अपनी जाति है न, जाति? माता की उस जाति का अभिमान करे, वह मिथ्यात्व है। हमारी माँ जाति से ऐसे थे। दीवान की पुत्री थी हमारी माँ। और उसके हम सज्जन हैं। धूल भी नहीं अब। उसमें उसे क्या है? यह कहते हैं, देखो! **गर्व करना...** अपनी माता ऊँचे कुल की हो, उसका गर्व करना कि

हमारी माता ऐसी जननी है। यह मिथ्यात्व है, गर्व है, अभिमान है। कर्म की सामग्री का अभिमान करना कि मुझे यह है, वह मिथ्यात्व है, अज्ञान है। आहाहा!

पश्चात्? **कुल...** कुल का लाभ। कुछ पैसे का लाभ मिले, करोड़ों, अरबों रुपये। उसका गर्व करना कि हम पैसादार हैं, अरबोंपति हैं। हमको तो अमलदार, अधिकार के राजा भी हमको मानते हैं, हमारे घर में आवे, ऐसा हमारा पुण्य है, ऐसे पैसे का अभिमान करे, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। पैसा क्या परन्तु धूल तेरी है? समझ में आया? लाभ मिले। ... करोड़ों पैदा हों, लड़के अच्छे पके, लड़कियाँ अच्छी जगह विवाहित हो। इसलिए तो ऐसा मानो। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोगी चीज़ में अभिमान करना, वह मिथ्यात्वभाव है, मूढ़ता है। अज्ञान सूचित करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

रूप... रूप। इस शरीर के सुन्दर रूप का अभिमान। यह तो जड़ है, मिट्टी है। मिट्टी के रजकण का पुतला है यह तो। उसके बदले यह मुझे है और मैं दूसरों से रूपवान हूँ, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! **तप...** तप। शरीर से बहुत तप करे, उसका अभिमान। देखो, हमने कितने अपवास? महीने-महीने के अपवास करते हैं। हम पारणे में भी लुखा खाते हैं। यह उसका अभिमान, यह मूढ़ता है। समझ में आया? भगवान आनन्द का नाथ प्रभु पूर्णानन्दस्वरूप की जिसे प्रतीति और भान हुए, उसे ऐसा अभिमान नहीं होता। आहाहा! उसमें थोड़ा आया है। ऐई! वजुभाई! तुम्हारी लड़की का आया है। राजुल... राजुल। उसमें थोड़ा आया है। किसी की पुस्तक है, उसमें आया है। जातिस्मरण। उसमें कितने ही दृष्टान्त दिये हैं। उसमें राजुल का आया। नाम भूल गये। राजकोट के पास सलोत ऐसा नाम दिया। भूल गये। केशोद। हाँ, केशोद। परन्तु नाम भूल गये। जूनागढ़ की। पृष्ठ ६१ या ११३ है सब। मैंने तो इतना पढ़ा। यहाँ कौन वाँचता था? कोई रख गया था कल। कौन रख गया? कोई रख गया। तुम? हाँ, उसमें लिखा है। पुनर्जन्म दृष्टान्त। पृष्ठ १६२। राजुल... नहीं। इतना पढ़ा था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... कोई लेखक है। उसने बहुत अधिक दिया है उसमें एक यह डाला। मैं तो पश्चात्... वीतराग जैनधर्म वही यथार्थ है। दिगम्बर धर्म। वह वस्तु यथार्थ है। उसका साधन करना, वही मार्ग है। ऐसा योगफल करके पुनर्जन्म... उसका यह दृष्टान्त डाला। यहाँ कोई रख गया। यह क्या है यह ? क्षायिक हुई... होगा कोई। दो कोई रख गया था।

यहाँ कहते हैं कि वह **बल...** बल का बल बल। शरीर का बल, उसका अभिमान। वह तो मिट्टी जड़ है। आहाहा! उसका अभिमान करना कि मैं ऐसा हूँ। मुट्ठी मारकर बैठा दे ऐसे। बापू! जड़ है, भाई! वह नहीं आया था ? क्या कहलाता है ? गामो... गामो (पहलवान) वह चलती मोटर को खड़ी रखे। दो हाथ से। उसका क्या नाम है ? पहलवान। उसका फोटो आया था न ? फोटो आया था।

मुमुक्षु : गामो मुसलमान था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुसलमान वह। हाँ, वह।

मुमुक्षु : फिर मरने के समय एकदम दुबला हो गया। मक्खी भी नहीं उड़ा सकता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे मक्खी उड़ा न सके। बोटाद का था। जिसे मोटर चलती हो तो हाथ रखे तो मोटर खड़ी रखे। इतना बल। वह अन्त में फोटो आया था। ... वहाँ से आया। बापू! वह तो जड़ है, भाई! आहाहा! किसका अभिमान ? हमारा शरीर बलवाला है। आहाहा! मिथ्याभाव है। आत्मबल आनन्दकन्द प्रभु है, उसका अन्तर में अनन्त पुरुषार्थ है। उसका पुरुषार्थ करना, वह बल है। जड़ में बल, वह मूढ़ता है यह।

विद्या... यह विद्या का अभिमान। बहुत क्षयोपशम विद्या पढ़ा हो, उसका अभिमान। डिग्री की उपाधि बड़ी पूंछड़ा एल.एल.बी. का, एम.ए. का, ... है न ऐई! यह पी.एच.(डी) का। क्या कहलाता है ? पी.एच.डी डिग्री। डॉक्टर की आती है न भाई! पी.एच.डी.।

मुमुक्षु : .... कीमत दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में कीमत नहीं भाई! वे जे.पी. की पदवी देते नहीं ? वहाँ मुम्बई में बहुतों को देते हैं। ... यह अभी आये थे दो जाम्बुडी (में)। माणेकलाल।

माणेकलालभाई ज्योतिषी और एक दूसरा है। रमणीक। रमणीक। रमणीकभाई। छोटी उम्र का। सब आये थे। जे.पी. की कीमत क्या? क्या कहा उसमें? धूल में। गाड़ी लेने जाये, यह तो कहा न, प्राणभाई है न अपने गोवा? ... तब उनकी मोटर लाख रुपये की है न वहाँ। जे.पी. है न? परन्तु वह अब तो ... नहीं, ऐसा कहते हैं। वे ... उतरे न? ... उनका व्यक्ति आगे बैठा हो। ...वे कहते थे। उसमें कहीं सब पूंछड़ा (डिग्री) लगाये मान के लिये। मार डाले। यह विद्या-विद्या का अभिमान। क्या है उसे? ... धन्धे में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारी बात करता हूँ। उसकी क्या? धन्धा-बन्धा में है न होशियार वहाँ। आहाहा!

कहते हैं कि उस विद्या का अभिमान। आहाहा! जिसमें केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी एक समय की पर्याय अनन्त जिसमें—ज्ञानगुण में पड़ी है। आहाहा! उसे केवलज्ञान नहीं, वहाँ और ऐसी चीज़ का अभिमान! आहाहा! भगवान आत्मा के ज्ञानगुण में शक्ति जो गुण है, सर्वज्ञ, उसमें तो अनन्त केवलज्ञानदशा अन्दर पड़ी है। केवलज्ञान हो, वह एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखे। आहाहा! ऐसा एक-एक आत्मा ऐसी पर्यायवाला सर्वज्ञ हो। वह पर्याय की अनन्त पर्यायें ज्ञानगुण में अन्दर पड़ी हैं। ऐसा जो आत्मा ज्ञान का नाथ, उसे ऐसे विद्या का अभिमान हो जाये, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

महाप्रभु चैतन्य सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु। आहाहा! जिसे आत्मा का भान हो, सम्यक्त्व हो, वह तो अपनी पर्याय में अपने को पामर मानता है। कहाँ केवलज्ञानदशा और कहाँ यह दशा! ऐसा मानता है। समझ में आया? चौदहपूर्व पढ़ा हो तो भी पामर मानता है। आहाहा! जो आत्मा का स्वभाव जानना है, ऐसा सर्वज्ञस्वभाव जिसे अन्तर में से प्रगट हुआ। शक्ति में था, वह व्यक्ति से बाहर आया। ऐसी दशायें भी जहाँ ज्ञानगुण में अनन्त है। ऐसे आत्मा को जो माने, उस सम्यग्दृष्टि को ऐसा अभिमान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को, साधारण विद्या सीखे और अभिमान। हम ऐसे पढ़े हैं और हम ऐसे हैं। भ्रमणा में पड़े हैं।

ऐश्वर्य... महत्ता हो, बड़ी पदवी मिलती हो चक्रवर्ती की, बलदेव की, ऐसी बाहर की। सेठाई की, यह संघवी की। कहो संघवीजी। यह तो पदवी कहा न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो होता है। परन्तु यह तो वह संघवी ... क्या कहलाता है? कहलाये बड़ी। उसे कुछ अभिमान न हो। हो, वह दूसरी बात है। आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु जहाँ प्रतीति में, अनुभव में आया, उसे किस चीज़ की महत्ता दिखाई दे? आहाहा! अपनी महत्ता के समक्ष किसी चीज़ की महत्ता उसे भासित ही नहीं होती। आहाहा! चिमनभाई कहते थे एक बार, हों! वहाँ उतरे थे उनके घर में।

मुमुक्षु : शीव में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शीव, शीव। पहले उतरे थे, वे बात करते थे। ... में। यह पैसा तो अभी... आवे परन्तु उसमें क्या? धूल में क्या, ऐसा कहते हैं। आठ हजार का मासिक वेतन है। ... असो कम्पनी उसमें। एक बार बात करते थे। अब धूल में। पहले ... भाई! व्याख्यान दिया था। दो बार। तीसरी बार व्याख्यान दूसरे में दिया। तब वे बोले थे, हों! नरम व्यक्ति। भाई! अभी यह पैसे इतने आते हैं, परन्तु उसमें क्या हुआ धूल में? आहाहा! किसकी महत्ता, किसकी महिमा करना बापू? आहाहा! सम्यग्दर्शन की पदवी जिसे मिली, उसे दूसरी पदवी की महत्ता कैसे दिखाई दे? आहाहा! सम्यग्दृष्टि की पदवी है यह, हों! पदवी ली जाती है यह। श्वेताम्बर में तो एक... एक भंगभेद पूरा आता है। तुमने किया न ... ऊपर? वहाँ ... पदवी गिनी जाती है। इसी प्रकार यह सम्यग्दर्शन पदवी है। यह उनकी पदवी है। आत्मा भगवान पूर्ण आनन्द का जहाँ अनुभव और दृष्टि हुई, महापदवी कि जिसके कारण वह अल्पकाल में केवलज्ञान और परमात्मा हो जायेगा। वह पदवी या यह सब पदवी तुम्हारी सब धूल की, राजा की, महाराजा की। जे.पी. की पदवी बड़ी लगावे। आहाहा!

मुमुक्षु : हमें हस्ताक्षर कराना हो तो उसके पास जाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब ठीक।

इनका गर्व करना आठ मद हैं। लो! अब स्पष्टीकरण करते हैं। **जाति माता पक्ष**

है,.... माता का पक्ष। यहाँ थे न महेन्द्र की माँ थी न भाई हिम्मतभाई! यह सेठी। महेन्द्र की माँ थी। दीवान की पुत्री सेठी। मीठालाल सेठी। मीठालाल जयपुरवाले। उनका मकान है न। महेन्द्रभाई की माँ थी पुरानी। वह दीवान थे। दीवान की बहिन। यह नयी विवाही है, उसके दूसरे दो लड़के। है बहुत पैसे हैं, परन्तु सब ऐसा समझने जैसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसी के आये हुए हुण्डियामण और फुण्डियामण को... कोई कहता था। कोई कहे भाई अपने को कुछ खबर नहीं। ... अधिक पैसे हो गये एकदम। दस लाख और पचास लाख और पचास लाख के... है न? ... पैसा दे । परदेशी। है कोई। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहना है कि यह सब पैसे आड़े रास्ते आवे, वह भी न्याय के नहीं। आहाहा! उसका उसे अभिमान।

लाभ धनादिक कर्म के उदय के आश्रय है,.... यह पैसा आदि मिलना, वह तो कर्म के उदय की अपेक्षा है। उसमें कहीं तेरी होशियार का काम नहीं। वह ... जानता है न वह तो सब। आहाहा! है उसमें, लिखा है न भाई देखो न! **जाति माता पक्ष है, लाभ धनादिक कर्म के उदय के आश्रय है,....** अरे! पुत्र प्राप्त होना, वह तो सब कर्म के आधीन, भाई! यह सब पुण्य के उदय की बात है। अच्छी पुस्तक मिलना, अच्छी वाणी मिलना, सुनना, वह भी पूर्व का पुण्य है। आहाहा! क्षयोपशम नहीं। सुनने की वाणी मिलना इतना।

मुमुक्षु : संयोग मिलना।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग वह नहीं। वह पुण्य का कारण नहीं है। वह पुण्य के कारण ऐसा मिले, इसलिए उसका गर्व नहीं करना, ऐसा कहते हैं। जितनी सामग्री बाहर की है, वह सब कर्म के कारण से है। अच्छी माता मिलना, अच्छे पिता मिलना, पैसा मिलना इत्यादि। **कुल पिता पक्ष है, रूप कर्मोदयाश्रित है,....** यह कर्म का उदय ... तो रूप ऐसा सड़ जाये। आहाहा! देखो न, एक नहीं थी, एक लड़की की बात की? शीतला निकली तो दाने-दाने में ईयळ। रूपवान लडकी थी, लो लाठी की। शान्तिभाई! लाठी की थी, नहीं?

मुमुक्षु : नारणभाई की पुत्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। उसकी पुत्री। १८ वर्ष की। विवाह किया। ... वह मर गयी। दो वर्ष में उसे ऐसा रोग आया शीतला। दाने-दाने में ईयळ। ईयळ होती है न? कीड़ा। ऐसे फिरे तो हजारों कीड़े। ऐसे फिरे वहाँ। बोले, ऐ माँ! मैंने यह पाप इस भव में किये नहीं। ... पूरे शरीर में शीतला। शीतला समझे न? छिद्र, दाना। शीतला कहते हैं न? उसे दाने-दाने में ईयळ। वह गद्दे में ऐसे फिरे तो हजारों ईयळ, ऐसे फिरे तो ऐसा। उसे दाह... दाह... पीड़ा। ऐसे बेचारी रूपवान थी, लो। किसका गर्व, बापू?

भगवान आनन्द का नाथ जिसे पूर्णानन्द का प्रेम और रुचि हुई, उसे पर में प्रेम क्यों होगा? आहाहा! समझ में आया? **तप अपने स्वरूप को साधने का साधन है,....** रागादि घटावे, तथापि उसका गर्व करे तो ... **बल कर्मोदयाश्रित है,....** शरीर का बल, वह कर्म के आधीन है। **विद्या कर्म के क्षयोपशमाश्रित है,....** लो! लौकिक विद्या बाहर की। **ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है,....** महिमा मिलना। दीवानपद और राजपद, वह सब कर्म के आश्रित है। **इनका गर्व क्या?** जो कर्म के आधीन कहा, उनका अभिमान, उसे आत्मा की (महिमा) है नहीं। आहाहा!

परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले का गर्व करना सम्यक्त्व का अभाव बताता है,.... परपदार्थ कर्म से प्राप्त चीज़ में गर्व करना, वह समकित का अभाव। उसे सम्यग्दर्शन—आत्मा की श्रद्धा का अभाव बताते हैं। आहाहा! **अथवा मलिनता करता है। इस प्रकार ये पच्चीस, सम्यक्त्व के मल दोष हैं,....** यह पच्चीस दोष कहे। **इनका त्याग करने पर सम्यक्त्व शुद्ध होता है,....** यह दोष न लगाना। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, अपने असंख्य प्रदेश में रहा हुआ, अनन्त गुण में उसका निवास, उसकी जिसे प्रतीति और भान हो, उसे ऐसे दोष छोड़ देना चाहिए। ऐसे दोष उसे... कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की मान्यता, वह दोष उसे छोड़ देना चाहिए। **वही सम्यक्त्वाचरण चारित्र का अंग है।** यह सम्यक् श्रद्धा का आचरण का एक यह भाग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा का स्वरूप अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, उसकी जो दृष्टि स्वरूप सम्यग्दर्शन, उसके चरण का यह एक पच्चीस दोष का त्याग, वह एक भाग है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७

अब उसे **आगे शंकादि दोष दूर होने पर सम्यक्त्व के आठ अंग प्रगट होते हैं, उनको कहते हैं:—**यह दोष टाले तो उसे निर्दोष दशा प्रगट होती है। निःशंक आदि वह तो गुण है, पर्याय। धर्मी जीव को निःशंक आदि दशा होती है। अपने स्वरूप की पूर्णानन्द की उसे निःशंकता होती है। मैं पूर्ण आनन्द हूँ, पवित्र का पिण्ड हूँ और यह मुझे कोई पर के आधीन यह मेरी दशा है, ऐसा है नहीं। निःशंक अपने स्वरूप की प्रतीति होती है। उसे सम्यग्दृष्टि और धर्म की शुरुआत कहा जाता है। आहाहा!

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढ़दिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ॥७॥

आठ नाम हैं। **ये आठ अंग पहिले कहे हुए....** शंकादि कहे न? उन **दोषों के अभाव से प्रगट होते हैं, इनके उदाहरण पुराणों में हैं....** पुराण में इनका दृष्टान्त है। **उनकी कथा से जानना। निःशंकित का अंजन चोर का....** उदाहरण देते हैं। एक अंजन चोर था। उसे भगवान के नाम की ऐसी निःशंकता हुई। समकित नहीं था ऐसा, परन्तु उस प्रकार की निःशंकता। **जिसने जिनवचन में शंका न की, निर्भय हो छीके की लड काट करके मन्त्र सिद्ध किया।** क्या कहते हैं? कि छींका ऐसे वृक्ष के नीचे लटकाया। उसमें उसे बैठाया। डोरे की ... अब उसे इसे काट तो तू वहाँ ... वीतराग का वचन निःशंक था। यहाँ काटा तो वह नीचे नहीं गिरा। वहाँ ... ऐसी बात है। अंजन चोर। अंजन चोर की बात है। कथा बड़ी है। इस प्रकार जिसे जिनवचन में शंका नहीं और वह चाहे जिस प्रकार में पड़ा हो निःशंकरूप से वह वर्तता है। पूरी दुनिया बदल जाये और दुनिया पूरी विरोध हो, दुनिया उसे न माने तो भी उसे अपनी वस्तु में निःशंकता में शंका नहीं आती। यह पहला बोल हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १, रविवार, दिनांक-२५-११-१९७३
गाथा- ७, ८, प्रवचन-५०

गाथा सात चलती है न? यह क्या अधिकार है? सम्यक्चरण चारित्र का अधिकार है। चारित्र के दो प्रकार—एक सम्यक्चरण चारित्र और एक चारित्र संयमचरण चारित्र। उसमें सम्यक्चरण चारित्र की व्याख्या है। अर्थात्? कि जो आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने पूर्णानन्द और अनन्त गुण का पिण्ड भगवानस्वरूप ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, उसे अन्तर्मुख होकर सम्यक् श्रद्धा—सम्यग्दर्शन प्रगट करना और उसमें स्थिरता का अंश हो, वह समकितचरण चारित्र कहा जाता है। निःशंक आदि गुणों की दशा, शंका आदि अवगुण का नाश, उसे यहाँ सम्यक्चरण चारित्र कहते हैं। भगवान ने सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कुछ आत्मा का, देव-गुरु-शास्त्र का जो स्वरूप कहा, ऐसा उसे अन्तर्मुख दृष्टि होकर बैठना चाहिए। उसे यह....

अधिकार चलता है। वहाँ यह लिया तुमने अब यह। इस आत्मा को जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने केवलज्ञानी अरिहन्त भगवान ने जैसा देखा अथवा उन्होंने जो नौ तत्त्व का स्वरूप जैसा कहा, वैसा जानकर जो आत्मा में सम्यक्चरण चारित्र जो शुद्ध चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु भगवत्स्वरूप स्वयं, उसकी जिसे पर से विमुख होकर, स्वस्वभाव के सन्मुख होकर और अन्दर में निःशंक प्रतीति, ज्ञान में पूरी वस्तु ज्ञेय ज्ञात होकर निःशंक प्रतीति हो, उसे सम्यक्चरण चारित्र कहते हैं। समझ में आया? डॉक्टर! यह सूक्ष्म बातें हैं यह। उसके आठ गुण हैं सम्यक्चरण चारित्र। निःशंक आदि आठ उसकी किरणें हैं। जैसे सूर्य हो, उसे किरण होती है, वैसे स्वरूप आत्मा पूर्ण आनन्द और शुद्ध चैतन्य ध्रुव, उसकी अन्तर में जिसे सर्वज्ञ ने कहे हुए आत्मा में जिसे श्रद्धा हो, उसे आनन्द की दशा का अनुभव होता है, उसे स्वरूप की प्रतीति की निःशंकता होती है, उसे पर की इच्छा, भोग की या यह भगवान आत्मा के अतिरिक्त दूसरे आत्मायें कहनेवाले हैं, उसमें कुछ धर्म होगा, ऐसी इच्छा का उसे नाश होता है। आठ बोल हैं न? देखो! भावार्थ से लेते हैं।

भावार्थ:—ये आठ अंग पहिले कहे हुए शंकादि दोषों के अभाव से प्रगट होते हैं, इनके उदाहरण पुराणों में हैं, उनकी कथा से जानना। नि:शंकित का अंजन चोर का उदाहरण है,.... एक अंजन चोर हुआ है। उसे वीतरागमार्ग में नि:शंकता हुई थी। क्या कहलाता है? छींका-छींका, भूल गये तुम्हारे। यह चार ओर छींका। छींका में नि:शंकरूप से ऐसे काटा। ... गिर जायेगा तो? नीचे गिर जायेगा तो? यह छींका काटा, ऐसा अन्दर जहाँ उसे जाना था तीर्थधाम में। वहाँ चढ़ (पहुँच) गया। ऐसी नि:शंकता। यद्यपि व्यवहार समकित की व्याख्या है। यह तो निश्चय समकित में भी यह होता है। शंका नहीं जिसे। सर्वज्ञ ने कहा हुआ परमात्मस्वभाव आत्मा का, उसकी अन्तर में सम्यक् प्रतीति का भान है, उसे किसी प्रकार की शंका नहीं होती। उसे सर्वज्ञ के मार्ग में सन्देह नहीं होता कि यह वह कहा है, ऐसा भगवान का... होगा या दूसरे ने किसी ने कहा वह? ऐसी शंका धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को नि:शंकता में वह शंका होती नहीं। यह अंजन चोर का दृष्टान्त दिया।

नि:कांक्षित का सीता, अनन्तमति, सुतारा आदि का उदाहरण हैं, जिन्होंने भोगों के लिये धर्म को नहीं छोड़ा। क्या कहते हैं? सीताजी की जब परीक्षा हुई। रामचन्द्रजी ने कहा कि इस अग्नि में गिरो, पश्चात् मैं राज्य में लूँगा। प्रजा का द्रोह है। प्रजा कहती है कि सीता, रावण के पास गयी और राम ने रखी तो हमारी स्त्री भी पर के पास जाये और हम रखते हैं। इसलिए परीक्षा करके राज में प्रवेश कराओ। सीताजी ने स्वीकार किया। ज्वाज्ल्यमान अग्नि रखी। हजारों मण लकड़ी की अग्नि रखी, (णमोकार) पड़ते हुए कहा—मैंने पर पुरुष का ... मात्र किया हो मेरी... हो तो ध्यान रखना जैनशासन को कलंक लगेगा। ऐसा ... आया। उस अग्नि को बुझाकर वहाँ सिंहासन किया सीताजी वहाँ नि:शंक, निकांक्षरूप से बैठी हैं। नीचे उतरे। परीक्षा हुई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय पलट जाती है। पुण्य है न। अग्नि पर्याय पलटी ... का स्वभाव है या नहीं। और वह देव आया था ... यह तो बात है। देव आया... ऐसा कि देव ने अग्नि क्यों पलटायी? ऐसा भाई कहते हैं। यह तो उसका स्वभाव है। पर्याय का, पुद्गल का स्वभाव स्वतन्त्र है। वह इस कारण नहीं। परन्तु उसका स्वभाव उस समय

में होने का था। एकदम अन्दर हुआ। ओहोहो! फिर नीचे उतरते हैं। रामचन्द्रजी कहते हैं, चलो रानी—पटरानी बनाऊँ। (सीताजी कहती हैं) बस, हो गया। पुरुषोत्तमपुरुष! तुमको भी हमारे में तुमको शंका पड़ी। समकिती है, आत्मध्यानी है सीताजी। रामचन्द्रजी भी समकिती है। इस लोक के कारण से इस प्रकार की शंका टालो। बस अब हम आत्मा के ध्यान में जायेंगे। सन्तों के निकट रहेंगे। राजरानी नहीं। यह भोग की इच्छा नहीं। है न?

जिन्होंने भोगों के लिये धर्म को नहीं छोड़ा। इच्छामात्र... ओहो! हमारा आत्मा आनन्द का नाथ, आनन्द के अनुभव में तेरे भोग की इच्छा हमको है नहीं। पटरानीरूप से हमको मान है नहीं। आहाहा! ऐसे आनन्दमूर्ति प्रभु शान्त शान्ति का सागर, उसका जिसे अन्तर्दृष्टि में अनुभव हुआ, उसे पर में भोग की वृत्ति नहीं हो सकती। आहाहा! उसका दृष्टान्त दिया है। अनन्तमति और सुतारा है सब।

निर्विचिकित्सा का उद्दायन राजा का उदाहरण है,.... एक राजा था, उसमें मुनि को शरीर अपवित्र हुआ। उसकी ग्लानि उल्टी हो गयी। ग्लानि नहीं करते उद्दायन राजा मुनि को देखकर। ओहोहो! शरीर का स्वभाव है। मुनि होने पर भी असाता के उदय के कारण दुर्गन्ध... दुर्गन्ध... दुर्गन्ध... उल्टी हो गयी। तथापि उस राजा को ग्लानि नहीं हुई। इसका नाम निर्विचिकित्सा—ग्लानि का अभाव। ग्लानि नहीं हुई, लो! वह सम्यग्दृष्टि स्वरूप भगवान ने कहा ऐसा जहाँ अन्तर में भान हुआ, उसमें सहजदशा ऐसी होती है। दुनिया ऊपर से उतरे तो भी फेरफार... यह आयेगा, लो! है न?

अमूढ़दृष्टि का रेवतीरानी का उदाहरण है,.... रेवती रानी थी सम्यग्दृष्टि। उसे देव आकर समवसरण बनाया। तीर्थंकर का समवसरण बनाया। पच्चीसवें तीर्थंकर आये हैं। गणधर आये। यह वह पच्चीसवें तीर्थंकर आये। मुनि आकर घर में आहार लेने आये। मुनि-बुनि अभी आहार कहाँ? तीर्थंकर नहीं। मुनि कैसे? ऐसी जिसे मूढ़ता नहीं हुई। तीर्थंकर का दिखाव दिया है देव ने। समवसरण बनाया। परन्तु रेवली चलित नहीं हुई। स्त्री थी, रानी थी। भगवान चौबीस तीर्थंकर हो गये। पच्चीसवें तीर्थंकर कोई हो सकते नहीं। हम भगवान होकर आये, तीर्थंकर होकर आये हैं। झूठी बात है। समझ में

आया? अभी तो एक साधारण व्यक्ति कुछ कहे, कथन करनेवाला ऐसा निकला। हाँ, ...यह धर्म लगता है। भान है कहाँ कुछ? समझ में आया? धीरुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत ऊँची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची नहीं, वस्तु की स्थिति यह है। आहाहा! जिसे अरिहन्त की श्रद्धा हुई। अरिहन्त अर्थात् यह आत्मा, ऐसा। आहाहा! विकार का नाश करनेवाला और स्वभाव को प्रगट करनेवाला ऐसा भगवान आत्मा। विकार का व्यय करनेवाला और निर्विकारीदशा को उत्पन्न करनेवाला, वह भगवत्स्वरूप आत्मा। आहाहा! उसकी जिसे प्रतीति और भान हुए, वह किसी प्रकार उलझन में नहीं आता। मूढ़पना आता नहीं कि यह तीर्थंकर और यह गणधर। चलो सुनने वहाँ जाकर। यह तीर्थंकर इत्यादि हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? यह **अमूढ़दृष्टि का रेवतीरानी का उदाहरण है, जिसको विद्याधर ने अनेक महिमा दिखायी....** विद्याधर ने समवसरण आदि बतलाया। **तो भी श्रद्धान से शिथिल नहीं हुई....** मार्ग तो यह है, यह उसे जानने में आया, वह दूसरा हो नहीं सकता।

उपगूहन का जिनेन्द्रभक्त सेठ का उदाहरण है, जिस चोर ने, ब्रह्मचारी का वेश बना करके छत्र की चोरी की,.... चोर था, उसने ब्रह्मचारी का वेश धारण करके छत्र की चोरी की उस मन्दिर में से। मन्दिर में छत्र होता है न वह। **उसको ब्रह्मचर्य पद की निन्दा होती....** अरे! ब्रह्मचारी और उसमें चोर।... बाहर प्रसिद्ध करूँगा तो ब्रह्मचर्य की अवज्ञा होगी। **उसके दोष को छिपाया।** यह उपगूहन—छिपाना। था तो वह खोटा। परन्तु ब्रह्मचारी रूप से नाम धराया और छत्र की चोरी की। तो यह ब्रह्मचारी की जगत में निन्दा होगी। इसलिए उसने बात को छिपा दिया।

स्थितिकरण का वारिषेण का उदाहरण है, जिसने पुष्पदन्त ब्राह्मण को मुनिपद से शिथिल हुआ.... कोई साधु होगा। मुनिपद से भ्रष्ट होते थे, उन्हें इस वारिषेण ने स्थिर किये, दृढ़ हुए। यह कथा में (आता है)।

वात्सल्य का विष्णुकुमार का उदाहरण है,.... विष्णुकुमार मुनि थे। है न? **जिन ने अकम्पन आदि मुनियों का उपसर्ग निवारण किया।** सात सौ मुनियों को जो वह था न, क्या कहलाता है वह? बलि-बलि। बलिराजा। था तो उसका दीवान। परन्तु उसने

सात दिन का राज्य माँगा। साधु का विरोधी था। सात दिन पहले... माँगा। आज उसने सात सौ मुनियों के आसपास अग्नि लगायी। विष्णुकुमार को खबर पड़ी कि यह उपसर्ग है। ... मुनिपना छोड़ दिया। ब्राह्मण का वेश धारण करके उसके पास आये—राजा के पास। अरे! यह क्या करता है तू यह? ऐसा करके, वह क्या कहलाता है? तीन पैर जमीन माँगी। दिया। एक पैर रखा यहाँ और एक पैर रखा मानुषोत्तर पर्वत पर। दूसरा पैर रखा... लाओ। ओहोहो! ऐसा करके ठिकाने लगाया है। मुनि की रक्षा की। यह रक्षा नहीं करते? क्या कहलाता है? राखी बाँधते हैं न श्रावण में? वह सात सौ मुनियों को अग्नि लगायी थी तब। उनकी रक्षा करने का भाव। वहाँ रक्षा होनेवाली थी परन्तु उन्हें विकल्प था न, इसलिए रक्षा की, ऐसा कहा जाता है। पर का तो कर सकते नहीं।

मुमुक्षु : ....शुभभाव का।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। शुभभाव। धर्म नहीं।

मुमुक्षु : ....छोड़ दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिपना छोड़ दिया उन्होंने। मुनिपना छोड़ा नहीं, परन्तु उस प्रेम के कारण वह छूट गया। जैनशासन चला था। इन्होंने ऐसा किया, इसलिए दूसरों को ऐसा करना, ऐसा नहीं। मुनिपद से भ्रष्ट होकर ऐसा करना, यह उचित नहीं है। परन्तु उस समय उपसर्ग और प्रतिकूल संयोग था, उन्हें विचार आया। राज है न।

प्रभावना में वज्रकुमार मुनि का उदाहरण है, जिसने विद्याधर से सहायता पाकर धर्म की प्रभावना की। बड़ा रथ चलाया, यह बड़ी कथायें हैं। अपने को कथा का बहुत ख्याल नहीं। **ऐसे आठ अंग प्रगट होने पर सम्यक्त्वचरण चारित्र होता है,....** लो! ऐसे आठों ही अंग होते हैं तो उसे समकितचरण, सम्यग्दर्शन का परिणमनरूप चारित्र उसे होता है। आहाहा! यह तो पहली-वहली धर्म की दशा। शुरुआत की पहली दशा। **जैसे शरीर में हाथ-पैर होते हैं, वैसे ही ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं।** अंग-अंग। यह शरीर है न अंगी? तो यह उसके अंग कहलाते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं यह। निःशंक, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा (आदि)। उसके गुण हैं, उसकी पर्याय है। **ये न हों तो विकलांग होता है। 'सम्यक्त्व के अंग हैं। ये न हों तो विकलांग होता है।'**

ऐसे आठ अंग, उसके नि:शंक आदि होते हैं। न हो तो वह समकित यथार्थरूप से नहीं हो सकता।

★ ★ ★

गाथा - ८

आगे कहते हैं कि इस प्रकार पहिला सम्यक्त्वचरण चारित्र होता है:—लो।

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए।
जं चरइ णाणजुत्तं पढ़मं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥८॥

अर्थ:—यह जिन सम्यक्त्व.... पाठ कैसा है? **'जिणसम्मत्तं'** शब्द पड़ा है। इसलिए अर्थ किया **अरिहन्त जिनदेव की श्रद्धा....** अर्थात्? अरिहन्त परमात्मा ने जो यह आत्मा अज्ञान और राग-द्वेष का नाश करनेवाला, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु ऐसा जो उसका स्वरूप है, उसमें जिसकी श्रद्धा नि:शंक हुई है, उसे जिनदेव की श्रद्धा है, ऐसा कहा जाता है। जिनदेव अर्थात् आत्म वीतरागदेव। आत्मा का स्वभाव वह वीतराग है। उसका स्वरूप ही वीतराग—रागरहित स्वरूप उसका है। क्योंकि जब वीतरागता प्रगट होती है, वह कहाँ से आती है? अन्दर वीतरागता है, उसमें से आती है। धीरुभाई! यह पीपर नहीं होती? पीपर। लींडीपीपर? छोटी पीपर। इतनी काली, कद में छोटी, उसमें चौसठ पहरी चरपराहट है। घूंटे चौसठ पहर तो चौंसठ पहरी चरपराहट है न? चरपराई। कहाँ से आयी? उसके अन्दर से। घूंटने से आवे, तब तो कोयला और पत्थर घूंटे तो आनी चाहिए। चौंसठ अर्थात् रुपया। यह तो अब सौ पैसे का रुपया हुआ न? पहले तो अपने चौंसठ पैसे का था न? यह पीपर में चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपराई भरी है और हरा रंग। पूरा-पूरा है। काला बाहर है, चरपराई अल्प है, उसे घूंटने से काले का अभाव होकर हरा बाहर आता है और अन्दर जो चरपराई जो चौंसठ पहरी, वह बाहर प्रगट होती है। ऐसे आत्मा के अन्दर में वीतरागस्वभाव से भरपूर पूर्ण आनन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! एक बात।

दूसरी बात यह है कि ज्ञान से परिपूर्ण भरपूर सर्वज्ञस्वभावी है और वीतरागस्वभावी

है। आहाहा! ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर श्रद्धा हो, उसे अरिहन्त की श्रद्धा और जिन की श्रद्धा हुई, ऐसा कहा जाता है। है न? '**जिणसम्मत्तं**' है न? '**जिणसम्मत्तं**' अर्थात् कि वीतराग ने कहा वह। अर्थात् आत्मा का समकित, ऐसा। आहाहा! राग का नाश होकर जब वीतरागता आती है तो उस वीतरागता की दशा कोई अद्धर से आती है? अन्दर में है, उसमें से आती है। तो वह आत्मा स्वयं वीतराग अर्थात् वीत अर्थात् रहित, रागरहित उसका स्वरूप ही ऐसा है। शुद्ध चैतन्यघन और सर्वज्ञस्वरूपी और आनन्द का पिण्ड और वीर्य की कातली। चतुष्ट हुए। ऐसा उसका—आत्मा का स्वरूप ही है। प्रत्येक (आत्मा) का, हों! ऐसे स्वरूप की अन्दर में सन्मुख हुई। पर से विमुख होकर, निमित्त से विमुख, राग से विमुख, एक समय की पर्याय वर्तमान चलती है, उससे विमुख और त्रिकाली से सन्मुख। आहाहा! ऐसी दृष्टि होना, उसे यहाँ समकितचरण चारित्र कहा जाता है। उसे धर्म की पहली भूमिका कही जाती है।

मुमुक्षु : एक समय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में सब प्रतीति और सब। चारित्र बाकी रहे। स्वरूप की रमणता अर्थात् चारित्र बाकी। यह तो समकितचरण चारित्र की स्थिरता हो इतना। आहाहा! गजब बात, भाई! अरे! मूल मार्ग ही पूरा लोगों ने फेरफार कर डाला। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, कहते हैं।

जिनसम्यक्त्व.... ऐसा किया है न, भाई! **अरहन्त जिनदेव की श्रद्धा...** अर्थात् कि यह। आहाहा! अरिहन्तस्वरूप अर्थात् कि वीतरागीस्वरूप प्रभु आत्मा है। आहाहा! अकेला ज्ञान का समुद्र, ज्ञानसागर, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अरागस्वरूप, शुद्धस्वरूप, पवित्रता का पिण्ड, यह वीतरागमूर्ति ही आत्मा है। यह जिनस्वरूप है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन वचन का मर्म।' 'जिन सो ही है आत्मा...' जिन वीतराग मूर्ति रागादि से रहित उसका स्वरूप ही है कि इससे रागरहित होकर वीतराग हो जाता है। ऐसा जिनदेव अर्थात् आत्मदेव। आहाहा!

अरहन्त जिनदेव की श्रद्धा निःशंकित आदि गुणों से विशुद्ध हो... निर्मल हो। ओहोहो! रत्न जैसे निर्मल पासा से शोभता है, रत्न जैसे निर्मल किरण से शोभता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति, उसमें सम्यग्दर्शन आदि किरणों से शोभता है।

आहाहा! कहो, समझ में आया? परन्तु कहाँ दरकार जीव को? यह क्या करना? कहाँ जाना? आहाहा! ऐसे का ऐसा अवतार चला जाता है जगत का। प्रभु स्वयं है ... जानता नहीं। '**जिणसम्मत्तं**' ओहोहो! जिन का समकित अर्थात् वीतरागभाव का समकित। वस्तु वस्तु है, तत्त्व जो है, वह तो अकषाय वीतरागस्वरूप ही विराजमान है। उसका समकित, उसकी श्रद्धा। मैं वीतराग हूँ, सर्वज्ञ हूँ, सर्वदर्शी हूँ, पूर्ण पवित्र हूँ। वह अनन्त काल में नहीं की हुई स्वसन्मुख की प्रतीति का नाम जिनसमकित, वीतराग के मार्ग की श्रद्धा, ऐसा कहा जाता है। धीरुभाई! ऐसी बात है।

उसका यथार्थ ज्ञान के साथ आचरण करे.... देखो! क्या कहते हैं? स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ हो कि पूरा चैतन्यघन का आनन्दमूर्ति प्रभु है। उसी श्रद्धा के साथ का ज्ञान और ज्ञानसहित उसमें आचरण होना। मानो कि यह चैतन्य है, ऐसा ज्ञान होकर उसमें स्थिर हुआ थोड़ा। यह उसका समकितचरण चारित्र कहलाता है। तीनों बोल लिये हैं। दर्शन, ज्ञान और चारित्र का अंश साथ में ही है। स्वरूपाचरणचारित्र। स्वरूपाचरण। स्वरूप-चैतन्यघन वीतरागमूर्ति के सन्मुख की प्रतीति और उसके ज्ञानसहित उसमें स्थिरता, इसका नाम समकितचरण चारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया? थोड़ी-थोड़ी भाषा समझते हो न? जबलपुर के हैं। आहाहा! प्रभु! तेरी बात ऐसी बड़ी है, भाई! तू भगवान साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। आहाहा!

यहाँ तो यह जिनसमकित कहा न, भाई! उसमें ही यह महिमा बताते हैं। अरिहन्त की श्रद्धा का अर्थ कि तू जिनस्वरूप ही है। अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव, पूर्ण ज्ञानस्वभाव, पूर्ण आनन्दस्वभाव, पूर्ण पुरुषार्थस्वभाव, यह जिनस्वरूप है। उसका समकित। आहाहा! उसकी श्रद्धा। अन्तर यह ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित हो, तब उसकी श्रद्धा होती है। उसकी श्रद्धा वापस लिया न? निःशंकादि। **उसका यथार्थ ज्ञान के साथ...** अब एक दूसरी बात ... दया, दान, व्रत के विकल्प, वे कहीं चारित्र नहीं हैं। वह तो राग—विकल्प है। आहाहा! क्या कहते हैं?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज वीतराग के पेट (अभिप्राय) खुल्ले रखते हैं। सर्वज्ञ के पास—प्रभु के पास गये थे न! आहाहा! परमात्मा केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव विराजते हैं।

लाखों केवली हैं उनके साथ। केवली, हों! त्रिकाल जाननेवाले। चार ज्ञान के धनी गणधर हैं। उनके पास गये थे। दो हजार वर्ष हुए। संवत् ४९। वहाँ आगे सुनकर आठ दिन रहकर भगवान की वाणी सुनी। समकिती थे, मुनि थे, आत्मा के आनन्द में झूलते थे। विशेष वहाँ सदेह यात्रा हुई वहाँ। आहाहा! भरतक्षेत्र के मानवी ने सदेह महाविदेह की यात्रा की। आहाहा! उसमें से उन्हें निर्मलता जो वहाँ यह हुई, वह आकर यह शास्त्र बनाये। यह लिखितंग यह मफतलाल नहीं। यह लिखितंग कुन्दकुन्दाचार्य है। वह लिखितंग यह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'**तं चेव गुणविसुद्धं**' ऐसा है। ऐसे गुण की विशुद्धतापूर्वक। आहाहा! '**जिणसम्मत्तं**' वीतरागभाव की श्रद्धा। आहाहा! वीतरागभाव केवली हुए, वे नहीं। यह वीतरागभाव। एक बार कहा न केवली की स्तुति, भाई! ३१वीं गाथा केवली की स्तुति किसे कहना? प्रश्न किया भगवान कुन्दकुन्दाचार्य से। भगवान! सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति, केवली की स्तुति किसे कहना? तब प्रभु जवाब देते हैं कि तेरा आत्मा केवल रागरहित पूर्णानन्द का नाथ, उसमें एकाग्र होना, वह केवली की स्तुति है। आहाहा! अन्य तो विकल्प है। दूसरे केवली की स्तुति तो शुभराग है। आहाहा! जवाब पूछा, उसका उत्तर ऐसा दिया। आहाहा! प्रभु! सर्वज्ञ एक समय में तीन काल का ज्ञान ऐसे केवली, उनकी स्तुति किसे कहना? प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य जवाब देते हैं कि जो कोई परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर, वीतराग कहते हैं कि मेरी ओर का लक्ष्य छोड़कर, मैं कहता हूँ उसे सुनने का विकल्प है, उसका लक्ष्य छोड़कर एक समय की अवस्था जो खण्ड-खण्ड ज्ञान करता है, उस खण्ड-खण्ड इन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाल भगवान पूर्णानन्द केवलस्वरूप भगवान भगवान स्वयं है, उसकी जो एकाग्रता करता है, उसका जो ध्यान करके स्थिर होता है, वह केवली की स्तुति करता है। समझ में आया? केवल अकेला परमात्मा पूर्ण शुद्ध चिद्घन। आहाहा! कैसे बैठे पामर जीव को? एक बीड़ी बिना चले नहीं। दो सिगरेट पीवे, तब पाखाने में दस्त उतरे। इतने तो व्यसन। आहाहा! और चाय का प्याला सवेरे पीवे, तब जरा क्या कहलाता है? ठीक हो। वह आलस-बालस चढ़ा हो।

मुमुक्षु : मस्तिष्क तर हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मस्तिष्क तर, यह दूसरी भाषा है।

मुमुक्षु : .... कोटो आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोटो-कोटो, हाँ सब यह। यह चाय-बाय पीवे तो कोटो आवे। यह कहते हैं वह भाषा। अरर! प्रभु! तू कहाँ गया? तुझे क्या हुआ? तेरा आनन्द का नाथ अन्दर पड़ा है न, प्रभु! आहाहा! वीतरागस्वभाव से आनन्द का नाथ तू है न भाई! अपूर्ण नहीं, विपरीत नहीं, ऐसा आनन्द का स्वरूप तेरा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। तू वीतरागदेव है। आहाहा! तू ही देव का देव। यह आया था न तब ६३ में आया था। ऐसा आया था। 'शिवरमणी रमनार तू। तू ही देवनो देव।' (संवत्) १९६३ में आया था। ६३ में पालेज। दुकान के ऊपर थे न। विवाह था। मैं और एक नौकर, दो थे। तो रामजीलाल... जीन है न अभी मनसुख का मकान बनाया वह सब, जीन था। वहाँ आगे कपास पूरी गाड़ी की गाड़ी तौलते हैं न। गाड़ी तौलते हैं न नीचे?

मुमुक्षु : काँटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा काँटा होता है। पूरी गाड़ी रहे। है न, सब देखा था न। वहाँ रामलीला हुई थी। मैं देखने गया। हमारा... आदमी का। वह ... धुन चढ़ गयी। छह लाईन। छह लाईन। उसमें आधी लाईन याद रह गयी। ... पुस्तक पड़ी.. ... स्वरूप ... अन्दर से। ६३ की बात है। १७ वर्ष की उर्म थी। 'शिव रमणी रमनार तू, तू ही देव का देव।' तू देव का देव आत्मा है। और यह शिवरमणी—मोक्ष की परिणति में रमनेवाला तू है। यह स्त्री का रमनेवाला तू नहीं। आहाहा! वह यह कहते हैं, देखो यहाँ! तू जिनदेव है।

जिनदेव की श्रद्धा... कही है न? '**जिणसम्मत्तं**' कहा है न पाठ में? उसका अर्थ ही यह है। अरिहन्त की श्रद्धा अर्थात् कि जिनदेव की श्रद्धा अर्थात् कि जिनदेव स्वरूप ही आत्मा है, वीतरागस्वरूप आत्मा की श्रद्धा। आहाहा! समझ में आया? कहो, रतिभाई! ऐसा है। '**जिणसम्मत्तं**' ओहो! जिनदेव। वीतरागस्वभाव की दिव्यशक्ति का धारक परमात्मा स्वयं है। उसकी श्रद्धा **निःशंकित आदि गुणों से विशुद्ध हो....** उसकी श्रद्धा शंकारहित निःशंक से निर्मल हो। **उसका यथार्थ ज्ञान के साथ आचरण करे....** तीनों आ गये। यह शुद्ध जिनदेवस्वरूप, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें एकाग्रता। एकाग्रता स्वभाव। उसका नाम समकितचरण चारित्र कहा जाता है। आहाहा!

वह प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र है,.... पहले यह समकितचरण चारित्र है। पश्चात् संयमचरण चारित्र बाद में होता है। यह सम्यक्चरणचारित्र न हो और किसी को चारित्र और संयम आ जाये, ऐसा तीन काल में नहीं होता। **वह मोक्षस्थान के लिये होता है।** पाठ है न? आहाहा! '**सुमुक्खठाणाए**' '**सुमुक्खठाणाए**' है न पाठ? दूसरा पद। **मोक्षस्थान के लिये होता है।** यह सम्यक्चरणचारित्र अर्थात् वास्तव में तो जीव मुक्तस्वरूप है। भावस्वरूप, मुक्तस्वरूप है। वीतरागस्वरूप कहो, मुक्तस्वरूप कहो, अकषायस्वरूप कहो, परमानन्दस्वरूप कहो, जिनस्वरूप कहो। उसकी श्रद्धा अन्तर में होकर जो ज्ञानसहित उसमें एकाग्रता, वह मोक्ष के स्थान की उत्पत्ति करनेवाली है। आहाहा!

वह मोक्षस्थान के लिये होता है। यह सम्यक्चरण मोक्ष के लिये होता है। छूटने के लिये होता है, ऐसा कहते हैं। बाद में भी राग से छूटकर चारित्र में आयेगा और फिर मुक्त होगा, यह समकितचरण चारित्र मोक्ष की प्राप्ति के लिये है। आहाहा! समझ में आया? है न? अर्थ में भी है। **वह मोक्ष की प्राप्ति के लिये होता है....** अर्थ में है। आहाहा! यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा! स्वयं भाव से तो मोक्षस्वरूप ही है। उस मोक्षस्वरूप का अर्थ अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव, परम आनन्दस्वभाव, पूर्ण श्रद्धास्वभाव। वह स्वभाव तो मुक्तस्वरूप ही है। उसे पर्याय में कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं उसे और एक समय की पर्याय जो है, उसे कर्म के निमित्त के साथ सम्बन्ध है। निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध तो उसके साथ है। त्रिकाल ज्ञायकभाव को निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है नहीं।

क्या कहा यह? कि भगवान आत्मा जो ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, शुद्धस्वभाव भिन्न स्वरूप, उसे तो कर्म के निमित्त के साथ सम्बन्ध ही नहीं। कर्म जड़ है, उसका निमित्तपना—उसकी पर्याय अवस्था के साथ उसे निमित्त का सम्बन्ध है। वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया इसमें? आहाहा! इससे जिसकी निमित्त और पर्यायबुद्धि का अंश छूटकर त्रिकाल स्वभाव सन्मुख की बुद्धि और दर्शन और स्थिरता हुई, वह सम्यक्त्वचरणचारित्र मोक्ष की प्राप्ति के लिये है। पर्याय में मोक्ष की प्राप्ति के लिये है। मोक्षस्वरूप तो है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से मोक्ष हो जाये।

मुमुक्षु : कर्म जड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय जड़ नहीं। यह तो पर्याय आत्मा की है। ... आत्मा की पर्याय जो है न अवस्था वर्तमान, वह तो चैतन्य की अवस्था है और कर्म जड़ है निमित्त। उसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के साथ है, त्रिकाल के साथ नहीं, ऐसा। पर्याय है, वह जड़ नहीं। पर्याय है, वह त्रिकाली का एक अंश है। अवस्था का अंश। उस अंश के साथ कर्म का निमित्त जड़ है, उसके साथ सम्बन्ध है। त्रिकाल के साथ तो निमित्त सम्बन्ध है ही नहीं। परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सिद्ध करना है न? आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भगवान! आहाहा! भगवत्स्वरूप है, वह भगवत्स्वरूप से परिणमे। रागस्वरूप हो, विकारस्वरूप हो, वह भगवत्स्वरूप से परिणमेगा?

कहते हैं, **वह प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र है, वह मोक्षस्थान के....** यह मोक्ष कौन? पर्याय में मोक्ष। पर्याय में जो मुक्तपना दशा होती है, उसके लिये यह सम्यक्त्वचरणचारित्र है, ऐसा कहते हैं। अपना स्वभाव मुक्तस्वरूप है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान का आचरण होना, वह पर्याय में पूर्ण मुक्तदशा होती है, उसके लिये वह है। समझ में आया? ऐसा मार्ग! पकड़ में नहीं आये, समझ में नहीं आये। सूक्ष्म पड़े। दूसरे रास्ते जहाँ-तहाँ चला जाये।

मुमुक्षु : रास्ता सरल हो तो सबको पसन्द हो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह ही सरल है। हो सके, वह सरल है। न हो सके, वह सरल कहलाये? अपनी जाति में रमना, वह उसका सरल मार्ग है। राग में रहना, वह तो विकाररूप पुण्य, वह कहीं आत्मा का मार्ग है? वह तो एक ही मार्ग है। आहाहा! नि:शंक है। यह ... भाव नहीं। आहाहा!

एक दृष्टान्त आया था। अभी आया था न उसमें? ...में। जिसके कालजे में हिरणक्षी स्त्री जिसे बसे जिसके कालजे में, उसे परमानन्द की दशा नहीं वर्तती। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। यह आता है, भाई! परमात्मप्रकाश में। हिरणी। हिरणी। स्त्री हिरणक्षी कहलाती है यह। यह हिरण की आँख होती है न ऐसी। ऐसी

हिरणक्षी (के प्रति) जिसके हृदय में प्रेम बसता है, उसे आत्मा का प्रेम नहीं रह सकता। दूसरी भाषा में कहें तो जिसे राग का प्रेम वर्तता है, उसे अरागी का प्रेम नहीं हो सकता। आहाहा! हिरणक्षी आता है। परमात्मप्रकाश। उसमें वत्स वत्स कहा था। वाणी द्वारा ... ऐसा उसका अर्थ किया है। वत्स शब्द है। हे वस्तु! ऐसा कहा है। शिष्य को कहते हैं। जिसके ज्ञान की दशा में हिरणक्षी—स्त्री वर्तती है, उसे आत्मज्ञान नहीं वर्तता और ज्ञान की पर्याय जिसके ज्ञान में वर्तती है, उसे स्त्री का प्रेम अन्दर नहीं रह सकता। आहाहा! रुचि की बात है। आसक्ति हो, वह फिर चारित्रदोष है। रुचि न रहे उसे। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो दूसरा अर्थ मस्तिष्क में आया था कि जिसे वह विकल्प का भाव है अंश राग का शुभादि, उसका जिसे प्रेम है, उसे इस मुक्तस्वरूप का प्रेम नहीं हो सकता। आहाहा! बन्धन के भाव का जिसे प्रेम है। राग है, वह बंधभाव है। समझ में आया? आहाहा! वह शुभराग हो चाहे तो दया का, दान का, व्रत, भक्ति, पूजा का, भगवान के स्मरण का, परन्तु उस राग का जिसे प्रेम है, उसे वीतराग जिनदेव का प्रेम नहीं हो सकता। और जिसे जिनेदव का प्रेम है, उसे राग का प्रेम नहीं रह सकता। राग रहेगा। रुचि नहीं रहेगी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! बापू! तेरा रास्ता, उसका फल अनन्त आनन्द, उसका मार्ग भी ऐसा ही होगा न! आहाहा! कहते हैं, **प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र हैं, वह मोक्षस्थान के लिये होता है।**

भावार्थः—सर्वज्ञभाषित तत्त्वार्थ की श्रद्धा.... इसका अर्थ किया। '**जिणसम्मत्तं**' है न? उसकी यह व्याख्या है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव (कथित) तत्त्वार्थ की श्रद्धा। इस तत्त्वार्थ की श्रद्धा में आत्मा की श्रद्धा, दोनों आ गयी।

मुमुक्षु : पहला-पहला तत्त्व आत्मा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला तत्त्व आत्मा है।

भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, उसकी जिसे श्रद्धा, उसे नौ तत्त्व की सच्ची श्रद्धा जिसे हुई। क्योंकि पुण्य-पाप हो, वह छोड़नेयोग्य है। भाव रागबन्ध, वह छोड़नेयोग्य है और स्वभाव का आश्रय करके जो शान्ति प्रगटे—संवर,

निर्जरा, मोक्ष, वह आदरणीय है। आहाहा! संवर, निर्जरा, मोक्ष अर्थात्? आत्मा त्रिकाली ध्रुवस्वरूप परमानन्द का पूर्ण शान्तरस का आश्रय करके जो शुद्धि प्रगटे, उसका नाम संवर। और उस शुद्धि की वृद्धि हो, उसका नाम निर्जरा और शुद्धि की पूर्णता हो, उसका नाम मोक्ष। आहाहा! ऐई! आहाहा! कहो, गिरधरभाई! यह तो सब नागरभाई को सुनने को मिला नहीं था, हों! सब भाग्यशाली हैं। आहाहा! बापू! यह वह क्या है, भाई! यह 'अमृत... सहज समुद्र उलस्यो जेमां रत्न तणाणा जाय, अेवी भाग्यवान कर वावरे अेनी मोतीये मुठीयुं भराय।' आहाहा!

कहते हैं, देखो न आचार्य क्या कहते हैं? **'तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए।'** आहाहा! **'जं चरइ णाणजुत्तं पढ़मं सम्मत्तचरणचारित्तं'** आहाहा! हृदय की ध्वनि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जो जैनशासन के नायक थे तब। आहाहा! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, पश्चात् तीसरे नम्बर पर वे आये। णमो कुन्दकुन्दाचार्यो। दिगम्बर में तो ऐसा आया। उसमें (श्वेताम्बर में) स्थुलीभद्र। वह सब कल्पित है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! मंगलं कुंदकुंदार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं। वीतरागस्वभाव मंगल और उसमें से प्रगट हुई पर्याय, वह मांगलिक। मंगल अर्थात् पवित्रता की प्राप्ति। अथवा मम् अर्थात् पाप और गल अर्थात् गाले। राग-द्वेष के पाप को गाले, उसे मांगलिक कहते हैं। राग-द्वेष को मम्। मंगल शब्द है न? मम् और गल। मम् अर्थात् पाप हो। राग, पुण्यादि मैं हूँ, यह पाप मिथ्यात्व, उसे गल अर्थात् गाले। उस आत्मा के आश्रय से सम्यक्त्व हो, वह मिथ्यात्व को गलाता है। इसलिए उस समकित को मांगलिक कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो क्या कहलाता है? कि सम्यक्चरण चारित्र मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रगट हुआ है। मुक्तस्वरूप की प्रतीति और ज्ञान और रमणता, वह पर्याय में पूर्ण मुक्त होने के लिये प्रगट हुआ है। दूज उगी है, वह पूर्णिमा होगी ही। दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी ही। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन का बीज प्रगट हुआ, वह पूर्ण प्राप्ति के लिये प्रगट हुआ है। वह दूज उगी, वह वापस फिरेगी नहीं। आहाहा! माता के पेट में से बालक बाहर आया, वह वापस जाये वहाँ? इसी प्रकार जिसने आत्मा के सम्यग्दर्शन की पर्याय त्रिकाल में से प्रगट की, अब उसे मोक्षस्थान की प्राप्ति के लिये वह ... आहाहा! गजब बातें, भाई! अरे!

इसने गीत भी सुने नहीं। कितना है और कैसा है, इसकी बात भी सुनी नहीं। आहाहा!

कहते हैं, भाई! **सर्वज्ञभाषित तत्त्वार्थ की श्रद्धा निःशंकित आदि गुणसहित,....** है न? **'गुणविसुद्धं' पच्चीस मल दोष रहित....** पच्चीस दोष कहे न! पहले आ गये हैं। **ज्ञानवान आचरण करे....** ज्ञानवान आचरण करे, ऐसा वापस। उस स्वरूप का ज्ञान करके, स्वरूप की श्रद्धा में ज्ञानवान आचरण अन्दर में करे। आहाहा! वह स्वरूप आचरण। स्वरूप में आचरना—रहना। आहाहा! **ज्ञानवान आचरण करे....** भाषा तो देखो! ओहोहो! **'णाणजुत्तं'** ऐसा है न? **'चरइ' 'णाणजुत्तं जं चरइ'** यह वस्तु के स्वरूप का ज्ञान हुआ है और ज्ञान ज्ञान का हुआ है। यह ज्ञानस्वरूपी भगवान का ज्ञान पर्याय में हुआ, उस ज्ञानसहित जो चरता है, अन्दर स्थिर होता है, उसे समकितचरणचारित्र। उसे मोक्ष की प्राप्ति के लिये यह प्रगट हुआ है। अब संसार रहनेवाला नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानवान आचरण करे.... ज्ञानवान का अर्थ? ज्ञान का ज्ञान? आत्मा का ज्ञान। आत्मा का ज्ञान किया है, हमने आत्मा का ज्ञान किया है अन्दर। यह ज्ञानवान आचरण करे। आहाहा! **उसको सम्यक्त्वचरण चारित्र कहते हैं।** कहो, नवरंगभाई! आहाहा! **वह मोक्ष की प्राप्ति के लिये होता है....** आहाहा! भगवान वीतरागस्वरूपी आत्मा मुक्तस्वरूप का अन्तर में ज्ञान और श्रद्धान और स्थिरता, वह मोक्ष के लिये है। पूर्ण मुक्तिदशा, पूर्ण परमात्मदशा, सिद्धदशा के लिये यह आचरण है। विकल्प और बीच में शुभभाव आवे, वह कोई मुक्ति के लिये आचरण नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बीच में व्यवहार आवे सही, परन्तु वह मुक्ति के लिये नहीं। वस्तु का जो स्वरूप शुद्ध चिद्घन है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और उसका आचरण, वह मोक्ष के लिये है। वह बढ़कर आगे जायेगा। रागादि से... नहीं। आहाहा!

व्यवहार... लोगों को यह अवरोधक है न। व्यवहार से कुछ लाभ होता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से, पूजा, ... यह बापू! वह तो विकल्प है, हों! व्यवहार बीच में आवे सही। वीतराग होने से पहले अपूर्ण वीतरागदशा में वह हो, परन्तु वह मोक्ष के लिये नहीं है। वह ... के लिये है। आहाहा! समझ में आया? यह अन्तर अन्दर में समझना बहुत कठिन है। इसलिए यह पुकार करते हैं न, ऐई! व्यवहार का लोप कर

डालते हैं। बापू! व्यवहार का लोप... व्यवहार की रुचि छूटे बिना अन्तर की रुचि नहीं होती। क्योंकि व्यवहार अर्थात् शुभराग। उसमें रुचि है, तब तक अन्तर रुचि नहीं होती। आहाहा!

यह मोक्ष की प्राप्ति के लिये होता है क्योंकि मोक्षमार्ग में पहिले सम्यग्दर्शन कहा है.... देखो! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने मोक्ष के मार्ग में पहला सम्यग्दर्शन कहा है। सीधे चारित्र आ जाये और व्रत, प्रत्याख्यान आ जाये, ऐसा नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन बिना कहाँ व्रत कैसे और तप कैसा? अपवास कैसा? आहाहा! वस्तु है, वह जहाँ दृष्टि में और ज्ञान में आयी नहीं, ज्ञात नहीं हुई, तो उसमें फिर स्थिरता कहाँ से आ गयी? जो चीज़ है, वह दृष्टि में, ज्ञान में आये बिना उसमें स्थिर कहाँ से हो? ऐसा है। न्याय समझ में आता है? यह तो लॉजिक से बात है। आहाहा! चारित्र तो चरना है, रमना है, परन्तु किसमें? किस चीज़ में? कोई चीज़ ही नजर में, श्रद्धा और ज्ञान में तो आयी नहीं और चारित्र हो गया उसे। कहाँ से? धूल हो चारित्र? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि वस्तु जिसमें रमना है, चरना है, जिसका भोजन आनन्द का अनुभव लेना है, ऐसी चीज़ जिसे प्रतीति में और ज्ञान में ज्ञेयरूप से न आवे तो इसे चारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : लोग तो कहते हैं कि चारित्र शुभ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु चारित्र की व्याख्या क्या? चारित्र कहना किसे? वस्त्र छोड़कर नग्न हो, बाबा हो तो चारित्र हो गया?

मुमुक्षु : स्वरूपाचरणचारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वरूपाचरणचारित्र की बात चलती है। यह चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरणचारित्र। वे ना करते हैं न कितने ही। कि चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरणचारित्र नहीं होता। यह क्या कहते हैं? स्वरूप जैसा शुद्ध चैतन्यघन, ज्ञान स्वभाववान प्रभु, अविकारी स्वभावस्वरूप भगवत्स्वरूप, उसकी सन्मुख की प्रतीति और ज्ञानसहित स्थिरता करना, उसका नाम समकितचरण चारित्र कहा जाता है और वह

मोक्ष का कारण है। आहाहा! प्रथम यह हुए बिना मोक्ष होता नहीं। बाबा हो और योगी हो और चारित्र यह व्रत नियम ले, हजारों रानियाँ छोड़कर। सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया?

जिस भूमिका में बोना है, उस भूमिका की खबर नहीं, उसमें बोयेगा किसमें? अद्धर बोयेगा कहीं से? इसी प्रकार जिस वस्तु में स्थिर होना है। चारित्र अर्थात् स्थिर होना अन्दर रमना। उस वस्तु का जहाँ दृष्टि और ज्ञान हुए बिना वह स्थिर कहाँ से हो अन्दर? आहाहा! धीरुभाई! यह तो न्याय, लॉजिक से बात चलती है या नहीं? बस महाराज कहते हैं बराबर सुनते हैं। आहाहा! उसके सब पहलू ख्याल में आना चाहिए। एक-एक बात... आहाहा! इसका अर्थ क्या? कि सम्यक्त्वचरणचारित्र प्रगट हो, वहाँ अभी संयमरूपी चारित्र है नहीं। क्योंकि पाँचवें-छठवें में आगे बढ़े, तब होता है। यह तो चौथे गुणस्थान की बात है। समझ में आया?

कल उन बनारसीदास का आया था दोपहर में, नहीं नाम? उसमें चारित्रधाम आया था। चारित्र धाम है परमात्मा। ... पण्डितों की कथनी ऐसी रखना कठिन पड़े। चारित्र हो। वह भगवान तो पूर्ण चारित्र आनन्द में रमता है, वह तो चारित्रधाम है। यह १००८ नाम में कल आया था। कहा था तब। सिद्ध भगवान परमात्मदशा, उन्हें तो आत्मा की चारित्र अर्थात् रमणता पूरी हो गयी। समाप्त हो गया। चारित्र है वहाँ। ऐसे पालना या ऐसे करना, वह नहीं। चारित्र अर्थात् आत्मा की पूर्ण आनन्द की रमणता। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए मोक्षमार्ग में प्रधान यह ही है। लो! पहला सम्यग्दर्शन आचरण कहा। क्यों? कि **मोक्षमार्ग में प्रधान यह ही है।** मुख्य है। मोक्षमार्ग में पहला सम्यग्दर्शन मुख्य है। इसके बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल २, सोमवार, दिनांक-२६-११-१९७३
गाथा- ९, १०, ११, १२ प्रवचन-५१

अष्टपाहुड़ चलता है। कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ। अष्टपाहुड़ में चारित्रपाहुड का अधिकार है। नौवीं गाथा।

गाथा - ९

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार सम्यक्त्वचरण चारित्र को अंगीकार करके संयमचरण चारित्र को अंगीकार करे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है :—

सम्मत्तचरणसुदधा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं॥९॥

नौवीं गाथा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों डाला, दृष्टि, ज्ञान और चारित्र।

अर्थ :— जो ज्ञानी होते हुए.... क्या कहते हैं? कि प्रथम तो यह आत्मा शुद्ध चैतन्य अभेद अखण्ड आनन्दकन्द है, उसका ज्ञान पहले करते हैं, तो वह ज्ञानी होता है। आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्य सिद्धस्वरूप। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा अपना स्वरूप सिद्धस्वरूप अन्दर शुद्ध आनन्द है, उसका ज्ञान। आत्मा का ज्ञान तो अन्तर में स्व संवेदन (अर्थात्) अपने से—ज्ञान से शुद्ध चैतन्य का प्रत्यक्ष वेदन होना, उसका नाम ज्ञान कहा जाता है। यह ज्ञान हो, उसको ज्ञानी कहा जाता है। कहते हैं न, **ज्ञानी होते हुए....** ज्ञानी होते हुए। उसका अर्थ कि अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध चैतन्य सिद्धस्वरूप, उसका ज्ञान। ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसका ज्ञान। वह ज्ञान करनेवाला ज्ञानी कहा जाता है। समझ में आया? यह पुस्तक पड़ी है कल की। यहाँ तो मुझे यह ... कहना। ज्ञानी के ज्ञ में बाबा डाला है। अक्षर होते हैं न सबके क, ख। चित्र देते हैं। उसमें ज्ञ का बाबा अर्थ है। यहाँ पहली पुस्तक कल पड़ी थी।

उसे ज्ञानी नहीं कहा जाता। ज्ञानी तो यह आत्मा शरीर, वाणी, मन से पृथक् है और अन्दर पुण्य और पाप का भाव जो होता है शुभ-अशुभ, उससे भी पृथक् है। उसका ज्ञान करना, वह ज्ञानी कहा जाता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव जो आत्मा कहते हैं, उसका ज्ञान, आत्मा तो एक क्षण में वीतरागस्वरूप वीतराग मूर्ति आत्मा है, उसका ज्ञान करना। वह पुण्य-पाप का विकल्प जो है राग, उससे पृथक् होकर और स्वभाव में एकत्व होकर जो ज्ञान होता है, उसको यहाँ ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! कहो, धीरुभाई! सूक्ष्म बहुत।

मुमुक्षु : ज्ञानी की व्याख्या बड़ी....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी होते हुए अमूढदृष्टि होकर.... और अपने में उलझन, क्या कहते हैं? गभरामण? अमूढ़दृष्टि। अमूढ़दृष्टि—जिसमें मूढ़ता न हो कि क्या मार्ग होगा? यह वीतराग कैसे होंगे? अन्य कैसा होगा? ऐसी मूढ़ता जिसमें न हो। अपना स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, वीतराग मूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार है। आहाहा! उसका ज्ञान करना, उसको भगवान ज्ञान कहते हैं, उस ज्ञान करनेवाले को ज्ञानी कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। और **ज्ञानी होते हुए अमूढदृष्टि होकर....** मूढ़ नहीं। आत्मा सर्वज्ञ कहे, वह भी सत्य है और अज्ञानी दूसरा आत्मा अनेक प्रकार का कहे, वह भी सत्य है, ऐसी मूढ़दृष्टि न हो। आहाहा! समझ में आया?

और **ज्ञानी होते हुए अमूढदृष्टि होकर सम्यक्त्वचरण चारित्र में शुद्ध होता है....** सम्यक्त्व डाला अब। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसके अन्दर सम्यक्त्व, जैसा स्वरूप है, ऐसी अन्तर प्रतीति, जैसा स्वरूप शुद्ध आनन्द है, ऐसा आचरण, श्रद्धा का आचरण और ज्ञान में अमूढ़दृष्टि, ऐसा होकर चारित्र से शुद्ध होता है। वह सम्यक्त्वचरण चारित्र से वह शुद्ध होता है। ओहोहो! एक लाईन में कितना समा दिया! समझ में आया? इस देह में भगवान चैतन्यस्वरूप... वह नर का नारायण होता है, ऐसा कहते हैं न? तो वह नारायण स्वरूप ही आत्मा है। आहाहा!

शुद्ध ज्ञान केवलघन, केवलज्ञान पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीतरागता, पूर्ण आनन्द। ऐसे

स्वभाव से भरा हुआ भगवान आत्मा है, उसका ज्ञान करके ज्ञानी होकर अमूढ़दृष्टि होकर सम्यक्चरण, वह स्वरूप की प्रतीति में आचरना, रमना—ऐसा सम्यक्चरण चारित्र पहले होता है। आहाहा! कठिन बात है। कहो, सेठ! आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में यहाँ दिगम्बर मुनि हुए। भगवान के पास गये थे कुन्दकुन्दाचार्य। महाविदेह में श्री सीमन्धर परमात्मा विहरमान तीर्थंकर विराजमान हैं, वहाँ गये थे। और वहाँ आठ दिन रहकर फिर भरत में आये और यह सब शास्त्र बनाये। समझ में आया? तो उसमें यह कहते हैं कि जिसको धर्म करना हो, जिसको सुखी होना हो, जिसको आत्मा की मुक्ति प्राप्त करनी हो, तो उसको पहले वस्तु आत्मा का ज्ञान कर, दृष्टि में मूढ़ता छोड़कर सम्यक्त्वचरणचारित्र में एकाग्र होना, वह पहला चारित्र धर्म का कारण है। आहाहा!

कहो, आज तो हिन्दी आया आज। आपके आये हैं न वह। राजस्थान से आये हैं। समझ में आया? आहाहा! यह मार्ग वीतराग। यह भी मात्र सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा आत्मा, वह भी दिगम्बर धर्म में जो कहा आत्मा, वह चीज़ है। दूसरे में यह चीज़ ऐसी है नहीं। आहाहा!

ऐसे **ज्ञानी होते हुए...** जिसको सम्यग्दर्शन अथवा मोक्ष का मार्ग प्रगट करना हो और जिसको आत्मा का कल्याण करना हो तो पहले यह आत्मा का ज्ञान करना पड़ेगा उसको, कि आत्मा कौन है? सर्वज्ञ परमेश्वर और दिगम्बर मुनि, सन्त जिसको आत्मा कहते हैं, वह आत्मा आनन्दस्वरूप का प्रथम ज्ञान होना चाहिए। आहाहा! वह **ज्ञानी होते हुए...** दृष्टि में से विपरीतता टलकर अमूढ़दृष्टि होकर सम्यक्त्व प्रतीति का आचरण करके जो शुद्ध होता है, वह सम्यक्चरण चारित्रवन्त कहा जाता है। जो, यह चौथे गुणस्थान की बात है। डाह्याभाई! चौथा गुणस्थान। अविरत सम्यग्दृष्टि। गृहस्थाश्रम में रहा हुआ अविरत सम्यग्दृष्टि कैसा होता है, पहली यह व्याख्या है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप सत् स्वरूप और सत् में अनन्त भाव भरा हुआ, ऐसा सत्यवान। ऐसी वस्तु की दृष्टि और ज्ञान और उसमें एकाग्रता होना, आचरण, वह

सम्यक्चरण चारित्र धर्म की पहली भूमि है। धर्म की पहली वह भूमि है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, परिणाम हैं, वे तो सब शुभ पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? भक्ति, यात्रा, पूजा, दान, दया, तपस्या आदि करना, अपवास आदि, वह सब शुभभाव है। राग की मन्दता हो तो पुण्य है। धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो यह राग से भिन्न होकर अपने चैतन्यस्वरूप का ज्ञान और प्रतीति करे और उसमें एकाग्र होकर अनन्तानुबन्धी का अभाव करके आचरण करे, तब उसको सम्यक्चरण चारित्र धर्म की पहली भूमि कहने में आता है। आहाहा!

और जो संयमचरण चारित्र से सम्यक् प्रकार शुद्ध हो.... ऐसा सम्यक्चरण चारित्र, पश्चात् स्वरूप में संयम रमणता का चारित्र करते हैं। है? संयमचरण चारित्र। तो सम्यक्त्वचरण चारित्र पहले हुआ हो, पीछे संयमचरण चारित्र होता है। जिसको सम्यक्चरण चारित्र नहीं और उसको संयम और चारित्र हो जाये, ऐसा कभी नहीं बनता। आहाहा! ऐसे सम्यक्त्वचरण स्वरूप की प्रतीति, स्वरूप का आचरण, स्वरूप का ज्ञान, ऐसी सम्यक्त्वचरण चारित्र की भूमि प्रगट करके पश्चात् संयमचरण चारित्र सम्यक् प्रकार शुद्ध हो। पीछे स्वरूप में रमणता, लीनता, आनन्द में अन्दर मस्त हो जाना, ऐसा चारित्र संयमचारित्र से शुद्ध हो तो **तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त होता है।** तो अल्पकाल में उसको मुक्ति होती है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनों लिये। तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

यह बात आती है या नहीं तत्त्वार्थसूत्र में? '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी (कृत) दशलक्षणी पर्व में आता है पहले। परन्तु उसकी खबर ही न हो उसे कि यह क्या है? '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' तो वह सम्यग्दर्शन अन्तर स्वरूप जैसा है, ऐसा अन्तर में ज्ञान करके, प्रतीति करके, मूढ़ता छोड़कर, अमूढ़ होकर अन्दर एकाग्रता होना, उसका नाम सम्यक्चरण चारित्र है। वह चौथे गुणस्थान में होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि। पश्चात् स्वरूप में रमणता करना, वह आनन्दमूर्ति भगवान वीतरागस्वरूप आत्मा, वह वीतरागभाव से रमण करना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? यह **संयमचरण चारित्र से सम्यक् प्रकार शुद्ध हो....** यथार्थरूप से वीतरागता प्रगट करे, शुद्ध चारित्र की रमणता प्रगट करे **तो शीघ्र ही...** अल्पकाल में सिद्धपद को

प्राप्त होता है। आहाहा!

भावार्थ :-.... यह हिन्दी है। पुस्तक भी हिन्दी है और चलता है हिन्दी। यह पुस्तक तो हिन्दी है। हिन्दी चलता है, परन्तु हिन्दी का अर्थ... गुजराती करते हैं प्रतिदिन। आज तुम आये तो हिन्दी करते हैं। **जो पदार्थों के यथार्थज्ञान से....** देखो! जैसा जीव है, ऐसा जीव का ज्ञान और जड़—शरीर, वाणी, मन जड़ है, उसका ज्ञान; दया, दान, व्रतादि का भाव, वह पुण्यभाव, उसका ज्ञान; हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना वह पाप का ज्ञान, और यह पुण्य-पाप से रहित आत्मा की दृष्टि करके एकाग्रता शुद्धि प्रगट हो, वह संवर और शुद्धि की वृद्धि हो, वह निर्जरा और शुद्धि की पूर्णता हो, वह मोक्ष।

ऐसा पदार्थ का.... है न? **पदार्थों के यथार्थज्ञान से मूढ़दृष्टिरहित....** मूढ़ता नहीं उसमें कि यह सच्चा होगा? यह सच्चा होगा? वेदान्त कहते हैं आत्मा सर्वव्यापक है, जैन परमेश्वर कहते हैं कि शरीर व्यापक है। सत्य आत्मा क्या है? ऐसी मूढ़दृष्टि जिसमें न हो। समझ में आया? आहाहा! **विशुद्ध सम्यग्दृष्टि होकर....** निर्मल चैतन्य भगवान पूर्ण परमात्मस्वरूप से विराजमान आत्मा तो है अन्दर। उसकी प्रतीति—सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भान करके करना **सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम का आचरण करे....** ऐसा सम्यग्दृष्टि हुए पीछे संयम-चारित्र में स्वरूप का संयम का आचरण करे **तो शीघ्र मोक्ष को पावे, संयम अंगीकार करने पर स्वरूप के साधनरूप एकाग्र धर्मध्यान के बल से....** देखो!

सम्यग्दर्शन होने के बाद संयम साधन स्वरूप में रमणतारूप साधन ऐसे **धर्मध्यान के बल से....** अपने शुद्धस्वरूप का धर्मध्यान, उसमें एकाग्रता के बल से **सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप हो, श्रेणी....** और अप्रमत्त गुणस्थान प्रगट करके आठवें से श्रेणी शुद्ध की धारा प्रगट करके **अन्तर्मुहूर्त केवलज्ञान उत्पन्न कर....** अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करते हैं तो इस विधि से (प्राप्त करते हैं)। कोई क्रियाकाण्ड बाहर से, उससे यह होता नहीं। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान, प्रतीति और रमणता द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है अथवा अप्रमत्तदशा श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान होता है।

यह सम्यक्त्वचरण चारित्र का ही माहात्म्य है। पश्चात् अघातिकर्म का नाश करके मोक्ष होता है। आहाहा! उसका मूल **सम्यक्त्वचरण चारित्र का ही माहात्म्य है।**

मूल तो यह। आता है न वह ? '**दंसण मूलो धम्मो**' अष्टपाहुड़ है। कुन्दकुन्दाचार्य (कृत)। धर्म चारित्र, उसका मूल सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन न हो तो चारित्र कभी होता नहीं। और सम्यग्दर्शन, वह आत्मा के अवलम्बन से होता है। चिदानन्द भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन के आश्रय से पूर्ण वस्तु की प्रतीति से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! पश्चात् चारित्र अंगीकार करके स्वरूप की धारा श्रेणी में शुद्धता बढ़ाकर केवलज्ञान कर अघाति का नाश कर मोक्ष होता है। **यह सम्यक्त्वचरण चारित्र का ही माहात्म्य है।** वह माहात्म्य उसका मूल का माहात्म्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १०

आगे कहते हैं कि जो सम्यक्त्व के आचरण से भ्रष्ट हैं.... जिसको सम्यक्चरण चारित्र हुआ ही नहीं और राग से धर्म मानते हैं, दया, दान, क्रिया से धर्म मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं, उनको चारित्र नहीं होता। समझ में आया ? **सम्यक्त्व के आचरण से भ्रष्ट हैं....** अपना शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा से जो भ्रष्ट हैं **और वे संयम का आचरण करते हैं....** दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पूजा, महाव्रतादि पालते हैं **तो भी मोक्ष नहीं पाते हैं।** उसको मोक्ष नहीं होता। संसार में भटकना पड़ता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भूमिका प्रगट किये बिना केवल संयम, व्रत और चारित्र करे बाह्य क्रियाकाण्ड का, उससे आत्मा को मोक्ष नहीं होता। आहाहा! नग्नपना धारण करे, पंच महाव्रत पालन करे, परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शन की दृष्टि का भान और अनुभव नहीं। राग का कर्ता नहीं, पर की क्रिया का मैं कर्ता नहीं, मैं तो आनन्द का नाथ चैतन्यमूर्ति हूँ। राग होता है, उसका भी जाननेवाला, देह की क्रिया होती है, उसको भी मैं जाननेवाला, ऐसे आत्मा में सम्यग्दर्शन-चारित्र न हो और संयम पाले, वह निरर्थक है। एक के बिना का शून्य। क्या कहते हैं ? बिन्दी। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की चीज़ बिना आत्मा का अनुभव आनन्दस्वरूप का अनुभव बिना जो संयम और क्रियाकाण्ड चारित्र व्रतादि पालते हैं, वह सब संसार में भटकने का

कारण है। उसमें कोई जन्म-मरण मिटता नहीं। वह सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी खबर नहीं। भगवान देव-गुरु-शास्त्र कहे वह सत्य, वह सम्यक्, जाओ। व्रत ले लो। धूल में भी नहीं, सुन तो सही। सम्यग्दर्शन की व्याख्या की तुझे खबर नहीं। सम्यग्दर्शन तो पूर्ण परमात्मस्वरूप अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु की निर्विकल्प प्रतीति, राग की एकता तोड़कर स्वभाव में एकता होना, ऐसी दृष्टि प्रगट करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन पहली भूमिका कहते हैं। आहाहा! कहो, भाई! समझ में आता है न हिन्दी? बात ऐसी है भगवान! भगवान का मार्ग ऐसा है।

अब देखो! १०वीं गाथा।

सम्मत्तचरणभट्ठा, संजमचरणं चरंति जे वि णरा।
अण्णाणणाणमूढ़ा, तह वि ण पावंति णिव्वाणं ॥१०॥

उसके सामने लिया। वह '**णाणी अमूढदिट्ठी**' यह '**अण्णाणणाणमूढ़ा**'

अर्थ :— जो पुरुष सम्यक्त्वचरण चारित्र से भ्रष्ट हैं.... आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञाता ज्ञान का सागर। लो सेठ! सागर आया तुम्हारा। आत्मा तो ज्ञान का सागर है। ज्ञान से भरा पड़ा परिपूर्ण चैतन्यपुंज, चैतन्यपुंज ज्ञान का पुंज है वह तो। आहाहा! जिसमें दया, दान, व्रतादि का विकल्प-राग वह तो उसमें है ही नहीं। ऐसी चीज़ का सम्यक्त्वचरण चारित्र, समकितरूपी दृष्टि और उसमें एकाग्रता होना, ऐसा सम्यक्त्व न हो, उससे भ्रष्ट हो और संयम का आचरण करते हैं। पंच महाव्रतादि पाले, इन्द्रिय दमन करे, **तो भी अज्ञान से मूढ़ दृष्टि हुए....** वह तो अज्ञानी है। आहाहा!

वस्तु आत्मा चीज़ जो भगवान कहते हैं, उसका तो अन्दर अनुभव नहीं, दृष्टि नहीं, भान नहीं, ज्ञान नहीं। ऐसे ज्ञान बिना अज्ञानी है और दृष्टि मूढ़ है। आहाहा! सत्य क्या है और असत्य क्या है, उसकी खबर नहीं। **निर्वाण को नहीं पाते हैं।** उसको मोक्ष नहीं होता। संयम महाव्रत आदि लाख करोड़ पालन करे, फिर भी सम्यग्दर्शन के भान-अनुभव बिना उसको मोक्ष होता नहीं। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :— सम्यक्त्वचरण चारित्र के बिना.... अपना शुद्ध पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसकी प्रतीति और रमणता—आचरण बिना **संयमचरण चारित्र निर्वाण का कारण**

नहीं है.... केवल क्रियाकाण्ड, महाव्रत, संयम, साधु के गुण है न अट्ठाईस? पंच महाव्रतादि, छह आवश्यकादि, सब पुण्य की क्रिया है, धर्म नहीं। आहाहा! यह संयम का आचरण करते हैं तो भी अज्ञान से मूढ़ निर्वाण को नहीं पाते, लो! **क्योंकि सम्यग्ज्ञान के बिना तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है,....** चैतन्य ज्ञानस्वरूप के ज्ञान बिना तो सब ज्ञान मिथ्या कहा जाता है। चिदानन्द भगवान आत्मा का ज्ञान अन्तर में लिये बिना दूसरा सब शास्त्र आदि ज्ञान करे, फिर भी सब अज्ञान है। ज्ञान तो इसका—आत्मा का है। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यक्त्वचरण चारित्र प्रगट कर सकती है। समझ में आया? आत्मा है न? आहाहा!

पूर्ण शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद ध्रुव का अन्तर में ज्ञान करके ज्ञान और वर्तमान ज्ञान की दशा में उसको ज्ञेय बनाकर अन्तर प्रतीति करके स्थिरता का अंश प्रगट करना, वह प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र है, वह न हो और चारित्र व्रत, संयम पालन करे, (वह) सब निरर्थक है। मोक्ष के लिये सार्थक नहीं है। संसार में भटकने के लिये सार्थक है। आहाहा! **सम्यग्ज्ञान के बिना तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है, सो इस प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र के भी मिथ्यापना आता है।** आहाहा! आत्मा के ज्ञान बिना सब ज्ञान, अज्ञान कहा जाता है और आत्मा की प्रतीति बिना सब श्रद्धा विपरीत कही जाती है। आहाहा! बहुत अच्छी गाथायें हैं यह।

★ ★ ★

गाथा - ११-१२

आगे प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रकार सम्यक्त्वचरण चारित्र के चिह्न क्या हैं.... कि सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ और सम्यग्दर्शन का आचरण एकाग्र है, उसका लक्षण क्या? चिह्न क्या? निशान क्या? कि जिस चिह्न द्वारा वह पहचान हो सके? **प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रकार सम्यक्त्वचरण चारित्र के चिह्न क्या हैं, जिनसे उसको जानें, इसके उत्तररूप गाथा में सम्यक्त्व के चिह्न कहते हैं :—** सम्यग्दर्शन का लक्षण कहते हैं।

वच्छल्लं विणएण, य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गगुणसंसणाए, अवगूहण रक्खणाए य ॥११॥
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण ॥१२॥

अर्थ :— जिनदेव की श्रद्धा-सम्यक्त्व की.... जिनदेव की श्रद्धा समकित का अर्थ ? यह जिनदेव वीतराग परमात्मा हैं, ऐसा मैं हूँ। समझ में आया ? जैसे सर्वज्ञ जिनदेव परमात्मा हैं, ऐसा ही मैं जिनदेव हूँ। वस्तु का स्वरूप मेरा वीतरागस्वरूप ही है। ऐसे वीतरागस्वरूप की श्रद्धा, वह मोह अर्थात् मिथ्यात्वरहित आराधना करता हुआ। आहाहा ! भगवान आत्मा का (स्वरूप) शुद्ध चैतन्य वीतराग मूर्ति प्रभु। क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप ही अनादि से है। यदि वीतरागस्वरूप न हो तो वीतरागदशा प्रगट कहाँ से होगी ? कोई बाहर से आती है कहीं ? कि भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति आत्मा है। आहाहा ! इस वीतरागमूर्ति की प्रतीति अन्दर वीतरागभाव से करना। मोहरहित है न ? '**अमोहेण**' है न ? अन्तिम शब्द है। '**अमोहेण**' अन्तिम शब्द है १२वीं गाथा में।

मिथ्यात्वरहित आराधना करता हुआ जीव इन लक्षणों से अर्थात् चिह्नों से पहिचाना जाता है— इस लक्षण से वह जानने में आता है। सम्यग्दर्शन का आचरण उसको है, उसका लक्षण क्या ? और किस लक्षण से पहचान है ? वह बताते हैं। बहुत अच्छी बात आयी। **प्रथम तो धर्मात्मा पुरुषों से जिसके वात्सल्यभाव हो,....** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त जो धर्मात्मा है, उसके प्रति सम्यक्चरण चारित्रवन्त को प्रेम होता है। धर्मी जीव को धर्मी के प्रति प्रेम होता है। आहाहा ! समझ में आया ? जिसको अपने स्वरूप की प्रतीति और भान हुआ हो, ऐसे प्राणी को धर्म जिसको प्राप्त हुआ हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (जिसे प्राप्त हुआ हो), उसके प्रति उसे वात्सल्य है, प्रेम होता है। स्त्री, परिवार में जो प्रेम है, वह तो पाप का प्रेम है। समझ में आया ? उससे अधिक प्रेम उसे धर्मात्मा के प्रति होता है।

धर्मात्मा को कोई शुद्धि की वृद्धि देखे तो प्रेम आता है। द्वेष नहीं आता कि अरे ! यह कैसे बढ़ गया ? समझ में आया ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! धर्म जिसको प्रगट हुआ

सम्यग्दर्शन, ऐसा धर्मात्मा कोई हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त तो उसके प्रति प्रेम होता है। वात्सल्य। किस प्रकार? **जैसे तत्काल की प्रसूतिवान गाय को बच्चे से प्रीति होती है, वैसी धर्मात्मा से प्रीति हो,....** गाय समझे गाय? प्रसूति तत्काल प्रसूति होती है न गाय को? तो बच्चे का बहुत प्रेम उसको—गाय को है। तत्काल की प्रसूति हो तो बच्चे को चाटे। अन्यथा वह घास दे, ऐसा बच्चा नहीं है। पानी आदि कमाकर खिलाता नहीं। परन्तु सहज ही गाय को बच्चे के प्रति तैसे तत्काल की प्रसूतिवान गाय को उसके प्रति प्रेम है, ऐसे धर्मात्मा के प्रति धर्मीजीव को सम्यग्दृष्टि को प्रेम होता है। आहाहा! समझ में आया कुछ? इसका अर्थ यह हुआ कि स्वयं सम्यग्दर्शनचरण चारित्र सहित है तो दूसरे भी धर्मसहित कौन है, वह उसके ज्ञान में आता है। समझ में आया? आहाहा! देखो यह कुन्दकुन्दाचार्य! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। तीसरे नम्बर पर आये हैं। उनका यह कथन है अभी। भगवान जैसे। जैनशासन में अभी कुन्दकुन्दाचार्य की कुर्सी पहली है। आहाहा! बहुत आचार्य उनका आधार देते हैं। महा तीर्थंकर जैसे जिनके वचन हैं। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा कहकर यह कहते हैं कि उस समय तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकल चुका था। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में। दिगम्बर सम्प्रदाय में से श्वेताम्बर... बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, दुष्काल। बारह वर्ष का दुष्काल हुआ। लगातार बारह वर्ष दुष्काल। साधु सच्चे दिगम्बर थे, वे तो दक्षिण में चले गये। यहाँ रहे वे शिथिल हो गये। वस्त्र रखकर साधुपना माना, वस्त्र रखकर साधुपना मानना, वह सब शिथिलपना भ्रष्ट है। यह मार्ग निकला, तब कहते हैं कि धर्मी हो, उसको धर्मात्मा के प्रति प्रेम हो। जिसको धर्म की खबर नहीं तो धर्मात्मा के प्रति उसको प्रेम होता नहीं। समझ में आया कुछ? यहाँ यह कहते हैं।

जिसको सम्यग्दर्शन वास्तविक आत्मा का भान जिसको... है? **सम्यक्त्वादि गुणों से अधिक हो, उसका विनय-सत्कारादि....** बहुमान **जिसके अधिक हो, ऐसा विनय एक चिह्न है।** आहाहा! भगवान के ६०० वर्ष बाद यह दो पंथ पड़ गये। दिगम्बर में से श्वेताम्बर निकला। वहाँ दिगम्बर धर्मात्मा थे, उनके प्रति उन लोगों को प्रेम नहीं था। समझ में आया कुछ? ऐसा कहते हैं। मूल तो यह कहना है। आहाहा! सच्चे

धर्मात्मा हो और नग्नमुनिपना, सच्चा चारित्र अन्दर आनन्द समकित चरण चारित्र सहित हो, तो उसके प्रति धर्मात्मा को प्रेम होता है। क्रोध नहीं होता, द्वेष नहीं होता, अनादर नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अपने से वह बढ़ गया हो, अधिक बहुत आदर करे, ओहो! धन्य अवतार। ... आत्मा ने सम्यक्त्वचरण चारित्र से अधिक जिसको अन्तर में रमणता चारित्र बढ़ गया हो तो उसका अधिक विनय सत्कार करे। कहो, चिह्न।

अनुकम्पा कैसी हो? अनुकम्पा यहाँ है न? **दुःखी प्राणी देखकर करुणाभाव-स्वरूप अनुकम्पा जिसके हो....** दुःखी प्राणी देखकर करुणाभावस्वरूप, करुणाभावस्वरूप अनुकम्पा। किसी के प्रति तिरस्कार न हो, दुःखी के प्रति उसको करुणा हो। अनुकम्पा (हो)। समझ में आया कुछ? आहाहा! **एक यह चिह्न है, अनुकम्पा कैसी हो? भले प्रकार दान से योग्य हो।** ऐसा है न मूल पाठ में? भले प्रकार दान। दान अर्थात् अच्छा उसके करुणा आदि हो। इस प्रकार से करुणा से दान दे। ऐसा भाव आवे।

निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्ग की प्रशंसासहित हो,.... कहते हैं कि सम्यक्त्वचरण चारित्र का लक्षण निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि, दिगम्बर मार्ग वस्त्ररहित, बाह्य में, अन्दर में रागरहित—ऐसे अनुभव में सम्यग्दर्शन-चारित्र हो तो ऐसे निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग की प्रशंसा करते हैं वह। ओहो! भाई! मार्ग तो यह है। अन्दर सम्यग्दर्शनसहित, चारित्रसहित नग्नपना जिसको वस्त्र का टुकड़ा भी न हो, ऐसा जो निर्ग्रन्थपना, सम्यक्त्वचरण चारित्रवन्त उसकी प्रशंसा करे। सच्चा मार्ग प्रगट हुआ हो उसकी। आहाहा! समझ में आया कुछ? मूल तो बात निर्ग्रन्थपना लेना है न? '**मग्गगुणसंसणाए**' ऐसा है। मार्ग के गुण... ऐसा पाठ है। मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग है। अर्थात् मोक्ष का मार्ग तो अन्तर आत्मा के सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित स्वरूप में चारित्र की रमणता और बाह्य में उसको अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प हो, बाह्य में नग्नदशा हो, यह मार्ग जैनदर्शन है। यह जैनदर्शन उसको कहते हैं। उस जैनदर्शन की उसको प्रशंसा हो। समझ में आया कुछ? आहाहा! डाह्याभाई! ... दो समान मार्ग है, ऐसा नहीं। दूसरी तरह उसका स्वीकार है। '**मग्गगुणसंसणाए**' ऐसा शब्द है न? '**मग्ग**' मार्ग के गुण की प्रशंसा, ऐसा शब्द है। निर्ग्रन्थ मार्ग के गुण की प्रशंसा। ऐसा शब्द है। निर्ग्रन्थ मार्ग। आहाहा! जिसको अभ्यन्तर मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिग्रहरहित है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिग्रहरहित है,

बाह्य में वस्त्ररहित है। ऐसा निर्ग्रन्थ मार्ग। आहाहा! उसके गुण की उनको प्रशंसा होती है। समझ में आया कुछ?

'**मग्गगुण**' ऐसा है न, भाई! '**मग्गगुण**' मार्ग के गुण की प्रशंसा। मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग। ऐसा लिया है। ऐसा है। जिसको आत्मा में अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, उसके यह सब चिह्न है, कहते हैं। उसको मोक्ष के मार्ग में, जो मार्ग है निर्ग्रन्थ वीतराग मार्ग। निर्ग्रन्थ—अन्तरंग मिथ्यात्व की गाँठ नहीं है और राग-द्वेष की अस्थिरता की भी जिनको गाँठ छूट गयी है और बाह्य में वस्त्र और पात्र का टुकड़ा भी जिसके पास नहीं है, ऐसी शरीर की नग्नदशा हो गयी है। मात्र नग्नदशा नहीं, मात्र पंचमहाव्रत पालन करे, वह नहीं। अन्तर रागरहित आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शनसहित के स्वरूप की आनन्द की लीनता है। यह निर्ग्रन्थ मार्ग है। राग और मिथ्यात्व से निकल गया है और अन्तर दशा प्रगट हो गयी है। आहाहा!

उस निर्ग्रन्थ मार्ग में बाह्य में तो नग्नदशा होती है। वस्त्र हो, उसको मुनिपना हो, यह तीन काल में हो नहीं सकता और वस्त्र छूट गया है, इसलिए मुनिपना है—ऐसा भी नहीं है। अन्तर में मिथ्यात्व और राग-द्वेष छूटे बिना निर्ग्रन्थपना अन्दर प्रगट नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **निर्ग्रन्थस्वरूप मोक्षमार्ग की प्रशंसासहित हो, एक तो यह चिह्न है, जो मार्ग की प्रशंसा न करता हो तो जानो कि इसके मार्ग की दृढ़ श्रद्धा नहीं है।** आहाहा! वीतराग का मार्ग अभ्यन्तर मिथ्यात्व का परिग्रह छूट गया है। मिथ्यात्व परिग्रह है न? मिथ्यात्व परिग्रह है या नहीं? मिथ्यात्व का अर्थ? जो दया, दान, व्रत के पुण्य परिणाम से धर्म मानना, वह सब मिथ्यात्वभाव है। देह की क्रिया नग्नपना मेरी क्रिया है, मैं कर सकता हूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। वह परिग्रह है। आहाहा! राग का एक कण भी पुण्य का, दया, दान का वह मेरा है, यह मिथ्यात्वपरिग्रह है। इस मिथ्यात्वपरिग्रह से रहित निर्ग्रन्थस्वरूप जिसको अन्तर में प्रगट हुआ, उसको बाह्य में भी निर्ग्रन्थदशा—दिगम्बरदशा—वस्त्ररहितदशा... ऐसा कहते हैं। उसको उनकी प्रशंसा होती है। आहाहा! सम्यक्त्वचरण चारित्र समकिती जीव की उसको प्रशंसा होती है। आहाहा! कठिन बात है।

दृढ़ श्रद्धा नहीं है। ऐसा जानना। यदि प्रशंसा न हो तो जानना कि उसको मार्ग

की दृढ़ श्रद्धा नहीं है। यह भी मार्ग है और यह भी मार्ग है। श्वेताम्बर भी एक धर्ममार्ग है और दिगम्बर भी धर्ममार्ग है, ऐसा कहते हैं। ... है। मार्ग तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अन्तर में मिथ्यात्व के नाश से सम्यग्दर्शन प्रगट हो, राग-द्वेष के नाश से वीतरागता प्रगट हो और बाह्य में जिसको अट्ठाईस मूलगुण पंच महाव्रत के विकल्प आदि हो, बाह्य में नग्नपना हो, उसको निर्ग्रन्थ मार्ग कहते हैं। उस मार्ग की समकिती को प्रशंसा होती है। उसको इसका भान होता है, इसलिए उसकी प्रशंसा होती है। ऐसा कहते हैं। डाह्याभाई! ऐसी बात है। बाड़े बाँधकर बैठे हो, उनको कठिन लगे ऐसा है।

'मग्ग' शास्त्र का कहने का अर्थ यह है। मार्ग जो है वीतराग का, उसके गुण की प्रशंसा होती है। ओहो! धन्य मार्ग, भाई! राग की एकता टूटकर जिसको मिथ्यात्व का नाश हो गया है और राग की अस्थिरता नाश करके अनन्त चारित्र प्रगट हुआ है, ऐसा निर्ग्रन्थ मार्गभाव और बाह्य में वस्त्र और पात्ररहित, ऐसे मार्ग की जिसको प्रशंसा हो तो उसकी दृढ़ श्रद्धा जानने में आती है। प्रशंसा न हो तो उसकी दृढ़ श्रद्धा जानने में आती नहीं। समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसी बात है। कोई ऐसी गम्भीर नहीं है।

धर्मात्मा पुरुषों के कर्म के उदय से (उदयवश) दोष उत्पन्न हो.... सम्यग्दृष्टि है, धर्मात्मा है। कोई दोष ऐसा उत्पन्न हो जाये, राग है तो राग के कारण कोई दोष ऐसा हो जाये। **उसको विख्यात न करे....** प्रसिद्ध न करे, बाहर नहीं लाते। गुप्त रखते हैं। सच्चे सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है, उसको राग का ऐसा कोई दोष आ जाये तो बाह्य में प्रसिद्ध न करे। पन्थ की निन्दा हो जाये। उसका अर्थ दूसरा कर दे। फिर कैसे भी हो उसको गुप्त रख दो। यहाँ तो धर्मात्मा की बात है, बापू! जिसको अन्तर राग की एकता टूटकर सम्यग्दर्शन है और विशेष आगे जाकर राग का नाश होकर चारित्रदशा अन्दर है, उनको कुछ राग की अस्थिरता के कारण ऐसा दोष आये तो धर्मात्मा उसको बाहर न लाये, विख्यात न करे। ढँकते हैं। छद्मस्थ है, राग के दोष के कारण... सम्यग्दर्शन, ज्ञान में दोष नहीं है। परन्तु राग में कुछ ऐसी अपेक्षा का भाव आ जाये। आहाहा! समझ में आया? तो उसमें उसको ढँके। **इस प्रकार उपगूहन भाव हो, एक यह चिह्न है।**

धर्मात्मा को मार्ग से चिगता जानकर उसकी स्थिरता करे.... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसको अन्तर आत्मा में से प्रगट हुआ हो, वह जरा चिगते हों अस्थिरता हो

जाती हो, श्रद्धा में से फेरफार, तो उसको स्थिर करे। भगवान! मार्ग तो ऐसा है। जो... भाव जम जाओ आत्मा में... बाहर में कुछ है नहीं। दुनिया प्रशंसा करे, न करे, उसके साथ कुछ है नहीं। अन्तर स्वरूप की श्रद्धा करके अन्दर स्थिर हो जाओ, ऐसी श्रद्धा करे। **एक चिह्न है, इसको स्थितिकरण भी कहते हैं।** लो! **इन सब चिह्नों को सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है,....** सरलभाव। आहाहा! सरल। जैसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, ऐसा कहे। फेरफार न करे। आहाहा! समझ में आया? मुनिपना न हो तो मुनिपना कहे, ऐसी वक्रता उसको नहीं होती। सरलता हो। समझ में आया?

इन सब चिह्नों को सत्यार्थ करनेवाला.... है न? '**अज्जवेहिं भावेहिं**' ऐसा है न? '**एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।**' ऐसा शब्द है। सरल भाव से यह सब लक्षण जानने में आते हैं। सरलभाववाले को। आहाहा! वक्रता न हो। ... है न? नि:शल्योव्रती। आता है न नि:शल्योव्रती। तत्त्वार्थसूत्र (में आता है)। चारित्रवन्त धर्मात्मा हो और मिथ्यात्व का शल्य न हो। मिथ्यात्व का शल्य न हो। सर्वज्ञ के सिवा किसी मार्ग में कुछ भी उसकी रुचि का अंश न हो। वीतरागमार्ग जो परमात्मा का है, वह मार्ग ही सत्य है। उसमें कोई दूसरा शल्य न हो। माया शल्य न हो और निदानशल्य न हो। क्रिया करके उसका फल माँगना, ऐसा न हो। तो उसको व्रती चारित्रवन्त कहा जाता है। आहाहा! **निष्कपट परिणाम से ये सब चिह्न प्रगट होते हैं, सत्यार्थ होते हैं, इतने लक्षणों से सम्यग्दृष्टि को जान सकते हैं।** लो! बाह्य के लक्षण हैं न, यहाँ तो मात्र बाहर की बात है न? समझ में आया?

भावार्थ :— सम्यक्त्वभाव-मिथ्यात्व कर्म के अभाव से जीवों का निजभाव प्रगट होता है.... देखो! समकितभाव की व्याख्या। कि सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं? कि **मिथ्यात्व कर्म के अभाव से....** भ्रमणा के अभाव से **जीवों का निजभाव प्रगट होता है....** भगवान आत्मा का निज पर्याय सूक्ष्म सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। **सो वह भाव तो सूक्ष्म है, छद्मस्थ के ज्ञानगोचर नहीं है....** छद्मस्थ के ज्ञान में सीधा ख्याल में आवे, ऐसा वह नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानगम्य कहा न? कि ज्ञान पहुँच सके इस पर्याय को, इतना ज्ञान उसको—छद्मस्थ को होता नहीं। स्वसंवेदन से ख्याल में आता है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान है ऐसा जानने में नहीं आता। ज्ञान का प्रत्यक्षपना तो केवली को जानने में आता है। मति-श्रुत से ख्याल में आये, परन्तु मतिश्रुत का इतना सूक्ष्म विषय नहीं है कि यह समकित है, उसको पकड़ सके। समझ में आया? स्वसंवेदन अनुभूति ऐसे लक्षण से उसका लक्षण ख्याल में आये, परन्तु प्रत्यक्ष यह समकित है, ऐसे पर्याय को पकड़ नहीं सकता, इसलिए यह गुण का वर्णन किया न? उस लक्षण से जानना। ऐसा कहते हैं। सूक्ष्मता से साधारण प्राणी पकड़ नहीं सकता। स्वयं को ख्याल में आवे, दूसरे का ख्याल सूक्ष्म है, कदाचित् अन्तर का ख्याल न आये, परन्तु उसके बाह्य लक्षण से उसका ख्याल आता है, ऐसा कहते हैं।

उसके बाह्य चिह्न, सम्यग्दृष्टि के प्रगट होते हैं, उनसे सम्यक्त्व हुआ जाना जाता है। लो! उसमें से जानने में आता है। **जो वात्सल्य आदि भाव कहे, वे आपके तो अपने अनुभवगोचर होते हैं....** देखो! पहले बात आ गयी है। वात्सल्य धर्म के प्रति जिसको प्रेम रोम-रोम में। आहाहा! श्वेताम्बर में आता है ... ऐसा आता है। ...यहाँ तो आत्मा में धर्म का प्रेम... जिसको राग का प्रेम—रुचि छूट गयी है। राग होता है। आसक्ति का राग होता है, परन्तु राग का जिनको प्रेम छूटकर परमात्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का जिनको प्रेम हुआ है, उसको धर्मात्मा के प्रति प्रेम होता ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उनसे सम्यक्त्व हुआ जाना जाता है। जो वात्सल्य आदि भाव कहे, वे आपके तो अपने अनुभवगोचर होते हैं और अन्य के उसकी वचन-काय की क्रिया से जाने जाते हैं, उनकी परीक्षा जैसे अपने क्रियाविशेष से होती है.... अपनी क्रिया के द्वारा जो अपने को पहिचाने। **वैसे अन्य की भी क्रियाविशेष से परीक्षा होती है,....** सूक्ष्म बात है। बात ऐसी है कि आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि बाह्य जीव अनुमान से जान सके, ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। मात्र अनुमान से आत्मा को जान सके, ऐसा स्वभाव नहीं है। वैसे अपना स्वभाव मात्र अनुमान से पर को जाने, ऐसा इसका स्वभाव नहीं है। अलिंगग्रहण में आता है न, अलिंगग्रहण। दूसरों के द्वारा अनुमान से जानने में आता है,

ऐसा आत्मा नहीं है, ऐसा कहते हैं। अन्दर ज्ञान का प्रत्यक्ष हुआ हो, वह अनुमान करके दूसरे को जान सकता है। सूक्ष्म बात है। परन्तु अपना आत्मा प्रत्यक्ष हुआ, उसको अनुमान से जानता है। मात्र अनुमान से पर को जाने, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार व्यवहार है, यदि ऐसा न हो तो सम्यक्त्व व्यवहार मार्ग का लोप हो, इसलिए व्यवहारी प्राणी को व्यवहार का ही आश्रय कहा है,.... अर्थात् ज्ञान के लक्षण में ऐसा है, ऐसा जानना। **परमार्थ को सर्वज्ञ जानता है।** सूक्ष्म बात है तो सर्वज्ञ जाने। परन्तु ऐसे बाह्य लक्षण से सम्यग्दृष्टि का आचरण पर से साधने में आता है। यह न हो, उसको सम्यग्दर्शन नहीं है, ऐसा जान सके।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ३, मंगलवार, दिनांक-२७-११-१९७३
गाथा- १३, १४, १५, प्रवचन-५२

गाथा - १३

सूत्रपाहुड अधिकार है। १३वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जो ऐसे कारणसहित हो तो सम्यक्त्व छोड़ता है :—** १३वीं गाथा में ऐसा कहते हैं कि ऐसे कारण यदि हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं रहता।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुंदसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं ॥१३॥

अर्थ :— कुदर्शन.... वीतराग सर्वज्ञदेव जो जैनमार्ग वस्तु का स्वरूप है, उससे विरुद्ध कहनेवाले सब मार्ग हैं। **कुदर्शन अर्थात् नैयायिक,....** एक मत है। **वैशेषिक,....** एक मत है। **सांख्यमत,....** एक मत है। **मीमांसकमत, वेदान्त मत,....** वेदान्त मत वह एक आत्मा को व्यापक माननेवाला। **बौद्धमत....** वह बौद्ध है न। **चार्वाकमत, शून्यवाद के मत इनके वेश....** उनका मत और उनका वेश **तथा इनके भाषित पदार्थ....** उन्होंने कहे हुए पदार्थ। **और श्वेताम्बरादिक जैनाभास....**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... है न ? .... परन्तु है न ? दर्शन आ गया। .... में आ गया। दर्शन उसे कहना यह आ गया। उससे यह सब .... है। बात सच्ची। यह स्पष्टीकरण है। १४वीं गाथा में दर्शनपाहुड़ में आया। जैनदर्शन अर्थात् वस्तुस्वरूप है। उसे ऐसा कहते हैं कि जिसमें आत्मा के स्वरूप का आश्रय लेकर, आत्मा परिपूर्ण ध्रुव जिनस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है, उसे जैनदर्शन, वस्तुदर्शन, विश्वदर्शन, सत्य वस्तु उसे कहा जाता है। और उसे २८ मूलगुण होते हैं और नग्नदशा होती है। यह सब मिलकर जैनदर्शन निश्चय और व्यवहार कहा जाता है। सर्वज्ञ भगवान का कहा हुआ यह तत्त्व है।

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होता ही है। न हो तो केवल (ज्ञान) हो जाये। केवली को व्यवहार नहीं होता। उसे (छद्मस्थ को) व्यवहार होता है परन्तु उन्हें नहीं होता। दूसरे जानते हैं, उन्हें व्यवहार है वाणी आदि। सूक्ष्म बात है। वस्तुस्थिति....

मुमुक्षु : व्यवहार में कुछ भूल हो तो सुधर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार में ... प्रश्न कहाँ है? परन्तु है या नहीं, उसकी यहाँ तो बात है। व्यवहार का विकल्प आदि हो, वह व्यवहार। परन्तु श्रद्धा अत्यन्त विपरीत श्रद्धा है, उसमें सुधार कहाँ से आवे? बात ऐसी सूक्ष्म है। यह तो सर्वज्ञ का कहा हुआ तत्त्व है, परमेश्वर। कहते हैं, वस्त्रसहित, पात्रसहित मुनिपना माने, वह जैनदर्शन ही नहीं है। ऐसा कहते हैं। कहो, धीरुभाई! बात ऐसी है, बापू! मार्ग भाई! यह पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप है। यह दिगम्बर धर्म भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में रहा यह। पश्चात् बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा, तब यह श्वेताम्बर मत निकला।

मुमुक्षु : वे लोग दूसरे प्रकार से कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरे प्रकार से हो। श्वेताम्बर में से दिगम्बर निकले, ऐसा वे कहते हैं। और उसमें से यह स्थानकवासी अभी निकले ५०० वर्ष में। मुँहपत्तीवाले वे ५०० वर्ष पहले निकले। परन्तु वे सब जैनदर्शन वीतराग.... अनादि सनातन.... आत्मा के प्रदेश, उसके गुण की संख्या, उसकी भूमिका के प्रमाण में निर्मलता, उसकी निर्मलता के प्रमाण में राग की मन्दता की जाति, वह सब वीतराग ने जो कही है, वह यह जैनदर्शन की बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। ... . वह तो अपना पक्ष है, उसकी उसे खबर नहीं होती। उसमें उसकी बातें आवे।

कहते हैं **श्वेताम्बरादिक....** आदिक अर्थात् यह स्थानकवासी आदि। वे सब जैनाभास हैं। जैन नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... धर्म उसका है वह। ऐसी बात है। ऐसा वस्तु का स्वरूप उसे नहीं। ....

उसकी **श्रद्धा,....** करे। ऐसे की श्रद्धा करे कि यह भी सच्चा मार्ग है, तो वह श्रद्धा से भ्रष्ट हो जाता है। समझ में आया? यहाँ तुम्हारा.... आया नहीं। .... मार्ग तो यह है। वाद-विवाद छोड़कर सत्य को कहनेवाले। सर्वज्ञ वीतरागदेव ने केवलज्ञान से कहा मुनि का स्वरूप, धर्म का स्वरूप, सिद्धान्त का स्वरूप, व्रत का स्वरूप, परमेश्वर की प्रतिमा का स्वरूप, वह सब भगवान ने देखा। उसे यहाँ सुदर्शन कहा जाता है। उससे यह विरुद्ध विकल्प से विपरीत होकर मार्ग निकाले, वे अन्यमत और यह जैनाभास दोनों मिथ्यादृष्टि है। सादडी में ऐसा सुनने को मिले? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि उसकी इसे श्रद्धा रखना। ऐसे जैन के अतिरिक्त अन्य की और जैनाभास **उत्साह....** करना। ऐसे के प्रति उत्साह करना। ऐई! गिरधरभाई! अब कहाँ तुम्हारे दिक्कत है? अब तुम ....

मुमुक्षु : उसे सीखने जाना, वह सीखनेवाला ऊपर बैठे और सिखानेवाला नीचे बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और क्या होगा? है न, यह खबर है। परन्तु वह क्या होगा?

मुमुक्षु : बनावटी....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। आहाहा! अरे! मार्ग तो बापू ऐसी वस्तु है। तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, जिसे तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष हुए और पश्चात् वाणी इच्छा बिना निकली। ॐ ध्वनि द्वारा आगम निकले। आहाहा! उस ॐ ध्वनि में आगम जो आये, वे वीतराग के आगम हैं। वे आगम, परमागम यह उत्कीर्ण हुए वे हैं। परमागम (मन्दिर में) उत्कीर्ण हुए वे हैं। और श्रीमद् ने अन्त में यह कहा है। परन्तु उन लोगों के पक्षकार को बैठना कठिन पड़े। श्रीमद् ने अन्तिम सत्शास्त्र के बीस नाम दिये हैं। उसमें उन्नीस दिगम्बर शास्त्र दिये। उसमें एक भी श्वेताम्बर का शास्त्र नहीं दिया। योगदृष्टिसहित एक ग्रन्थ दिया। शास्त्र नहीं।

मुमुक्षु : वे सूत्र भगवान के कहे हुए हैं, इसलिए सत्य मान ही लेना चाहिए। आचार्य के लिखे हुए हो उसमें से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात हुई नहीं थी? ..... नहीं आया? दर्शनविजय आता है न एक श्वेताम्बर का साधु है न। .... उसने रखा है यह। .... यह ९९ के वर्ष में। (संवत्) १९९९ में पौष महीना। ... ९९ में। ९९ में पौष महीना। कितने वर्ष हुए? ३२ वर्ष। तो वह कहे, यह समयसार है, वह गुरुवाणी है। वीतराग की वाणी नहीं। ... है न वीतराग की वाणी यह। भगवान की वाणी इसे कहते हैं। यह गुरु की वाणी है, ऐसा कहे। बहुत अच्छी बात है। सुनो। तुम्हारा नाम क्या? ९९ की बात है। कहे दर्शनविजय। आत्मा भव्य है या अभव्य, यह निर्णय किया है? ऐसा मैंने उससे पूछा। यह आत्मा भव्य है या अभव्य? अभव्य समझते हो? उसने भी .... होता है। भव्य—अभव्य का निर्णय किया नहीं, वह गुरु और केवली की वाणी के परीक्षक हो गये तुम? ... ... वह फिर से कहे। है न दूसरी सब बात थी वह आ गयी पहले। भव्य-अभव्य ज्ञात नहीं होता, ऐसे जीव, ऐसा तो अभी तुमको निर्णय (नहीं) है। यह वीतराग और सर्वज्ञ की वाणी, गुरु की वाणी किसे कहना, उसकी परीक्षा करने निकले, न बैठे। ९९ की बात है। कहा था ... ... बापू! मार्ग की बात है। यह कहीं छुपा देने की बात नहीं है।

वे वहाँ कांप में गये न ९९ (में) विहार करके पहले-पहले गये। वहाँ .... विजय थे एक स्थानकवासी। .... अपने इकट्ठे होकर विरोध करेंगे। भाई रहने दे हमको .... कहते हैं। .... विजय नहीं? पूनमचन्द। पूनमचन्द।

मुमुक्षु : स्थानकवासी हो, इसलिए उसमें विजय नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : विजय नहीं होता। वे थे बेचारे वहाँ। ... साधारण थे परन्तु वह ... दिये। अब तुम निकले .... वहाँ वे.... बापू! ऐसा रहने दो। .... चर्चा। और एक बोल में पकड़ा था वहाँ। भाई! यह मार्ग बाहर के नहीं। यह तो अन्तर का मार्ग है। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप पूर्ण शुद्ध चैतन्य भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ है। ऐसे आत्मा की स्वरूप की बात, वह श्वेताम्बर में भी नहीं। प्रदेशों में अन्तर है। आत्मा के प्रदेशों की संख्या दिगम्बर या श्वेताम्बर .... चौदह राजुलोक की ... ४३ राजु है। श्वेताम्बर कहते हैं, तत्प्रमाण मिलती नहीं, ऐसा श्वेताम्बर लोगों ने लिखा है। उनकी पुस्तक में लिखा है। अपने कहें, तत्प्रमाण ३४३ राजु मिलता नहीं। दिगम्बर कहते हैं, ऐसा मिलता है। कल्पित बनाया है, इसलिए कुछ मेल नहीं खाया। हमने तो सब शास्त्र देखे हैं न

श्वेताम्बर में। उसमें लिखा है। अपने जो ३४३ राजु कहना चाहते हैं, वह मिलता नहीं। और उसमें तो उन्होंने तो जो वस्तु है, ऐसी कही है न। वह तो नया मार्ग निकालने के लिये सब कल्पित बनाया है। परन्तु लोगों को उस समय तार, कार्ड और रेल नहीं थी, इसलिए इतने में-इतने में चला। चलते-चलते अन्यत्र चला। और अभी तो इतना अन्तर पड़े ... हो गया। ऐसी स्थिति है जरा, भाई!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे जैन वीतराग दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त यह दिगम्बर दर्शन, वही एक जैनदर्शन और जैनधर्म है। इसके अतिरिक्त के दूसरे अन्यमत और जैनाभास की श्रद्धा करे, वह सम्यग्दर्शन नहीं रहता उसे। सम्यग्दर्शन होगा नहीं और होगा तो जायेगा। सेठ! **उत्साह,...** करना। उसे उत्साह-उत्साह होंश करना। ओहोहो! देखो, उसमें लाखों लोग.... बड़े-बड़े आचार्य।

मुमुक्षु : .... वे लोग ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ भरते हैं .... लाख-लाख भरते हैं। अभी एक व्यक्ति ने लाख दिया। लाख क्या, पचास लाख हो तो लाख, दो लाख ... दे देवे। परन्तु उसमें क्या है? वस्तु क्या थी उसमें? आहाहा!

उसकी **भावना....** करना। वीतराग जैनदर्शन परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहा, उससे विरुद्ध यह सब मतों की भावना करना, वह समकित से भ्रष्ट होता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! **प्रशंसा....** उसकी प्रशंसा। देखो, आया प्रशंसा, यह शब्द आया न? भावना के पश्चात् **'संपसंस'** सम्यक् प्रकार से प्रशंसा। टीका में ऐसा है। सं मन, वचन, काया से सम्यक् प्रकार से प्रशंसा, ऐसी टीका है। ऐसे मतों की प्रशंसा करना, वह समकित हो तो भ्रष्ट होता है और न हो तो उसे होता नहीं। कहो, समझ में आया? कहो, आणंदलालजी! अब तुम्हारे क्या है? अब तो यहाँ आ गये तुम। ... वह ... श्वेताम्बर। आहाहा!

इनकी उपासना.... ऐसे की सेवा करना। आहाहा! कहो, समझ में आया? **वह सेवा जो पुरुष करता है....** उसे वन्दन करे, माने तो **वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को छोड़ता है,....** जैनमत अर्थात् वीतराग का स्वरूप भगवान आत्मा, उसकी जो श्रद्धा

उसे रहती नहीं। वीतरागस्वरूप ऐसा आत्मा, उसकी श्रद्धा ऐसे रागी और एकान्त माननेवाले की श्रद्धा करने से यह श्रद्धा उसे रहती नहीं। आहाहा! लो आया .... आया आज धीरुभाई तुम्हारे। आज जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर मिथ्यात्वी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्वी है। गृहीत मिथ्यात्वी।

मुमुक्षु : ....मिथ्यात्व कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... मिथ्यात्वी। मार्ग ऐसा है। तीर्थंकर भगवान के समय में एक ही यह दिगम्बर पंथ था। महाविदेह में एक ही पंथ है। भगवान के पास एक ही पंथ है। दूसरे पंथ की श्रद्धा हो, परन्तु किसी को वेश ऐसा नहीं, मन्दिर आदि नहीं। महाविदेह में अन्यमति के मन्दिर नहीं, श्वेताम्बर के साधु नहीं, श्वेताम्बर के मन्दिर नहीं। श्रद्धाभ्रष्ट बहुत हो अन्दर अभिप्राय। किसी का मन्दिर बाबा का या अन्यमति का मन्दिर नहीं, मस्जिद नहीं। एक वीतरागमार्ग परमात्मा का .... सीमन्धर भगवान ने .... अभिप्राय में विपरीत बहुत हो—बहुत हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवें नरक में जानेवाले। वह सातवें नरक में जानेवाले हैं। यहाँ सातवें नरक में जानेवाले नहीं। गृहीत मिथ्यात्वी है, वहाँ और नरक में जानेवलो तथा मोक्ष में जानेवाले वहाँ हैं। यहाँ उग्र ऐसे नहीं, मोक्ष में जानेवाले भी नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, भाई! ऐसा मार्ग है, भाई! वह यह श्रीमद् ने .... नहीं किया उनने। .... अष्टपाहुड में? यह गाथा ... कही। डाले तो दिक्कत आवे। देखो न यह अगास से .... है। यह कहाँ से आया? गोम्मटसार .... समालोचनार्थ लिखा है। .... टोडरमल ने लिखा। यह गाथा का अर्थ वह न कर सके। वे कहाँ से कर सकें?

अज्ञान और मिथ्यात्व के मार्गरूप मिथ्यामत में उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा और श्रद्धा करनेवाले विरुद्ध पुरुष जिनदेव की श्रद्धारूप सम्यग्दर्शन को तज देते हैं। अर्थात् .... यह नहीं कर सकते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। नहीं, वह तो ऐसा कहते हैं, इसमें है तत्प्रमाण डालो। श्रीमद् में श्वेताम्बर-दिगम्बर का पृथक् है ही नहीं। ... श्वेताम्बर का... दिगम्बर का... तीन का लेंगे। यह तो .... था। निमित्तरूप से.... गये थे न अगास गये थे न? (संवत्) २०१३ के वर्ष नहीं? गये थे वहाँ अगास में। ऐसा कि दिगम्बर का रखा नहीं तुमने। क्योंकि दिगम्बर के कुन्दकुन्दाचार्य को गुरु माना है। बीच में तो यह श्वेताम्बर के.... तीन रखे। भाई! मार्ग तो ऐसा सूक्ष्म है, भाई! तीन लोक के नाथ केवली और सन्त, कुन्दकुन्दाचार्य आदि मुनि। महाधर्म के नेता। जिन्होंने जैनधर्म का मार्ग जगत के समक्ष प्ररूपित किया। उसके अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब कुदर्शन हैं। धीरुभाई! यह अन्तिम तुम्हारे यह आया अभी।

मुमुक्षु : अन्त में मिथ्यात्वी में भेज दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुमको कहाँ कहा है यह? श्वेताम्बर का कहा था न! तुम कहाँ श्वेताम्बर मानते हो? भाई को कहा था।

मुमुक्षु : अब श्वेताम्बर कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब कैसे? आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

ऐसे पुरुष को वन्दन करे, सत्कार करे, धर्मीरूप से माने तो वे सब जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हो जाते हैं। यह कुदर्शन, अज्ञान और मिथ्यात्व का मार्ग है। लो! यह सब कुदर्शन.... सब तो कहा बहुत है। श्वेताम्बर बहुत हैं। मोहनभाई, यह हेमराजजी। बहुत तो श्वेताम्बर ही हुए हैं न दिगम्बर। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! अनादि का मार्ग यह है, हों! यह यहाँ भगवान ने स्पष्टीकरण कर दिया वहाँ। इसलिए १४वीं गाथा में .... भाई ने। १४वीं गाथा है न अष्टपाहुड़ की पहली, दर्शनपाहुड़ की। १४वीं गाथा है। यह पृष्ठ २०। पृष्ठ २०।

कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं १४वीं गाथा नीचे कहते हैं।

दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥

इसका अर्थ देखो! यह शब्दार्थ ही है इसका। **जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों**

प्रकार के परिग्रह का त्याग हो.... जिसे बाह्य में वस्त्र नहीं और अभ्यन्तर में राग नहीं। **और मन-वचन-काया ऐसे तीनों योगों में संयम हो....** जिसे स्वरूप की स्थिरता, रमणता आनन्द में जम गये हों, **और कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो,....** तीनों करण से शुद्ध। मन, वचन, काया से शुद्ध ज्ञान हो। **निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा, खड़े रहकर....** खड़े-खड़े **पाणिपात्र में आहार करें,....** पाणि अर्थात् हाथ। खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे, **इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।** उसे भगवान ने जैनदर्शन और मार्ग कहा है। आहाहा! यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं (कहते हैं) जैनदर्शन, जैनमत, मार्ग किसे कहना? इसे कहना। आहाहा!

बाह्य-अभ्यन्तर राग का त्याग अन्तर में और बाह्य में वस्त्र का त्याग, वह बाह्यान्तर त्याग और ज्ञान, मन, वचन और काया से करना, कराना, शुद्ध। है न? और मन, वचन, कर्म से शुद्धज्ञान और निर्दोष कृत, कारित रहित आहार। उनके लिये बनाया हो, बनवाया हो, वह सब नहीं। ऐसा निर्दोष आहार, वह भी **खड़े रहकर....** खड़े-खड़े। वह भी पाणिपात्र में—हाथ में **आहार करे, इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।** लो! इन जिनदेव का यह मत है। वीतराग देव का यह मार्ग है। देखो, अर्थ है।

भावार्थ :— यहाँ दर्शन अर्थात् मत है; वहाँ बाह्य वेश दिखाई दे वह दर्शन; वही उसके अन्तरंगभाव को बतलाता है। वहाँ बाह्य परिग्रह अर्थात् धन-धान्यादिक और अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व-कषायादि, वे जहाँ नहीं हों, यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो,.... यथा जैसा माता से जन्मा, वैसा जिसका शरीर दिखता हो। **तथा इन्द्रिय-मन को वश में करना, त्रस-स्थावर जीवों की दया करना, ऐसे संयम का मन-वचन-काय द्वारा शुद्ध पालन हो और ज्ञान में विकार करना, कराना, अनुमोदना करना—ऐसे तीन कारणों से विकार न हो और निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना; इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है, वह जिनदेव का मत है,....** बाकी जिन (देव का मत नहीं।) आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे अब क्या है, दिक्कत क्या?

मुमुक्षु : अन्य पाखण्ड।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाखण्ड है वह। अब तो तुम आ गये यहाँ। अब तुम्हारे दूसरी दिक्कत नहीं। ऐई!

मुमुक्षु : वह तो .... हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो .... वहाँ उसे अच्छा लगा है न। इसलिए कहते थे तुम बोलते हो, उसमें मुझे बहुत अच्छा लगता है। यहाँ निकलती है आवाज अन्दर.... आहाहा!

वही वन्दन-पूजन योग्य है,.... वह वन्दन-पूजन योग्य है। **अन्य पाखण्ड वेश वन्दना-पूजा योग्य नहीं हैं।** यह भाई पाखण्ड में गया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! ... आहाहा! .... तुलना करेगा या नहीं पहले? यह तो हित की बात है न, भाई! यह कोई पक्ष (नहीं है।) ओहोहो!

दिगम्बर धर्म, वह तो जिनेश्वर ने कहा हुआ अनादि सनातन मार्ग है। सूक्ष्म बात है। वह वाडा नहीं, सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। इसके अतिरिक्त जितने मत बाहर के अन्यमत, वेदान्त आदि या दूसरे चाहे जो बातें करते हों, (वह) वीतराग की बातें नहीं। सभी मत विपरीत है। गीता... गीता में आता है न वह का वह मार्ग? वह सब विपरीत है। वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग, बापू! कठिन बातें। ऐसी बात है पूरी। बोधपाहुड में कही दर्शन की। दर्शन किसे कहना। दो जगह आता है। दर्शनपाहुड की १४वीं और बोधपाहुड़ की १४वीं (गाथा)। वहाँ दर्शन किसे कहना? यह। आहाहा! सर्वज्ञ के मुख से दिव्यध्वनि में आया हुआ यह मार्ग है। लो!

भावार्थ। अपने चलती बात यह १३वीं (गाथा)। **अनादि काल से मिथ्यात्वकर्म के उदय से (उदयवश)....** विपरीत श्रद्धा का निमित्त कर्म और उससे वश हुआ **वह जीव संसार में भ्रमण करता है....** वह संसार में भ्रमण करता है, भाई! यह तो कहा न! साधु है श्वेताम्बर। चम्पकसागर। चम्पकसागर न? श्वेताम्बर साधु। मैं गया था न वहाँ जूनागढ़, तब वह गाँव में थे। .... ऐसे चल निकले। तो उसने बनाया है वह। यह न? उसने एक पम्पलेट बनाया है, समझे? वाँचो और विचार करो। वह श्वेताम्बर के साधु

हैं। उन्होंने यहाँ का पढ़ा, सब पढ़ा। वर्तमान काल में विकृता श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनिवरों को जीवन में.... आदि। प्राय: १०८ साधु... साधु... ११९ संख्या है। यह उन्हें गुणी गिनो या अवगुणी गिनो। यह सामनेवाले व्यक्ति की इच्छा की .... वस्तु बनती है। स्वयं लिखा है। ७८।

अर्धफालक वस्त्र में से। यह अर्धफालक की बात दिगम्बर में से जब श्वेताम्बर निकले, तब आधा टुकड़ा रखते आड़े। आहार लेने जाये तब। वस्त्र का आधा टुकड़ा। यह शास्त्र में है। उसमें कहीं लिखा हुआ है कि अर्धफालक में से बिगड़ा हुआ विकार। पहले आधा टुकड़ा वस्त्र का रखते थे श्वेताम्बर साधु। दिगम्बर में से अलग हुए तब। उसमें से बिगड़ा हुआ विकार कहाँ जाकर रुकेगा, यह प्रभु जाने। १०८ तक तो अवगुण पहुँचे हैं। विचारक उदासीन चम्पक साधक सत्यानन्द। ऐसी बात है। स्वयं श्वेताम्बर साधु लिखता है, हों। उसे ... यह बराबर लगता है। बिहार के। तलेटी के, अरे! यह मार्ग तो बापू अनादि का है। लोगों को खबर नहीं न! श्वेताम्बर निकले, वे दो हजार वर्ष हो गये। दिगम्बर साधु (थे) और दुष्काल पड़ा, उसमें से अलग पड़ गये। वे वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मानने लगे। इसलिए जो साधु सच्चे थे, वे दक्षिण में चले गये। वे आये, पश्चात् कहे, यह मार्ग ऐसा नहीं, नहीं ऐसा कोई मार्ग नहीं। नये शास्त्र बनाये। अपनी बात स्थापित करने के लिये नये सब ३२, ४५ सूत्र सब कल्पित बनाये हुए हैं। वह भगवान की वाणी नहीं है। भगवान की वाणी यह है। कुन्दकुन्दाचार्य आदि मुनि, सन्त, दिगम्बर कहते हैं, वह वीतराग की वाणी है। समझ में आया? .... ऐसा मार्ग है, भाई! अब यह तो ३९ वर्ष हुए। अब तो यह खुल्ला रखा गया है। ३९ वर्ष। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं। आत्मा के साथ मिलान खाये, ऐसा है।

देखो! **संसार में भ्रमण करता है सो कोई भाग्य के उदय से जिनमार्ग की श्रद्धा हुई हो....** कोई महापुरुषार्थ की योग्यता और संसार का (किनारा आया हो), उसे वीतरागमार्ग की श्रद्धा होती है। **और मिथ्यामत के प्रसंग में....** मिथ्यादृष्टि के सहवास में आकर **मिथ्यामत में कुछ कारण से उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा उत्पन्न हो तो सम्यक्त्व का अभाव हो जाये,....** सम्यग्दर्शन रहता नहीं। आहाहा! जादवजीभाई! यह

सब यह है। सबको ... श्वेताम्बर। यह स्थानकवासी के। स्थानकवासी के कलकत्ता में प्रमुख थे। ऐई! जयन्तीभाई! यह मार्ग ऐसा है। तुम्हारे क्या है अब वहाँ? आहाहा!

क्योंकि जिनमत के सिवाय अन्यमतों में छद्मस्थ अज्ञानियों द्वारा प्ररूपित मिथ्या पदार्थ.... पदार्थ की व्याख्या ही मिथ्या है। **मिथ्या प्रवृत्तिरूप मार्ग है, उसकी श्रद्धा आवे, तब जिनमत की श्रद्धा जाती रहे,....** तो वीतरागमार्ग का स्वरूप है, वह श्रद्धा रहती नहीं। **इसलिए मिथ्यादृष्टियों का संसर्ग ही नहीं करना,....** ऐसे मिथ्यादृष्टि का परिचय, सहवास, ऐसा सुनने जाना। चेतनजी! वह यही है न! **इस प्रकार भावार्थ जानना।** लो! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १४

आगे कहते हैं कि जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे वे सुदर्शन में हों.... सर्वज्ञ परमेश्वर ने वीतरागदेव ने कुन्दकुन्दाचार्य ने जो मार्ग कहा, वह सुदर्शनमार्ग है। और उसमें यह भावना आदि हो **तो जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को नहीं छोड़ता है:—** उसे सच्ची श्रद्धा रहती है। उससे उल्टा।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहादि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण॥१४॥

उच्छाहभावणा, ऐसा लेना। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जैनशासन के रखवाले। वीतरागमार्ग के रक्षक। आहाहा! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। तीसरे नम्बर पर आये हैं। उनके यह वचन हैं।

अर्थ :— सुदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप सम्यक्मार्ग.... सुदर्शन अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसे आत्मा की श्रद्धा, उस आत्मा का ज्ञान और आत्मा में रमणता, ऐसा जो सम्यक् मार्ग, **उसमें उत्साहभावना अर्थात् ग्रहण करने का उत्साह....** ओहो! यह मार्ग सत्य है, ऐसा इसे जानने का, ग्रहण करने का उत्साह सहज है। आहाहा! मार्ग गजब! **उत्साह करके बारम्बार चिन्तवनरूप**

भाव.... लो! ठीक! उत्साह और पश्चात् भाव है न? बारम्बार वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर उसे मुनिपना कहते हैं, सम्यग्दर्शन कहते हैं, सम्यग्ज्ञान कहते हैं, सम्यक्‌चारित्र। उसका बारम्बार चिन्तवन करना। यह भाव।

और प्रशंसा अर्थात् मन-वचन-काया से भला जानकर स्तुति करना,.... इस मार्ग की मन से, वचन से, काया से स्तुति करना। आहाहा! समझ में आया? अन्य मार्ग की मन, वचन और काया से कहीं से उसकी स्तुति छोड़ देना। आहाहा! गजब, भाई! समझ में आया? **प्रशंसा अर्थात् मन-वचन-काया से भला जानकर स्तुति करना,....** भगवान के मार्ग की। ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य मुनि ने जो मार्ग कहा, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र कहा, उसकी बारम्बार स्तुति और प्रशंसा करना। यही मार्ग सत्य है। दूसरा कोई मार्ग सत्य है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सेवा अर्थात् उपासना,.... उस मार्ग की सेवा करना। **पूजनादि करना....** उस मार्ग की पूजा, महिमा, प्रशंसा करना। **श्रद्धा करना,....** उस मार्ग की श्रद्धा करना, ऐसा है। कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। **इस प्रकार ज्ञानमार्ग से यथार्थ जानकर....** पहले ज्ञान से यथार्थ जानना कि इस आत्मा का यह स्वरूप, उसका यह सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान, चारित्र जो सर्वज्ञ कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, तत्प्रमाण पहले जानना। समझ में आया? **ज्ञानमार्ग से यथार्थ जानकर....** ऐसा। **जानकर करता है, वह जिनमत की श्रद्धारूप सम्यक्त्व को नहीं छोड़ता है।** आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड और वह पर्याय में। वस्तु तो ध्रुव है और परिणमन दिखता है। उस परिणमन में उसका भान होता है। परिणाम, जिसे अभी पर्याय की खबर नहीं, उसे परिणमन क्या है, उसकी खबर नहीं और जिसमें भान होता है, उसकी तो उसे खबर नहीं। द्रव्य और पर्याय जिसके स्वरूप में हो और उस पर्याय द्वारा वस्तु का भान हो, ऐसी जहाँ व्याख्या ही नहीं, वहाँ मार्ग ही नहीं। समझ में आया?

जिनमत की श्रद्धारूप.... जिनमत का अर्थ वास्तविक आत्मा का स्वरूप। वीतरागीबिम्ब प्रभु है। उसकी श्रद्धा, वही इस वीतरागमार्ग की श्रद्धा है। समझ में

आया? वह स्वयं ही वीतरागस्वरूपी आत्मा है। आहाहा! ऐसे स्वरूप की पहिचान करके श्रद्धा करना और उसमें स्थिर होना, ऐसी चीज़ है, ऐसा इसे ज्ञानमार्ग से जानना चाहिए, ऐसे पुरुष जिनमत की श्रद्धा में समकित को छोड़ता नहीं, वह सत्यता को छोड़ता नहीं। उस सत्य की प्रतीति हुई, वैसे सत्य को वह छोड़ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! परम परमात्मा परम पदार्थ सत् साहेब स्वयं चैतन्यमूर्ति भगवान, ऐसे सत्य की जिसे सत्य रीति से प्रतीति हुई, वह सत्य की सेवा छोड़ता नहीं। समझ में आया?

भावार्थ: —जिनमत में.... वीतरागी अभिप्राय में वीतरागमार्ग में **उत्साह,....** जिसमें राग से धर्म मनाते हों, वह सब मार्ग वीतरागमार्ग नहीं है। आहाहा! वीतरागमार्ग में **उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा, श्रद्धा....** वन्दन, स्तुति **जिसके हो, वह सम्यक्त्व से च्युत नहीं होता है।** आहाहा! कहो, यह ऐसा मार्ग है। यह पुस्तक कहीं अभी की नहीं है। दो हजार वर्ष की बनी हुई है। कुन्दकुन्दाचार्य की (रची हुई है)। भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे। भगवान विराजते हैं, ऐसे महाविदेह में। तीर्थंकर सीमन्धर प्रभु विराजते हैं, उनके पास गये थे। आठ दिन रहे थे।... साधु आचार्य हैं मुनि। इतनी निर्मलता हुई। आने के पश्चात् यह शास्त्र रचे। मार्ग तो यह है, भाई! इस मार्ग के अतिरिक्त जितने अन्यमत और जैनाभास हैं, वे सब कुदर्शन हैं। आहाहा! वीतरागी सन्तों की करुणा है। भाई! तेरे आत्मा के उद्धार का मार्ग तो यह है। समझ में आया? ऐई! चौरासी के अवतार में अनन्त-अनन्त दुःख इसने मिथ्याश्रद्धा के द्वारा भोगे हैं। जिसके दुःखों का वर्णन वीतराग करते हैं। वे दुःख जिसने भोगे और सर्वज्ञ, दोनों उन दुःखों को जानते हैं। आहाहा!

अभी आया नहीं? एक भाई मर गये। .... क्या हुआ था। कुछ सर्प-बर्प डसा होगा। है न। लो, ऐसे मरण, सर्प डसे, पूरे शरीर में जहर, ऐसे मरण अनन्त बार किये हैं। अरे! जीते-जी टुकड़े करे। आहाहा! ....मुसलमान और हिन्दू एक गाय को पूरे गाँव में फिराया। धंधुका है न? मुसलमान ने फिराया और हिन्दू को बताया कि देखो! इस गाय को हम मारनेवाले हैं। आहाहा! यह लेकर फिर बारीक-बारीक टुकड़े करके...

आहाहा! एकदम मारे तो... एक झटके में मारे तो.... नहीं। बारीक-बारीक टुकड़े करे और डाले.... आहाहा! ऐसे अनन्त अवतार किये हैं, बापू! ....कहता था ... दुकान में। भाई की दुकान थी मुसलमान की। तो उसका एक व्यक्ति था। वह दुकान थी बड़ी अनाज की... बात है चूहा। चूहा पकड़े और उसमें वह धगधगता गर्म पानी डालता था उसका व्यक्ति। अरे! यह क्या करता है बापू! डालता है। हमारी दुकान के साथ दुकान थी। वह बिक गयी, अन्यत्र चला गया। आहाहा! धगधगता गर्म पानी, हों! अन्दर वे ठूसे हुए चूहों के ऊपर से। ... आहाहा! बापू! ऐसे भव, यह विपरीत श्रद्धा के कारण, ऐसे भव किये हैं। भूल गया।

मुमुक्षु : मिथ्याश्रद्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टिरूप से ऐसे भव भी तूने किये और उस मिथ्यादृष्टिरूप से कोई शुभभाव हो और स्वर्ग में गया, वहाँ भी दुःख की कषाय की अग्नि से यह सुलगता है। यह सेठिया सब कषाय की अग्नि से सुलगते हैं, हों! यह पैसा और राग होता है न? अग्नि है।

मुमुक्षु : अभी तो बहुत .... हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो पैसा कैसे देना? कितने देना? किस नाम से देना? क्योंकि सरकार के कानून ऐसे आये हैं। आहाहा! अपने नाम से नहीं दिये जाते, फलाना के नाम से दिये जाते हैं। कितनी सिरपच्ची है। दान में देना हो तो भी कितना विचार करना पड़े। ऐई! कल लेख आया है। ....जैनप्रकाश में आया। अरे! यह महँगाई और यह सब क्या हो रहा है? लोग क्या करेंगे? बहुत लेखन आया है। बहुत.... आहाहा! अरे! इससे अनन्तगुणी पीड़ा, बापू! तूने नरक में भोगी है, भाई! तुझे खबर नहीं। नारकीरूप से अनन्तबार गया। जैन का ३२ वर्ष का युवक राजकुमार ताजा विवाहित हो, उसे जीवित जमशेदपुर की भट्ठी में जीते-जी डाले, जमशेद की। जमशेदपुर है न? भट्ठी में यह लोहे के बनते हैं न जमशेद (पुर) की (भट्ठी में)। वहाँ यह सब लोहे के डिब्बे, लोहे के वह सब बनते हैं न। गये थे न? आहाहा! उसमें वह भट्ठी सुलगती हो चौबीस घण्टे। वह जवान व्यक्ति और राजकुमार हो, ताजा विवाहित हो, वह पहली रात

उसकी... उसमें उसे भट्ठी में डाले और दु:ख हो, उससे अनन्तगुणा दु:ख पहले नरक के नारकी को है। ऐसे भव के अनन्त-अनन्त भव किये बापू मिथ्यात्व में। कषाय मन्द की हो तो स्वर्ग में गया, तीव्र की हो तो नरक में गया, परन्तु भवभ्रमण में रहा। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए यहाँ आचार्य महाराज करुणा से यह कहते हैं। भाई! सुमार्ग तो यह है। उसकी तू श्रद्धा कर, ज्ञान कर, बापू! शक्ति हो तो स्वरूप में स्थिर हो, परन्तु न हो तो वास्तविक मार्ग यह है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान तो कर। आहाहा! और कुमार्ग की श्रद्धा-ज्ञान छोड़ दे। धीरुभाई! यह तो करुणा की बात है। भाई! तूने दु:ख भोगे, बापू! आहाहा! है न, वे एक हजार आठ नाम आते हैं न? विधान में। वहाँ करुणामूर्ति अकषायभाव है न! विकल्प कहाँ है? अकषायभाव भगवान का। करुणा सिन्धु... करुणा निधान... करुणा कृपासिन्धु, सब नाम आते हैं, लो! उसका अर्थ वीतराग है न! वह अकषायभावरूपी करुणा, हों! ऐसे दूसरे को करूँ, ऐसा विकल्प नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सुदर्शन का मार्ग कहा, उस मार्ग की श्रद्धा कर, भाई! तेरे जन्म-मरण के फेरे टालने का यह रास्ता है। समझ में आया? ....वास्तविक सुदर्शन सर्वज्ञ कुन्दकुन्दाचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा हुआ यह सुदर्शन है। इसके अतिरिक्त कल्पित जगत ने कहा हो, उन सब मार्ग की श्रद्धा छोड़ दे। यह श्रद्धा कर, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १५

आगे अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र त्याग का उपदेश करते हैं:—विशेष। १५वीं (गाथा)।

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जह णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए॥१५॥

अर्थ:—आचार्य कहते हैं कि हे भव्य! तू ज्ञान के होने पर तो अज्ञान का त्याग

कर,.... आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञान का ज्ञान करके अज्ञान को छोड़ दे। आहाहा! भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा का ज्ञान करके अज्ञान को छोड़। तेरे जन्म-मरण का नाश करना हो तो। ऐसा कहते हैं। माता के गर्भ में बालक आवे नौ महीने, सवा नौ महीने उल्टे सिर। ....महा पीड़ा। निकलते समय काटकर निकाले। या पेट काटकर निकाले। .....व्यवस्थित निकलता है। उसमें टुकड़े करके निकालते हैं। निकालते हैं या नहीं? आहाहा! माता का पेट काटकर निकाले, परन्तु वह न निकले, उसके टुकड़े करने पड़ें। आहाहा! सवा नौ महीने वहाँ पीड़ा। ... पश्चात् भगवान तो ऐसा भी कहते हैं कि वह मरकर वापस फिर से जाये दूसरे मनुष्य के क्षेत्र में। माता के गर्भ में बारह वर्ष रहे। बारह वर्ष छोड कहा जाता है उसे। उसे छोड कहता जाता है। तीन-तीन वर्ष तो बालक रहता है अभी अन्दर गर्भ में। परन्तु भगवान तो कहते हैं बारह वर्ष रहे और छोड जन्मे वापस दूसरी बार बाहर में माता के गर्भ में जाये और फिर बारह वर्ष वहाँ रहे। आहाहा! २४-२४ वर्ष तक माता के गर्भ (में)। यह सब ... ... लेते हैं। आहाहा! अरे! इसने कैसे यह जिन्दगी निकाली होगी? ....परन्तु भूल गया। आहाहा! कहते हैं कि इन सब दु:खों को अज्ञान से तूने किये थे, वह सच्चा ज्ञान करके अज्ञान छोड़ दे, भाई! आहाहा! आत्मा वीतरागमूर्ति पूर्णानन्द प्रभु का ज्ञान करके अज्ञान छोड़ दे। आहाहा!

विशुद्ध सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर.... आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य प्रभु की विशुद्ध समकित श्रद्धा करके मिथ्यात्व को छोड़ दे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व छूट जाये, इसका अर्थ ऐसा। सम्यग्दर्शन से मिथ्यात्व उत्पन्न होता ही नहीं। उत्पन्न होता (ही नहीं), उसे छोड़ दिया कहा जाता है। आत्मा का ज्ञान हो तो अज्ञान छूट जाये, अर्थात् अज्ञान उत्पन्न होता ही नहीं। परन्तु भाषा विवेक में क्या आवे? कि ज्ञान करके अज्ञान छोड़ दे। सम्यग्दर्शन करके मिथ्यात्व छोड़ दे। अर्थात्? कि आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसकी अन्दर प्रतीति और अनुभव करने से मिथ्यात्व का उदय होता ही नहीं। होता नहीं, उसे मिथ्यात्व छोड़ा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! उपदेश की शैली तो जो आती हो, ऐसी आवे न!

सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर.... लो, यह त्याग। यह बाहर के समझे बिना के त्याग करके बैठे, परन्तु मिथ्यात्व का त्याग नहीं, वहाँ एक भी त्याग है ही नहीं। स्त्री, पुत्र छोड़कर, दुकान छोड़कर साधु हुए। त्याग किया। क्या त्याग किया? यह मिथ्यात्व का त्याग तो है नहीं पहले अभी। धर्म का त्याग किया। यह नियमसार में आता है, हों! धर्म का त्याग। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा भगवान आत्मा की श्रद्धा करके मिथ्यात्व का त्याग तूने किया नहीं और इसके बिना बाह्य का त्याग करके अभिमान हो जाये कि हम साधु-त्यागी हैं, वह तो सब मिथ्यात्व के पोषक हैं। समझ में आया?

सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का त्याग कर और अहिंसा लक्षण धर्म के होने पर आरम्भसहित मोह को छोड़। लो! यह तीसरा अहिंसा। राग की अनुत्पत्ति, वीतरागभाव की उत्पत्ति, वह अहिंसा। अहिंसाभाव करके हिंसाभाव छोड़। आहाहा! आरम्भ, जो राग, पुण्य-पाप के भाव, वह सब आरम्भ है, वह हिंसा है, विकार है, परिग्रह है। आहाहा! उसने आत्मा के स्वभाव की अहिंसा अर्थात् कि शुद्ध चैतन्यस्वभाव की वीतरागता उत्पन्न करके उस मोह को छोड़ दे। इस अहिंसा की यह व्याख्या है। यह पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आयेगा। रात्रि में अपने कहा था। पुरुषार्थसिद्धिउपाय। पुरुषार्थसिद्धिउपाय है या नहीं तुम्हारे गुजराती? गुजराती है यहाँ? है नवनीतभाई?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वाँचना। वाँचने के लिये। वरना अपने यहाँ हिन्दी है, वह देते हैं। ऐसा कहते हैं। तुम तो हिन्दी कहाँ वाँचते हो? आहाहा! यह तो समझे। यह तो मुम्बई में रहते हैं। बहुत सरस गाथा है उसमें।

मुमुक्षु : मुम्बई में रहकर सब पाठ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पाठ पढ़ लिये हैं। यह तो है १२ (२१२) गाथा में। जिस अंश में सम्यग्दर्शन उतने अंश में अबन्ध, जितने अंश में राग, उतने अंश में बन्ध। गाथा बहुत अच्छी है। और राग की उत्पत्ति, वह हिंसा। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभराग, वह भी हिंसा है। आहाहा! विकल्प है न? उसे अहिंसा द्वारा अर्थात् रागरहित

वीतराग पर्याय द्वारा वह हिंसा की पर्याय छोड़ दे। वह हिंसा की पर्याय.... है नहीं। उसे छोड़ दे, ऐसा कहा जाता है। इसलिए तीन बातें आयीं। ज्ञान से अज्ञान छोड़; सम्यग्दर्शन की श्रद्धा (से मिथ्यात्व) छोड़; अहिंसा प्रगट करके हिंसा छोड़। परन्तु यह अहिंसा, हों! जगत की दया पालकर, वह अहिंसा नहीं। तेरी दया। वीतरागस्वरूप मैं चैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसी श्रद्धा करके राग की उत्पत्ति न हो और वीतराग की उत्पत्ति हो, उसे अहिंसा कहा जाता है। वह अहिंसा प्रगट करके हिंसा का आरम्भ, राग की उत्पत्ति... छोड़ दे। आहाहा!

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ४, बुधवार, दिनांक-२८-११-१९७३
गाथा- १५, १६, १७, १८, प्रवचन-५३

चारित्र अधिकार (पाहुड़) है न? चारित्र कब होता है? कि प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त हो। आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, आनन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर में दृष्टि स्व के आश्रय से हुई हो और स्व का ज्ञान हुआ हो, उस सहित चारित्र हो तो उसे चारित्रवन्त कहा जाता है। यहाँ तो यह कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करके **फिर मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र में मत प्रवर्तो,....** अज्ञानियों ने कहे हुए दूसरे उल्टे मार्ग, उनमें न प्रवर्तो, ऐसा कहते हैं। अपना भगवान आत्मस्वभाव, उसकी शुद्ध श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता पाकर मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान में न प्रवर्तो, ऐसा कहते हैं। **आगे फिर उपदेश करते हैं।** क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : होने के पश्चात् प्रवर्तता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रवर्त जाता है। ऐसा नहीं करते? आने के बाद भी उल्टी श्रद्धा में जुड़ जाता है।

मुमुक्षु : ....अलग पड़ा और मिथ्यादर्शन था, सम्यग्दर्शन था उसमें से फिर मिथ्यादृष्टि?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि हो जाये। उल्टी श्रद्धा नहीं होती? और यह कहने का मूल आशय तो ऐसा है कि यह सम्प्रदाय भेद पड़ गये और उसमें जो मिथ्यात्व श्रद्धा आदि की प्रवृत्ति हुई और जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, चारित्र आदि, उसे ऐसे मार्ग का आश्रय नहीं लेना, ऐसे मार्ग की महिमा नहीं करना, वरना मिथ्यादर्शन होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मार्ग तो ऐसी बात है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भेद पड़े। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में। वास्तविक मार्ग तो सनातन दिगम्बर धर्म अनादि सनातन था। उसमें यह आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का दर्शन, अनुभव, ज्ञान और रमणता, यह मोक्ष का मार्ग था और यही मोक्ष का मार्ग है। तो

उसमें से यह भेद पड़ गये, भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में। तो कहते हैं कि ऐसा मार्ग पाकर फिर से भी ऐसे मार्ग में जाना नहीं। ऐसा कहते हैं। सेठ! ऐसा है। आहाहा! यह मिथ्यादर्शन-ज्ञान ऐसा कि पहले तो था मिथ्यादर्शन आदि और फिर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को पाकर फिर से मिथ्यादर्शन में न जाओ।

★ ★ ★

गाथा - १६

आगे फिर उपदेश करते हैं:—

पव्वज्ज संगचाए, पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे।
होइ सुविसुद्धेझाणं, णिम्मोहे वीयरायत्ते॥१६॥

अर्थ:—हे भव्य! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य उपदेश करते हैं। **हे भव्य! तू संग अर्थात् परिग्रह का त्याग जिसमें हो, ऐसी दीक्षा ग्रहण कर....** ऐसा। बात तो यही कहते हैं। जिसमें परिग्रह नहीं, वस्त्र, पात्र, स्त्री, परिवार का जिसमें परिग्रह नहीं, ऐसी दीक्षा ग्रहण कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दीक्षा तो यह सब बहुत नाम कहे दीक्षा... दीक्षा। परन्तु यह नहीं। जिसमें वस्त्र, पात्र का भी परिग्रह नहीं, अन्तर में राग का भी जिसे मिथ्यात्व का परिग्रह नहीं, जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा है, ऐसी प्रवज्या अंगीकार कर। आहाहा! भेद पड़ गये, इसलिए बड़े विवाद उठे।

परिग्रह का त्याग जिसमें हो, ऐसी दीक्षा ग्रहण कर और भले प्रकार संयमस्वरूपभाव होने पर सम्यक् प्रकार तप में प्रवर्तन कर.... स्वरूप में स्वरूप की दृष्टिपूर्वक स्वरूप में रमणतापूर्वक हो तो **सम्यक् प्रकार तप में प्रवर्तन कर....** विशेष इच्छा का निरोध करके स्वरूप में आनन्द की दशा में उग्ररूप से प्रवर्त। इसका नाम तप है। आहाहा! स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र होने के उपरान्त पुरुषार्थ की उग्रता से शान्ति और आनन्द की दशा प्रगट करे, इच्छा का निरोध करे, उसे यहाँ तपस्या कहा जाता है। आहाहा!

जिससे तेरे मोहरहित वीतरागपना होने पर.... भगवान आत्मा ज्ञान और

आनन्दस्वरूप की प्रतीति, ज्ञान और रमणता में उग्ररूप से पुरुषार्थ करके, तप को अर्थात् शान्ति को प्रगट कर। वस्तु का स्वरूप तो जैसा है, वैसा इसे जानना चाहिए न! **तेरे मोहरहित वीतरागपना होने पर....** भगवान आत्मा, वह तो वीतरागस्वरूप है। आत्मा का स्वरूप ही वीतराग। ऐसे वीतरागस्वरूप के आश्रय से वीतरागपना प्रगट कर। मोहरहित वीतरागपना प्रगट कर। **निर्मल धर्म-शुक्लध्यान हो।** जिससे तुझे निर्मल धर्म... कैसा? **वीतरागपना होने पर निर्मल धर्म-शुक्लध्यान....** कितने ही कहते हैं न कि धर्मध्यान तो रागवाला, उसे धर्मध्यान कहते हैं। अभी बड़ी गड़बड़ उठी है। शुभराग, वह धर्मध्यान; शुद्ध उपयोग, वह शुक्लध्यान। ऐसा (वे) कहते हैं। रतनचन्दजी बहुत लिखते हैं। बहुत लिखते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि **वीतरागपना होने पर निर्मल धर्म-शुक्लध्यान हो।** यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हैं, वह राग है। उससे भिन्न आत्मा के स्वरूप की दृष्टि करके अन्तर में वीतरागता प्रगट करना, वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। समझ में आया? बहुत मार्ग, अलौकिक मार्ग लोगों को सुनने को नहीं मिलता। वस्तु स्वयं चैतन्यघन है, वीतरागमूर्ति है, उसका अवलम्बन लेकर वीतरागता प्रगट होती है। बाहर के कोई देव-गुरु-शास्त्र का अवलम्बन लेकर वीतरागता प्रगट नहीं होती। बाहर के अवलम्बन से तो शुभराग होता है। वह धर्मध्यान नहीं है। धर्म तो आत्मा के आनन्द और ज्ञानस्वभाव का ध्यान, ज्ञान की परिणति... यह वे कहते हैं, उसमें आया। ऐसा कि शुभराग, वह ज्ञानचेतना है। ऐसा आया। शुभराग, वह ज्ञानचेतना है, ऐसा कहा है। आहाहा! उसमें आया है। पत्र में आया है, उस पत्र में आया है, उसमें आया है। ऐसा नहीं है। शुभराग, वह ज्ञानचेतना नहीं। वह तो कर्मचेतना है। उसे शुभराग का भाव धर्मध्यान.... सिद्ध करना है न? इसलिए उसे ज्ञानचेतना कही है, ऐसा लिखा है। आहाहा! ज्ञानचेतना तो आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, उस ज्ञान में एकाग्रता की परिणति, वह ज्ञानचेतना है। उसने कहा है, शुभराग है, वह ज्ञानचेतना है। गजब करते हैं न!

मुमुक्षु : राग को धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को धर्म। शुभराग शुभ उपयोग। चौथे गुणस्थान से सातवें

तक तो शुभराग ही होता है उसे। शुभ उपयोग ही होता है। खानियाचर्चा में भी है। शुभ उपयोग ही होता है, आहाहा! और वह उसे ज्ञानचेतना कही है, ऐसा।

यहाँ तो चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव की एकाग्रता की परिणति-भाव, वह धर्मध्यान है। आहाहा! अर्थ कठिन इसे। उसका नाम ज्ञानचेतना है। शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह तो राग है, कर्मचेतना है। वह धर्मचेतना—ज्ञानचेतना नहीं। आहाहा! दृष्टि में विपरीतता के कारण सब पूरी विपरीत खतौनी हो जाती है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी, उस ज्ञानस्वभाव में ज्ञान की परिणति, ज्ञान की एकाग्रता और ज्ञान और आनन्द की दशा को ज्ञानचेतना और वह धर्मध्यान और वह शुक्लध्यान। उग्र-उग्र पुरुषार्थ हुआ, वह शुक्लध्यान; मन्द पुरुषार्थ हुआ, वह धर्मध्यान। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहा न, **मोहरहित वीतरागपना होने पर....** राग है शुभ, वह तो माह है। चाहे तो भगवान की भक्ति, दया, दान, व्रत, तप, अपवास आदि का विकल्प, वह सब शुभराग है। आहाहा! और यहाँ तो मोहरहित—राग और मिथ्यात्व श्रद्धारहित वीतरागपना। आहाहा! है न। पाठ है न देखो! '**णिम्मोहे वीयरायत्ते**' पाठ है न '**णिम्मोहे वीयरायत्ते**' अस्ति-नास्ति की। मिथ्यात्व और रागरूपी मोह से रहित वीतरागी दृष्टि और वीतरागी स्थिरता, उसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहते हैं। आहाहा! अरे! झगड़े खड़े हुए। लोगों की कायरता, मन्दता, उन्हें मन्दता में चढ़ा दिया। शुभराग, वह भी धर्म है। व्रत, तप, अपवास आदि विकल्प है वह तो, वह धर्म है—ऐसा चढ़ा दे वे अज्ञानी। अरे! भाई! एक सेकेण्ड का धर्मध्यान जन्म-मरण के अन्त को लावे। एक सेकेण्ड में। ऐसे स्वरूप चिदानन्द मूर्ति परमात्मा का अन्दर एकाग्रता का भजन, वह तो शुद्ध परिणति है, ज्ञानचेतना है, आनन्द की रमणता है। आहाहा! उसे यहाँ ज्ञानचेतना को धर्मध्यान, वीतरागभाव और धर्मध्यान कहा है। रागभाव धर्मध्यान नहीं। भारी कठिन काम! वे पहुँच सके नहीं। २०-२२ घण्टे मानो संसार का कमाना, भोग और सोने में निकाले। घण्टे, दो घण्टे मिले, सुनने जाये। ऊपर जो कहे वह सुने। उसमें कुछ निर्णय करने की ताकत, समय नहीं मिलता। ऐ ... जाओ, ऊपर (कहनेवाला जो) कहे वह सच्चा, जाओ। पण्डितजी!

मुमुक्षु : डुबनेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! हाँ।

यहाँ तो आत्मा देह से भिन्न, पुण्य-पाप के राग से भिन्न, ऐसे आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह निर्मोह वीतरागता है। जिसमें राग की परसन्मुख की सावधानीरहित और स्व की सावधानीसहित वह वीतरागता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यक्त्वचरण के साथ ही?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में।

मुमुक्षु : .... के साथ ही?

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ ही होता है चौथे में। यह तो साथ में स्वरूपाचरण स्थिरता है न! चौथे में सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व .... का नाश हुआ, सम्यक् सत्य की प्रतीति का भान हुआ और अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, इतनी स्वरूप की स्थिरता हुई। वह स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान से होता है। इसका विवाद बड़ा विवाद। स्वरूपाचरण नहीं होता, लो! ऊपर होता है आठवें से, फलाने से। सातवाँ विशुद्ध उपयोग कहा है, उसने खानिया में रतनचन्दजी। सातवें गुणस्थान तक। समझे न? चौथे से सातवें तक शुभ उपयोग है। फूलचन्दजी ने कहा, बापू! परन्तु चौथे से ज्ञान की रमणतारहित का राग भाव वह धर्मध्यान? आहाहा! बहुत फेरफार हो गया। ऐसी स्थूलता हो गयी।

रात्रि में तो विचार आया था कि यह रतनचन्दजी का लेख है? ऐसा हो गया। वह स्थूल आया न बहुत स्थूल, भाई! मैंने कहा, यह रतनचन्दजी का है? हाँ, रतनचन्दजी का। बहुत स्थूलता। ओहोहो! प्रभु! मार्ग तो जो है, वह है, बापू! दुनिया बदला डाले तो बदल जाये, ऐसा मार्ग नहीं है। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में आया हुआ मार्ग है। समझ में आया? चैतन्यबिम्ब प्रभु रागरहित स्वभाव जिसका, ऐसे स्वभाव की एकाग्रता में राग कहाँ आया? वह तो मोहरहित दशा है और मोहरहित और वह वीतरागदशा है। उस वीतरागभाव को धर्मध्यान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ: —निर्ग्रन्थ हो दीक्षा लेकर,.... देखा! यह तो वस्त्रसहित मुनिपना मनाया था न श्वेताम्बर ने? यह मार्ग नहीं है। आहाहा! मार्ग तो दूसरा है, बापू! इससे यहाँ कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य, सनातन वीतरागमार्ग है, उसे प्रसिद्ध करते हैं। **निर्ग्रन्थ हो दीक्षा लेकर,....** रागरहित और वस्त्ररहित ऐसी दशा को निर्ग्रन्थदशा कहते हैं। आहाहा! बहुत कठिन पड़ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संग, संग का अर्थ यह। वस्त्र आदि का संग, वह संग। यह परिग्रह कहा न। परिग्रह है। आहाहा! अभ्यन्तर परिग्रह मिथ्यात्व और राग-द्वेष, बाह्य परिग्रह वस्त्र, पात्र और स्त्री-परिवार। दोनों का जिसे त्याग हो, उसे दीक्षा हो सकती है। समझ में आया? बाह्य का—वस्त्रादि का त्याग करे और निर्ग्रन्थ हो बाह्य से, वह निर्ग्रन्थ नहीं। मिथ्यात्व के त्याग और राग के त्याग में परिणति हो, उसे निर्ग्रन्थ कहा जाता है। आहाहा! बाह्य से नग्न हो जाये, पंच महाव्रत के परिणाम पालन करे, परन्तु वह तो राग का कर्तव्य है, ऐसा मानते हैं। यह मेरा कर्तव्य है यह। नग्नपना यह मैंने किया है, ऐसा मानते हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? नग्नमुद्रा होती है, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते हैं, परन्तु धर्मी को कर्तृत्वबुद्धि से नहीं। नग्नपना मैंने किया है, ऐसा नहीं। अजीव की दशा ऐसी सहज हो जाती है। और पंच महाव्रत के परिणाम ऐसे भूमिकाप्रमाण आ जाते हैं। कर्तृत्वबुद्धि नहीं, करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं। परिणमन है, इस अपेक्षा से कर्ता है। आहाहा! गजब बातें!

निर्ग्रन्थ हो दीक्षा लेकर, संयमभाव से भले प्रकार तप में प्रवर्तन करे, तब संसार का मोह दूर होकर वीतरागपना हो,.... आहाहा! चारित्र अर्थात् क्या दशा? जिसे गणधर नमस्कार करें। णमो लोए सव्व साहूणं। सन्त के चरण में वन्दन करे। सीधे न करे परन्तु णमोकार गिने उसमें आवे न? आहाहा! यह पद कितना बड़ा है! अभी तो मिथ्यात्व का त्याग नहीं और बाहर के त्याग लेकर बैठ जाये और बाह्य का त्याग, जिसे अभ्यन्तर के त्यागसहित बाह्य का त्याग नहीं, उसे मुनिपना हो सकता ही नहीं। आहाहा! वस्त्र रखे दो-दो, तीन-तीन, चार-चार और हम साधु हैं, वह तो जैनदर्शन से विरुद्ध बात है। वीतरागमार्ग से विरुद्ध है। वीतराग मोहरहित का मार्ग परमात्मा का। आहाहा!

एक व्यक्ति और यहाँ कहता था यहाँ। पाँच सौ रुपये की अच्छी कम्बल लाना, हों! पाँच सौ रुपये की कम्बल। कहो, अब परन्तु इतना बड़ी, महाराज तू तेरे लाना न। तू तेरे लाना न। अरे! यह क्या कहें ?

मुमुक्षु : मुश्किल-मुश्किल से समय आया है, ऐसा ओढ़ने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : और मुम्बई जैसा शहर, इसलिए बहुत दो नम्बर के पैसे बहुत हों। तो उसमें से... आहाहा! अलमारियाँ भरे। यह मुम्बई जाये सात-आठ बार तो अलमारी भरकर आवे सब। यह मुनि, बापू! प्रभु! तुझे नुकसान होता है, भाई! आहाहा!

भगवान तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर, जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं, उन प्रभु की वाणी में तो आत्मा के भानसहित की स्थिरता की रमणतावाले को वस्त्र का त्याग होता है। उसे निर्ग्रन्थदशा कहा जाता है। भारी कठिन काम। अभी तो सम्प्रदाय बँध गया। बड़े-बड़े पण्डित फिरे, उसमें इस मार्ग को बाहर रखना। बहुत कठिन काम। आहाहा!

फिर निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान होते हैं,.... आहाहा! आत्मा के अन्तर आनन्दस्वरूप का ध्यान, उसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! इन्द्रिय का जो सुख कल्पना है, वह तो दुःख—जहर है। इन्द्रिय के विषयों में जो प्रेम होता है, भोग में, विषय में, कीर्ति में, वह तो जहर का प्याला है, विकार, दुःख है। आहाहा! उससे रहित प्रभु आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है आत्मा। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप की अन्तर दृष्टिसहित उसका अनुभव, उसे यहाँ नग्न बाह्य और अभ्यन्तर यह नग्न, उसे मुनिपना कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान होते हैं,.... देखो! कितनी वीतरागता, **वीतरागपना हो, फिर निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान....** ऐसा कहा है, भाई! उस राग को धर्मध्यान नहीं कहा। आहाहा! क्या कहते हैं यह ? इस दिगम्बर धर्म में यह। हो, राग आवे, वह अलग बात है। राग होता तो है, परन्तु वह धर्मस्वरूप नहीं, पुण्यस्वरूप है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, देव-गुरु-धर्म की भक्ति, देव-गुरु-धर्म का बहुमान, विनय, वह सब

शुभराग है। भगवान आत्मा का बहुमान श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह वीतरागभाव है। कठिन बात ही अभी पहली। बहुत फेरफार हो गया, बहुत फेरफार। यह तो रात्रि में ही शंका पड़ गयी कि यह रतनचन्दजी ने इतना अधिक पढ़ा है और यह अन्तर ऐसा हो गया। मैंने रात्रि में पूछा था। बहुत अन्तर ऐसा। यह तो इतना पढ़ा है। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य की समय की पर्याय पराधीन है, ऐसा (वे) कहते हैं। गजब बात है न! आहाहा!

मुमुक्षु : जैसा निमित्त आवे, वैसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त आवे, वैसा होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वाधीन को पराधीन बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल स्वाधीन है और निमित्त के आधीन होता है, वह भी स्वतन्त्ररूप से होता है। वह निमित्त, आधीन कराता है, ऐसा नहीं। राग अपनी पर्याय में होता है, वह कर्म के निमित्त के आधीन स्वयं होता है। ऐसा उसका पर्याय का ईश्वर धर्म है। ईश्वर... अनीश्वर। ४७ नय। आहाहा! अभी यहाँ आयेगा। श्रद्धा करे, वह अपना दर्शन, गुण और पर्याय विकारी और अविकारी, उसे वह बराबर श्रद्धा करता है। ज्ञान बराबर जानता है और श्रद्धा करता है, वह बराबर श्रद्धा करता है। आहाहा! आयेगी यह १८वीं गाथा। समझ में आया? अरे! यह धीर का मार्ग है, बापू! यह कोई वाद और विवाद को .... अन्तर शान्तस्वरूप वीतरागमूर्ति की दृष्टिपूर्वक स्थिर होना, यह वह कहीं बात है! आहाहा! और इसके बिना इसे मोक्ष का मार्ग तीन काल में होगा नहीं।

इस प्रकार ध्यान से केवलज्ञान उत्पन्न करके.... इस प्रकार की वीतरागी पर्याय के द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न करके **मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिए इस प्रकार उपदेश है।** भगवान, सन्तों का, कुन्दकुन्दाचार्य का उपदेश है। भगवान ने कहा हुआ यह उपदेश उनका है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १७

आगे कहते हैं कि यह जीव अज्ञान और मिथ्यात्व के दोष से मिथ्यामार्ग में प्रवर्तन करता है:—

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं।
वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्ताबुदधिउदएण॥१७॥

अर्थ:—मूढ़ जीव अज्ञान और मोह अर्थात् मिथ्यात्व के दोषों से मलिन जो... आहाहा! **मिथ्यादर्शन अर्थात् कुमत के मार्ग में मिथ्यात्व....** मार्ग में प्रवर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मूढ़ जीव अज्ञान और मिथ्यात्व के दोष से मलिन वह **मिथ्यादर्शन अर्थात् कुमत के मार्ग में....** है न? **'मूढजीवा मिच्छत्ताबुदधिउदएण'** **कुमत के मार्ग में मिथ्यात्व और अबुद्धि अर्थात् अज्ञान के उदय से प्रवृत्ति करते हैं।** आहाहा! वस्त्र, पात्र, लकड़ी, डण्डा रखना और मुनिपना, कहते हैं कि वह तो सब कुमार्ग है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

मूढ़ अज्ञानी जिसे भान नहीं। प्रभु आत्मा शुद्ध वीतरागमूर्ति की प्रतीति, खबर नहीं, उसके ज्ञान की खबर नहीं। वह उल्टे रास्ते... साधुपना जहाँ नहीं, ऐसे में साधुपना मानकर और कुमार्ग के रास्ते प्रवर्तता है, ऐसा कहते हैं। वीतरागमार्ग में तो वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना माने, (वह) निगोद में जाता है, ऐसा भगवान कहते हैं। समझ में आया? वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर यहाँ मुनि है, ऐसा माने तो निगोद में एकेन्द्रिय में जायेगा लूला-बुला। लूला अर्थात् पैररहित और मुंगा अर्थात् वचनरहित एकेन्द्रिय। होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

कोई कहता है कि यह तो ककड़ी के चोर को फाँसी। ककड़ी के चोर को क्या कहे? फाँसी, ऐसा नहीं है। वह नौ तत्त्व का चोर है, गुनहगार है। जो वीतरागमूर्ति प्रभु के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से ज्ञान और उसके आश्रय से स्थिरता होती है, ऐसी दशा में बाहर के ऐसे आलम्बन उसे रहते ही नहीं। समझ में आया? वस्त्र, पात्र, लकड़ी, लकड़ा, बड़ा दण्ड रखे, वह सब कुदर्शन का मार्ग है।

अबुद्धि अर्थात् अज्ञान के उदय से.... अरे! भान नहीं होता, कहते हैं। उसके

कारण से प्रवर्ते। वह यह सच्ची पहिचान कराते हैं (कि) सच्चे साधु-सन्त किसे कहते हैं। उसकी श्रद्धा में सच्चा होना चाहिए न! आहाहा! **मूढ़ जीव मिथ्यात्व और अज्ञान के उदय से मिथ्यामार्ग में प्रवर्तते हैं, इसलिए मिथ्यात्व-अज्ञान का नाश करना यह उपदेश है।**

★ ★ ★

गाथा - १८

अब १८। अब लम्बी बात आयेगी। **आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, श्रद्धान से चारित्र के दोष दूर होते हैं:—**

सम्मद्दंसण पस्सदि, जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मेण य सद्दहदि, य परिहरदि चरित्तजे दोसे॥१८॥

पहला '**सम्मद्दंसण**' यह दर्शन है, समकित नहीं। दर्शन है। '**सम्मद्दंसण**' का अर्थ यहाँ दर्शन उपयोग। दर्शन। **अर्थः—यह आत्मा सम्यग्दर्शन से तो सत्तामात्र वस्तु को देखता है,....** सम्यक्त्व, यह बाद में लेंगे। '**सम्मेण**' यह... यह तीसरा पद आयेगा। वह समकित है। यहाँ '**सम्मद्दंसण**' जैसा वस्तु का स्वरूप है, उस प्रकार से उसकी सत्ता—चैतन्य की सत्तामात्र वस्तु भगवान पूर्ण शुद्धघन, उसे देखे, उसको दर्शन कहा जाता है। सम्यग्दर्शन नहीं। देखनेरूप दर्शन। वस्तु भगवान आत्मा स्वसत्ता पूर्णरूप ऐसी सत्ता पूर्ण परमात्मा का निज स्वरूप परमात्मा है। आहाहा! उसे देखे, उसे समदर्शन कहा जाता है। उसे सच्चा दर्शन कहा जाता है। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान से द्रव्य और पर्याय को जानता है,.... लो! लो, चेतनजी! क्या कहा यह? सम्यग्ज्ञान से, द्रव्य है त्रिकाल, उसे जाने, पर्याय में शुद्धता, अशुद्धता उसे बराबर जाने। आहाहा! वेदन है जितना और वेदन जितना नहीं, दोनों को बराबर पर्याय में जाने, ऐसा कहते हैं। दु:खादि के परिणाम, दोषादि के परिणाम का वेदन है, उसे भी ज्ञान बराबर जानता है।

मुमुक्षु : सम्यग्ज्ञान नाम तो श्रद्धा होने के पश्चात् पाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ बात है? है साथ में (परन्तु) यह कहाँ प्रश्न है? यहाँ तो दर्शन से देखे और ज्ञान से द्रव्य-पर्याय को जाने। और समकित से उसे श्रद्धा करे, ऐसे साथ में सब है। समझ में आया? फिर शब्द रखा है न, देखो न! '**सम्मेण य सद्दहदि**' यह दो बोल लेने के पश्चात् लिया है इसे। भगवान आत्मा सत्ता, पूर्ण सत्ता वीतरागरूप से पूर्ण सत्ता जो चैतन्य की, उसे जो अन्दर देखे, उसे दर्शन-देखने का उपयोग, देखने की दशा कहा जाता है। और ज्ञान त्रिकाली द्रव्य को जाने, गुण को जाने और उसकी अवस्था में क्रोध, मान, राग आदि.... अर्थ में सब है, हों! यह कहेंगे। किस गति में वर्तता है? कौन सा क्रोध, मान, माया है? वेदन क्या है? कितना मलिन वेदन है? कितना निर्मल वेदन है? सबको सम्यग्ज्ञान जानता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध जब तक पर्याय में न हो, तब तक उसे पूर्ण शुद्ध के आश्रय से—द्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट हुई हो, उसे जाने, द्रव्य को जाने और साथ में अशुद्धता जो राग का भाग रह गया दोष का, अर्थात् कि दुःख का, उसे वेदता है, ऐसा जाने। कहो, क्या हुआ? चेतनजी! दोष को जाने और दुःख को वेदे नहीं? आहाहा! दोष है, वह किसमें है? अद्धर है?

मुमुक्षु : पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो पर्याय में राग-द्वेष है, उसका वेदन है या नहीं? वेदन है। वेदन बिना अद्धर में राग है? वेदता है। आहाहा! जानता है कि यह परवस्तु मेरी चीज़ नहीं, परन्तु पर्याय में वेदन है, वह मुझमें है। मुझमें है। आहाहा! द्रव्य, पर्याय को ज्ञान बराबर जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत मार्ग!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव वस्तु की स्थिति को प्रसिद्ध और प्रमाण से बाहर बताते हैं। कहते हैं कि प्रभु तू आत्मा। **सम्यग्दर्शन से तो सत्तामात्र वस्तु को देखता है....** अपना अस्तित्व। परन्तु ज्ञान है या आनन्द है, ऐसा नहीं। अस्तित्व, बस इतना। उसे देखे। आहाहा! यह तो अभी निचली श्रेणी की बात चलती है। **सम्यग्ज्ञान से द्रव्य और पर्यायों को जानता है,....** धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जो पूर्ण वस्तु है, उसकी सत्ता को देखे और सत्तासहित पर्याय में अशुद्धता, शुद्धता, मनुष्यपना, देवपना

आदि पर्याय में क्या है, उसे भी बराबर जाने। समझ में आया? राग होता है, पर्याय में जब तक वीतरागता (पूर्ण) न हो, तब तक भाव होता है। परन्तु उसे जानने चाहिए कि यह है। पर के कारण से है, ऐसा नहीं। यह मेरी अपनी अपराधदशा है। आहाहा! तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह शुभ अपराध है। वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे, सम्यग्दृष्टि ही बाँधता है। वह भी शुभ उपयोग का अपराध है। आहाहा! यह वह। ऐसा ज्ञानी ज्ञान में—पर्याय में जानता है कि यह अपराध है। आहाहा! यह अपराध होगा, वह वेदन में होगा या अद्धर में होगा?

वे पकड़ा गये वे उसमें उन निहालभाई के आमने-सामने। निहालभाई ने कहा कि यह भगवान की भक्ति आदि भी शुभ है, दुःख है। (सामनेवाले ने कहा), वह दुःख नहीं। राग है, बापू! कषाय है। कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् लाभ। इस शुभभाव से संसार की प्रवृत्ति है। यह संसारभाव है। आहाहा! कषाय शब्द पड़ा है न? कष-कष अर्थात् संसार। यह भगवान की भक्ति, पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग है, परन्तु है वह संसारभाव है। कठिन काम, बापू! वीतरागमार्ग को इसने अनादिकाल से माना है कि मैंने जाना और हम भी धर्म में हैं। कल्पना की है, परन्तु वस्तु की स्थिति को जाना नहीं। ओहो! चौरासी लाख के अवतार में जन्म-मरण करके दुःखी... दुःखी... दुःखी... मिथ्यात्व के कारण दुःखी है यह। समझ में आया? पश्चात् धर्म समझने के बाद भी राग होता है, उसका वेदन है, परन्तु उस पूर्ण वेदन का अभाव है, इसलिए वेदन है। यह सम्पूर्ण आत्मा के आनन्द का वेदन करके, यह वेदन छोड़ देगा। आहाहा!

पर्याय को... तो नहीं कहा? शुभराग, वह जहर है, यह नहीं कहा? विषकुम्भ है। और विष्टा कहने से उन्हें कठिन लगता है। विषकुम्भ कहे वह ठीक। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव... यह नहीं आया? 'इन्द्रसरीखा भोग... चक्रवर्ती की सम्पदा अरु इन्द्रसरीखे भोग, कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' इन्द्र के भोग और चक्रवर्ती की सम्पदा जिसे छियानवे हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ और जिसकी १६-१६ हजार देव सेवा करे, उस सम्पदा को सम्यग्दृष्टि कौवे की विष्टा मानता है। कागडा समझते हो? कौआ। मनुष्य की विष्टा होती है, उसकी तो खाद भी होती है। खातर समझते हो? खाद... खाद। खेती बनावे। बनाते हैं न सब विष्टा बहुत नगर के बाहर विष्टा डालते हैं।

कौवे की विष्टा तो कुछ काम ही नहीं आती। कौवे की विष्टा सूखी होती है। 'सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र के भोग, कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' आहाहा! जिसे उस भोग का प्रेम और रुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है।

भोग होता है, परन्तु उसकी वृत्ति और वासना भी होती है, परन्तु उसमें रुचि नहीं, सुखबुद्धि नहीं उसमें। अज्ञानी को तो उसमें सुखबुद्धि है, मुझे ठीक पड़ता है, मजा आता है। आहाहा! यह स्त्री के भोग, पति के भोग, उसमें जो उसे मजा आता है, वह जहर के प्याले में मजा है। सम्यग्दृष्टि को दु:ख लगता है। आहाहा! समझ में आया? उसे दु:ख का वेदन है उतना। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूपी प्रभु की जिसे रुचि और दृष्टि और पोषाण हुआ, उसे वह पुण्य-पाप के पोषाण पोसाते नहीं। रुचते नहीं, सुहाते नहीं, तथापि होते हैं। आहाहा! यह कोई मार्ग है यह तो बापू! यह कोई साधारण बात नहीं है। दया पालकर धर्म हो गया, पाँच-पचास हजार दान दिये और धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं, सुन न अब। आहाहा!

धर्म तो आत्मा में राग के विकल्प से रहित शुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि और ज्ञान में रमे, उसे धर्म कहा जाता है। वीतरागमार्ग में तो यह धर्म है। अज्ञानियों ने किसी प्रकार से माना हो तो उनके घर की बात है। आहाहा! देखो न, क्या कहते हैं? **द्रव्य और पर्यायों को जानता है,....** आहाहा! यह दृष्टि है, वह तो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन है और उसका विषय सामान्य अभेद है। उसमें उसे पर्याय का विषय नहीं, पर्याय का जानना उसमें कहाँ है? क्योंकि वह तो निर्विकल्प सत्तामात्र है। परन्तु उस सम्यग्दर्शन के साथ हुआ ज्ञान, वह तो स्वपरप्रकाशक सविकल्प है। साकार है। वह पहला दर्शन उपयोग निराकार है। सम्यग्दर्शन भी निराकार है। निराकार उपयोग भले न हो, परन्तु उसमें सत्ता है, इतनी सम्यग्दर्शन को खबर नहीं। और सम्यग्दर्शन को खबर नहीं कि मैं सम्यग्दर्शन हूँ। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प पर्याय है, उसका विषय निर्विकल्प द्रव्य है। परन्तु यह ज्ञान जो है, वह तो त्रिकाली द्रव्य को जाने। ऐसा मार्ग गजब, भाई! और वर्तमान पर्याय में जितनी निर्दोषता प्रगट हुई, उसे वैसे जाने, जितनी सदोषता रही, उसे वैसे जाने। आहाहा!

अरे! इसने कभी मार्ग लिया नहीं। प्रभु ने कहा मार्ग इसने अन्तर में लिया नहीं। बाहर से मान बैठे हम भगवान के भक्त हैं, भगवान को मानते हैं। वे कहे, हम स्थानकवासी;

वे कहे हम मन्दिरमार्गी; वे कहे (हम) दिगम्बर। आहाहा! वह वस्तु अलग रह गयी बापू! अन्तर चैतन्यस्वरूप जो भगवान वीतरागमूर्ति, जिसे अपने आनन्द के समक्ष अन्यत्र कहीं आनन्द भासित नहीं होता धर्मी को। यह अप्सरा जैसी छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती को होती हैं, परन्तु उसमें धर्मी को कहीं सुख भासित नहीं होता। क्योंकि जिसे सुख आत्मा में है, ऐसा भासित हुआ, उसे अन्यत्र कहीं सुख है, ऐसा धर्मी को भासित नहीं होता। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो शरीर की सुन्दरता हो, लक्ष्मी हो, पुत्र बड़ा लाखों हो। चक्रवर्ती को (हजारों) पुत्र होते हैं। छियानवें हजार स्त्रियाँ और ... ६४ हजार पुत्र होते हैं, ऐसा कहते हैं। ३२ हजार पुत्रियाँ। ऐसा आता है। आहाहा! वे रतन की मूर्ति जैसे पुत्र हों। मानो रतन की मूर्ति हों, ऐसे। वे मेरे नहीं, हमको उसमें कहीं प्रेम-रस नहीं। आसक्ति का राग होता है। परन्तु वे मेरे हैं और उसमें मुझे मिठास है, ऐसा उसे मिथ्याभाव नहीं होता। आहाहा! ऐसा ज्ञानी ज्ञान में बराबर जैसा राग है आसक्ति का, उसे जानता है। प्रेम नहीं। परन्तु राग होता है। जहाँ वीतराग नहीं, वहाँ तक राग होता है। आहाहा! उसे धर्मी का ज्ञान, ज्ञान बराबर पता लेता है, कहते हैं। आहाहा!

श्रीमद् में एक वाक्य आता है कि दोष भी ख्याल बाहर रहता नहीं, यही मेरी बलिहारी ज्ञान की। भाई! एक शब्द है। कोई भी दोष ख्याल बाहर जाता नहीं, यही ज्ञान की बलिहारी है। गिरधरभाई! यह तो मार्ग की बातें हैं, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... शब्द तो दूसरे हैं। कहो, समझ में आया? कहाँ शान्तिभाई! आये हैं या नहीं? चले गये?

मुमुक्षु : भावनगर आये विवाह में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह में आये। तुम्हारे लिये नहीं?

मुमुक्षु : हमारे लिये बिल्कुल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह पत्र ऐसा लेकर आये है न बड़ा? मुकेश लेकर आया है। पत्र पढ़ा है कि उसमें ऐसा कि गाथा के अक्षर सोने के लिखना। गाथा हुई बाद में उसमें। सवा सौ तोला सोना चाहिए। सवा सौ तोला? सवा सौ तोला, हाँ, ऐसा कहा।

सवा सौ तोला। ८७ तोला सोना हुआ है। मुम्बई की ओर से। रामजीभाई कहे मुम्बई की ओर से, इसलिए तुम उपकार करते हो? ऐसी कुछ भाषा बोले थे। तुम कहते हो ऐसा....

मुमुक्षु : संस्था के ऊपर उपकार करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपकार करते हो। पचास हजार का सोना चाहिए, ऐसा कहते हैं। गाथायें हैं न, वे सोने में लिखना है, ऐसा। अभी यह निर्णय नहीं किया। अभी तो कब करेंगे? मंडली इकट्ठी होगी। पहले ऐसा विचार किया था, पन्द्रह दिन में तैयार होगा। क्या कहलाता है? नहीं। अब कहे, फूलचन्द को चार महीने होंगे लिखकर। महीने रहे तीन।

मुमुक्षु : सोने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो फिर निर्णय करे, यह तो क्या करना? अभी तो कुछ ठिकाना नहीं। परन्तु यह क्या कहा? समय आया। यह लो अभी अधूरा कितना रहेगा? बहुत काम बाकी। इन अक्षरों के काम का कुछ ठिकाना नहीं। रामजीभाई को अकेली पड़ी है। दूसरे सब देखने आवे। ऐसा है और वैसा है, फलाना है और ढींकणा है। मुम्बईवालों को पड़ी है। अपनी पुत्री का विवाह हो तो कितना ध्यान रखे, लड़के का विवाह हो तो कितना ध्यान रखे। ऐई!

हमारे कुँवरजीभाई कहते थे, पुत्र का विवाह हो तो दस हजार खर्च करना हो तो कहीं चन्दा करने जाते हैं? सेठ! इसी प्रकार अपने धर्म के ऐसे काम हों, उसमें चन्दा दूसरे के पास करने जाना, वह तुझे शोभता है? तेरे घर में नहीं तुझे? आहाहा! कुँवरजीभाई कहते थे बेचारे, हों, वे। पुत्री के विवाह प्रमाण साधारण मनुष्य २०-२५ हजार तो खर्च करे। दस हजार खर्च करे, कोई २०-२५ हजार खर्च करे और यह मारवाड़ी तो बड़े लाखों खर्च करे। दहेज में कितने ही मारवाड़ी देखो न! पश्चात् यह मारवाड़ी ... कितना सिरपच्ची, पैसा कम दे यहाँ। वहाँ दहेज में देना हो तो ५०-५० हजार बैठे। इसके अपेक्षा यहाँ का लड़का अच्छा हो तो दो-पाँच हजार में निपट जाये। जगत तो देखो! आहाहा! यह कहे ऐसा करूँगा, फिर करूँगा। मैंने कहा यह पन्द्रह दिन में हो जायेगा। वहाँ वह कहे, नहीं, चार महीने में होगा। रामजीभाई कहे, चार महीने, यह कहते हैं। छह महीने में भी नहीं होगा। कितना ध्यान। मुम्बईवालों की ओर से

किया है तो मुम्बईवालों ने कितना ध्यान रखा? ऐई! हिम्मतभाई! यह तुम नहीं? सामने तुम नहीं? यह तो निश्चिन्तता से सुनते हैं। मुख्य तो ये वहाँ हैं। चिमनभाई कर्ता-हर्ता परन्तु यह व्याख्यानकार, यह है न मुख्य? पण्डितरूप से तो अपने में ये है मुम्बई में वहाँ। दूसरे सब नीचे। तुम्हारे सिर पर यह जवाबदारी बहुत है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा का जहाँ सम्यग्ज्ञान हो। आहाहा! अपनी चीज़ है पूर्ण आनन्द, उसे भी ज्ञान जाने और वर्तमान में मलिनता और निर्मलता की जितनी दशा, जितने प्रमाण में, उसे ज्ञान बराबर जानता है। आहाहा! उसे सम्यग्ज्ञान। यह भी कहाँ निवृत्ति ऐसी जगत में? आहाहा! ऊँची आँख रखकर जगत में परिभ्रमण कर ले। अन्तर देखने....

मुमुक्षु : समय ही नहीं मिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मरने के लिये समय मिलेगा या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो बलजोरी से मिलेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने ही बनिया ऐसा कहते हैं कि भाई! ऐ.. बापू! मरने की भी फुरसत नहीं है। बापू! मरना क्या? तब तो पैर पड़ा रहेगा। आहाहा! मरने को फुरसत नहीं, क्या कहते हैं? ऐई! बनिया सब बहुत कहे। इतने काम में हैं कि मरने की फुरसत नहीं। मरने को होगा तब पैर नहीं हिलेंगे। ऐं... ऐं... ऐं...

मुमुक्षु : चौबीस घण्टे का दिन, अड़तालीस घण्टे का हमारे काम।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी काम नहीं। चिमनभाई! कहाँ गये शान्तिभाई? चले गये। तुम्हारे यह शान्तिभाई का बड़ा काम। बड़ा काम। शान्तिभाई का बड़ा पत्र आया है कल। मैं जानता हूँ कि वे स्वयं लेकर आये होंगे। रामजीभाई को पढ़वाते थे। ....सब इकट्ठे मिलकर करना चाहिए भाई! ऐसा काम तो... आहाहा! यह कैसी वस्तु है! यह हिन्दुस्तान में पहली चीज़ है। मशीन आयी और मशीन से अक्षर लिखे गये, यह हिन्दुस्तान में पहला-बहेला है। ४४८ पाटिया मशीन से लिखे गये हैं। वह मशीन ही पहली-पहली हिन्दुस्तान में तीस हजार की यहाँ आयी है। समझ में आया? आयी थी न मशीन? वरना तो टांकी से अक्षर लिखते थे। परन्तु उसमें एक सरीखे अक्षर नहीं

होते। शाम को थक जाये आठ घण्टे काम करके। यह तो मशीन आयी। मशीन से ४४८ पाटिया पाँच महीने में पूरे हो गये। जो काम.... यह तो बहुत काम किया। एकधारा अक्षर। कहो, ऐसी चीज़ है। भगवान की वाणी है। आहाहा! प्रतिमा की.... करते वीतराग की वाणी यह तो बहुमान करने जैसा है। आहाहा! सर्वज्ञ अनुसार वाणी नहीं आती? सर्वज्ञ अनुसार वाणी बहुमान—पूजा के योग्य है। ओहोहो!

मुमुक्षु : पूजा में देव, शास्त्र और फिर गुरु।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर गुरु, ऐसा ही होता है न। लो, और इस ज्ञान में यह आया वापस पूरा। आहाहा!

और **सम्यक्त्व से....** अब समकित आया अब। **द्रव्य-पर्यायस्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करता है....** लो! चेतनजी! पर्याय की श्रद्धा आती है इसमें। उसका विषय द्रव्य भले हो, परन्तु पर्याय का लक्ष्य मस्तिष्क में है। यह तो आया था न अपने आता है। कलशटीका में। १४वीं, १३वीं गाथा के अर्थ में। पण्डित जयचन्द्रजी (ने लिखा है)। प्रत्येक ज्ञान का लक्ष्य वही समकित होता है। ऐसा कोई भी ज्ञान का नय उसे नहीं हो, ऐसा नहीं है। पर्याय को जाने बराबर। है न अर्थ में नहीं? भावार्थ में है। बहुत बार कहा गया है बाहर। समयसार में है। बाहर में कहा गया है। यह कोई नयी बात नहीं है। प्रत्येक ज्ञान का नय, पर्याय कैसी है, क्या है—सब ज्ञान उसे होता है। उस ज्ञानसहित आत्मा की दृष्टि स्व का आश्रय करे।

यहाँ कहते हैं प्रभु! कि तेरा स्वरूप जो है न पूर्ण शुद्ध सत्ता, उसका देखना वह दर्शन, उसका जानना द्रव्य और पर्याय का जानना, वह ज्ञान और जाने हुए का समकित से द्रव्य—पर्यायस्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करना। लो! पर्याय की श्रद्धा तो आती है न! (पर्याय), उसका—दर्शन का विषय नहीं, परन्तु श्रद्धा में श्रद्धा करनेवाली स्वयं पर्याय है और उस पर्याय का विषय द्रव्य ध्रुव है। उस पर्याय और द्रव्य का उसे श्रद्धान ज्ञानसहित होता है। आहाहा! कठिन बातें ऐसी महँगी पड़ी। सुनने को मिले नहीं। बाहर की बातें यह करो—पूजा करो, व्रत करो, अपवास करो, तप करो। मर जाये तो भी उसमें धर्म नहीं, लो! वह तो सब शुभराग है। आहाहा! रागरहित भगवान आत्मा

निर्विकारी चैतन्यमूर्ति प्रभु की श्रद्धा, उसका ज्ञान और पर्याय का ज्ञान और पूर्ण वस्तु की सत्ता का देखना।

इस प्रकार देखना, जानना व श्रद्धान होता है, तब चारित्र अर्थात् आचरण में उत्पन्न हुए दोषों को छोड़ता है। ऐसा कहते हैं। ऐसा उसे श्रद्धा-ज्ञान होता है, पर्याय में रागादि है, ऐसा जाने तो वह चारित्र के कारण से उस दोष को छोड़े। आहाहा! है न? **चारित्र अर्थात् आचरण में उत्पन्न हुए दोषों को छोड़ता है।** आचरण में दोष होते हैं न, अभी पूर्ण न हो इसलिए (दोष होते हैं)। परन्तु ऐसा दोनों का यथार्थ ज्ञान हो तो उसे (दोष को) छोड़े। लो, उसमें आया था न। व्यवहार समकित में, छहढाला में नहीं? दोष जाने नहीं तो कैसे तजे?

मुमुक्षु : बिन जाने तै दोष-गुननको, कैसे तजिये गहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह व्यवहार में आया है। यह तो निश्चय का ज्ञान है यहाँ। ज्ञान में जो है, ऐसा जानकर चारित्र द्वारा उस दोष को छोड़े। स्वरूप की रमणता द्वारा छोड़े, ऐसा। तो उसे चारित्र। दर्शन, ज्ञान और चारित्र शुद्ध होता है और वह मोक्ष का मार्ग है। आत्मा की सिद्धदशा प्राप्त करने का यह मार्ग है। बीच में रागादि आवे, वह मार्ग नहीं। वह पुण्यबन्ध है। व्यवहार। व्यवहार को जानना चाहिए। जानकर वेदन में आता है, ऐसा जानना चाहिए और स्वरूप में स्थिरता करके उसे छोड़ना चाहिए। इसका नाम मोक्ष का मार्ग भगवान कहते हैं, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ५, गुरुवार, दिनांक-२९-११-१९७३
गाथा- १८, १९, प्रवचन-५४

चारित्रपाहुड़। उसकी १८वीं गाथा। उसका भावार्थ। चारित्र के दोष किसे टले? अशुद्धता टलकर चारित्र किसे होता है? कि जिसने वस्तु का स्वरूप द्रव्य-पर्यायमय है ऐसा जाना है, श्रद्धा की है, उसे आचरण में अशुद्धता टलकर चारित्र होता है। जिसे वस्तु ही क्या है, उसकी खबर नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं, उसे आचरण का चारित्र नहीं हो सकता। इसका भावार्थ है।

वस्तु का स्वरूप द्रव्य-पर्यायात्मक सत्तास्वरूप है,.... यहाँ आत्मा और प्रत्येक वस्तु की स्थिति है। यहाँ आत्मा की मुख्यता है। वस्तु का स्वरूप द्रव्य अर्थात् त्रिकाल पदार्थ का रहना और पर्याय अर्थात् अवस्था स्वरूप। यह वस्तु का स्वरूप है। ऐसी सत्तास्वरूप है। कोई अकेला द्रव्य माने तो भी विपरीत है, अकेली पर्याय माने तो भी विपरीत है। पर्याय का लक्ष्य रखे बिना अकेली द्रव्य की श्रद्धा करे तो भी उसे सच्ची श्रद्धा नहीं होती।

मुमुक्षु : अन्तिम वाक्य बराबर नहीं समझ में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया?

यहाँ कहा न कि द्रव्य और पर्यायस्वरूप वस्तु है। अब सम्यग्दर्शन का विषय है द्रव्य, परन्तु उसके ज्ञान में, पर्याय है, अशुद्ध है, शुद्ध पर्याय है, ऐसा यदि उसे ज्ञान ही न हो तो उसकी दृष्टि.... क्योंकि पर्याय है, वही दृष्टि (के विषय) को विषय करती है। तो पर्याय ही नहीं और ऐसा ज्ञान ही जिसे नहीं, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जायेगी ही नहीं। अर्थात् द्रव्यदृष्टि (में) दृष्टि का विषय द्रव्य, परन्तु उसे पर्याय है, राग है, अशुद्धता है, ऐसा उसे ज्ञान तो लक्ष्य में रखना चाहिए।

मुमुक्षु : श्रद्धा गुण अलग, ज्ञान गुण अलग, उन्हें सम्बन्ध क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सम्बन्ध है साथ में। यही कहते हैं न। इसीलिए तो यहाँ बात है।

मुमुक्षु : उस समय ज्ञान सो नहीं जाता। ज्ञान तो काम कर ही रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ द्रव्य-पर्यायस्वरूप की श्रद्धा कहते हैं यहाँ तो। इसलिए जरा... अकेली द्रव्य, द्रव्य की श्रद्धा करता है, वह द्रव्य की श्रद्धा करनेवाला कौन? पर्याय है। पर्याय को जो नहीं मानता.... यह १४वीं में नहीं कहा? १४वीं गाथा में कहा न? समयसार। भावार्थ में। १४वीं का भावार्थ। सर्व नय का कथंचित् (रीति से) ज्ञान करके सम्यग्दृष्टि हो सकता है। १४वीं गाथा। बहुत बार बात हो गयी है। रात्रि में हुई थी। १४वीं गाथा। अबद्धस्पृष्ट कहा है न? वहाँ आगे सर्व नय का कथंचित् (रीति से) सम्यग्ज्ञान होने से, सम्यग्दृष्टि हो सकता है। पर्याय में अशुद्धता है, पर्याय है, ऐसा जिसे ज्ञान ही नहीं, उसकी दृष्टि शुद्ध द्रव्य पर जायेगी ही नहीं उसे। क्योंकि पर्याय नहीं मानी, इसलिए फिर पर्याय ही कहाँ है जो द्रव्य पर लक्ष्य करेगी?

यह कहते हैं, देखो! आचार्य स्वयं कहते हैं। वस्तु का स्वरूप द्रव्य-पर्यायात्मक सत्तास्वरूप है। द्रव्य अर्थात् कायम रहनेवाला और वर्तमान पलटती दशा। उसरूप से सत्तास्वरूप अस्तिपने वस्तु है। **सो जैसा है, वैसा....** जैसा है वैसा, जैसा है वैसा **देखे, जाने, श्रद्धान करे....** तीन बोल लिये हैं। पाठ में है न? द्रव्य और पर्यायस्वरूप है, ऐसी जैसी वह सत्ता है, वैसा देखे, जाने और माने तो उसे सम्यग्दर्शन यथार्थ होता है। और फिर उसे चारित्र होता है, यह यहाँ सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में द्रव्य, पर्याय बराबर देखने में आवे, जानने में आवे और श्रद्धा में आवे। वस्तु की सत्ता है, ऐसी श्रद्धा में आवे। समझ में आया? द्रव्यदृष्टि में अधिकार जहाँ हो, वहाँ ऐसा ही आवे। द्रव्य वस्तु है, पर्याय अभूतार्थ है। तो अभूतार्थ का अर्थ (यह कि) गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा है। क्योंकि पर्याय स्वयं विषय करनेवाली है। आहाहा! द्रव्य वस्तु है, उसका कार्य तो पर्याय में होता है। यह शुद्ध सत्ता चैतन्यमूर्ति पूर्ण अखण्ड अभेद एक सामान्य, उसका ज्ञान और उसका कार्य तो विशेष का होता है। विशेष अर्थात् पर्याय, विशेष अर्थात् वर्तमान अवस्था। अवस्था ही न माने तो उसे यह एक भी बात कहाँ रही? समझ में आया?

इसलिए आचार्य ने ऐसा कहा न, **'सम्मेण य सद्दहदि' .... 'दव्वपज्जाया' 'सम्मद्दंसण पस्सदि, जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया। सम्मेण य सद्दहदि'** इस प्रकार

सम्यक्त्व से द्रव्य-पर्याय को श्रद्धा करे, ऐसा लिया है। इससे समकित का विषय पर्याय है, ऐसा नहीं। परन्तु पर्याय है, ऐसा ज्ञान रखकर द्रव्य पर दृष्टि करे तो उस द्रव्य की पर्याय की श्रद्धा यथार्थ कहलाये। बाबूभाई! यह द्रव्य द्रव्य घूंटा है न? द्रव्य का अर्थ ही यह है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ वस्तु त्रिकाल का आश्रय करने से समकित होता है। आश्रय करनेवाला कौन? वह तो पर्याय स्वयं है। पर्याय को न माने, पर्याय का ज्ञान ही लक्ष्य में न ले तो वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ज्ञान का काम ही क्या है? सम्यग्दर्शन का काम है। दोनों गुण अलग हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो गुण अलग, यह सम्यग्दर्शन में सम्यग्ज्ञान ने द्रव्य-पर्याय जानी, ऐसी श्रद्धा उसमें आती है या नहीं? या अकेली द्रव्य की श्रद्धा आती है? विषय द्रव्य, परन्तु विषय द्रव्य होने पर भी पर्याय विषय करती है, इसलिए श्रद्धा में दोनों आते हैं उसे। बड़ी गड़बड़ यह उसमें लिखे, पर्याय भी द्रव्य का विषय है। यह लिखाया था।

मुमुक्षु : ....द्रव्य में पर्याय है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और यह पर्याय कितनी दूर? कि अलोक जितनी दूर। और एक व्यक्ति ऐसा लिखता है। घाटकोपर। पर्याय में द्रव्य है ही नहीं। कितनी दूर है? कि लोक और अलोक जितनी। ऐसा का ऐसा। ... बदल डाला है। ....

मुमुक्षु : बड़े भी ऐसा माने....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या कहा देखो! '**सम्मद्दंसण पस्सदि, जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया। सम्मेण य सद्दहदि**' स्वयं आचार्य कहते हैं। सम्यक्त्व द्वारा। यह तीसरे पद में। पहले पद में '**सम्मद्दंसण**' कहा। सम्यक् प्रकार से दर्शन अर्थात् द्रव्य-पर्याय की सत्ता को देखना। और सम्यक् प्रकार से द्रव्य-पर्याय की सत्ता को जानना और फिर द्रव्य सम्यक् प्रकार से '**सम्मेण**' सम्यक् द्वारा द्रव्य-पर्याय को श्रद्धा करना। ऐसा है। ऐई! चेतनजी!

मुमुक्षु : यह व्यवहार है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... व्यवहार नहीं। बिल्कुल खोटी बात है। बिल्कुल खोटी बात है। उसमें तो निश्चय की बात है। पर्याय का श्रद्धा में

उसे... क्योंकि श्रद्धा करनेवाली पर्याय है, जाननेवाली पर्याय है, स्थिर होनेवाली पर्याय है। उस पर्याय को जो न माने, लक्ष्य में न ले, उसे द्रव्यदृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि है। कहा न वहाँ भी नहीं? उसमें कहा न? १४वें बोल में कहा था बहुत बार। १४वीं। १४वीं क्या कहलाती है? देखो! 'इसलिए सर्व नयों का कथंचित् रीति से सत्यार्थपने का श्रद्धान करने से ही सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है।'

मुमुक्षु : इसमें तो सब नय सच्चे हैं ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब नय सच्चे हैं। खोटे नय हैं? व्यवहारनय खोटा है? खोटा किस प्रकार से? वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से खोटा कहा। उसकी (स्वयं की) अपेक्षा से सत्य है। यही कहा न? 'कथन में टीकाकार ने—आचार्य ने स्याद्वाद बतलाया है।' व्यवहार से है, पर्याय से बद्धस्पृष्ट है। आहाहा! ऐई! पर्याय नहीं ही, ऐसा नहीं। समकित का विषय द्रव्य है, परन्तु वह पर्याय है, ऐसा ज्ञान लक्ष्य में रखकर द्रव्य की ओर ढलता है।

मुमुक्षु : ज्ञान तो अनन्त बार किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान नहीं। उस ज्ञान की बात भी कहाँ है? वह ज्ञान ही कहाँ है? यह ग्यारह अंग, वह ज्ञान नहीं। यहाँ तो ज्ञान—सम्यग्ज्ञान की बात है। सम्यग्ज्ञान में द्रव्य-पर्याय जानता है। सम्यक् श्रद्धा द्रव्य-पर्याय को श्रद्धा करती है। सम्यग्दर्शन अर्थात् देखना, वह द्रव्य-पर्याय की सत्ता को देखता है।

मुमुक्षु : परन्तु पर्याय किसलिए बोलते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई! यह क्या कहते हैं, देखो!

यहाँ तो वहाँ तक लेना कि ऐसा नहीं समझ लेना कि 'शुद्धनय को सत्यार्थ कहा, इसलिए अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है। ऐसा मानने से वेदान्तमतवाले जो संसार को सर्वथा अवस्तु मानते हैं, उनका सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायेगा और इससे मिथ्यात्व आ जायेगा, इस प्रकार यह शुद्धनय का आलम्बन भी वेदान्तियों की तरह मिथ्यादृष्टिपना लायेगा।'

मुमुक्षु : शुद्धनय के अवलम्बन से मिथ्यादृष्टिपना लावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुद्ध अर्थात् पर्याय के लक्ष्य बिना का अकेला शुद्ध माने, वह मिथ्यादृष्टि है। यह अनुभव भी आगे आता है न, वहाँ नहीं? वह अनुभव करे तो वह मिथ्यात्व है। नहीं आता वहाँ? ऐसा रखकर अनुभव करे तो वह मिथ्यात्व है। ऐसा आता है। याद नहीं इसमें। भावार्थ में है। वस्तु जैसी है, वैसी ज्ञान में लेकर फिर अनुभव करे तो वह अनुभव सच्चा। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : शुद्धज्ञान तो व्यवहारज्ञान न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; निश्चयज्ञान। व्यवहार कैसा? पर्याय व्यवहार है, इसलिए पर्याय का ज्ञान, वह व्यवहार, ऐसा यहाँ नहीं है। पर्याय का ज्ञान निश्चय है। स्व का है न, इसलिए निश्चय है। अभी त्रिकाली की अपेक्षा से पर्याय व्यवहार, यह अलग (बात है), परन्तु पर्याय स्वयं से निश्चय है, स्व है, निश्चय है, यथार्थ है, है। ऐई!

मुमुक्षु : पर्याय में शुद्ध परिणमन की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन बिना का कार्य किसमें होगा? कार्य हो तो परिणमन में होता है। आहाहा! इसीलिए तो आचार्य ने ऐसा बताया है, देखो! आहाहा! ...आदि दिखता है। व्यवहारनय से दृष्टि में सब दिखता है। यहाँ व्यवहारनय (कहा), परन्तु यहाँ ज्ञान जो है, वह तो निश्चय है। वह तो त्रिकाली की अपेक्षा से बद्धस्पृष्ट आदि व्यवहार है। परन्तु उसकी पर्याय जो है, वह निश्चय से अपनी है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो नय को निश्चयनय कहा है। ऐई! पर्याय भी निश्चय है न? यह निश्चय के दो भेद है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, आता है न। आलापपद्धति में है। द्रव्यार्थिक निश्चयनय के दो भेद—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। पर से भिन्न करके यहाँ लेना है, इसलिए निश्चय। फिर अपना द्रव्य (मुख्य) है इसलिए पर्याय व्यवहार है, तथापि व्यवहार है न? है न वह पर्याय? व्यवहार का विषय है न? न हो तो सिद्ध को मुक्ति, मोक्षमार्ग एक भी सिद्ध नहीं होगा। ऐई! बात ऐसी है। वस्तु जैसी हो, वैसी जानना चाहिए न! देखो न, कितना लिखा है! सत्यार्थ है, ऐसा लिखा है देखो! बद्धस्पृष्ट आदि दिखता है, वह

(पर्याय) दृष्टि में सत्यार्थ है। आचार्य ने स्वयं कहा है न! क्या है? बापू! यह तो वीतराग का मार्ग, जैसा स्वरूप है, वैसा चाहिए। उसमें कुछ खींचतान नहीं चलती। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, वस्तु का स्वरूप द्रव्य और पर्याय अर्थात् अवस्था स्वरूप है। वह सत्तास्वरूप है। उस सत्तास्वरूप को **सो जैसा है....** जैसा है, वैसा उसे देखे, जैसा है, वैसा उसे जाने। यह द्रव्य—पर्याय सत्तास्वरूप है, वह जैसा है, वैसा श्रद्धान करे। यह तीनों को लागू पड़ता है। समझ में आया? **तब आचरण शुद्ध करे....** देखो! ऐसा बराबर श्रद्धा, ज्ञान द्रव्य-पर्याय का हो तो उसे चारित्र की शुद्धता प्रगट होती है। परन्तु जिसे यही ठिकाना नहीं, उसे चारित्र और आचरण सच्चे नहीं हो सकते, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

तब आचरण शुद्ध करे.... यह चारित्र अधिकार है न? इसलिए वस्तु द्रव्य और पर्यायस्वरूप सत्तामात्र पदार्थ अस्तिवाला, दो रूप से अस्तिवाला पदार्थ। उसे देखे, जाने उसे श्रद्धे, उसमें आ गया अन्दर सर्वनय से सब सत्यार्थ है वह। व्यवहारनय का विषय सत्यार्थ है। वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहा, अपनी अपेक्षा से तो सत्य ही है। त्रिकाल की अपेक्षा से द्रव्यदृष्टि के स्वभाव का जब वर्णन हो, तब विकार-बिकार कुछ है ही नहीं। अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा आता है। परन्तु जब पर्याय पर्याय का ज्ञान करे सब दु:ख का अंश, दोष का अंश, पर्याय, शुद्धता, अशुद्धता बराबर उसका ज्ञान लेना। कुछ फेरफार हो तो भी वह ज्ञान भी खोटा और दर्शन भी खोटा। समझ में आया? ऐसा है।

जैसा है वैसा.... ऐसा कहा न? तो **जैसा है....** उसमें क्या कहा? द्रव्य-पर्यायस्वरूप—सत्तास्वरूप। वह **जैसा है वैसा....** आहाहा! **वैसा देखे, वैसा जाने, वैसा श्रद्धा करे,...** पाठ में है न? **'सम्मेण य सद्दहदि दव्वपज्जाया'** **'दव्वपज्जाया सम्मद्दंसण पस्सदि'** **'दव्वपज्जाया जाणदि णाणेण'** **'दव्वपज्जाया सम्मेण य सद्दहदि'** पश्चात् **'परिहरदि चरित्तजे दोसे'** तो चारित्र के दोष उसे नाश होते हैं। अस्थिरता टलती है और चारित्र होता है, ऐसा कहते हैं। जिसे यह दर्शनशुद्धि और ज्ञान की शुद्धि जहाँ नहीं, वहाँ

चारित्र कहाँ से आवे? आचरण कहाँ से आवे? ऐसा कहते हैं। यह यहाँ तो जैसा हो, वैसा इसे जानना पड़ेगा।

सो सर्वज्ञ के आगम से.... है? यह सर्वज्ञ के आगम से **वस्तु का निश्चय करके....** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो वस्तु का स्वरूप जानकर। यहाँ तो यह लगायी है बात को। सर्वज्ञ ने देखा, जाना, वह वस्तु का स्वरूप (और) उन्होंने कहा वह। अपने आप कल्पना करके, सर्वज्ञ जिनके मत में नहीं, जिनके सम्प्रदाय में / मत में पहले सर्वज्ञ ही नहीं, उनके शास्त्र भी खोटे और कहे हुए पदार्थ भी खोटे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान जीव का स्वभाव ही सर्वज्ञ है। और उस स्वभाव के प्रगट करनेवाले पर्याय में सर्वज्ञ अनादि से चले आते हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ, जीव का स्वभाव ही सर्वज्ञ है। स्वभाव-शक्ति। तो फिर प्रगट करनेवाले उनके पर्याय में सर्वज्ञ होते हैं। ऐसी जिसकी सम्प्रदाय की, मान्यता में नहीं, उसे तो सर्वज्ञस्वभावी जीव की श्रद्धा की खबर नहीं। सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुए जीव हैं, उसकी खबर नहीं। उन्होंने कहे हुए शास्त्र, वे आगम हैं, उनकी खबर नहीं। उन्होंने कहे हुए पदार्थ, वे पदार्थ है, ऐसी उसे खबर नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : बहुत बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बात की? आहाहा!

सर्वज्ञ के आगम से वस्तु का निश्चय करके.... क्योंकि द्रव्य और पर्याय एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे कौन? आहाहा! समन्तभद्राचार्य ने कहा न, प्रभु! समय एक और उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन। आहाहा! अनन्त गुण की एक समय में उत्पन्न होती पर्याय, अनन्त गुण की एक समय की पर्याय थी, उसका व्यय और अनन्त गुण का ध्रुवपने सदृशरूप से रहना, समय-काल एक, समय का काल सूक्ष्म में सूक्ष्म एक और उसमें तीन को जाने, यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? समय वह कितना? 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें का ऐसा एक समय। ओहोहो! और जाने द्रव्य के तीन अंश। अनन्त द्रव्य के तीन अंश एक समय में जाने। आहाहा! यह सर्वज्ञ का स्वरूप है।

जिसे सर्वज्ञ ही अभी कैसे और सर्वज्ञ का क्या स्वरूप है? खबर नहीं, उसके आगम भी खोटे और उसके पदार्थ भी खोटे। यह बात है। आहाहा! क्योंकि धर्म का मूल तो सर्वज्ञ है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है। बारह भावना ली न बारह भावना। धर्म भावना है। बात सच्ची है। क्योंकि जिसने यह तीन काल-तीन लोक एक समय में तीन अवस्थायें, तीन अवस्था। (ध्रौव्य), पर्याय (मिलकर) तीन अवस्था है है। ऐसी अनादि-अनन्त। एक समय में तीन ऐसे अनन्त द्रव्य की और ऐसे अनादि-अनन्त। जिसे एक समय में जानने में आवे, ऐसा ही सर्वज्ञपर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? यह सर्वज्ञ, उनके कहे हुए आगम। सर्वज्ञ के अतिरिक्त अज्ञानी ने सब जाना नहीं, वह कहने लगे ऐसी वस्तु है और ऐसी वस्तु है, वह सब कल्पना के घोड़े हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ ने आगम से.... अब सर्वज्ञ सिद्ध किया और उनके आगम-वाणी। वाणीवाले अरिहन्तवाले सर्वज्ञ लेना है न यहाँ? सिद्ध को कहीं वाणी नहीं। सर्वज्ञ के आगम अरिहन्त ने कहे हुए शास्त्र। आहाहा! उसमें जो वस्तु का निश्चय, उसका पदार्थ, ऐसा। सर्वज्ञ के आगम में वस्तु अर्थात् पदार्थ। जैसा सर्वज्ञ के आगम में पदार्थ और वस्तु का स्वरूप कहा है, उसका **निश्चय करके....** आहाहा! तब तो पहले कहा था वस्तु का स्वरूप द्रव्य-पर्याय है, ऐसा कहा। आहाहा! (अज्ञानी कहे), पदार्थ ऐसा है ही नहीं। केवली का पदार्थ, उसका स्वभाव एक समय में ज्ञान-दर्शन साथ में लेते हैं। समझ में आया? बहुत अन्तर है अभी।

सर्वज्ञ के आगम से वस्तु का निश्चय करके.... देखा! सर्वज्ञ ने कहे हुए सिद्धान्त से वस्तु का निर्णय करके। आहाहा! **आचरण करना।** फिर आचरण होता है।

मुमुक्षु : निश्चय करके.... व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय सम्यक्। निश्चय। व्यवहार-फ्यवहार कैसा?

मुमुक्षु : ....व्यवहार हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं... नहीं... यह आगम से कहा, परन्तु इसने निश्चय किया है निश्चय से। आगम ने कहा, वह तो इसने लक्ष्य में लिया पहले। परन्तु लक्ष्य में

लेकर निर्णय किया है निश्चय से स्वयं ने। समझ में आया? आगम ने कहे हुए भाव, उसका निश्चय किया है स्वभाव से। पर से नहीं। यह व्यवहार नहीं। आहाहा! भाव आगम। लो, ठीक! द्रव्य आगम में से भाव आगम में कहे हुए।

मुमुक्षु : भाव आगम वह परिणमन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस परिणमन की ही बात है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बहुत अच्छी टीका की है। टीका बहुत अच्छी की, पण्डित जयचन्द्रजी ने। वस्तु की स्थिति ऐसे वर्णन की है। है, ऐसा इन्होंने प्रकाश किया।

निश्चय करके आचरण करना। यह चारित्र की बात है। यह भी निश्चय चारित्र की बात है। कहेंगे। १९ में कहेंगे, देखो। '**एए तिण्णि वि भावा, हवंति जीवस्स मोहरहियस्स**' व्यवहार नहीं। देखो यह है।

एए तिण्णि वि भावा, हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
णियगुणमाराहंतो, अचिरेण य कम्म परिहरइ॥१९॥

आहाहा! ओहोहो! **सर्वज्ञ के आगम से वस्तु का निश्चय करके आचरण करना।** चारित्र—स्वरूप में रमणता, वह चारित्र, हों! मोहरहित सम्यग्दर्शन, मोहरहित सम्यग्ज्ञान और मोहरहित चारित्र—इसकी यह बात है। आहाहा! व्यवहार तो शुभराग है, मोह है। परसन्मुख का... आहाहा! **वस्तु है, वह द्रव्य-पर्यायस्वरूप है।** देखो वापस आया। वस्तु का निश्चय करना, ऐसा कहा न वहाँ? **वस्तु है, वह द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। द्रव्य का सत्ता लक्षण है....** द्रव्य की सत्ता। द्रव्य सत्‌लक्षण नहीं आता? सत् द्रव्य लक्षणं। **तथा गुणपर्यायवान को द्रव्य कहते हैं।** दोनों। गुण-पर्याय द्रव्य। उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव आ गये। '**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' यह आता है, देखो!

पर्याय दो प्रकार की है,.... गुण और पर्यायवान। त्रिकाली गुण और अवस्थावान को द्रव्य कहते हैं। आहाहा! ऐसी ही वस्तु है, ऐसी उनके शब्दों में वाच्य ऐसा ही आया है। जिसे सर्वज्ञपना नहीं, जिसने देखा नहीं, उसके वाक्य में क्या आवे? आहाहा! श्रीमद् में कितने बार पहले ऐसे शब्द आते हैं कि हे सर्वज्ञपद हस्तामल की भाँति वरत-वरत। आता है उसमें। ३०वें वर्ष के पश्चात् सर्वज्ञ.... विशेष पाठ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न, फिर अधिक आता है। वस्तु सर्वज्ञ, बापू! इससे क्या? आहाहा! वस्तु जो तीन काल-तीन लोक ज्ञेय है, तो उसका जाननेवाला एक समय की पर्यायवाला ज्ञाता होता है। जब से यह ज्ञेय है, तब से सर्वज्ञ है। जगत में त्रिकाली वस्तु का विरह नहीं, वैसे जगत में त्रिकाली वस्तु को समझनेवाले, जाननेवाले का विरह नहीं। आहाहा! परमेश्वर का विरह क्षेत्र से नहीं होता, अच्छे क्षेत्र से। यहाँ भले न हो परन्तु यह क्षेत्र नहीं। होते ही हैं। आहाहा! ऐसे सर्वज्ञ का जिसे निर्णय नहीं, उनके कहे हुए आगम की उसे खबर नहीं, उन्होंने कहे हुए पदार्थ की स्थिति की उसे खबर नहीं। उसे ही सच्चा चारित्र हो सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। यह सब त्यागी हो, नग्न हो, जंगल में चले जाये, परन्तु इस प्रकार से सर्वज्ञ और उनके कहे हुए शास्त्र और उनके कहे हुए पदार्थ-वस्तु, ओहोहो!

पर्याय दो प्रकार की है, सहवर्ती और क्रमवर्ती। पर्याय अर्थात् भेद। द्रव्य में गुण को सहवर्ती भेद कहते हैं। पर्याय को क्रमवर्ती भेद कहते हैं। क्रम-क्रम से अंश पड़ते-पड़ते पर्याय। एक साथ। साथ में रहनेवाले भेद। द्रव्य वस्तु है वह एकरूप। उसमें गुण हैं, वे अभेदरूप से साथ में हैं, गुण साथ में है, इसलिए उनका वह भेद पड़ा न इतना? द्रव्य में से गुण, ऐसा। इससे सहवर्ती और क्रमवर्ती। साथ में रहनेवाले भाव और क्रम से वर्तनेवाले भाव, दोनों को यहाँ गुण और पर्याय कहते हैं। आहाहा!

सहवर्ती को गुण कहते हैं और क्रमवर्ती को पर्याय कहते हैं.... भगवान आत्मा या परमाणु में जो साथ में रहे हुए अनन्तगुण-भेद को सहवर्ती पर्याय कहते हैं अथवा गुण कहते हैं। और अंश क्रमवर्ती। देखो न, यह वस्तु भी यही है। अब क्रमवर्ती में ही उसकी पर्याय क्रम... क्रम... क्रम... से होती है, वह उसका क्रमवर्ती। आहाहा! धारावाही उसका परिणमन, अनादि-अनन्त में धारावाही। उसमें जिस काल में जो— वह उसकी धारावाही, उसका नाम क्रमवर्ती कहा जाता है। इसमें भूल सीधी पहले से। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, कहते हैं।

द्रव्य सामान्यरूप से एक है.... अब विशेष करते हैं। वस्तुरूप से—द्रव्यरूप से एक ऐसे सामान्य। **तो भी विशेषरूप से छह हैं—** भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। सर्वज्ञ

परमेश्वर वीतरागदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने छह द्रव्य देखे हैं। जाति से, हों! संख्या से अनन्त। जाति से छह। जाति छह। भगवान के ज्ञान में जाति से छह द्रव्य देखे हैं, संख्या से अनन्त। समझ में आया इसमें? जाति और संख्या समझते हो? जाति और संख्या में क्या भेद? जाति अर्थात् एक प्रकार के आत्मा, एक प्रकार के परमाणु, ऐसे छह द्रव्य। जाति से छह। संख्या से अनन्त। जीव अनन्त, परमाणु अनन्त, कालाणु असंख्य, धर्मास्ति, अधर्मास्ति (आकाश) एक (एक)।

मुमुक्षु : एक जाति....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति एक। ऐसी छह जातियाँ। फिर संख्या अनन्त। आहाहा!

यह द्रव्य के छह भेद कहे। **जीव, पुद्गल, धर्म,....** धर्मास्तिकाय, **अधर्म,....** अधर्मास्तिकाय, **आकाश और काल।** अब **जीव के दर्शन-ज्ञानमयी चेतना तो गुण है....** दर्शनमयी चेतना अर्थात् दर्शन और ज्ञान दोनों इकट्ठे ले लेना। दर्शनमयी चेतना तो गुण त्रिकाल। और **मति आदिक ज्ञान....** यह पर्याय है। समझ में आया? द्रव्य, पर्याय को सिद्ध करते हैं न? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मन:पर्यय, केवल्य यह सब पर्याय है। उसे द्रव्य और पर्याय का दो का ज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। दोनों की उसे श्रद्धा चाहिए, दोनों का उसे देखना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि.... लो! यह पर्याय है। इस पर्याय में ऐसा होता है, ऐसा इसे पहले जानना चाहिए। जानकर इसे मानना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकारी पर्याय है, वह दु:खरूप है, ऐसा इसे जानना चाहिए। आहाहा! और **नर, नारकादि विभावपर्याय है,....** क्रोध, मान आदि। तथा नर, नारकादि, यह द्रव्यव्यंजनपर्याय। वह अर्थपर्याय। क्रोध, मान, माया, लोभ, वह अर्थपर्याय और नर, नारकादि, वह विभावपर्याय। परन्तु वह है। यह चार गति की द्रव्य की उस प्रकार की आकृति की पर्याय है। आहाहा! इस प्रकार यह द्रव्य और पर्याय दो स्वरूप वस्तु है। जब-जब हो, तब उसके स्वरूप से ही वह है। नरक में, मनुष्य में हो तो भी वह द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। सिद्ध में हो तो भी वह द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। आहाहा!

स्वभावपर्याय अगुरुलघु गुण के द्वारा.... अब स्वाभाविक पर्याय की बात करते

हैं। **हानि-वृद्धि का परिणमन है।** इस प्रकार उसे पर्याय को और द्रव्य को जैसा है, वैसा जानना चाहिए। क्योंकि द्रव्य और पर्याय सत्तास्वरूप है। वस्तु अस्तिरूप से इस प्रकार से है। वस्तु अस्तिरूप से इस प्रकार से है और उस अस्तित्व में द्रव्य और पर्याय सत्तारूप से वह है। आहाहा! उसमें यह द्रव्यरूप से छह द्रव्य, गुणरूप से जीव का दर्शन, ज्ञानगुण और पर्यायरूप से मतिज्ञान आदि की पर्याय स्वाभाविक, रागादि की अर्थपर्याय विभाविक, नर-नारकी की व्यंजनपर्याय, वह विभाविक। आहाहा!

मुमुक्षु : मति आदि....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान कहा न। केवलज्ञान पर्याय है, कहा न? कहा, अभी कहा। अब तो यह कहा जा चुका है। ख्याल आवे तो सब आ जाता है अन्दर। मति, श्रुत, अवधि, मनः (पर्याय), केवल्य, वह पर्याय है। गुण जैसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, वैसे केवलज्ञान, केवलदर्शन पर्याय है। द्रव्य-पर्यायात्मक यह वस्तु है। ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? और अगुरुलघु स्वाभाविक पर्याय जीव की। क्रोध, मान अशुद्धता, नर-नारकादिक भी विभाविक अशुद्धता और यह शुद्ध पर्याय स्वाभाविक। इस प्रकार द्रव्य और पर्याय की सत्तास्वरूप वस्तु है। ऐसा इसे देखना, जानना और श्रद्धा करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? आचार्य स्वयं कहते हैं, उसकी यह तो टीका है। घर का नहीं कहते। आहाहा! इसलिए कहा न, सर्व कथंचित् नय से श्रद्धा करना, जानना वह सम्यग्ज्ञान है। सर्व नयों से। जो नय है जिस प्रकार से उसे....

मुमुक्षु : नय तो कितने रहे कब हमारे पूरे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरे कहाँ करना है? संक्षिप्त में सब सार है। द्रव्य और पर्याय। द्रव्य शुद्ध है। पर्याय शुद्ध-अशुद्ध दोनों हैं। किसी को अकेली शुद्ध है। किसी को शुद्ध और अशुद्ध दो हैं और किसी को अकेली अशुद्ध है। शुद्ध में भी थोड़ी.... आहाहा! भाई! यह तो जिसे पूरे तत्त्व को दृष्टि में, ज्ञान में झेलना है, तो उसे यह जानना पड़ेगा। आहाहा! यह जहाँ विशेष जानने के दूसरे में रुकता है, उसके बदले यह जानने में इसे प्रयत्न करना पड़ेगा न! आहाहा! इसके बिना इसे दृष्टि शुद्धता कैसे प्रगट होगी? एकान्त मान ले द्रव्य ही। एकान्त मान ले पर्याय ही। विभाव ही मान ले और स्वभाव नहीं;

स्वभाव ही मान ले और विभाव नहीं। यह उसे वस्तु की सिद्धि नहीं होगी। आहाहा!

यहाँ तो विभाव विकार है और यह विकार, वह दुःख है, ऐसा पर्याय में ज्ञान इसे बराबर करना पड़ेगा। ऐसे ज्ञानसहित इसे श्रद्धा करनी पड़ेगी। आहाहा! जो आवे तब तो सब उसके गीत गाये जायें या नहीं? यह वस्तुस्थिति है। जब उसे द्रव्यदृष्टि का विषय... द्रव्यदृष्टि स्वयं पर्याय है दृष्टि, परन्तु उसका विषय तो अभेद, अखण्ड, जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं परन्तु उसका विषय करनेवाले को पर्याय है, ऐसा लक्ष्य तो ज्ञान में आया है।

मुमुक्षु : वह खण्ड ज्ञान नहीं, अखण्ड ज्ञान है, फिर क्या अब?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खण्ड ज्ञान भी है। ऐसा लक्ष्य में है।

मुमुक्षु : अखण्ड निवारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निरावरण तो त्रिकाल की अपेक्षा से, परन्तु थोड़ा आवरणवाला है या नहीं?

मुमुक्षु : ....नहीं परन्तु ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें नहीं। उसमें है न। उसकी सत्ता पूरे में है या नहीं? द्रव्यसत्ता में नहीं। परन्तु द्रव्य-पर्यायरूप सत्ता में वह दो है या नहीं? भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। यह कल्पना करके मांडे, ऐसा यहाँ चले, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह सूक्ष्म बात है, परन्तु इसे जाननी पड़ेगी न! अरेरे! चौरासी के अवतार में दुःखी हुआ। आहाहा! केंसर हो और वह पीड़ा। दवा खाये नहीं, हवा की जाये नहीं, खायी जाये नहीं। आहाहा! दुःख का पार नहीं होता, यहाँ पानी डाले तो चिल्लाहट मचा जाये। अरे! बापू! यह क्या है, भाई! तेरी दशा में दुःख के समुद्र उछले-उछले। वह दुःख है—ऐसा इसे ज्ञान करना पड़ेगा। स्वरूप में आनन्द है, उसका इसे ज्ञान दोनों करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : उसका दुःख नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख निश्चित किये बिना। विकल्प में दुःख भासित हो तो

निर्विकल्प होने के लिये प्रयत्न करे। है या नहीं उसमें? सोगानी में है या नहीं? यह तुम्हारे द्रव्य की भाषा उनकी। ऐई! उसमें है। कि विकल्प में दुःख भासित हो तो आनन्द शोधने के लिये अन्तर में जाये। है या नहीं उसमें? सब उन्होंने कहा है। एकान्त नहीं। उन्होंने जो कहा वह। समझ में आया? आहाहा! परन्तु जिसे विकल्प में ही दुःख न भासित हो, वह अन्तर में आनन्द शोधने किसलिए जाये? आहाहा!

आकुलता भासित हो तो निराकुलतत्त्व भगवान आत्मा के प्रति दृष्टि करे। तो उसमें से निराकुलता प्रगट हो। आहाहा! बहुत अच्छी बात है। ओहोहो! ऐसे कहीं एक हल्दी की गाँठ पकड़कर पंसारी हुआ जाये, ऐसा नहीं। ऐसा यहाँ कहते हैं। समझते हैं न वह? नहीं समझते हैं, यह क्या है? हल्दी... हल्दी, तुम्हारी भाषा में होगा। हल्दी की गाँठ पकड़े तो पंसारी। तुम्हारे में होगा कुछ। क्या? दृष्टान्त।

मुमुक्षु : हल्दी की गाँठ मिल जाए तो पंसारी हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह।

मुमुक्षु : हल्दी की गाँठ मिल जाये तो पंसारी मान ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। यह। यह तो सर्वत्र कहावत में अन्तर नहीं। हमारे काठियावाड़ में यह कहे—हळदरनो गांठीयो अने थई गयो गांधी। एक गाँठ से नहीं, परन्तु बहुत हल्दी हो और बहुत प्रकार की चीज़ें हो उस प्रकार की, तब पंसारी कहलाता है। एक हल्दी के गाँठ से तो नहीं, परन्तु हल्दी की बहुत बोरियाँ हों, और धाणा, जीरा, कोकम ऐसी सब बहुत चीज़ें हों, तब पंसारी कहलाता है। हमारे रखते थे वहाँ। अभी रखे न। उस समय रखते थे हमारे। खाना (संचों) में। धाणा, जीरा। अभी बड़ा व्यापार है। नमूना रखे। गोदाम में सब माल पड़ा हो। नमूना रखे। ऐसे डिब्बे रखे। डिब्बे में से नमूना दे। यह आयेगा। बड़ी चीज़ चाहिए हो तो गोदाम में। आहाहा!

कहते हैं कि उसे द्रव्य-पर्यायस्वरूप जीव है, उसको जानना चाहिए। जैसा है, वैसा देखना और श्रद्धा करना चाहिए। तब वह जीव कैसा है? कि दर्शन, ज्ञान के गुणरूप है। ... और मतिज्ञान, केवलज्ञान आदि पर्यायरूप है और रागादि, क्रोधादि विकाररूप अशुद्ध अर्थपर्यायरूप है और नर, नारकादि गतिरूप विभाव व्यंजनपर्यायरूप

है और अगुरुलघुरूप से स्वभावपर्यायरूप है। आहाहा! तब उस सत्ता का स्वरूप पूरा होता है। द्रव्य-पर्याय सत्ता। समझ में आया?

मुमुक्षु : इतना सब ज्ञान करने का .... विकल्प तो उठे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान जानने का विकल्प न उठे। ज्ञान का स्वभाव है वह तो जानना। तीन काल-तीन लोक जाने केवली। तो विकल्प है? आहाहा!

यह जीव की बात की। जीव की सत्ता द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। तो द्रव्य-पर्यायस्वरूप किस प्रकार से है, उसका यह वर्णन किया। अब छहों द्रव्य की श्रद्धा चाहिए न इसे? आहाहा! क्योंकि द्रव्य की एक पर्याय, ज्ञान की एक पर्याय में छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्य है। तो वह छह द्रव्य माने, तब तो इसने एक पर्याय तो मानी।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण और अनन्त गुण का पिण्ड वह एक द्रव्य। ऐसी इसकी पर्याय की सामर्थ्य है। जीव की एक समय की एक पर्याय ज्ञान की, उसमें जो छह द्रव्य हैं, उसे जानने की उसकी सामर्थ्य है (कि) उन्हें ज्ञेय करके जाने, ऐसा स्वभाव है। इसलिए छह द्रव्य माने, तब उसने एक समय की पर्याय बराबर मानी। छह द्रव्य न माने तो एक समय की जीव की पर्याय भी उसने मानी नहीं। आहाहा! ओहोहो! बहुत गम्भीर भाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब समझे न, यह हल्दी की गाँठ का? हमारा दृष्टान्त गुजराती आवे तो उलझ जाये। परन्तु तुम्हारे में यह दृष्टान्त हो सर्वत्र। भाषा में अन्तर होता है। भाषा भी....

अब पुद्गल। **पुद्गलद्रव्य के....** पुद्गलद्रव्य। उसकी भाँति जीवद्रव्य। उसके ज्ञान, दर्शन आदि गुण और स्वाभाविक, विभाविक पर्याय। इस प्रकार यह पुद्गलद्रव्य अब वस्तु। उसका **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण मूर्तिकपना तो गुण है.....** शाश्वत्। **और स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण का भेदरूप परिणमन....** पर्याय वर्तमान, वह पर्याय। **तथा अणु से स्कन्धरूप होना....** वह विभाविक द्रव्यपर्याय। **तथा शब्द, बन्ध आदिरूप होना इत्यादि**

पर्याय है। वह विभाविक पर्याय। आहाहा!

धर्म-अधर्मद्रव्य के.... धर्मास्ति, अधर्मास्ति द्रव्य। **गतिहेतुत्व,....** उसका गुण। **स्थितिहेतुत्वपना तो गुण है और इस गुण के जीव-पुद्गल के गति-स्थिति के भेदों से भेद होते हैं....** पर्याय में। आहाहा! **वे पर्याय हैं तथा अगुरुलघुगुण के द्वारा हानि-वृद्धि का परिणमन होता है जो स्वभावपर्याय है।** लो! सबमें ले लेना पुद्गल में। पहले गुण में तो डाला है। पुद्गल में नहीं डाला था। पीछे डालकर इकट्ठा कर दिया। जीव में तो डाल दिया पहले।

आकाश का अवगाहना गुण है.... अब आकाश पदार्थ की व्याख्या करते हैं। **जीव-पुद्गल आदि के निमित्त से प्रदेशभेद कल्पना किये जाते हैं, वे पर्याय हैं....** द्रव्य-पर्याय। क्षेत्र। द्रव्यपर्याय। **हानि-वृद्धि का परिणमन, वह स्वभाव पर्याय है।** हानि-वृद्धि पर्याय में होती है न? षट्गुण हानि। इसका कितना याद रहे यह? बुद्धि संक्षिप्त न। बुद्धि संक्षिप्त नहीं; बहुत है परन्तु .... दरकार कहाँ करता है? आहाहा! शरीर की सम्हाल कैसी रखता है? ऐसे धूप में छतरी ओढ़कर चले, वह कैसा दरकारवाला होगा? यह सर्दी की धूप नौ बजे की। साढ़े नौ हुए। छतरी ओढ़कर चले। गजब किया यह तो भारी। यह जब दु:ख होगा, रोग आयेगा तो क्या करेगा यह?

मुमुक्षु : आपकी नजर बहुत....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सर्दी की धूप। यह मागसिर है यह। अब उसकी नौ बजे की धूप, यह सिर पर छतरी ओढ़कर चले। गजब बात भाई यह तो! पागलपन। बैठा। यह पागल दिखाई दे। पागल लगे। कुछ भान ही नहीं कि यह क्या करता हूँ और क्या होता है और कहाँ होता है? यह तो अन्धी दौड़ से ऐसा का ऐसा चलता जाता है। आहाहा! उसे जब बिच्छू का काटना हो। चिल्लाहट मचा जायेगा हाय... हाय... ऐई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! वस्तु की स्थिति क्या है, यह जान, भाई! आहाहा! छह द्रव्य की बात इकट्ठी की। आकाश की की है। पश्चात् काल। कालद्रव्य एक वस्तु है। वर्तना उसका गुण है। **और जीव और पुद्गल के निमित्त से समय आदि कल्पना सो**

पर्याय है.... पर्याय उसकी एक समय की पर्याय और उसमें एक, दो, तीन, चार इकट्ठे किये... यह सब व्यवहार... यह दिवस-रात्रि। **उसको व्यवहार काल भी कहते हैं तथा हानि-वृद्धि का परिणमन, वह स्वभावपर्याय है इत्यादि।** अगुरुलघु। **इनका स्वरूप जिन-आगम से जानकर....** देखो! लो, अन्तिम यह लिया वापस। इनका स्वरूप जिन-आगम में ऐसा है। जिन आगम के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं होती नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? श्वेताम्बर में भी कालद्रव्य माना नहीं। इससे आगम ही सच्चे नहीं। उन्होंने कहे हुए पदार्थ सच्चे नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। बहुत कठिन काम। जगत से अनमेल होकर भिन्न जाने, तब काम आवे।

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के कहे हुए आगम, उनमें छह द्रव्य का गुण-पर्याय का वर्णन है, ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं हो सकता। आहाहा! परन्तु अब हमारे यहाँ धन्धा करना, कमाकर खाना या यह करना हमारे? ऐई! यह स्त्री, पुत्र को... निभाना हमारे। घर में आठ-आठ, दस-दस लोग और यहाँ २००-३०० मुश्किल से महीने में मिलते हों। अब उसमें यह महँगाई। अब उसमें कहे, तुम ऐसा जानपना करो। हमारे कहाँ से समय निकालना?

मुमुक्षु : यह कब करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह मरने का समय मिलेगा या नहीं? रोग आवे तो छह महीने खाट पर पड़ा नहीं रहता? हाय... पैर टूट गया। यह कमर में क्या कहलाता है? मणका। कमर में मणका कुछ होता है न? ऐसा कहते हैं। मणका...

मुमुक्षु : .... चढ़ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चढ़ जाये, परन्तु एक मणका पड़े उसमें। तो दुकान में भी जाया नहीं जाये। यह कर ले न यह। रोग में निवृत्ति ले। कल कोई कहता था एक रोग। .... किसी को।

जिन-आगम से... इनका स्वरूप जानकर देखना.... जानकर देखना, ऐसा। ... सत्ता। **जानना,... जानकर देखना,....** जाने बिना भी देखे कौन? किस प्रकार से? सत्ता में। **जानना, श्रद्धान करना,....** देखो! **इनका स्वरूप जिन-आगम से जानकर देखना, जानना, श्रद्धान करना,....** यह निश्चय श्रद्धा की बात है, हों! इसलिए कहते हैं,

मोहरहित की बात है। यह छह द्रव्य की श्रद्धा, वह तो पर्याय की श्रद्धा जानने से पर्याय उसमें आ जाती है और वह द्रव्य-पर्यायस्वरूप सत्ता है, उसकी द्रव्य के ऊपर दृष्टि देने से पर्याय का लक्ष्य तो रखा ही है ज्ञान में। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अलग। वह तो भेदवाली की बात है। वह भेद से बात है। यह अभेद से, निश्चय से बात है। खबर है न। 'जीवादि सद्दणं सम्मतं' आता है न, खबर है न! वह तो व्यवहार की बातें हैं। यहाँ तो द्रव्य, पर्याय ऐसा जो सत्तास्वरूप आत्मा, उसकी एक समय की पर्याय में छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली पर्याय को मानना और श्रद्धा करना, ऐसा इकट्ठा लेना। आहाहा!

छह द्रव्य, तो छह द्रव्य ऊपर नहीं, उसकी पर्याय जीव की एक समय की... क्योंकि जीव सत्तास्वरूप द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। तो द्रव्य तो त्रिकाल है, यह गुण भी त्रिकाल। और एक पर्याय में इतनी सामर्थ्य है कि छह द्रव्य को जानने का स्वभाव, उसकी एक पर्याय का इतना सामर्थ्य है। तो उसकी पर्याय और द्रव्य को दो को इस प्रकार से देखे, जाने और श्रद्धा करे तो चारित्र शुद्ध होता है। आहाहा! आ गया इसमें। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ... ऐसी है। बहुत अच्छी बात है। ओहोहो!

यह **जिन-आगम से जानकर देखना, जानना, श्रद्धान करना, इससे चारित्र शुद्ध होता है।** तो उसे चारित्र—स्वरूप की रमणता शुद्ध होती है। जिसे द्रव्य-पर्याय की खबर ही नहीं, उसे चारित्र होगा कहाँ से? आहाहा! कठिन बात, भाई! **बिना ज्ञान, श्रद्धान के आचरण शुद्ध नहीं होता है,....** जिसे ऐसा द्रव्य और पर्याय का इस प्रकार से स्वरूप है, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं, उसका **आचरण शुद्ध नहीं होता है,....** आहाहा! इतना आत्मा एक समय की पर्यायवाला, जिसमें छह द्रव्य ज्ञात हों, ऐसी एक समय की पर्याय, उतनी पर्याय को जो माने नहीं और उससे अनन्तगुणा द्रव्य है, ऐसा माने नहीं, उसे आचरण शुद्धता हो नहीं सकती। आहाहा! **इस प्रकार जानना।** लो! बहुत अच्छी बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक-३०-११-१९७३
गाथा- १९, २०, २१, २२, प्रवचन-५५

गाथा - १९

१९वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि ये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन भाव मोहरहित जीव के होते हैं,....** यह निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है। **इनका आचरण करता हुआ शीघ्र मोक्ष पाता है:—** कल प्रश्न था न कि भाई! यह छह द्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय वह तो सब व्यवहार हो गया। चेतनजी! तब यहाँ तो निश्चय है। छह द्रव्य का जो है, वह तो पर्याय में ज्ञान आ जाता है और पर्याय का ज्ञान रखकर द्रव्य के ऊपर दृष्टि करता है, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। इससे निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्ज्ञान की यह बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह शुद्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ शुद्ध। मोहरहित है न।

एए तिण्णि वि भावा, हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
णियगुणमाराहंतो, अचिरेण य कम्म परिहरइ॥१९॥

अर्थ:—ये पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन भाव हैं,.... भाव शब्द से यह पर्याय हैं तीन। पर्याय को भी भाव कहते हैं, गुण को भी भाव कहते हैं, द्रव्य को भी भाव कहते हैं। जहाँ जो योग्य लगे, वहाँ वह समझना। सम्यग्दर्शन आत्मा अखण्ड परिपूर्ण की अन्तर प्रतीति, ज्ञान के भान में उसका ज्ञान और उसमें रमणता, यह तीन पर्याय है। **ये निश्चय से मोह....** रहित **मोह अर्थात् मिथ्यात्वरहित जीव के ही होते हैं....** जीव की पर्याय में यह भाव होते हैं। मिथ्यात्वरहित—भ्रमणारहित यह पर्याय जीव की दशा में होती है। जीव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके आश्रय से दर्शन, ज्ञान और चारित्र हो, वह जीव की पर्याय में है।

तब यह जीव अपना निजगुण जो शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतना की आराधना

करता हुआ.... पश्चात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोहरहित पर्याय, वह निज गुण का आराधन करता हुआ। परद्रव्य सर्वज्ञदेव आदि गुरु, ऐसा नहीं। निजगुण का आराधन। स्वयं शुद्धदर्शन, शुद्ध ज्ञानमय चेतना की आराधना करता हुआ **थोड़े ही काल में कर्म का नाश करता है।** अपना आनन्द और शुद्ध चैतन्यस्वभाव का आराधन करता हुआ, उसकी सेवा करता हुआ, शुद्ध चैतन्य में एकाग्र होता हुआ, अल्पकाल में मुक्ति को पाता है। लो, वह मोक्षमार्ग भी यह कहा। परद्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान आदि वह सब राग है। वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। अपने गुण का आराधन। क्योंकि गुणरूप ऐसी वस्तु, उसकी प्रतीति, ज्ञान और उसमें रमणता, वह तो गुण का आराधन है। विकार, निमित्त का आराधन वह नहीं।

अपने शुद्ध स्वभाव के सन्मुख की दशा, वह स्वभाव का आराधन है। आहाहा! ऐसा आराधन करता हुआ '**अचिरेण**' थोड़े काल में नाश करता है, लो! उसमें कहीं ऐसा नहीं आया कि क्रमबद्ध आकर काल में करेगा मोक्ष। यह तो '**अचिरेण**' से होता है, ऐसा कहा। थोड़े काल में। तो काल—क्रमबद्ध उड़ गया या नहीं? बदले क्या? उसकी स्थिति ही इतनी है, ऐसा कहना है। वस्तु का ज्ञानगुण आदि, आनन्दगुण का आराधन करते हुए अल्पकाल में ही उसके क्रम में केवलज्ञान आयेगा, ऐसा कहते हैं। उसका वह क्रमबद्ध है। आहाहा! लोग शब्द कुछ आवे, वहाँ उलझते हैं। अब उसे केवलज्ञान प्राप्त होने का लम्बा काल नहीं है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन और ज्ञान, दो ही हों, तब तक उसे केवलज्ञान प्राप्त करने का लम्बा काल है। परन्तु तीनों इकट्ठे होकर यह गुण का आराधन करे तो उसे केवलज्ञान होने का अल्प काल ही है, ऐसा कहते हैं। **काल में कर्म का नाश करता है।** लो!

भावार्थः—निजगुण के ध्यान से.... देखो! भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्द, शुद्ध गुण का धाम, उस गुण का ध्यान करने से.... उस गुण का ध्यान करने से अर्थात् गुण में एकाग्रता करने से **शीघ्र ही केवलज्ञान उत्पन्न करके....** अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करके **मोक्ष पाता है।** लो! यह मोक्ष का उपाय यह चारित्र का अधिकार है न यहाँ? स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का चारित्र, यह तीन जहाँ हुए तो अल्पकाल में उसे केवलज्ञान प्राप्ति होती है। इस गुण का आराधन करने से, ऐसा। तीन

का इकट्ठा करके, ऐसा कहा है। तीन का इकट्ठा करके ऐसा कहा कि त्रिकाली गुण का आराधन। इस प्रकार, दर्शन-ज्ञान और चारित्र अर्थात् त्रिकाली गुण का आराधन। आहाहा! समझ में आया?

पहले दर्शन, ज्ञान लिये। पश्चात् कहा निजगुण आराधन। अर्थात् कि ये तीनों निजगुण स्वरूप भगवान पूर्ण सर्वज्ञ, पूर्ण आनन्द ऐसे गुण की अन्तर की एकाग्रता, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उस निजगुण के आराधन से केवल (ज्ञान) होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : यह एक ही उपाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो जो हो, वह होगा न! दूसरा कोई (मार्ग नहीं), मार्ग ही यह है। स्वयं परमात्मस्वरूप ही शुद्ध चैतन्य है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसका सेवन, उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों आ गये अन्दर। उसके सन्मुख की दृष्टि, सन्मुख का ज्ञान और सन्मुख में रमणता। आहाहा! वही निज गुण का सेवन है। वह निज गुण का आराधन है, वह निज गुण की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रदशा है। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २०

आगे इस सम्यक्त्वचरण चारित्र के कथन का संकोच करते हैं:—

संखिज्जमसंखिज्जगुणं, च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तणुचरंता, करेंति दुक्खक्खयं धीरा॥२०॥

आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकितचरण को यहाँ अब पूरा करते हैं, ऐसा। फिर चारित्रचरण को लेंगे। पश्चात् आयेगा न, तुरन्त ही है। **'दुविहं संजमचरणं'** समकितचरण को यहाँ पूरा करते हैं।

अर्थः—सम्यक्त्व का आचरण करते हुए.... शुद्ध स्वभाव पवित्र का आचरण करता हुआ समकिती। लो! **सम्यक्त्व का आचरण करते हुए....** यह सम्यग्दर्शन का आचरण अर्थात् त्रिकाल स्वरूप का आराधन, वह सम्यग्दर्शन का आचरण। **धीर पुरुष...** धीर पुरुष। यह वह विकल्प उठाकर कुछ वाद-विवाद, उसमें यह कुछ है नहीं। प्रवृत्ति कुछ करना, महाव्रत पालना या... आहाहा! स्वरूप को दृष्टि में लेकर अन्दर स्थिर होना है। वह तो धीर पुरुष का काम है। धीर का अर्थ किया है। धी अर्थात् बुद्धि। ज्ञान की प्रेरणा, स्वभाव-सन्मुख हो उसे धीर कहा जाता है। 'धी' अर्थात् बुद्धि और 'र' अर्थात् प्रेरित करना। अपने ज्ञान की प्रेरणा स्वस्वभाव-सन्मुख होना, उसे यहाँ धीर कहा जाता है। ऐसे धीरों का यह काम है, कहते हैं। आहाहा!

वे **धीर पुरुष संख्यातगुणी तथा असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करते हैं....** सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने पर असंख्यगुणी निर्जरा होती है। पश्चात् संयमचरण चारित्र हो, तब बहुत निर्जरा असंख्यगुणी होती है। **और कर्मों के उदय से हुए संसार के दुःख....** भाषा देखो! आहाहा! **'दुक्खक्खयं धीरा'** कर्म का निमित्त है दर्शनमोह का, वहाँ मिथ्यात्व का दुःख है। चारित्रमोह का उदय है, वहाँ राग-द्वेष हों, वह चारित्र के दोष का दुःख है। वह दुःख है। ऐई! दोष नहीं लिया। दुःख ही लिया सीधा।

संसार के दुःख का नाश करते हैं। आहाहा! **कर्म कैसे हैं? संसारी जीवों के मेरु अर्थात् मर्यादा मात्र हैं....** बहुत हैं, ऐसा कहे। **सिद्ध होने के बाद कर्म नहीं हैं।** उसमें .... आयेगा थोड़ी निर्जरा है, ऐसा। सम्यग्दर्शन आदि में है, वह तुरन्त ही... निर्जरा है। और चारित्रसहित हो, उसे मेरु समान निर्जरा है, ऐसा। सम्यग्दर्शन में है, उसे थोड़ी निर्जरा है। और चारित्र है। मूल यहाँ चारित्र अधिकार है न! अर्थात् स्वरूप में चारित्र हो, उसे मेरु जितनी अर्थात् बहुत निर्जरा है, ऐसा। समझ में आया? **कर्म कैसे हैं? संसारी जीवों के मेरु....** समान। उसमें फिर कर्म की बात ली है और ऐसे निर्जरा की बात ली है।

भावार्थः—इस सम्यक्त्व का आचरण होने पर प्रथम काल में तो.... देखो! सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति काल में तो.... सम्यक्चरण है न अन्दर इकट्ठा? स्वरूप का आचरण भी है इकट्ठा। उससे गुणश्रेणी निर्जरा होती है। वह असंख्यात गुणी। **असंख्यात के**

गुणाकाररूप है। पीछे जब तक संयम का आचरण नहीं होता है, तब तक गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती है। गुणश्रेणी अर्थात् इतनी असंख्यगुणी नहीं ऐसा। ऐसी नहीं होती। **वहाँ संख्यात के गुणाकाररूप होती है....** थोड़ी निर्जरा है, परन्तु संख्यातगुणी।

इसलिए संख्यातगुण और असंख्यातगुण इस प्रकार दोनों वचन कहे। कर्म तो संसार अवस्था है,.... देखो! कर्म है, वह निमित्तरूप से है, वहाँ संसार अवस्था है। **जब तक है, उसमें दु:ख का कारण मोहकर्म है,....** लो! **जब तक है...** ऐसा। जब तक कर्म मोह है, तब तक मोहकर्म दु:ख का कारण है। यहाँ दोष का कारण मोह है, ऐसा न लेकर, दु:ख का कारण, सीधी बात ली है। समझ में आया? मिथ्यात्वमोह और चारित्रमोह दोनों दु:खरूप दशा है। उसमें कहते हैं, **उसमें मिथ्यात्वकर्म प्रधान है।** मिथ्यात्वकर्म निमित्त के आधीन होकर अभिप्राय मिथ्या होता है, वह मुख्य दु:खरूप दशा मुख्य है।

सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का तो अभाव ही हुआ और चारित्रमोह दु:ख का कारण है,.... लो! पाठ ऐसा लिया न! '**सम्मत्तणुचरंता, करेंति दुक्खक्खयं धीरा**' दु:ख का क्षय करेगा, ऐसा लिया। दोष का क्षय करेगा, ऐसा नहीं लिया। दु:ख का क्षय करेगा, ऐसा लिया। वह दोष और दु:ख दोनों एक ही जाति है। यह तो यहाँ तुरन्त स्पष्टीकरण आया। पत्र आया न! आहाहा!

मुमुक्षु : मात्र दु:ख।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख ही है। यह पाठ ही ऐसा है। '**दुक्खक्खयं धीरा**' कर्म क्षय धीरा या दोष क्षय धीरा, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! आत्मा के आनन्द से उल्टी जो श्रद्धा, वह दु:खरूप है। आनन्द से उल्टी अस्थिरता पुण्य-पाप के भाव, वे भी दु:खरूप हैं। आहाहा!

सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का तो अभाव ही हुआ और चारित्रमोह दु:ख का कारण है, सो यह भी जब तक है, तब तक उसकी निर्जरा करता है,.... दु:ख है सही, परन्तु स्वभाव के आश्रय से वह छूटता जाता है। समझ में आया? उसमें लिया न भाई ने निर्जरा में, नहीं? १९४ गाथा। सुख-दु:ख वेदन नियम से होता है। ९४ गाथा निर्जरा अधिकार। और पहली द्रव्यनिर्जरा की गाथा थी। ९३ है वह। फिर भावनिर्जरा

कहा। वेदन सुख-दुःख है, परन्तु उसका स्वामित्व नहीं, धनीपना नहीं। वह वेदन तो है। परन्तु वह वेदन स्वामीपना नहीं तो खिर जाता है, ऐसा कहते हैं। साता-असाता ली है न! साता-असाता सुख-दुःख के भाव को छोड़ता नहीं। साता-असाता निमित्त है। वास्तव में साथ में मोह लेना है न; इसलिए उसे सुख-दुःख की कल्पना वेदन में आती है। ज्ञानी को वह वेदन होने पर भी उसे खिर जाता है। अज्ञानी को वह वेदन अपनेपने की मान्यता में पड़ा है, इसलिए नया बन्धन करेगा। उसे (भी) खिर तो जाता है, परन्तु नया बन्धन करके खिरता है।

वहाँ तो चार दृष्टान्त दिये हैं न लगातार, देखो! निर्जरा में, भाई! एक तो ज्ञान-वैराग्य शक्ति कही है। सम्यग्दर्शन होने पर, ज्ञान का वेदन जोरवाला है और वैराग्य है। राग से अभावरूप नास्ति का उसे वैराग्य। आहाहा! इस ज्ञान-वैराग्यशक्ति के कारण... दृष्टान्त दिया है, देखो तो वैद्य का। वैद्य औषध खाते हुए मरता नहीं। विष खाते हुए मरता नहीं। आता है न? विष का, मदिरा का और सेवक का, तीन (उदाहरण) लगातार दिये हैं। सम्यग्दर्शन आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की श्रद्धा, ज्ञान, उसके कारण ज्ञान और वैराग्यशक्ति दो होती है। और उसके वेदन में राग-द्वेष आते हैं। सुख-दुःख होता अवश्य है। परन्तु जहर खाते हुए जैसे वैद्य मरता नहीं, उसी प्रकार यह वेदता हुआ उसे अपना मानता नहीं, इसलिए वह खिर जाता है। समझ में आया? और अरति का आता है न? अरतिभाव से मदिरा पीता हुआ, आहाहा! वेदन तो है, परन्तु उसके प्रति अरति है। प्रेम—सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! इसलिए धर्मात्मा जीव को वेदन में आने पर भी सुख-दुःख ... खिर जाते हैं और सेवक होने पर भी सेवन नहीं करता और असेवक... आता है न वह?

मुमुक्षु : नौकर प्रमाणिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौकर प्रमाणिक हो। वह सेवक है, तथापि सेवन नहीं करता। वह सेठ का काम है। सेठ सेवा नहीं करता तो भी सेवक है, मालिक वह है। उसी प्रकार अज्ञानी को राग-द्वेष के सेवन में स्वामित्व है। धर्मी को उसके सेवन में स्वामित्व उड़ गया है। इसलिए उसे शुद्धता बढ़ती है और कर्म की निर्जरा होती है, ऐसा है। स्वभाव के आश्रय की बात है। ऐसे इतने अपवास किये, इसलिए निर्जरा होती है, ऐसा नहीं है।

वह तो ऐसा भी कहा न सातवें में। समकिती जीव स्वरूप के अनुभव में हो, तब जो निर्जरा होती है, उसकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थानवाला जीव आहार, पानी, विषय आदि के विकल्प में हो तो भी उसकी निर्जरा अधिक है। निर्जरा कहीं बाहर के संयोग के ऊपर नहीं है। अन्तर के अकषाय भाव के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया? छठवें गुणस्थानवाला आहार, पानी करे, विहार करे, तथापि उसे निर्जरा बहुत होती है, लो! और यह चौथेवाला आहार छोड़कर निर्विकल्प अनुभव में हो, तथापि उसे निर्जरा थोड़ी है। निर्जरा बाह्य के त्याग-अत्याग पर आधारित नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अन्तर के अकषायभाव के परिणमन के आधार पर निर्जरा का माप है। समझ में आया? आहाहा! पाँचवें गुणस्थानवाला भोग के समय काल में जो निर्जरा करता है, उतनी निर्जरा चौथेवाला ध्यान में भी नहीं करता। आहाहा! उसकी अन्दर में जहाँ दृष्टि ऊपर में स्थिरता हुई है, अकषायभाव हुआ है न, और वह धारा पाँचवें में बढ़ गयी है। चौथे में थोड़ी है। आहाहा! वह अकषायपना, वह सुख की दशा है और कषायपना अन्दर जितना, वह सब दुःखदशा है। समझ में आया? बाहर के संयोग के ऊपर अनुकूल-प्रतिकूल वस्तु दुःख की बात नहीं है। तथा बाह्य के त्याग के ऊपर अन्दर में अकषाय परिणमन है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अन्तर के मिथ्यात्व और राग का त्याग जितने अंश में है, उतने अंश में अकषायपना वह निर्जरा का कारण है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्मात्मा दुःख का क्षय करता है। अर्थात् कि जिसके स्वभाव का आश्रय लेकर अकषायभाव समकित प्रगट किया, उतने प्रमाण में उसका दुःख है, वह टालता जाता है। स्वरूप में स्थिरता चारित्र की जिसे प्रगट हुई और भी जरा रागादि दुःख है, वह भी टालता जाता है। परन्तु है वह टालता जाता है न? आहाहा! समझ में आया? टालता जाता है, इसलिए उसे नहीं है यह बात भी... आहाहा! निर्जरा अधिकार में बहुत सरस है। १९३ से ९४, ९५, ९६, ९७। सुख-दुःख को वेदता है, ऐसा कहते हैं। सुख-दुःख छूटता नहीं। छूटता नहीं अर्थात् बिल्कुल वेदन नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा। फिर छूटता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ बिल्कुल सुख-दुःख वेदन में नहीं और छूट जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

देखो न यह शैली! भगवान आत्मा जितने अंश में अकषायभावरूप चारित्ररूप परिणमित हुआ, उतने अंश में अन्दर में वेदन नहीं, उसे उस राग का। उतने अंश में दुःख का वेदन नहीं और दूसरे अंश में जितना है, उतना दुःख का वेदन है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का तो अभाव ही हुआ.... तो इतना दुःख तो टल गया, ऐसा कहते हैं। **और चारित्रमोह दुःख का कारण है,....** आहाहा! देखा! पहले कहा न? **सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व का तो अभाव ही हुआ....** दुःख मिथ्यात्व सम्बन्धी का तो दुःख गया। आहाहा! मात्र परसन्मुख की सावधानी थी, वह स्वभाव सावधान में आया, उतना दुःख तो गया। आहाहा! समझ में आया? **और चारित्रमोह दुःख का कारण है,....** चारित्रमोह भी जब तक है, तब तक भाव में रागादि होते हैं, वह दुःख का कारण है। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव दुःखरूप। यह बात माने। महाव्रत के परिणाम दुःखरूप। और पालन करे कहते हैं। व्यवहार... महाव्रत पाले, आयेगा अभी। उसके दो भाग ही करते हैं, व्रत के ही भाग करेंगे। स्थिरता के नहीं। राग और... व्रत और महाव्रत यह बाहर व्यवहार से बात की है न! इसलिए वे लोग कहे, देखो! यह... यही चारित्र है। इस भूमिका में ऐसे विकल्प इस जाति के होते हैं, उससे उसका भान होता है कि इसे बारह व्रत.... स्थिरता कम है। पंच महाव्रत के परिणाम हुए तो स्थिरता अधिक है। ऐसा वहाँ। समझ में आया? दृष्टान्त तो... सागार वह.... दर्शन है। सग्रन्थ सग्रन्थ है। परिग्रहरहित निरागार। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जितने श्रेणी में मिथ्यात्व जाने के पश्चात् भी चारित्रमोह में जितना भाव रहता है दुःखरूप, इतना वह दुःख है। कहो, सेठ! यह वह दुःख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कीर्ति और पैसा, मकान और स्त्री, पुत्र, परिवार में उत्साह जो आया, वह दुःख है, कहते हैं। और यहाँ भगवान की भक्ति और पंच महाव्रत के परिणाम, वे दुःखरूप हैं। चारित्रमोह के निमित्त से हुई विकार दशा है। ऐसी बात है। अब उसे यहाँ चारित्र कहते हैं वे सब।

वह **चारित्रमोह दु:ख का कारण है, सो यह भी जब तक है, तब तक उसकी निर्जरा करता है,....** निर्जरा करते हैं, इसका अर्थ है... है... और है न? है, उसकी निर्जरा न?

मुमुक्षु : वेदन होता है उसकी निर्जरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन होता है उसकी निर्जरा न? वेदन हुए बिना तो उदय आकर अपने आप खिर गया वह तो। यहाँ वेदना में आया नहीं जरा। वह चारित्रमोह है, इसलिए वेदन में आये बिना रहता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : काटने का काम करता है या वेदने का करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ काटने का काम नहीं, वेदता है और स्वरूप में एकाग्र हो, उतना निर्जरित हो जाता है, अपने आप। निर्जरा करता नहीं और निर्जरित हो जाता है। उसे जानता है। वेदता है, उसे भी जानता है और खिर जाता है, उसे भी जानता है। परन्तु वेदता है, ऐसा जानता है, ऐसा कहना। ऐसी बात है। वेदन है। यहाँ तो आनन्द पूर्ण नहीं, इसलिए दु:ख है, ऐसा सिद्ध करना है न? और फिर क्रम-क्रम से स्वरूप की एकाग्रता से, वह वेदन होने पर भी दूसरे समय खिर जाता है। और अज्ञानी को खिरने पर भी नया बन्धन करता है। आहाहा! ऐसी कठिन बातें। लोगों को अटकने के साधन अनन्त, छूटने के साधन स्व द्रव्य का आश्रय। आहाहा! बाहर में अटकने के साधन अनेक हैं। छूटने का एक उपाय स्व का आश्रय।

मुमुक्षु : परन्तु बाहर वस्तु ही अनन्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त है न, इसलिए कहा अनन्त। आहाहा! भगवान स्वयं एक स्वरूप स्वयं परमात्मा। आहाहा! धर्मी को भी राग होता है, उतना वेदन है, दु:ख का वेदन है, ऐसा कहते हैं। देखो न, क्या कहा? पाठ तो यही लिया है। '**सम्मत्तणुचरंता, करेंति दुक्खक्खयं धीरा**' दोष क्षय धीरा, ऐसा नहीं कहकर, क्योंकि दु:ख का नाश करना है और आनन्द की उत्पत्ति करनी है। ध्येय तो आनन्द की उत्पत्ति करूँ, ऐसा मोक्ष ध्येय है। समझ में आया? इससे चारित्र के स्वरूप की दृष्टि हो, तब उसे निर्जरा थोड़ी है और स्वरूप की स्थिरता चारित्र हो अन्दर में तब उसे निर्जरा बहुत है। उससे पहली

बात लेकर यह बात ली है न! आहाहा! यह अन्दर स्वरूप के आश्रय पर इस निर्जरा का प्रमाण है। कहीं बाहर अपवास इतने किये, इसलिए बारह वर्ष के उपवास किये या बारह महीने के किये भगवान ने। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वरूप में रहो, वही उपवास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही उपवास है न! दूसरा (कौन सा)? उप अर्थात् समीप शुद्ध स्वरूप चैतन्य में एकाग्र होना, वह उपवास है। और उसके प्रमाण में निर्जरा की व्याख्या का माप है। तपसा निर्जरा, ऐसा आता है न? ....देखो, इसमें तपसा है। परन्तु इस तपसा की व्याख्या क्या? अमृत का सागर अन्दर से उछले, इच्छा की उत्पत्ति न हो, उसे यहाँ निर्जरा कहा जाता है। आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म बारीक है। पकड़ने में न आवे। कहीं का कहीं चले। रास्ता हाथ आवे नहीं। उसे संसार नहीं छूटता। समझ में आया? आहाहा!

यह तो '**संखिज्जमसंखिज्जगुणं, च संसारिमेरुमत्ता णं। सम्मत्तणुचरंता, करेंति दुक्खक्खयं धीरा**' आहाहा! धीर पुरुषों, वीर पुरुषों। आहाहा! उसे वीर और धीर कहते हैं कि जो आत्मा के पूर्ण आनन्दस्वरूप के गुण की आराधना करे। आहाहा! कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का धाम प्रभु, उसका आराधना जितने प्रमाण में करे, उतने प्रमाण में उसे धीरता और वीरता लागू पड़े, ऐसी निर्जरा होती है। आहाहा! ऐसी बात है। और उतने प्रमाण में वह जितना आनन्द का आराधन करता है, उतने प्रमाण में वहाँ दुःख का नाश करने का प्रयत्न करता है। नाश करूँ, ऐसा नहीं है परन्तु इस ओर प्रयत्न है, वहाँ दुःख का नाश (अर्थात्) उतना दुःख होता ही नहीं। आहाहा! भाषा तो क्या करे? '**दुक्खक्खयं धीरा**' उपदेश में क्या आवे? पाठ तो भगवान ऐसा कहते हैं, देखो! '**दुक्खक्खयं धीरा**' दुःख का क्षय करता है। इसका अर्थ? कि दुःख का क्षय हो जाता है। आत्मा आनन्दस्वरूप के आराधन में पड़ा है, इसलिए उतना दुःख का नाश हो जाता है। जितना आराधन में नहीं, उतना रागादि हो, उसका दुःख है। आहाहा!

पूर्ण आराधन भगवान आत्मा का होने से पूर्ण आनन्द आवे अतीन्द्रिय पूर्ण। उसे

दु:ख की उत्पत्ति नहीं और दु:ख का क्षय करना भी नहीं। आहाहा! यह बात है। **संयमाचरण के होने पर सब दु:खों का क्षय होवेगा ही।** लो! स्वरूप का भान होने के पश्चात् संयम आचरण करने से, ऐसा। **संयमाचरण के होने पर....** स्वरूप में शान्ति की जमवट होने से। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप में संयमरूपी चारित्र से अन्दर रमणता करते हुए **सब दु:खों का क्षय होवेगा ही।** तब तो राग की उत्पत्ति ही होनेवाली नहीं जहाँ। आहाहा! यह मार्ग वीतराग के हैं, भाई! वीतराग का अर्थात् तेरा, ऐसा। आहाहा!

सम्यक्त्व का माहात्म्य इस प्रकार है कि सम्यक्त्वाचरण होने पर संयमाचरण भी शीघ्र ही होता है,.... उसमें सिद्ध करते हैं। समकित आत्मा का आचरण शुद्ध चैतन्य की दृष्टि प्रगट होने पर, भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य परमात्मा आनन्दस्वरूप की प्रतीति और आचरण स्वरूप में एकाग्रता प्रगट होने पर उसे शीघ्र अल्पकाल में संयमाचरण आयेगा। समझ में आया? **सम्यक्त्व का माहात्म्य इस प्रकार है कि सम्यक्त्वाचरण होने पर संयमाचरण भी....** ऐसा यह है परन्तु संयम आचरण भी **शीघ्र ही होता है....** अल्पकाल में स्वरूप में स्थिरता की दशा प्रगट होगी। फिर उसका अल्पकाल का अर्थ ऐसा नहीं कि वर्ष, दो वर्ष, पाँच वर्ष में उसे चारित्र आवे ही वह। परन्तु अल्पकाल अर्थात् उसे अनन्त काल नहीं चाहिए, ऐसा।

ऋषभदेव भगवान ८३ लाख पूर्व तक संसार में रहे। चारित्र नहीं आया। समकित था, क्षायिक समकित, ज्ञान, तथापि ८३ लाख पूर्व तक चारित्र नहीं। इस अल्पकाल का अर्थ कोई ऐसा ले कि समकित हो, उसे तुरन्त चारित्र आवे ही, (ऐसा नहीं है)। तुरन्त की व्याख्या यह (कि) उसे अनन्त काल चारित्र प्रगट होने के लिये नहीं चाहिए। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ तो उसे चारित्र आवे ही उस भव में, ऐसा भी नहीं है। और उसे पाँच, पचास, सौ, दो सौ, पाँच हजार वर्ष में आवे, ऐसा माप उसे नहीं है। परन्तु जिसे यह दशा हुई, उसे चारित्र आये बिना रहता नहीं, बस इतना। आहाहा!

शीघ्र ही होता है,.... ऐसा लिखा है न? **सम्यक्त्वाचरण होने पर....** संयम आचरण तो अनन्त पुरुषार्थ है वह। साधारण सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ है, उससे संयम

आचरण का पुरुषार्थ अनन्तगुणा है। आहाहा! समझ में आया? परसन्मुख के झुकाव की वृत्ति छोड़कर स्वसन्मुख में स्थिरता करना, वह कहीं साधारण बात नहीं है। स्वस्वरूप के सन्मुख होकर दृष्टि प्रगट हुए होने पर भी समकितचरण आचरण होने पर भी स्वरूप में एकदम लीन होना, ऐसा चारित्र महापुरुषार्थ माँगता है। अनन्त पुरुषार्थ। आये बिना रहेगा नहीं उसे, कहते हैं। पूरा कब्जा किया है न भगवान आत्मा को दृष्टि में, इसलिए चारित्र और केवलज्ञान हुए बिना रहेगा ही नहीं। आहाहा!

शीघ्र ही होता है, इसलिए सम्यक्त्व को मोक्षमार्ग में प्रधान जानकर.... इसलिए सम्यग्दर्शन को मोक्षमार्ग में मुख्य जानकर **इस ही का वर्णन पहिले किया है।** उसका वर्णन पहले किया। है अधिकार चारित्र का, परन्तु समकितचरण का अधिकार पहले शुरु किया। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २१

आगे संयमाचरण चारित्र को कहते हैं:—इसमें लोग उलझन में आते हैं। सम्यग्दर्शन अनुभव और ध्यान होने पर भी उसे संयम नहीं होता। राग हो, द्वेष हो, युद्ध का भाव हो। आहाहा! परन्तु उस भव को छोड़कर स्वरूप में रमणता, वह तो चारित्र का पुरुषार्थ अनन्तगुणा है। परन्तु उसके पहले यह सम्यग्दर्शन न हो और चारित्र आवे, उसके लिये पहले यह बात की है। सम्यक्त्वचरणचारित्र। आहाहा!

दुविहं संजमचरणं, सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे, परिगहा रहिय खलु णिरायरं॥२१॥

अर्थ:—संयमाचरण चारित्र दो प्रकार का है—सागार और निरागार। जिसमें कुछ आगार है, ऐसा श्रावकपना और आगार नहीं, ऐसा मुनिपना। आहाहा! पहली यह व्याख्या सम्यक्त्वचरणचारित्र की। वरना अधिकार चारित्र का है। तथापि सम्यक्त्वचरणचारित्र समकित का अधिकार तो वहाँ आ गया है दर्शनपाहुड़ में। तथापि यहाँ सम्यक्चरणचारित्र आचार्य ने पहले होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। पश्चात् उसे

संयम आचरण चारित्र होता है। **सागार तो परिग्रह सहित श्रावक के होता है और निरागार परिग्रह से रहित मुनि के होता है, यह निश्चय है।** '**खलु**' है न? '**रहिय खलु णिरायरं**' आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २२

आगे सागार संयमाचरण को कहते हैं:—अब। प्रतिमा ली है, लो! प्रतिमा का वह विकल्प है न, उसे वह माने। यहाँ तो विकल्प है, वह बताते हैं, परन्तु किस भूमिका में ऐसा विकल्प होता है, ऐसा। दूसरे कषाय का अभाव हो, उतना अन्दर चारित्रस्वरूप प्रगट हुआ हो, उसे ऐसे ग्यारह प्रतिमा के विकल्प होते हैं। अकेले विकल्प है, वह स्वयं चारित्र है—ऐसा नहीं। उसमें से यह लोग ऐसा कहते हैं न यह रतनचन्दजी, मक्खनलालजी। देखो! संयम के दो भेद किये। बारह व्रत और पंच महाव्रत। उसे वह संयम है। वह तो संयम को बताने में निमित्त है।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित रायभत्ते य।
बंभारंभपरिग्गह, अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य॥२२॥

अर्थः—दर्शन,.... प्रतिमा यह पाँचवें गुणस्थान की बात है। है नाम दर्शन इसका नाम। दर्शन प्रतिमा, परन्तु है पाँचवाँ गुणस्थान। सम्यग्दर्शन उपरान्त दूसरी कषाय (चौकड़ी) टली है, उसे अमुक स्थिरता हुई है, उसे यह दर्शन प्रतिमा का विकल्प होता है। समझ में आया? **व्रत,...** यह भी सम्यग्दर्शनसहित स्थिरता दूसरी कषाय के अभाव की हुई है, उसे यह व्रत के विकल्प आदि होते हैं। ऐसे **सामायिक,...** उसे सामायिक होती है। यह सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् स्वरूप में आंशिक स्थिरता हुई है, उसे ऐसे सामायिक भाव होते हैं। यहाँ तो सब आठ वर्ष की लड़की सामायिक करके बैठ जाये। कुछ भान नहीं होता। लो! पाँच सामायिक की। दो उसे सवा सेर पेड़ा। फिर से वापस आवे। आहाहा!

सामायिक किसे कहना, बापू! सम्यक्चरणचारित्र बिना सामायिक नहीं हो

सकती।.... सामायिक कर जाने, कहते हैं न यह सामायिक करे। सामायिक किसे होती है? जिसे आत्मा वीतरागस्वरूपी प्रभु की दृष्टि में, अनुभव में, ज्ञान में, आचरण के अंश में आ गया है। आहाहा! अन्दर चैतन्य भगवान आत्मा देह, वाणी, मन, यह तो मिट्टी-जड़ है इससे भिन्न; पुण्य और पाप के राग से, विकल्प से भिन्न प्रभु आत्मा का जिसे अन्तर में दर्शन, ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता का अंश हुआ है। उसे सम्यक्‌चरणचारित्र की भूमिका कही जाती है। फिर उसे यह सामायिक की भूमिका आती है। कहो, समझ में आया? कितनी सामायिकें की होंगी। की थी या नहीं?

मुमुक्षु : अरे! कितनी की और बहुतों को करायी।....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुतों को करायी। की बहुत और करायी बहुत, ऐसा कहते हैं।... थे न लालन। लालन सामायिक कितनी बार महीने की सामायिक करते थे। ऐसा कुछ अंक था। स्वयं इतनी करे, दूसरे से करावे और करते हुए को अनुमोदन करे। ऐसा करके तीनों ६० दिन की सामायिक ऐसा अंक था। पण्डितजी का अंक था। लालन पण्डित थे न! वे अंक कहते थे। इकट्ठे रहे थे न बारह महीने वहाँ।

मुमुक्षु : बुक में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुक में लिखा है, हाँ। इतनी सामायिक कहना। तीसरा भाग। ३६० दिन हैं न? उसकी एक-एक घण्टे सामायिक। एक घण्टे नहीं ४८ मिनिट की सामायिक। वह ३६० दिन की जितनी सामायिक होती है, उसका एक भाग स्वयं करे, दूसरा भाग करावे, तीसरे भाग का अनुमोदन करे। ऐसा करे। बारह महीने की सामायिक। लालन थे। पण्डित लालन। दस हजार शास्त्र पढ़े हुए। दस हजार शास्त्र। श्वेताम्बर पण्डित थे। यहाँ रहे थे बारह महीने। यहाँ बैठते थे। भान कुछ नहीं होता। कुछ का कुछ और यह सामायिक। सामायिक किसे कहना, बापू! आहाहा!

सामायिक में तो समता का लाभ होता है। सम-आय, ऐसा है न? जैसे कषाय ऐसे समाय। कष अर्थात् संसार का लाभ हो, वह विकारभाव। और समता का लाभ हो, वह सामायिक। समता का भाव कब होगा? स्वयं वीतरागमूर्ति समतास्वरूप प्रभु है, ऐसी प्रथम दृष्टि का आचरण हुआ हो, उसमें उसे स्थिरता की समता के परिणाम प्रगट

हों। आहाहा! समझ में आया? यह दिगम्बर में भी सामायिक करते हैं। यह शीतलप्रसाद करते थे। रहे थे न यहाँ शीतलप्रसाद तुम्हारे। चबूतरे पर बैठे। फिर दो घड़ी करके सामायिक की।

कहते हैं, यह सामायिक प्रतिमा किसे होती है? कि जिसे सम्यग्दर्शनरूपी आचरण जिसे अन्तर स्वरूप के स्वभाव का आचरण प्रगट हुआ है, उसे स्वभाव में स्थिरता का अंश अधिक होता है, उसे सामायिक होती है। अब यह सब इतनी शर्तें बिना सामायिक है। कहो, गुणवन्तभाई! सामायिक की होगी या नहीं पहले? नहीं की। सीधे आये थे न इसमें इसलिए। सीधे इसमें आये न! कपूरभाई ने की होगी। झबेरभाई पहले करते न वहाँ। आहाहा! हमने भी सब की थी, हों! वहाँ दुकान में तो। पालेज में सामायिक करते। सामायिक करें। प्रौषध करके सामायिक करके अपवास करते। पर्यूषण के अपवास चार। आठ दिन के चार बस, हों! बाद में नहीं। सामायिक आठ दिन। समझे बिना की। खबर भी नहीं होती।

यहाँ कहते हैं कि **सामायिक और प्रौषध....** लो! अष्टमी-चतुर्दशी का प्रौषध हो। प्रौषध अर्थात् आत्मा के स्वभाव का पोषण। जैसे चना पानी में डूबे और पोढो हो, वैसे आत्मा जो शुद्ध चैतन्य है, ऐसी जहाँ अन्तर दृष्टि में ज्ञात हुआ है, उसमें स्थिरता अन्तर स्थिरता द्वारा पोषण हो, उसे प्रौषध कहा जाता है। यहाँ तो प्रौषध कितने कर डाले। आठ-आठ अपवास चतुर्विध आहारत्याग और वे। पानी न पीवे और हो गया प्रौषध। आहाहा! प्रौषध तो उसे होता है, जिसे आत्मा में रमणता करनी है। तो वह आत्मा क्या चीज़ है, ऐसा जिसे अन्तर्दृष्टि में, ज्ञान में भान हुआ है कि यह आत्मा परम आनन्द और शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु है। प्रत्येक का आत्मा ऐसा भगवानस्वरूपी प्रभु आत्मा है। आहाहा! कहो, ऐई! धीरुभाई! कितनी सामायिकें की होंगी? कितनी ही की होगी बहुत सब। थोथा होगा सब। आहाहा!

एक क्षण की सामायिक समता को—उग्रपने की समता को दे। चौथे गुणस्थान में जो समता का आचरण है, उससे पाँचवें गुणस्थान में समता का आचरण विशेष है। आहाहा! स्वरूप चिदानन्द प्रभु आत्मा की जिस भूमिका में दृष्टि का भान हुआ, उसमें स्थिर होना है। तो वह चीज़ ही जहाँ दृष्टि में आयी नहीं, वह चीज़ क्या है, वह ज्ञान में

ज्ञात हुई नहीं और उसमें स्थिर होना उसे आ जाये चारित्र, प्रौषध, यह तीन काल में नहीं होता। ऐई! जादवजीभाई! प्रौषध-ब्रौषध किये होंगे या नहीं? ....भाई!

मुमुक्षु : किये परन्तु खोटे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, परन्तु किये थे या नहीं? आहाहा! ग्यारह अंग प्रौषध ... कहते हैं, लो! जामनगर में बहुत प्रौषध होते हैं अष्टमी के और चतुर्दशी के। चतुर्दशी के नहीं, पंचमी के।

यहाँ तो कहते हैं, **सामायिक और प्रौषध...** नाम है न सब फिर यह? **आदि का नाम एकदेश है, और नाम ऐसे कहें—प्रोषधोपवास....** ऐसा लेना, ऐसा। समझे न? **सचित्तत्याग,...** लो, ठीक! यह फिर आया। एक, दो, तीन और चार .... प्रौषध चार फिर पाँच, फिर त्याग। स्वरूप की दृष्टि का भान होने के पश्चात् अन्तर में शान्ति का अंश वेदन में, उसे फिर सचित्तत्याग का एक विकल्प होता है कि सचित्त खाना नहीं। जिसमें जीव हो एकेन्द्रिय वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। हरितकाय सीधी हरितकाय, कन्दमूल, वह खाना नहीं। यह सचित्त का त्याग। कन्दमूल का त्याग तो पहले से होता है परन्तु इस समय सचित्त जीव भी.... सचेत पानी एक बिन्दू है। पानी यह गोला के पानी में असंख्य एकेन्द्रिय जीव हैं। वह सचेत पानी पाँचवीं प्रतिमावाला नहीं पीता। अचेत करके पीता है। गर्म करके (पीता है)। इतनी अन्दर में स्थिरता का अंश है कि जिससे उसकी इतनी गृद्धि गयी है। आहाहा!

सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग,.... लो! छठी प्रतिमा में रात्रि का भोजन नहीं। यद्यपि शुरुआतवाले को भी रात्रि का भोजन तो जैन सम्प्रदाय में हो, उसे होता नहीं। समझ में आया? क्योंकि उसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति बहुत होती है। खिचड़ी, दूध, कढ़ी में बारीक जीवांत गिरे, वह आहार नहीं होता। ऐसा बहुत वर्णन है। और यहाँ तो प्रतिज्ञारूप से रात्रिभोजन का त्याग है। पहले प्रतिज्ञा बिना। वह हो नहीं सकता। आहाहा! यहाँ रात्रि परित्याग। रात्रिभोजन स्वयं करे नहीं। **रात्रिभुक्ति त्याग,...** कहो, सम्यग्दृष्टि के आचरण के पश्चात् जब यह प्रतिमा का आचरण आवे, तब उसे रात्रिभोजन का प्रतिज्ञा से त्याग होता है। पहली प्रतिज्ञा न हो शुरुआत में। आहार-पानी छोड़े, रात्रि

में आहार-पानी करे नहीं। प्रतिज्ञा नहीं होती। यह तो प्रतिज्ञापूर्वक की बात चलती है। पश्चात् **ब्रह्मचर्य,...** दिन और रात्रि का ब्रह्मचर्य होता है। **आरम्भत्याग,...** स्वयं आरम्भ करे नहीं। उसका त्याग होता है। **परिग्रहत्याग,...** परिग्रह रखे नहीं। **अनुमतित्याग...** उसका फिर अनुमोदन करे नहीं। उसके लिये आहार-पानी बनाया हो, उसका अनुमोदन वह करावे नहीं। और **उद्दिष्टत्याग,...** लो, उसके लिये बनाया हुआ आहार ले नहीं। श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमावाला। **इस प्रकार ग्यारह प्रकार देशविरत है।** लो!

भावार्थः—ये सागार संयमाचरण के ग्यारह स्थान हैं, इनको प्रतिमा भी कहते हैं। विशेष इसकी बात है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध — प्रवचन ५६ उपलब्ध नहीं है।

आषाढ़ कृष्ण ५, गुरुवार, दिनांक-२३-०७-१९७०
गाथा- २३, २४, २५, प्रवचन-४३

अष्टपाहुड़, चारित्रपाहुड़ की व्याख्या है। २३वीं गाथा। क्या कहते हैं? श्रावक का ग्यारह प्रतिमा होती है। प्रतिमा अर्थात् क्या? कि प्रथम उसे सम्यग्दर्शन (होता है)। आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य है। पुण्य-पाप के रागरहित शुद्ध पूर्ण आनन्दस्वरूप, जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही आत्मा ध्रुव शुद्ध है। ऐसी अन्तर में उसका ज्ञान होकर प्रतीति होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। कहो, समझ में आया? तब तक उसे व्रत नहीं होते। परन्तु ऐसा सम्यग्दर्शन प्रथम धर्म की शुरुआत में होता है। पहले धर्म का पहला अंक और पहला आँकड़ा यह है। पश्चात् व्रतादि के विकल्पों की दशा होती है। वह बाद में वर्णन करेंगे। पहला तो सम्यग्दर्शनचरण आया न पहला? सम्यक्चरण चारित्र।

आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने देखा, केवली ने जो आत्मा देखा कि पूर्ण शुद्ध आनन्द का कन्द वह आत्मा है। ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर और संयोग, राग और पर्याय से विमुख होकर, अन्तर्मुख दृष्टि का अनुभव होना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन—धर्म की शुरुआत, श्रावक के व्रत लेने से पहले यह दशा होती है। समझ में आया? पश्चात् दर्शनप्रतिमा के बाद बात चलती है। अब ग्यारह। सम्यग्दर्शन के पश्चात् दर्शनप्रतिमा। दर्शनप्रतिमा उसे कहते हैं कि उसमें उसे पाँच अणुव्रत होते हैं, परन्तु निरतिचार अणुव्रत नहीं होते तो व्रत में अतिचार आदि दोष लगते हैं। इससे उसे सम्यग्दर्शन उपरान्त आत्मा के अनुभव की प्रतीति उपरान्त, उसे पंच अणुव्रत के भाव होते हैं। परन्तु वे अतिचारसहित होते हैं, इसलिए उसे व्रत में नहीं कहा गया है। इसलिए उसे व्रती में, दूसरे नम्बर की (प्रतिमा), पहली दर्शनप्रतिमा, दूसरी व्रतप्रतिमा। उस व्रतप्रतिमा में उसे नहीं रखा गया है। समझ में आया?

यह तो वीतराग का अन्तर का मार्ग है। लोगों को वह बात अन्तर की चीज़ क्या है और उसका अनुभव और प्रतीति क्या कहलाती है, किसे सम्यग्दर्शन कहना, इसकी उन्हें खबर भी नहीं। यह तो बाहर के देव, गुरु, शास्त्र को मानना या यह नव तत्त्व

भगवान ने कहे, वे भेदवाला मानना, बस! सम्यक्त्व (हो गया)। यह सम्यग्दर्शन नहीं। वह तो नव तत्त्व का भेद का अनुभव, उसे तो शास्त्र मिथ्यात्व कहता है। समझ में आया? और देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा, वह भी एक शुभराग विकल्प है। वह कहीं समकित नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा देव, गुरु और स्वयं धर्म का स्वरूप है। ऐसा आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण चैतन्यस्वभावी है, ऐसा जो ध्रुवस्वरूप आत्मा का, उसे अवलम्ब कर जो सम्यग्दर्शन हो, उसे धर्म की पहली सीढ़ी कहते हैं। इसके बिना कहीं धर्म नहीं होता। समझ में आया?

इस सम्यग्दर्शन उपरान्त दर्शनप्रतिमा का धारक अणुव्रती ही है। पंचम गुणस्थान की बात है। पहला सम्यग्दर्शन जो कहा, वह चौथा गुणस्थान है। अब पंचम गुणस्थान श्रावक का, जो सच्चा श्रावक, हों! यह वाड़ा के श्रावक, वे कहीं श्रावक नहीं। समझ में आया? पोपटभाई! कितने प्रौषध और प्रतिक्रमण किये थे या नहीं? किया था। वस्तु की खबर बिना वास्तविक तत्त्व जो चैतन्य, उसमें स्थिर होना है, ऐसा जो चारित्र, उसमें स्थिर होना, वह चारित्र। अब वह चीज़ क्या है, ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान में उस चीज़ को भान में लिया नहीं तो फिर स्थिर कहाँ होना, इसकी तो उसे खबर नहीं। बाकी सम्यग्दर्शन बिना चारित्र और व्रत आदि होते नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन के पश्चात् दर्शनप्रतिमा का धारक अणुव्रती है। **इसका नाम दर्शन ही कहा। यहाँ इस प्रकार (न) जानना कि इसके केवल सम्यक्त्व ही होता है....** क्या कहते हैं जरा? सम्यग्दर्शन आत्मा का, पूर्ण आत्मा का निर्विकल्प अनुभव, राग के मिश्रित बिना पूर्ण चैतन्य भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ, हों! इसके अतिरिक्त अन्य ने कहा हुआ आत्मा, वह आत्मा नहीं। ऐसा जो आत्मा, अन्तर निर्विकल्प दृष्टि से अर्थात् राग की मिश्रित दृष्टि बिना अकेली निर्मल दृष्टि से उसका अनुभव करना, इसका नाम प्रथम चौथा गुणस्थान सम्यग्दर्शन है। इसके पश्चात् दर्शनप्रतिमा, वह पंचम गुणस्थान है। उस पंचम गुणस्थान में पाँच अणुव्रत होते हैं। वह अव्रती नहीं है।

अणुव्रत नहीं है, इसके अणुव्रत अतिचारसहित होते हैं.... ऐसा नहीं कि अव्रती ही है और अणुव्रत नहीं है। ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! अणुव्रत नहीं है, ऐसा नहीं है। अणुव्रत अतिचारसहित होते हैं। उनमें कोई दोष लगते हैं। अतिचार का आता

है न? अनंगक्रीड़ा, ... चौथे व्रत के अतिचार दोष आते हैं। पहले व्रत के अतिचार आते हैं। बंधे वहे... इत्यादि... अतिचार है। परन्तु वह जिसे सम्यग्दर्शन अनुभव है, उसे जो ऐसे व्रत की स्थिरता का अंश प्रगट हुआ है और उसमें जो उसे ऐसे व्रत विकल्प हों, उसे निरतिचार नहीं होते। उसमें कुछ दोष लगता है, इसलिए उसे पंचम गुणस्थान कहा जाता है। परन्तु उसे व्रती नहीं कहा जाता। समझ में आया? **अणुव्रत अतिचारसहित होते हैं, इसलिए व्रती नाम नहीं कहा।** उसे व्रती नहीं कहा जाता। अणुव्रत होने पर भी जो व्रतप्रतिमा दूसरी है, पहली दर्शनप्रतिमा, दूसरी व्रतप्रतिमा, वह व्रतप्रतिमा उसे नहीं कहा जाता। समझ में आया?

दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचाररहित पालता है, इसलिए व्रत नाम कहा है,.... सम्यग्दर्शनसहित दूसरे व्रत अर्थात् प्रतिमा में, नियम में व्रतप्रतिमा कही, उसमें पाँच अणुव्रत निरतिचार, आंशिक अतिचार का दोष न लगे, ऐसे अणुव्रत के राग की बहुत मन्दता और अन्तर में स्वरूप की स्थिरता का अंश जगा है, शान्ति का (अंश जगा है), उसे पंचम गुणस्थानवाला, व्रतप्रतिमावाला—दूसरी प्रतिमावाला कहा जाता है। भारी सूक्ष्म, भाई! भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : बहुत सरस बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरस है? उस नैरोबी में यह कुछ नहीं था। रुपये थे। नहीं थे, रुपये उसके घर में रहे। वे तो जड़ हैं। रुपये तो जड़-अजीव हैं। वे तो अजीव होकर रहे हैं। वे कहीं आत्मा के होकर रहे हैं? पैसा है, वह अजीव होकर रहा है या जीव का होकर रहा है? यदि जीव के होकर रहे, तब तो पैसा अरूपी हो जाए। पैसा शरीर, यह मिट्टी, यह तो अजीव होकर रहे हैं। यह शरीर भी अजीव होकर रहा है। यह कहीं जीव का नहीं है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, उनके आत्मा, उनका आत्मा होकर रहा है, उनके शरीर, उसके अजीव होकर रहे हैं, वे इस जीव के होकर रहे हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे पहले मेरे स्वरूप में वे दूसरे अजीव और जीव नहीं हैं। मेरे स्वरूप में पुण्य और पाप के विकल्प उठे—राग, वह भी नहीं हैं। और मैं एक समय की वर्तमान अवस्था है, उतना मैं नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ध्रुव परमात्मस्वरूप मेरा अपना, शुद्ध सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप वह है, सत् अर्थात् है, चिद् अर्थात् ज्ञान-आनन्द अर्थात् अन्दर आत्मा का अतीन्द्रिय सुख। ऐसा परिपूर्ण आत्मा मेरा है। उसका जिसे अन्तर्मुख होकर भान हो, तदुपरान्त जिसे शान्ति की स्थिरता बढ़कर दर्शनप्रतिमा जिसे हो, उसे पंच अणुव्रत होते हैं। है वहाँ थोड़ा चारित्र का अंश। अणुव्रत है, वह भले विकल्प है परन्तु वहाँ शान्ति की स्थिरता का अंश प्रगट हुआ है। क्योंकि दूसरी कषाय का वहाँ अभाव है। क्या कहा? भगवान ने चार कषायें कही हैं न? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। तो प्रथम आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन होने पर उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ टलते हैं, परन्तु दूसरी तीन कषायें अभी होती हैं; इसलिए उसे सम्यग्दृष्टि, अविरती सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। परन्तु जब अंश भी स्थिरता का अंश दूसरी कषाय का टलकर आया है, उसमें वह पंच अणुव्रत आदि के विकल्प हैं। परन्तु सातिचार है, इसलिए उसे पंचम गुणस्थानवाला दर्शन प्रतिमा में रखा गया है। समझ में आया? श्यामदासजी! बहुत सूक्ष्म बातें, ऐसी बात।

वीतराग का मार्ग ऐसा है, भाई! परमेश्वर साक्षात् केवलज्ञानी ने देखा हुआ, जाना हुआ, अनुभव किया हुआ कहा हुआ मार्ग यह है। दुनिया अपनी मति से मानकर कल्पित कर बैठती है कि हम धर्मी हैं और हम समकिती हैं और व्रतधारी हैं। स्वतन्त्र अनादि से माना है। परन्तु वास्तविक परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो केवलज्ञान में देखा कि समकित इसे कहना, समझ में आया? वह इसने कभी दरकार नहीं की और इसे अपनी जाति पूर्ण आनन्द और शान्ति और वीतरागता से भरपूर चीज़ है, उसकी अनुभव में प्रतीति न हो, तब तक इसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन न हो तो अणुव्रत और महाव्रत के विकल्प हों, वे कहीं व्रत-ब्रत हैं नहीं। वे तो अंकरहित शून्य... शून्य...

यह तो सम्यग्दर्शनसहित... आहाहा! आत्मा का अनुभव। अनु अर्थात् आत्मा शुद्ध आनन्द को अनुसरकर भवना अर्थात् होना। ऐसी दशा में प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन। उसके उपरान्त स्वरूप का आश्रय जरा अधिक लेकर, स्वरूप का—द्रव्य का आश्रय अधिक लेकर जो शान्ति का अंश प्रगट हुआ है, उसमें पाँच अणुव्रत के भाव भी होते

हैं। उसे दर्शनप्रतिमा—पहली प्रतिमा का नाम, उसे दर्शनप्रतिमा कहते हैं। है वह पंचम गुणस्थान में। समझ में आया?

मुमुक्षु : तब आह्लाद आनन्द बढ़ता जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जितने कषाय टले, उतना आनन्द है न, विशेष है न। जितनी कषाय टली है, उतनी स्थिरता और आनन्द भी उतना साथ में है। बारहवें में आनन्द पूरा। तेरहवें में अनन्त आनन्द। चौथे गुणस्थान से आनन्द की शुरुआत होती है, सम्यग्दर्शन से आनन्द की शुरुआत होती है। क्यों? कि जितने गुण आत्मा में भगवान ने अनन्त कहे, उन अनन्त गुण का पिण्ड, वह आत्मद्रव्य है। तो पूरे द्रव्य की जहाँ दृष्टि और प्रतीति हुई तो उसमें जितने गुण अनन्त हैं, उन सबका अंश प्रगट व्यक्त होता है। आहाहा! तो आनन्द का अंश भी व्यक्त और प्रगट है। चारित्र का अंश भी स्वरूपाचरण का आंशिक प्रगट है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? बाहर से लोगों ने मूल बात को छोड़कर बाहर से सब बेगार की। उसमें आत्मा का कुछ कल्याण नहीं हुआ। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा अरिहन्तदेव की वाणी में ऐसा आया, भाई! तू पूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्य है न! वही तू पूरा है। एक समय की पर्याय है, वह पूरी नहीं। अरे! गजब बात, भाई! पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वह तो तू नहीं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प जो उठते हैं, वे तो राग हैं, वह तो आस्रवतत्त्व है। वह आत्मतत्त्व नहीं। उनसे भगवान आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का धाम, उसे जहाँ कब्जे में दृष्टि में लिया, इसलिए जितने गुण, उनकी शक्ति की अंशतः व्यक्तता-प्रगटता चौथे गुणस्थान में हो जाती है। कहो, समझ में आया? इसलिए श्रीमद् ने उसे संक्षिप्त भाषा में 'सर्व गुणांश, वह समकित' ऐसा कहा है। समझ में आया? पाँचवाँ गुणस्थान आने पर श्रावक का गुणस्थान (आता है)। श्रावक का अर्थात् भावश्रावक। समझ में आया? अन्तर की दृष्टि की खिलावट करके अन्दर में स्वरूप का आश्रय अधिक लेने से थोड़ी शान्ति हुई, दूसरी कषाय अप्रत्याख्यानी टली परन्तु अभी उसमें अतिचार दोष लगने का पंच अणुव्रत में सम्भव है। इसलिए उसे दर्शनप्रतिमा कही है, परन्तु उसे व्रतप्रतिमा नहीं कहा। इतना अतिचार खण्ड है, तब तक व्रती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गुणस्थान भले पंचम।

समझ में आया? कब निवृत्त हुए हैं? निवृत्त कब है? कमाना, खाना, पीना, भोग और इज्जत-कीर्ति... मर गया उसमें। धूल में भी नहीं वहाँ कुछ। आहाहा! जहाँ अपना भगवान अन्दर विराजता है, चैतन्यनाथ जहाँ सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं हैं। समझ में आया? वे अन्यमति कहते हैं, ऐसा नहीं, हों! यह तो परमात्मा ने सत्... सत्... सत् जो भगवान ने देखा, सत्... सत... महाप्रभु चेतन, चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। ऐसा परिपूर्ण प्रभु जिसकी श्रद्धा और प्रतीति करने से अनन्त गुणों की शक्ति की व्यक्तता-प्रगटता अनुभव में आवे। समझ में आया? यह पहले करने का है। आहाहा! तत्पश्चात् स्वरूप का—ध्रुव का अधिक आश्रय लेकर, जो शान्ति का अंश प्रगट हुआ, उस भूमिका में पंच अणुव्रत के विकल्प का भाव होता है। परन्तु वह निरतिचार नहीं होता, इसलिए उसे व्रत की दूसरी प्रतिमा में नहीं डाला है। उसे दर्शनप्रतिमा कहते हैं, देखो! है?

दूसरी प्रतिमा में अणुव्रत अतिचाररहित पालता है,.... सम्यग्दर्शनसहित पहली प्रतिमा में पंच अणुव्रत तो है, परन्तु दूसरी प्रतिमा में निरतिचार व्रत पाले, तब उसे व्रती प्रतिमा पंचम गुणस्थान की दूसरी भूमिका की दशा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! **अतिचाररहित पालता है, इसलिए व्रत नाम कहा है, यहाँ सम्यक्त्व के अतिचार टालता है,....** क्या कहते हैं? दर्शनप्रतिमा में पाँच अणुव्रत के भाव, विकल्प हों। स्थिरता का अंश हो परन्तु उसके अतिचार न टाले, परन्तु दर्शनप्रतिमा में समकित के अतिचार टालता है। आहाहा! समझ में आया? शंका, कांक्षा, विचिकित्सा (आदि) समकित के अतिचार आते हैं न? वे उसे नहीं होते। दर्शनप्रतिमा में शंका, कांक्षा... पर... है न? परिचय करना... यह सम्यग्दृष्टि को उल्टी दृष्टिवाले अज्ञानी, जीव को ईश्वरकर्ता माननेवाले, जीव को पराधीन माननेवाले या जीव को एक ही माननेवाले या जड़ को एक ही माननेवाले, ऐसे माननेवाले अज्ञानियों का संसर्ग, उनके गुण नहीं गाये, उनका परिचय न करे। ऐसा पंचम गुणस्थानवाला भी दर्शनप्रतिमावाला, उसके समकित के अतिचार टालता है। व्रत के अतिचार नहीं टालता। समझ में आया? आहाहा!

सम्यक्त्व के अतिचार टालता है, सम्यक्त्व ही प्रधान है,.... इसलिए समकित ही प्रधान है, ऐसा कहते हैं। वहाँ व्रत प्रधान (नहीं है), प्रधान अर्थात् मुख्य व्रत कहने

में नहीं आते। **इसलिए दर्शनप्रतिमा नाम है।** उसे भगवान के सिद्धान्त में दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। **अन्य ग्रन्थों में इसका स्वरूप इस प्रकार कहा है कि जो आठ मूलगुण का पालन करे, सात व्यसन को त्यागे, जिसके सम्यक्त्व अतिचार रहित शुद्ध हो, वह दर्शनप्रतिमा का धारक है।** दूसरे शास्त्रों में परमेश्वर के भी दूसरे शास्त्रों में आठ मूलगुण पाले। पाँच उदम्बर फल हैं न? यह टेटा... क्या कहलाता है? टेटी वड की, उसमें बहुत त्रस होते हैं। इसलिए समकिती उसे नहीं खाता, उसे नहीं लेता। समझ में आया? वड का टेटा, टेटी, यह अंजीर, अंजीर है न? अंजीर। बहुत जीव। अंजीर। सड़ा हुआ हो। जीवांत बहुत बारीक-बारीक, त्रस जीव होते हैं। उसे सम्यग्दृष्टि ऐसे पाँच प्रकार के फल, जिसमें त्रस की उत्पत्ति होती है, उन्हें नहीं खाता। उन्हें खाने का भाव उसे नहीं होता। समझ में आया? उन्हें उदम्बर कहते हैं। ऐसा एक फल वहाँ देखा था। दिशा को गये, वहाँ नीचे फल पड़े हुए। कहाँ? सलासर। सलासर नहीं? उस ओर आया न? सलासर गये थे। दिशा (दस्त के लिये) बाहर गये थे। वहाँ एक बड़ा वृक्ष और नीचे फल। अपने कुछ कभी देखा नहीं। इतने... इतने फल। कहा, क्या होगा यह? अकेली जीवांत पड़ी हुई अन्दर। वह यह ऊंबर के फल थे। यहाँ वृक्ष थे। राजकोट। भाई! अपन उतरे न किसी के मकान में। राठौड़ राठौड़ की जगह में उतरे थे। कुएँ के रास्ते में। बड़ा वृक्ष। ऊंबर के फल का था। मात्र त्रस। टेटी। यह टेटी की सब्जी बनाते हैं न? महा जीवांत अकेली होती है। समकिती ऐसी सब्जी नहीं खाता। इतना तो उसे अन्दर राग का त्याग होता है, ऐसा कहते हैं। एक राग तो टूट गया है, अनन्तानुबन्धी गया है। समझ में आया? जिसमें त्रस की उत्पत्ति (होती हो), उस त्रस का आहार तो माँस का आहार कहलाता है। समझ में आया? ऐ... मथुरभाई! उसे बेचारे को कहाँ खबर है, वह मर गया उसकी। कमाने-कमाने में पड़े हों। वहाँ सुनने को भी कहाँ निवृत्त है। वास्तविक बात है। आहाहा!

कहते हैं, पाँच उदम्बर फल और सात व्यसन। परस्त्री, शिकार, माँस, शराब यह समकिती को नहीं हो सकते। यह भाव उसे होते ही नहीं। ऐसा भाव सम्यग्दर्शन बिना भी आर्यप्राणी को भी वास्तव में तो माँस, शराब नहीं हो सकते। माँस, शराब, शिकार, परस्त्री यह तो कहीं सज्जन को हों? साधारण लौकिक सज्जन को भी यह नहीं होते।

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। व्रतसहित अणुव्रती है। उसे ऐसे सात व्यसन नहीं होते। और पाँच प्रकार के उदम्बर फल नहीं खाता। समझ में आया?

आठ मूलगुण अर्थात् यह पाँच उदम्बर फल और मधु, माँस और शराब। मधु, माँस है न? ... अर्थात् मद्य। मद्य अर्थात् शराब और माँस तथा मधु। यह समकिती नहीं खाता। मधु (शहद) की एक बूँद में सात गाँव को मारे, इतने जीव अन्दर हैं। समझ में आया? समकिती मधु दवा में भी नहीं लेता। ऐसी बात है। हिम्मतभाई! बहुत से लेते हैं न? दवा के नाम से। बड़ा पाप है। आठ मूलगुण, सात व्यसन।

जिसके सम्यक्त्व अतिचाररहित शुद्ध हो,.... आठ मूलगुण पालन करे और सात व्यसन न हो। उसे दर्शनप्रतिमा का धारक कहा जाता है। **पाँच उदम्बर फल और मद्य, मांस, मधु,....** मद्य अर्थात् शराब। शराब, माँस और मधु तथा उदम्बर फल—यह टेटा आदि या अंजीर... क्या कहा यह? अंजीर। उन सबका त्याग समकिती को—अणुव्रतधारी को होता है। समझ में आया?

अथवा किसी ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है कि पाँच अणुव्रत पाले और मद्य, मांस, मधु का त्याग करे.... ऐसे आठ मूलगुण भी कहे हैं। उसमें पाँच उदम्बर फल कहे थे, यहाँ पाँच अणुव्रत कहे। परन्तु यह तो सब एक ही है। **परन्तु इसमें विरोध नहीं है, विवक्षा का भेद है।** कथन में भेद है। यह आ गया पाँच अणुव्रत में। कैसे? **पाँच उदम्बर फल और तीन मकार....** मद्य, माँस और मधु। मकार आया न? शराब। **त्याग कहने से जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस जीव दिखते हों, उन सब ही वस्तुओं का भक्षण नहीं करे।** जिसमें त्रस जीव बारीक... बारीक... बारीक... बारीक... बारीक... साक्षात् दिखाई दे, वे धर्मी को खानेयोग्य नहीं हो सकता। यह सड़ता है, नहीं? अथाणा सड़े, उसमें बहुत जीवांत पड़ती है। बारह-बारह महीने का अथाणा। अथाणा समझे न? अथाणा समझते हो? अचार। बारह-बारह महीने का, आम का, गुंदा का, खारेक का बनाते हैं न अथाणा?

मुमुक्षु : मक्खन को भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मक्खन भी नहीं।

यहाँ कहते हैं, **साक्षात् त्रस जीव दिखते हों,....** यह मक्खन आठ-आठ दिन का रखकर लोग गाँव में घी करते हैं। अभी सब बिगड़ गया। मक्खन एक दिन का रखे और आठ दिन का इकट्ठा करे और दो घड़ी पश्चात् त्रस हों, शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। यह उकाला हुआ घी। उसे यहाँ अच्छा घी कहते हैं। वह दूसरा डाला न हो न। क्या कहलाता है? वेजीटेवल न वह। परन्तु वे त्रस मर गये हैं वे? समझ में आया? वेजीटेबल डाला हो और वह डाला हो तो... परन्तु आठ दिन सड़ा रखा, गाँव में आठ दिन इकट्ठा करके फिर गर्म करते हैं। वहाँ भी तुम्हारे ऐसा होगा या नहीं? चार दिन। चार दिन कहते हैं तो भी यहाँ तो शास्त्र तो (ऐसा कहता है), मक्खन दो घड़ी के बाद अन्दर त्रस हो जाते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म त्रस होते हैं। भगवान ने केवलज्ञानी ने देखे हैं। इसे भले नजर में न आवे।

साक्षात् त्रस जीव दिखते हों,.... उसमें त्रस का ख्याल न आवे। **सब ही वस्तुओं का भक्षण नहीं करे। देवादिक के निमित्त....** देव, गुरु के लिये भी वह त्रस की हिंसा नहीं करे। **तथा औषधादि निमित्त इत्यादि कारणों से दिखते हुए त्रसजीवों का घात न करे,....** वह औषध के लिये गोली, दवा, इत्यादि के लिये भी जिसमें त्रस जीव मरे, ऐसी दवा समकिती, श्रावक नहीं खाता। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! **घात न करे, ऐसा आशय है,....** लो। **औषधादि निमित्त इत्यादि कारणों से दिखते हुए त्रसजीव....** सूक्ष्मरूप से दिखाई दे, ऐसे न (ले)। **इसमें तो अहिंसाणुव्रत आया।** कहते हैं न वे? पाँच उदम्बर कहे थे। उसमें यह अणुव्रत आ गया होगा। उसका त्याग तो अणुव्रत हो गया।

मुमुक्षु : पाँचवें गुणस्थान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवाँ। यह तो पाँचवें की बात है। प्रतिज्ञासहित की बात है न। व्रतधारी। चौथेवाला मद्य, माँस आदि खाता नहीं परन्तु उसे व्रत की प्रतिज्ञा नहीं है। चौथे में प्रतिज्ञा नहीं है न। तथापि चौथे में खाता नहीं। समकिती माँस नहीं, मधु नहीं, शराब नहीं। नहीं होता उसे। पंच उदम्बर फल उसे नहीं होते। समकित होने से पहले, जैन होने से पहले उसे नहीं होते, ऐसा शास्त्र कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में है। जिसे

आठ मूलगुणरूप त्याग नहीं, वह तो जैनधर्म को सुनने के योग्य नहीं। ऐसा कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय है न? अमृतचन्द्राचार्य। समझ में आया?

अहिंसाणुव्रत आया। लो। यह पाँच उदम्बर का त्याग प्रतिज्ञा है न यहाँ तो अणुव्रत में? उसकी बात है। पहले में प्रतिज्ञा नहीं, परन्तु होते नहीं। **सात व्यसनों के त्याग में झूठ,....** का त्याग आया। सात व्यसन में झूठ का त्याग, यह दूसरा अणुव्रत हो गया। **चोरी....** का त्याग आया। सात व्यसन में चोरी का त्याग आता है। **परस्त्री का त्याग आया, अन्य व्यसनों के त्याग में अन्याय, परधन, परस्त्री का ग्रहण नहीं है;....** लो। यह व्यसन के त्याग में अन्याय नहीं। अन्याय नहीं करता, समकिती अन्याय नहीं करता। अन्याय से किसी को लूटे या ऐसा नहीं होता। समझ में आया? थापण रखी हो पाँच लाख की और कहे तुम्हारे एक लाख थे, ऐसा अन्याय नहीं करता। ठीक है। यह विधवा महिला है, उसे कुछ खबर नहीं थी। बिना भान के रख गयी थी। हमारे पिता गुजर गये हैं, मेरे पिता की पूँजी मुझे आयी है। कितनी है, मुझे खबर नहीं, परन्तु तुम्हारे यहाँ रख जाती हूँ। होगी पाँच लाख की, फिर कहे कि उसमें तो लाख की थी। ऐसा अन्याय नहीं होता। समझ में आया?

परधन, परस्त्री का ग्रहण नहीं है;.... अन्याय से परधन और परस्त्री का ग्रहण नहीं होता। परस्त्री का त्याग होता है। समझ में आया? व्यभिचारी अणुव्रतधारी नहीं रह सकता। सम्यग्दर्शनसहित की बात है। न हो, उसे भी सज्जनता में तो इतना नहीं होता। साधारण सज्जन को भी परस्त्री का त्याग, माँस, शराब, मधु का त्याग, यह तो साधारण होता है। यह तो साधारण स्थिति है। यह (यहाँ) तो प्रतिज्ञा और भानसहित की बात चलती है।

इसमें अतिलोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आया,.... चोरी का त्याग, परिग्रह का त्याग, झूठ का त्याग, ऐसा आया न? परिग्रह का त्याग भी आया। **इस प्रकार पाँच अणुव्रत आते हैं।** इन आठ मूलगुण में भी पाँच अणुव्रत आते हैं। **इनके (व्रतादि प्रतिमा के) अतिचार नहीं टलते हैं, इसलिए अणुव्रती नाम प्राप्त नहीं करता....** लो। दर्शनप्रतिमा पंचम गुणस्थान होने पर भी अतिचार नहीं टलते, इसलिए उसे दर्शनप्रतिमा

कहा जाता है। अणुव्रत वह नहीं पालता। आहाहा! देखो न! विशिष्टता। अणुव्रत होने पर भी अतिचार (सहित है तो) अणुव्रत नहीं है। समझ में आया?

अतिचार नहीं टलते हैं, इसलिए अणुव्रती नाम प्राप्त नहीं करता (फिर भी) इस प्रकार से दर्शनप्रतिमा का धारक भी अणुव्रती है, इसलिए देशविरत सागार-संयमचरण चारित्र में इसको भी गिना है। क्या कहा? संयमचारित्र के दो प्रकार। एक—देशविरति और एक—सर्वविरति। देशविरति श्रावक में और पाँचवें गुणस्थानवाले में पहली प्रतिमा में डाले। संयमचरण चारित्र में डाले, ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसा कि संयमचरण चारित्र में इसे डाला। संयमचरण चारित्र में डाला परन्तु व्रती में नहीं डाला। देखो न! अन्तर। समझ में आया?

पहला सम्यक्चरण चारित्र। वह तो बहुत विस्तार से बात हो गयी। पश्चात् संयमचरण चारित्र के दो भाग। एक गृहस्थाश्रम का देशविरति तथा सर्वविरति। देशविरति के संयमचरण चारित्र पाँचवें गुणस्थान में दर्शनप्रतिमा का आया और है वह संयमचरण चारित्र, तथापि उसे व्रती नहीं कहा जाता। आहाहा! प्रतिमा नहीं कही जाती। व्रतप्रतिमा नहीं कही जाती। समझ में आया? यह सब समझना पड़ता होगा? समझे बिना, बिना भान के धर्म नहीं होता होगा? ऐसा नहीं चलता वीतरागमार्ग में। उसका बराबर ज्ञान करना चाहिए।

अरे! ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें यदि यह भगवान ने कहा हुआ वास्तविक तत्त्व का धर्म न प्रगटे और न समझे (तो) जन्म-मरण का कहीं अन्त नहीं आता। दुनिया ऐसा कहेगी कि ओहोहो! करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हो और दस-बीस लाख खर्च करे... भारी धर्मी है यह। दुनिया धर्मी कहेगी। परन्तु वह धर्मी नहीं। तेरे दस लाख क्या पाँच-दस करोड़ खर्च कर न। वह तो जड़ है। दुनिया ऐसा कहे, दानेश्वरी! भगवान कहे, परन्तु अब सुन। तुझमें से राग को निकालकर स्वरूप के स्थिरता का दान तूने नहीं दिया, तब तक तू दानेश्वरी नहीं। ऐई! अपने को दान अन्दर (दे), भगवान आनन्द का धाम प्रभु, उसे राग का अभाव करके और शान्ति की स्थिरता आत्मा में देना, इसका नाम दान है। ऐसे बाहर के दान तो अनन्त बार दिये। कोई राग मन्द किया हो तो पुण्य होगा। उसने पाँच करोड़, दस करोड़ का मन्दिर बनाया, इसलिए धर्म होगा। तो

कहते हैं, नहीं। किसने कहा तुझे? समझ में आया? दुनिया तो कहेगी। भगवान नहीं कहेंगे। बराबर है न यह? एक व्यक्ति ने लाख खर्च किये तो कहे, ओहोहो! परन्तु क्या है? तीन करोड़ के समक्ष एक लाख कैसा था? वहाँ तो ऐसा कहे, वाह... वाह...! उसका पिता भी जरा थोड़ी देर प्रसन्न हो जाये।

मुमुक्षु : बराबर...

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने के बाद कहते हैं यह। परन्तु उसमें क्या है?

भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति प्रभु , उसका दान उसे शक्ति में से प्रगटने से वीतराग के अंश को करके और स्वयं रखे और स्वयं अपने को निर्मल भाव दे, उसे भगवान धर्मी का दान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहर के पैसे से... नाम पड़े। गरीब व्यक्ति बेचारा लिखा न सके। अंक लिखावे। यह पाँच लाख का चन्दा करना है। पहले बड़ों का अंक लिखाओ। क्योंकि छोटा पहले लिखावे तो बड़े को वह हो जाये। पोपटभाई! बड़े-बड़े को पहले पकड़े। लिखाओ पच्चीस हजार और एक। जो इससे छोटे का कम लिखाये परन्तु बहुत उसके जैसे हों, वह कम नहीं लिखे, यह तो दबाव के कारण परन्तु... यह भी राग की मन्दता वह अलग प्रकार की, कहते हैं। होवे तो। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा अत्यन्त पवित्र का धाम ऐसी पवित्रता जिसे दृष्टि में आयी है और वह पवित्रता प्रगट करनी है, उसमें बाहर के अवलम्बन और आश्रय की उसे आवश्यकता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह देशविरत में गिनने में आया परन्तु दर्शनप्रतिमा का नाम व्रती में गिनने में नहीं आया।

आगे पाँच अणुव्रतों का स्वरूप कहते हैं— लो। पाँच अणुव्रत कहे न? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। अणु अर्थात् छोटे व्रत। समकित सहित। समकित रहित व्रत, वह व्रत नहीं हो सकते। इसलिए पहले (कहा), सम्यक्चरण चारित्र बिना संयमचरण चारित्र नहीं हो सकता। यह बात पहले आ गयी है। सम्यक्चरण चारित्र - भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प के राग की क्रिया बिना का, पूर्णानन्द का ध्रुव नाथ, उसके अन्दर में जम गयी प्रतीति, ऐसे अनुभव की प्रतीति बिना कोई भी व्रत और

तप को करे, वे सब बिना अंक के शून्य हैं। समझ में आया? वे सब रण में शोर मचाने जैसा है, ऐसा कहते हैं। रण में शोर कोई सुने नहीं। उसका रुदन मिटे नहीं। इस वस्तु के भानसहित जो अणुव्रत सम्यग्दर्शनसहित हों, उसे संयमचरण चारित्र कहते हैं।

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभपरिमाणं॥२४॥

अर्थः—थूल त्रसकाय का घात,.... इसका त्याग। सम्यग्दर्शनसहित अणुव्रतधारी को स्थूल त्रस का घात (नहीं होता है)। सूक्ष्म कोई न दिखायी दे, ऐसा तो कुछ अशक्य है। समझ में आया? विषयभोग में असंख्य सम्मूर्च्छन त्रस मरते हैं। दिखायी न दे, ऐसी चीज़ है। भगवान की आज्ञा मानकर... समझ में आया? एक बार विषय में असंख्य सम्मूर्च्छन त्रस मरते हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वे दिखायी नहीं देते न, इससे उसे कहते हैं कि घात होता है, तथापि पाँचवें गुणस्थान का नाश नहीं होता। समझ में आया? गजब बात, भाई! दिखायी देनेवाले त्रस हों, यह जीवांत, देखो न! बैंगन के टोप में बहुत जीवांत होती है। बैंगन... बैंगन होते हैं न? उसके ऊपर का टोप होता है न? बारीक... बारीक... बारीक... पानी में डाले तो अलग पड़ जाये। ऐसे त्रस जिसमें हों, ऐसा आहार, स्थूल दिखायी दे, उसका आहार नहीं लेता, ऐसा कहते हैं।

ऐसा तो भगवान कहते हैं, मोटे छन्ने से पानी छाने तो भी सूक्ष्म त्रस तो अन्दर बारीक होते हैं। आहाहा! उसमें वे छन्ने में छन जाते हैं। पानी जाए न नीचे? पक्का छन्ना, हों! मोटा। यह बहुत पतला करते हैं, वह नहीं। मोटा कपड़ा। उसके छन्ने से पानी छाने तो भी अन्दर नीचे पानी में अंगुल के असंख्यवें भाग में त्रस होते हैं। वे त्रस उसमें—पानी में जाते हैं। परन्तु वे दृष्टिगोचर त्रस नहीं हैं, इसलिए उनका त्याग नहीं हो सकता। ऐसी बात है। समझ में आया? ओहो! (यह) स्थूल त्रस का घात (हुआ)।

थूलमृषा.... स्थूल झूठ। स्पष्टीकरण करेंगे। **थूल अदत्ता अर्थात् पर का बिना दिया धन, परमहिला....** का त्याग। परस्त्री का त्याग। **परस्त्री इनका तो परिहार अर्थात् त्याग और परिग्रह तथा आरम्भ का परिमाण....** इसका माप करे। परिग्रह का माप (मर्यादा) हो कि इतना इसके अतिरिक्त मुझे करना नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन के भानसहित इस भूमिका के अणुव्रत के परिणाम उसे होते हैं।

भावार्थः—यहाँ थूल कहने का ऐसा अर्थ जानना कि जिसमें अपना मरण हो,.... समझ में आया? ऐसा अफीम खाये और ऐसा जो खाते हैं न वे? ऐसा नहीं होता। **पर का मरण हो,....** पर त्रस मर जाये, उसका त्याग है। **अपना घर बिगड़े,....** घर बिगड़े, **पर का घर बिगड़े,....** ऐसा धर्मी—समकिती नहीं करता। आहाहा! **राजा के दण्ड योग्य हो,....** राजा (के) दण्ड देनेयोग्य ऐसा कर्तव्य समकिती नहीं करता। समझ में आया? **पंचों के दण्ड योग्य हो....** पंच... पंच। महाजन। सरपंच हुए हैं न अब तो। (पहले) महाजन थे। महाजन का दण्ड हो, ऐसा वह आचरण नहीं करता। अभी तो सरपंच स्वयं करता हो। उसे भान भी नहीं होता कि क्या वस्तु है। यह तो पहले सच्चे महाजन थे, धर्मात्मा सच्चे... समझ में आया? वे उसे दण्ड दे, ऐसा समकिती नहीं करता। लज्जा आती है। आहाहा! **इस प्रकार मोटे अन्यायरूप पापकार्य जानने।** लो। मोटे अन्यायरूप पाप। यह अन्याय की व्याख्या की। ऐसे बड़े अन्यायरूप पाप वह नहीं करता।

इस प्रकार स्थूल पाप राजादिक के भय से न करे, वह व्रत नहीं है,.... राज के भय से, कुटुम्ब के भय से, पंच के भय से, जाति के भय से कदाचित् ऐसी बड़ी हिंसा, अन्याय न करे तो भी वह व्रती नहीं कहलाता। वह तो दुनिया के लिये किया। आत्मा के लिये जिसे राग घटाने की भावना है, स्वरूप की दृष्टि का आश्रय लेकर, उसे तो ऐसे भाव अपने से सहज पाप के त्याग का भाव होता है। समझ में आया?

इनको तीव्र कषाय के निमित्त से तीव्रकर्मबन्ध के निमित्त जानकर.... कहते हैं कि त्याग कैसे करना? यह तीव्र कषाय का निमित्त है और तीव्र कर्मबन्ध का निमित्त है, ऐसा। यह स्थूल पाप। **स्वयमेव न करने के भावरूप त्याग हो, वह व्रत है।** अपने आप राग का त्याग। स्वभाव के भाव में स्थिरता करके ऐसा भाव हो तो उसे व्रतप्रतिमा कहा जाता है। नहीं तो नहीं (कहा जाता)। समझ में आया?

इसके ग्यारह स्थानक कहे, इनमें ऊपर-ऊपर त्याग बढ़ता जाता है,.... ऐसा कहते हैं। ग्यारह प्रतिमा कही न? उसमें पहली प्रतिमा, फिर दूसरी, तीसरी बढ़ती जाये। नीचे उतरे नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। प्रतिमा ली, फिर छोड़ दी। छोड़ देंगे अपने, ऐसा नहीं होता। सच्ची सम्यग्दर्शनसहित की बात है न? पश्चात् उसे बढ़ना ही होता है। **इसके ग्यारह स्थानक कहे, इनमें ऊपर-ऊपर त्याग बढ़ता जाता है,....** राग

घटता ही जाता है। पहली प्रतिमा से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में राग घटता ही जाता है। तब उसे प्रतिमा कहा जाता है। आहाहा! **सो इसकी उत्कृष्टता तक ऐसा है....** बढ़ते-बढ़ते राग का त्याग करते-करते **उत्कृष्टता तक ऐसा है कि जिन कार्यों में त्रस जीवों को बाधा हो....** जिसमें त्रस जीव को दुःख हो, **इस प्रकार के सब ही कार्य छूट जाते हैं,....** समझ में आया? खेती-बाड़ी में देखो न! खेती में कितने वे... क्या कहलाता है? खाद। खाद में बहुत जीवांत है, हों!

यह गाड़ा भरकर जाते थे। गाड़ा भरे न, सड़ा हुआ हो तो ऐसे जीव नीचे गिरे। गाड़ा चलता था, गाडा में से (नीचे गिरे)। पूरा गाड़ा भरा हुआ। और बनिये का था। बनिये को खेत था। समझ में आया? लोग कहे, हम ऐसा न करें और बनिया ऐसा करे? ऐसा लोग बोलते थे। बहुत वर्ष से पड़ा होगा... क्या कहलाता है? कचरा (रोड़ी)। पुराना सड़ा हुआ होगा। उसमें अवसर आया तो बेच दिया। उसमें गाड़ा का क्या उपजे? तब रुपया-डेढ़ रुपया। परन्तु जीवांत इतनी कि गाड़ा ऐसे चले (तो) नीचे त्रस काले जीव पड़ते ही हों, कुचलते ही हों। समझ में आया? ऐसा समकिती को नहीं हो सकता। आहाहा! यह तो हमें तो नाम-ठाम सब आता हो न, हमें खबर है कौन (वह)। त्रस मरे। सड़ा... सड़ा। कचरे में इतनी जीवांत। वर्षा पड़ी हो, सड़ गया हो, काले-काले सूक्ष्म जीव हो जायें। वह तो हजारों... हजारों... लाखों। अरे! धर्मी जीव ऐसे स्थूल त्रस मरे, ऐसे व्यापार में-धन्धे में वह नहीं पड़ता। समझ में आया?

एक सेठ को कहा था कि तुम यह ओटाई क्यों कराते नहीं? ओटाई... ओटाई। हमारे पुण्य इतने नहीं कि ओटाई प्रेस में जले और वापस बाकी रहे। ऐसा जवाब दिया। इतना हमारा पुण्य हमारा दिखता नहीं। ओटाई करने से तो उसमें त्रस बहुत मरे। गर्म पानी नीचे गिरे, निंबोलियां गिरे, पक्षी गिरे। ऐसे पाप में हमारा पुण्य इतना दिखता नहीं कि ओटाई मशीन में पिलाये और बाकी थोड़ा पुण्य रहे। ऐसा जवाब दिया। बहुत वर्ष पहले की बात है। समझ में आया?

इसलिए सामान्य ऐसा नाम कहा है कि त्रसहिंसा का त्यागी देशव्रती होता है। लो। इसलिए त्रसहिंसा का त्यागी देशव्रती है। **इसका विशेष कथन अन्य ग्रन्थों से जानना।** लो।

आगे तीन गुणव्रतों को कहते हैं—पाँच अणुव्रत कहे। तीन गुणव्रत हैं। इसे गुण करे। व्रत को जरा....

दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥२५॥

अर्थः—दिशा विदिशा में गमन का परिमाण, वह प्रथम गुणव्रत है,.... इस दिशा में नहीं जाना, इतने में नहीं जाना, इतने खण्ड में (नहीं जाना), ऐसी मर्यादा बाँधे। आत्मध्यान, ज्ञानसहित राग की मन्दता के लिये। यह तो समकित सहित की बात है, हों! अकेले समकित बिना के करे, वे कहीं (व्रत नहीं है)। जरा पुण्य बाँधे परन्तु मिथ्यात्वसहित है। मिथ्याभाव। क्योंकि राग को अपना कर्तव्य मानता है। यह वस्तु मैंने छोड़ी और यह रखी, ऐसा मिथ्यादृष्टि राग का अभिमान करता है। उसे तो मिथ्यात्व में तो व्रत-ब्रत हो नहीं सकते। बाहर से करे जरा। मिथ्यात्वसहित थोड़ा पुण्य बाँधे। चार गति में भटके। आहाहा! शर्तें बहुत परन्तु वीतरागमार्ग की कठिन। भीखाभाई!

दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥२५॥

दिशा विदिशा में गमन का परिमाण, वह प्रथम गुणव्रत है, अनर्थदण्ड का वर्जना द्वितीय गुणव्रत है.... अनर्थदण्ड—बिना प्रयोजन दण्ड करना, उसका त्याग होता है। **और भोगोपभोग....** एक बार भोगा जाये आदि वस्तु। सब्जी, दाल, भात आदि। बहुत बार भोगने में आवे ऐसी वस्तु। गहने, स्त्री आदि। उनका परिमाण करे। माप—हद बाँधे, हद। यह तीसरा गुणव्रत है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत। ऐसा करके पंचम गुणस्थान में बारह व्रत का विकल्प होता है। समझ में आया?

भावार्थः—यहाँ गुण शब्द तो उपकार का वाचक है, ये अणुव्रतों का उपकार करते हैं। जिसे अणुव्रत अन्दर जो है, दूसरी कषाय का नाश हुआ है और अणुव्रत के विकल्प होते हैं, उसे यह गुणव्रत पुष्टि करते हैं, ऐसा कहते हैं। बराबर निर्मल पालन करे। दुनिया के जानपने के लिये कितना प्रयत्न करता है! देखो! परन्तु यह भगवान क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन क्या? अणुव्रत क्या? अणुव्रत किसे कहना? इसका त्याग हो तो क्या

दशा हो ? इसका त्याग न हो तो क्या दशा हो ? इसका इसे ज्ञान तो बराबर होना चाहिए।

दिशा विदिशा अर्थात् पूर्व दिशादिक में गमन करने की मर्यादा करे। दिशा अर्थात् पूर्व, उत्तर आदि। विदिशा अर्थात् यह कोने... कोने। उनकी मर्यादा करे। **अनर्थदण्ड अर्थात् जिन कार्यों में अपना प्रयोजन न सधे, इस प्रकार पापकार्यों को न करे। यहाँ कोई पूछे—प्रयोजन के बिना तो कोई भी जीव कार्य नहीं करता है, कुछ प्रयोजन विचार करके ही करता है, फिर अनर्थदण्ड क्या ?** कोई भी प्रयोजन विचारकर ही करता है।

इसका समाधान—सम्यग्दृष्टि श्रावक होता है, वह प्रयोजन अपने पद के योग्य विचारता है,.... अपने पद के योग्य। हमारे पंचम गुणस्थान के योग्य यह दशा होती है। ऐसा विचारे। इसके बिना... अमुक प्रकार का ही राग उसे होता है। विशेष नहीं होता। **अपने पद के योग्य विचारता है, पद के सिवाय सब अनर्थ है।** अपनी पंचम गुणस्थान की भूमिका के अतिरिक्त का (हो), उसे अनर्थ कहा जाता है। **पापी पुरुषों के तो सब ही पाप प्रयोजन है,....** सर्व पाप ही प्रयोजन है, ऐसा कहते हैं। जिसे कुछ दृष्टि की खबर नहीं, जिसे कुछ अणुव्रत के नियम की खबर नहीं, उन सब पापी को तो सब पाप ही प्रयोजन है। **उसकी क्या कथा ?** उसका-पापी का क्या कहना? कहते हैं। प्रत्येक में प्रयोजन मानकर ही करते हैं। पूछा था न ? प्रयोजन बिना तो कोई करता नहीं, ऐसा पूछा था। आहाहा! प्रयोजन के अर्थ दो हैं। एक तो पद के योग्य है, उससे न करना, उसका नाम उन्नत है। और इसे पद योग्य का तो कुछ भान है नहीं। वह तो सब पाप के लिये ही इसे प्रयोजन है। वह तो सब उसे अनर्थ ही है। आत्मा के भान बिना के प्राणी को अनर्थ है। समझ में आया ?

भोग कहने से भोजनादिक और उपभोग कहने से स्त्री, वस्त्र,.... लो। एक बार भोगने में आवे, वह भोजन आदि और स्त्री, वस्त्र बहुत बार भोगने में आये। उसका भी परिमाण—माप—हद करे कि इतने के अतिरिक्त नहीं। आत्मा के भानसहित राग की न्यूनता के लिये ऐसा करे। समझ में आया ? उसे गुणव्रत कहा जाता है। फिर चार शिक्षाव्रत है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ७, रविवार, दिनांक-०२-१२-१९७३
गाथा- २३, २४, २५, २६, प्रवचन-५७

यह अष्टपाहुड़ में चारित्रपाहुड़ है। २३वीं गाथा का भावार्थ चलता है न? प्रश्न में से चलता है। पहले ऐसा कहा कि चारित्र का अधिकार है, इसलिए चारित्र के दो प्रकार किये। एक सम्यक्त्वचरण चारित्र और एक संयमचरण चारित्र। संयमचरण चारित्र, सम्यक्त्वचरण चारित्र बिना नहीं हो सकता। इसलिए पहले उसका वर्णन किया। सम्यक्त्वचरण चारित्र अर्थात्? जो शुद्ध ज्ञानघन आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसके सन्मुख होकर जो दशा परसन्मुख झुकी हुई अनादि की है। वर्तमान अवस्था रागादि परसन्मुख झुकी हुई है अथवा वह पर्याय, पर्याय की ओर झुकी हुई है, उसका नाम मिथ्या आचरण कहा जाता है। समझ में आया? पर्याय की अवस्था जो है। ध्रुव है एक और एक पर्याय—दो। एक समय की पर्याय है, उस पर्याय के रूप में रहकर आचरण करता है, वह मिथ्या आचरण है। वह मिथ्यात्व का आचरण है।

मुमुक्षु : इसमें कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? यह आत्मा है, वह ध्रुव नित्यानन्द निश्चय वस्तु और एक समय की पर्याय अनन्तगुण की, हों! और उस एक समय की पर्याय के ऊपर जिसकी रुचि है और उस रुचिपूर्वक उसमें उसकी एकाग्रता है राग में, वह मिथ्याचारित्र है। समझ में आया? पर्याय उसकी, परन्तु उस पर्याय अंश में रुचि है, इसलिए पूरी चीज़ जो निश्चय है ध्रुव परमात्मस्वरूप, वह उसे दृष्टि में से विमुख हो जाता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! बहुत बात।

मुमुक्षु : पर्याय में रुचि न हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का एक समय का अंश है, उसका प्रेम है जिसे।

मुमुक्षु : आत्मा की एक समय की पर्याय जानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता नहीं (परन्तु) अव्यक्तरूप से उसकी रुचि है। भले

जानता नहीं परन्तु उसकी लीनता एक समय की पर्याय में ही है। अभव्य हो या भव्य हो। अनादि से। उसे पर्याय की भले खबर न हो परन्तु है तो पर्याय में उसकी लीनता। एक समय की दशा, वह अंश है, भेद है। उसमें जिसकी रुचि और उसमें जिसकी लीनता है एकाग्रता की, वह मिथ्यादृष्टिसहित उसका चरण अर्थात् अस्थिरता का आचरण है राग में। आहाहा! उसे यहाँ कहते हैं कि सम्यक्‌चरण चारित्र कर अब। आहाहा! अर्थात् कि एक समय में भगवान परिपूर्ण नित्यानन्द प्रभु शुद्धघन और अनन्त गुण का (पिण्ड) सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह, हों! सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई आत्मा की बातें करता है, वह सब आत्मा को जाने बिना कल्पित बातें हैं। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने (कहा)। क्योंकि जीव का स्वभाव सर्वज्ञ है। वस्तु का स्वभाव, आत्मा का सर्वज्ञ स्वभाव त्रिकाल है। उसके आश्रय होकर जिसने दशा में सर्वज्ञपना प्रगट किया है, उसने जो आत्मा कहा, उसे आत्मा कहा जाता है। अज्ञानी जाने बिना आत्मा... आत्मा करे, वह आत्मा उन्होंने जाना नहीं। इसलिए उनकी दूसरी बातें झूठी होती है। आहाहा!

यहाँ एक समय की पर्याय में भी वह रमता है, वहाँ तक उसे मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी और पर आचरण करनेवाला बहिरात्मबुद्धि कहा जाता है। आहाहा! उसे जब त्रिकाली भगवान आत्मा... एक समय की पर्याय की ओर का आश्रय, रुचि, आधार छोड़कर त्रिकाली भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप के ऊपर पर्याय पसरती है, तब उसमें एकाग्र होती हैं, तब उसे स्वरूप-वास्तविक स्वरूप उसकी पर्याय के ज्ञान में ज्ञात होता है। वास्तविक स्वरूप ज्ञात होने पर उसकी प्रतीति वास्तविक होती है। वास्तविक प्रतीति होने पर उसमें एकाग्रता का अंश भी प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? उसे सम्यक्‌चरण चारित्र प्रथम भूमिका, यह चौथे गुणस्थान की व्याख्या है अभी तो यह। आहाहा! समझ में आया?

जब तक वे पर सन्मुख के आश्रयवाले भाव हैं, चाहे तो दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप, वह सब भाव है, वह शुभराग है और वह राग तो संसार है। आहाहा! संसार कोई जीव की पर्याय से भिन्न रहता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : द्रव्य से तो पर्याय भिन्न है तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह किसने कहा? यह तो फिर वह दो... यहाँ तो पर्याय

में मिथ्यात्वभाव है, वह संसार है। जीव का संसार कहीं आत्मा की अवस्था छोड़कर बाहर में नहीं रहता। आहाहा! राग का विकल्प चाहे तो दया, दान, व्रत का हो, पूजा का या चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प—राग हो, परन्तु उस राग में एकता अर्थात् कि उसकी एक समय की पर्याय में ही जिसकी एकता है, उसे राग में एकता होती ही है। सूक्ष्म बात है, भाई! शान्तिभाई! यह प्रकार अलग प्रकार है। वह तुम्हारे हीरा-माणेक की बातें नहीं। आहाहा!

चैतन्य हीरा प्रभु अनन्त आनन्द का धाम, जिसमें अनन्त गुण के पासा पड़े हैं, ऐसी चीज़ को छोड़कर वर्तमान पर्याय में—अंश में जिसने आचरण किया। उसे खबर भले न हो पर्याय, परन्तु उसका आचरण पर्याय में है। आहाहा! अब पर्याय किसे कहना? द्रव्य किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि को खबर नहीं होती....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु खबर न हो, वह यह खबर यह है न। यह करते हैं न उसकी अवस्था में लीनता? वस्तु जो त्रिकाल ध्रुव है, वह तो उसके लक्ष्य में आयी नहीं। आहाहा! इसलिए उसने एक समय की अवस्था में उसकी लीनता की है। वह मिथ्यात्वभाव, वही संसार है। आहाहा! उस संसार का जिसे अभाव करना हो, उसे ध्रुव चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होना। ध्रुव में एकाग्र होना, एकाग्र का अर्थ कहीं ध्रुव में कुछ घुसता नहीं एकाग्रपना। परन्तु जो वर्तमान अवस्था राग में और एक अवस्था में पड़ी थी, वह अवस्था ऐसे गुलाँट खाती है, तब ध्रुव में एकाग्र होता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा, बापू! वीतराग का है। अभी यह समन्वय के नाम से ऐसे घोटाले उठाते हैं न! समन्वय करो... समन्वय करो... किसके साथ करे? बापू! भाई! मार्ग तो अलग है, बापू! आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त जो मार्ग.... कल कहा था। रात्रि में ही यह शब्द (कहा था) कि महावीर ने जो क्या किया और क्या कहा? यह बात आनी चाहिए २५०० वें वर्ष में। दूसरी सब बातें ठीक अब। आहाहा! उन्होंने क्या किया जिन्दगी में, जीवन में? और उन्होंने क्या कहा जीवन के सुधार के लिये? नवनीतभाई! ऐसी-ऐसी बातें आयीं। यह सब पैसा, ढाई लाख... रात्रि में नहीं थे? यहाँ ढाई सौ रुपये की आयी

है अपने पुस्तक भेंट (आयी है)। यह २५०० वर्ष में भगवान के नाम से। ....है न, उसने बनाया है। दिल्ली में है न वह कैलाशचन्दजी? उसने यहाँ अपने को भेजा है। यहाँ... है न उन्होंने भेंट भेजा है। ढाई सौ रुपये की एक पुस्तक। ढाई सौ। ऐसी एक हजार प्रकाशित की हैं। एक हजार। ढाई लाख (रुपये)। आहाहा! वस्तु की स्थिति के वर्णन बिना यह क्या होगा? हाँ, भले २५०० वर्ष में भगवान की जैन एकत्रित होकर शान्ति से मनावे, तथापि वस्तुस्थिति है, वह तो खड़ी रखनी चाहिए न? उसके बिना महावीर का महोत्सव कैसा? आहाहा!

जिसके स्वभाव में अनन्त आनन्द है, उस आनन्द को शोधने जो निकला है, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है। सुख को शोधने निकलता है, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर है क्योंकि सुख वहाँ है। कहो, समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म मार्ग, प्रभु! इस सुख को जिसे शोधना है। आनन्द की प्राप्ति करनी है तो उसे तो वर्तमान अंश की रुचि का आश्रय छोड़कर भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप सत्ता महाप्रभु, उसे ज्ञान की पर्याय में पर्याय का ज्ञान रखकर त्रिकाल के उसके आश्रय में लेना पड़ेगा। इसके बिना भव का अभाव नहीं होगा, भाई! भव के अभाव बिना की बातें, वे सब थोथे थोथा है। स्वर्ग में जाकर फिर वापस ढोर होकर नरक में जायेगा। आहाहा! भव का चक्र जहाँ अन्त न आवे, उसका नाम धर्म नहीं है। आहाहा!

धर्म तो, जिसमें भव का अभाव हो, वह धर्म तो सम्यग्दर्शनचरण से शुरु होता है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े परन्तु मार्ग तो यह है। दूसरा क्या हो? जो मार्ग हो, वह होगा न? उस स्वरूप की अन्तर पूर्ण... स्व-रूप। स्व-रूप—अपना त्रिकाली आनन्द और ज्ञान आदि स्व-रूप। उसकी दृष्टि होने पर जो पर्याय में... क्योंकि दृष्टि तो पर्याय है। कहीं दृष्टि ध्रुव नहीं। दृष्टि का विषय ध्रुव है। परन्तु स्वयं तो पर्याय है। इसलिए पर्याय का ज्ञान लक्ष्य में रखकर पर्याय है। और उसे द्रव्य के ऊपर अन्तर में जाने से जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसमें अनन्तानुबन्धी की कषाय जाने से आंशिक स्वरूपाचरण भी प्रगट होता है। उस आचरण में आनन्द और शान्ति आती है। आहाहा! उसे प्रथम सम्यक्त्वचरण चारित्र कहा जाता है। यह बात है।

फिर संयमचरण चारित्र के दो प्रकार। जो सग्रन्थ गृहस्थाश्रम में रहे हुए का।

ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रतादि का। यहाँ बात ली है चारित्र की, परन्तु ली है यहाँ व्रत से। क्योंकि वह भूमिका जिसे सम्यक्त्वचरण चारित्र उपरान्त जिसने उग्ररूप से वस्तु का आश्रय लेकर चौथे से विशेष शान्ति जिसे प्रगट हुई है, उसे ऐसे विकल्प होते हैं, उस विकल्प द्वारा उसकी पहिचान कराने को इसे व्रत और चारित्र कहा है। लोग कहते हैं न देखो! चारित्र के भेद करे तो बारह व्रत और पंच महाव्रत, ऐसे करते हैं। इसलिए वह चारित्र है। बात तो सच्ची, भेद तो इस प्रकार से ही पड़ते हैं सब जगह। चारित्र की स्थिरता उसमें गौण रखते हैं। क्योंकि वह तो उसे होती ही है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह कहा नहीं? सागार-अनागार आया न? २१ गाथा में।

दुविहं संजमचरणं, सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे, परिगहा रहिय खलु णिरायारं॥२१॥

अब इसमें ग्यारह प्रतिमा ली है सीधे। आहाहा! अब प्रतिमा जो है, वह निश्चय और व्यवहार दो प्रकार से है। निश्चय सम्यग्दर्शन प्रतिमा, वह सम्यग्दर्शन का आचरण जो दृष्टि हुई, उसमें भी एक विकल्प पंच अणुव्रत का, पाँच अणुव्रत का विकल्प होता है, उसे दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। अकेला समकित नहीं। दर्शनप्रतिमा है न? इसलिए उसे पंचम गुणस्थान होता है। दर्शनप्रतिमा अर्थात् कोई समकित ही अकेला है, ऐसा है नहीं। इसलिए उसे सम्यग्दर्शन में आचरणसहित कुछ शान्ति, दूसरे कषाय का नाश करके शान्ति खड़ी की है। आहाहा! उस भूमिका में ऐसी दर्शनप्रतिमा आदि के विकल्प होते हैं। उसे व्यवहार से प्रतिमा कहते हैं। निश्चय से तो अन्दर स्थिरता प्रगट हुई है, वह प्रतिमा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा इसमें कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें समझ लेना, ऐसा कहते हैं। प्रवचनसार में गाथा नहीं आयी? भाई! दर्शन चरणं। ....यह बात है। द्रव्य की अर्थात् निर्मल पर्याय से निर्णय करो तो वहाँ राग की मन्दता कैसी होती है, उसे जानो और राग की मन्दता उस भूमिका में ऐसी हो तो वहाँ स्थिरता कितनी होती है, यह उसे जानना चाहिए। शब्द है न... हाँ वह। द्रव्य का चरण चारित्र से। बस। चरण का चारित्र देखा और चरण के

चारित्र से द्रव्य का चरण चारित्र देखो, ऐसा है। अर्थात्? वह द्रव्य का अर्थात् द्रव्य ध्रुव की बात वहाँ नहीं है। द्रव्य का अर्थात् जो वस्तु है, उसका आश्रय लेकर जितनी निर्मलता चौथे, पाँचवें, छठवें में प्रगट हुई है, वह द्रव्य का चारित्र, द्रव्य का अनुचरण कहा जाता है। और उसकी भूमिका के योग्य जो विकल्प होते हैं, चौथे, पाँचवें, छठवें में, उसे चरण का चारित्र कहते हैं। चरण का विकल्प। उसका विकल्प देखकर उसका आश्रय करके शब्द रखा है। परन्तु उसका अर्थ कि वह विकल्प जो मन्द है, उसका ज्ञान करके उसके प्रमाण में निर्मल भूमिका सम्यक् के आश्रय आदि स्थिरता इतनी होती है। और स्थिरता आश्रय का ज्ञान करके उस भूमिका में राग की मन्दता ऐसी होती है, ऐसा उसे ज्ञान करना चाहिए। बहुत कठिन बापू इसमें! यह यहाँ यह कहते हैं। यह बताकर वह स्थिरता वहाँ कितनी है? ऐ... प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा आदि वह विकल्प है, परन्तु वहाँ स्थिरता कितनी है, उसका यह ज्ञान कराते हैं। आहाहा! देखो! मार्ग, बापू! आहाहा!

यह तो महापुरुषार्थ है, भाई! बाकी तो सब समझने जैसा है। अन्दर में चैतन्य भगवान शुद्धि की श्रद्धा प्रगट करके शुद्धि की श्रद्धा, ऐसा। शुद्ध चैतन्य है, उसकी श्रद्धा। उसमें जितनी एकाग्रता है, उतनी शान्ति है और आगे बढ़ने पर पंचम गुणस्थान श्रावक को, जिसे भगवान श्रावक कहते हैं, उसकी बात है, हों! आहाहा! पंचम गुणस्थान की दशा जिसे प्रगट हुई है, उसे ऐसी ग्यारह प्रतिमा के विकल्प होते हैं। और उसे बारह व्रत के विकल्प होते हैं। ग्यारह प्रतिमा उपरान्त बारह व्रत लिये हैं। २३ गाथा। समझ में आया? भाई! यह तो बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये। यह कहीं वार्ता नहीं। आहाहा! ऐई! हसमुख! कहीं दरकार भी की न हो कमाने के कारण पूरे दिन मजदूरी। आहाहा! और हमारे सामने वहाँ एक बाईस करोड़ का कारखाना पड़ता है भाई! बाईस करोड़ का पालेज। भाई कहते थे वहाँ। किसका? लोहे का।

मुमुक्षु : मोटर के टायर।

पूज्य गुरुदेवश्री : टायर ठीक। बाईस करोड़ रुपये का। पन्द्रह हजार व्यक्ति नये। सात हजार यहाँ के और गाँव के ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन लोगों को मकान घर के, दुकान घर की, गोदाम घर के।

मुमुक्षु : ....मकान की कीमत बढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह हजार और नौकरी। उसमें किसके भाग्यशाली कहना? आहाहा!

यहाँ तो आत्मा परमात्मस्वरूप शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, उसका आश्रय लेकर दृष्टि प्रगट करे, वह जगत में भाग्यशाली, वह पराक्रमी पुरुष है। उसने सच्चा व्यापार किया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उस जाति का व्यापार लौकिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पाप का व्यापार हो गया जगत का सब। आहाहा! कमाने का भाव, भोग का भाव, वह सब पापभाव है, भाई! और दया, दान, व्रत के परिणाम वह पुण्यभाव है। दोनों से भिन्न पड़कर आत्मा का अन्तर आचरण करना। आहाहा! अनअभ्यास से, अनसुना हुआ, इसलिए सुनी हुई बात से यह बात अलग आवे, इसलिए इसे कठिन पड़ता है। परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। उसे पंच अणुव्रत होते हैं। उस अणुव्रत की व्याख्या में यह डाला। दूसरा पैरेग्राफ है न?

पहले में ऐसा कहा दर्शनप्रतिमा होती है। चौथे गुणस्थान में दर्शन नहीं। पाँचवें में दर्शनप्रतिमा। यह पाँच उदम्बर फल और मद्य-माँस-मदिरा का त्याग करे, वह आठ मूलगुण। पहले पेरेग्राफ की अन्तिम लाईन। पहले पेरेग्राफ की। पाँच उदम्बर फल यह बड़ के फल आदि। क्या कहलाते हैं वह खाते हैं वे? अंजीर। ऐसा नहीं खाते। उसमें जीवांत बहुत होती है। त्रस बहुत होते हैं। वह त्रस का भोजन समकिती को नहीं होता। समझ में आया? भोजन नहीं होता। उसे उसमें त्रस पड़ते हैं। यह पीपर, उदम्बर के फल में इत्यादि। अथाणा में। अथाणा जो होता है न? नमक में। नमक में आम, गुंदा, डुबोकर रखते हैं न, क्या कहलाता है? बोळ बोळ। बोळ अथाणा कहते हैं न अपने? बोळ का अर्थ यह कहे, जिसमें नमक के पानी में सब डुबोकर रखे। आम, गुंदा, वह सब जीवांत पड़े उसमें। ऐसा भोजन समकिती को नहीं होता। समझ में आया? उसमें निरतिचार उसे पाँचवें (गुणस्थान में) दर्शनप्रतिमावाले को तो उसका त्याग होता है।

उसे मधु नहीं, माँस नहीं, मदिरा नहीं। आहाहा! वह औषध में भी मधु (शहद) नहीं लेता। मधु के एक बिन्दु में सात गाँव मारे, इतना पाप है। आचरण की बात है न! मधु नहीं लेता। औषध में मधु नहीं। यों तो मधु तो कैसे चाटे वह? आहाहा!

अथवा किसी ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है कि—पाँच अणुव्रत पाले और मद्य, माँस, मधु का त्याग करे.... उसमें पाँच उदम्बर फल थे। **परन्तु इसमें विरोध नहीं है,....** यह तो अपेक्षा से कथन है। **विवक्षा का भेद है। पाँच उदम्बर फल और तीन मकार का त्याग कहने से जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस जीव दिखते हों....** त्रस जीव दिखते हों ऐसे। ईयळ, कीड़ी.... आहाहा! यह तो जरदाणु में एक ईयळ निकली अभी। यह जरदालु होता है न भाई नहीं? आलू-आलू।

मुमुक्षु : अन्दर में से बादाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : बादाम नहीं। बादाम के ऊपर ईयळ निकली। बादाम और ऊपर होती है न उसमें लीलु मिठास। जरदाळु जरदाळु। अभी दे गया था न कोई यहाँ? लड़कों (छात्रों) के लिये। उसमें चन्दुभाई को दिया तो निकाला तो ईयळ निकली उसमें से। जरदाळु में अन्दर दाना हो वह बादाम जैसा। कोरी बादाम। उसके ऊपर वह छाल और बीच में अन्दर मिठास। उस मिठास में ईयळ। ऐई! है या नहीं धन्धा आलू-बालू का। जरदाळु का नहीं?

मुमुक्षु : वह आलूबादाम वह जरदाळु।

पूज्य गुरुदेवश्री : आलूबादाम को जरदाळु कहते हैं।

मुमुक्षु : आलू के अन्दर से बादाम निकले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बादाम। त्रस-त्रस, ओहोहो! कहते हैं कि उसका उसे त्याग होता है। ऐसा जिसे विकल्प होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं।

जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस जीव दिखते हों उन सब ही वस्तुओं का भक्षण नहीं करे। देवादिक के निमित्त.... देव, गुरु के कारण भी ऐसे त्रस... ऐसा कहते हैं। **तथा औषधादि निमित्त....** देखो! देव, गुरु के नाम से भी उस त्रस की जिसमें हिंसा हो, ऐसा करे ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....मन्दिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर में भी यत्न से.... वह हिंसा नहीं उसमें। ....है उसमें। आरम्भी हिंसा का होता है। तथापि उसमें यत्न तो.... अब तो अभी तो कहाँ सब मेल रहा? ....पानी और त्रस न आवे, त्रस न मरे, इसका ध्यान रखना चाहिए।

मुमुक्षु : ऐसी तो सावधानी देखने में आती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। बात सच्ची है। तब तो यह कहा जाता है न! ऐसी सावधानी कहाँ है अन्दर? यह फिर उद्योगी हिंसा में आरम्भी हिंसा में वह जाता है। आरम्भ करते होता है। विषय-भोग में... एक बार भोग में असंख्य जीव करोड़ों समुच्चय मरते हैं और प्रत्येक लाख... मरे। परन्तु वह संकल्पी हिंसा नहीं। आरम्भ की हिंसा, उद्योगी हिंसा में आ जाता है वह। वरना है त्रस पंचेन्द्रिय उसमें। आहाहा! एक बार विषय भोगने में....

मुमुक्षु : समकित प्राप्त करने में यह सब जानना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना नहीं चाहिए उसे त्रस किसमें होते हैं यह? यह कहाँ त्रस की उत्पत्ति है, उसमें... है, वह आता है। उसे जानना चाहिए। यह आता है। त्रस की योनि यह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखी हुई आती है। द्रव्यसंग्रह। जहाँ-जहाँ जीव की योनि कहाँ उत्पत्ति है, वह उसे जानना चाहिए, ऐसा लिखा है। आता है। पाठ आता है।

मुमुक्षु : जानने का क्षेत्र बहुत बढ़ा दिया आपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने के लिये तो... यह आता है, हों! यह शब्द कहीं (आता है)। अब अभी नहीं द्रव्यसंग्रह। त्रस की उत्पत्ति दया पालने के लिये उसकी योनि कहाँ होती है, यह जानना चाहिए। नियमसार में आता है। जहाँ-जहाँ त्रस उत्पन्न होते हैं, उसे जानकर उनकी दया पालना, ऐसा आता है। उसका ज्ञान ही न हो कि कहाँ त्रस की उत्पत्ति और कहाँ त्रस है, वह किस प्रकार से (दया) पालेगा? यह वीतरागमार्ग है, भाई!

सम्यग्दर्शनसहित भी उसे दर्शन प्रतिमा में ऐसा यत्न होता है। वह मार सकता है... यह यहाँ प्रश्न अभी नहीं। परन्तु उसे मारने का विकल्प है, वह उसे नहीं होता।

समझ में आया? कठिन काम, भाई! चारित्र की.... सम्यग्दर्शनसहित की यह तो बात है। आत्मा का भान हुआ शुद्ध चैतन्यघन आनन्द। अब उसमें अन्तर आगे बढ़ने में शान्ति बढ़ी, तब इस प्रकार का उसे विकल्प होता है। उसकी भूमिका के योग्य ऐसे भाव होते हैं। उसे त्रस का आहार और त्रस ऐसे दिखाई दे, वह न ले। समझ में आया?

साक्षात् त्रस जीव दिखते हों, उन सब ही वस्तुओं के भक्षण नहीं करे। देवादिक (देव-गुरु) के निमित्त.... न करे। आहाहा! **औषधादि निमित्त...** भी न करे। आहाहा! यह तो स्थिरता जिसे शान्ति प्रगट हुई है, उसे ऐसा भाव होता है, ऐसा बतलाना है न? समझ में आया? भले शान्ति पाँचवें जितनी नहीं प्रगट हुई हो, तो भी चौथे में भी त्रस दिखाई दे, वह आहार तो उसे होता ही नहीं। दिखाई दे वह, हों! ऐसे तो ख्याल न आवे कोई त्रस है... परन्तु यह तो बाहर दिखाई दे, उसका आहार उसे होता ही नहीं। आहाहा! **इत्यादि कारणों से दिखते हुए त्रस जीवों का घात न करे,....** औषधादि निमित्त। पुत्र के लिये औषध करता हो, स्त्री के लिये औषध करता हो, उसमें त्रस जीव दिखाई दे, उनका घात न करे वह। ऐसी बात आवे तब उसे... मार्ग तो यह है न, भाई! आहाहा! प्रत्येक प्राणी के प्रति उसे मैत्री होती है। किसी के साथ विरोध नहीं होता और यह तो ऐसे भाव तो उसे मारने के होते ही नहीं। यह उसे ज्ञान तो करना पड़ेगा न कि पाँचवें गुणस्थान की दशा ऐसी होती है। समझ में आया? कहो, वजुभाई! ऐसी बात है। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई!

ऐसा आशय है जो इसमें तो अहिंसाणुव्रत आया। सात व्यसनों के त्याग में.... सात व्यसन का त्याग कहा न? उसमें **झूठ....** का भी त्याग आया। **चोरी और परस्त्री का त्याग आया,....** लो! आहाहा! परस्त्री का त्याग होता है सम्यग्दृष्टि को ऐसी दर्शनप्रतिमावाले को। समझ में आया? भले वह ब्रह्मचर्य परिणित स्त्री छठवीं (प्रतिमा) से रखे। ब्रह्मचर्य छठे में हो परन्तु यह परस्त्री का त्याग तो उसे पहले से होता है। समझ में आया? आहाहा! चारित्र की व्याख्या, सम्यग्दर्शनसहित की ऐसी व्याख्या है, भाई!

मुमुक्षु : यह तो पाँचवेंवाले की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवें की बात है। हाँ, परन्तु चौथे में भी ऐसा नहीं होता।

उसकी प्रतिज्ञासहित है। इसे प्रतिज्ञा नहीं, परन्तु इसे यह नहीं होता। आहाहा! इतना तो नैतिक जीवन है। परस्त्री का त्याग आदि, वह तो नैतिक साधारण जीवन है। आहाहा! सात व्यसन और मधु, माँस के त्याग बिना तो... नहीं कहा पुरुषार्थसिद्धिउपाय में? वह तो जैन नहीं। सात व्यसन का त्याग और मधु, माँस, मदिर का त्याग। वह न हो तो वह जैनधर्म सुनने के योग्य नहीं। बापू! यह तो जैनधर्म अर्थात् क्या बात! रागरहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता, ऐसा जो वीतराग धर्म। वह अनन्त काल में कभी किया नहीं, सुना नहीं, रुचि से उसे सुना ही नहीं। आहाहा!

यह कहते हैं। **सात व्यसनों के त्याग में....** आया था न ऊपर। मूलगुण और सात व्यसन का त्याग, यह ऊपर आया था। पहले पेरेग्राफ में। **अन्य ग्रन्थों में इसका स्वरूप इस प्रकार कहा है कि—जो आठ मूलगुण का पालन करे, सात व्यसनों को त्यागे,....** पहले पेरेग्राफ में था। यह कहते हैं कि उसमें झूठ का, चोरी का, परस्त्री का त्याग आता है। **अन्य व्यसनों के त्याग में अन्याय, परधन, परस्त्री का ग्रहण नहीं है;....** लो! अन्य व्यसन में भी ऐसा आता है। अन्याय नहीं होता। परधन किसी का हो और उठा ले, ऐसा नहीं होता। आहाहा! परस्त्री का ग्रहण नहीं। **इसमें अतिलोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आया,....** यहाँ तो परिग्रह घटाता है। परिग्रह छूटा इसमें, ऐसा कहते हैं। व्यसन में भी त्याग में परिग्रह घटता है, ऐसा कहते हैं।

अतिलोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आया, इस प्रकार पाँच अणुव्रत आते हैं। इनके (व्रतादि प्रतिमा के) अतिचार नहीं टलते हैं.... किसे? दर्शनप्रतिमावाले को। आहाहा! सम्यग्दर्शन हो और उसके उपरान्त पाँच अणुव्रत हो, परन्तु अणुव्रत के अतिचार टल नहीं सके, इसलिए उसे दर्शनप्रतिमा कहा जाता है। व्रत होने पर भी। पंच अणुव्रत होने पर भी उसे व्रती का कहा जाता। आहाहा! **इनके (व्रतादि प्रतिमा के) अतिचार नहीं टलते हैं, इसलिए अणुव्रती नाम प्राप्त नहीं करता....** ठीक न! पाँचवें गुणस्थान में है, अणुव्रती है परन्तु अतिचार टलते नहीं, इसलिए अणुव्रती, व्रती नाम धराता नहीं। व्रतप्रतिमा कहने में नहीं आती। समझ में आया? जैसे दर्शनशुद्धि का विषय सूक्ष्म है, वैसे चारित्र की विधि सूक्ष्म है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त त्रिलोकनाथ की इस वाणी का स्वरूप है। यह कोई कल्पित और

कोई ऐसा है और ऐसा होना चाहिए, (ऐसा नहीं है)। ऐसा ही है। वस्तु ऐसी है, पर्याय ऐसी है, राग ऐसा है, हिंसा ऐसी है, अहिंसा ऐसी है। यह तो निश्चय हुई वस्तु है। आहाहा!

इस प्रकार से दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती है, इसलिए देशविरत सागारसंयमचरण चारित्र में इसको भी गिना है। ऐसे। भले उसे व्रतप्रतिमा नहीं कहा, परन्तु है तो अणुव्रती, परन्तु उसके अतिचार टाल सकता नहीं, तथापि देशविरत सागारसंयम चारित्र में वह है। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २४

आगे पाँच अणुव्रतों का स्वरूप कहते हैं:— पाँच अणुव्रत का स्वरूप कहते हैं।

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभपरिमाणं॥२४॥

स्थूल-त्रसकाय का घात। नीचे भावार्थ है। **यहाँ स्थूल कहने का ऐसा जानना कि—जिसमें अपना मरण हो,....** ऐसे स्थूल त्रस को न मारे। समझ में आया? त्रस .... से मरण हो जाये किसी का। **जिसमें अपना मरण हो, पर का मरण हो, अपना घर बिगड़े....** अपना घर बिगड़े। **पर का घर बिगड़े, राजा के दण्ड योग्य हो, पंचों के दण्ड योग्य हो, इस प्रकार मोटे अन्यायरूप पापकार्य जानने।** यह स्थूल की व्याख्या है। पाँचों ही स्थूल हो वे सब। उनका त्याग। बड़ा उनका त्याग हो। ऐसी बातें तो ... करे सब बहुत। परन्तु यह सम्यग्दर्शन बिना की बातें करे। होता है। अपने लोग नहीं कहते कि 'राजा दंडो लोक भंडे....' ऐसा आता है अपने। ऐसा न करे। राजा दंडे लोक भंडे, ऐसी बात आती है। पंचायत में नुकसान कहलाये। ऐसा हो आचरण? ऐसे आचरण उसे नहीं होते। आहाहा! **इस प्रकार स्थूल पाप....**

थूल त्रसकाय का घात, थूल मृषा.... स्थूल झूठ न बोले। साधारण झूठ आवे। (साधारण) आ जाता है उसे। स्थूल बड़ा झूठ न बोले। **थूल अदत्ता...** न ले। साधारण

अदत्ता तो आ जाये। रागादि है। **पर का बिना दिया धन,....** न ले। किसी का दिये बिना उठा न ले घर में से कहीं से। समझ में आया? आहाहा! **परमहिला...** का त्याग हो। स्थूल। स्थूल कहा न वह? परस्त्री का त्याग। परस्त्री का त्याग **और परिग्रह तथा आरम्भ का परिमाण....** करे। परिग्रह का माप करे कि इतना परिग्रह नहीं, इतना आरम्भ नहीं। यह अन्दर निवृत्ति के परिणाम हुए हैं, इसलिए उसे ऐसे विकल्प का शुभभाव होता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका उसे ज्ञान तो करना पड़ेगा न? आहाहा!

मुमुक्षु : राजदण्ड।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजदण्ड बड़ा राज का दण्ड करे। बड़ा किसी के घर में चोरी करने जाये बड़ी। राजा दण्डे। कन्या कुँवारी हो किसी की उसके ऊपर बलात्कार करे। तो राजा दण्डे। ऐसा उसे नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : धन्धे में हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धे में तो उसके प्रमाण में हो। परन्तु धन्धे में भी ऐसा कुछ पैसा मिले और मनुष्य के डिब्बे रखे। यह विलायती नहीं आते? डिब्बे।

मुमुक्षु : डिब्बे रखे दूसरा माल बेचे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो खबर है न। खबर है यह तो। बनिया कहता था कि ऐसा व्यापार बनिये को होता नहीं। समझ में आया? जिसमें अण्डा, माँस का डिब्बा आता है न? पैक आवे। वह ग्राहक आया हो दो-पाँच हजार का लेने। वह एकाध चीज़ न हो तो अन्यत्र लेने जाये। इसलिए अपने रखना पड़े। ऐसा व्यापार नहीं होता। वह केंचुआ का ले आवे। केंचुआ, केंचुआ क्या कहलाता है? खाख आवे केंचुआ। केंचुआ समझते हो। यह वर्षा। वर्षा में क्या कहलाये लम्बी-लम्बी बारीक पतली जीवांत।

मुमुक्षु : लम्बे-लम्बे हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बे ऐसे ईयळ जैसे अणसिया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। अपने था न भाई वह कालिदास नहीं?

मुमुक्षु : वह तो दवा....

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा करता था। खबर है न। हमको खबर है। मैं एक बार दिशा को जा रहा था तो थोर की वाडी में उसके व्यक्ति डिब्बे इतने थे तो अळसिया निकाल-निकालकर इकट्ठे करते थे। यह राजकोट में है न वह? बादशाह था। खबर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो न हो धन्धा। ऐसे पाप के धन्धे, त्रस के पाप के धन्धे धर्मी को नहीं होते।

मुमुक्षु : यह तो व्रतवाले को नहीं होते न, व्रतरहित को....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे भी नहीं होते। इसे तो प्रतिज्ञा है। परन्तु उसे हो ऐसे धन्धे? आहाहा! ऐसी चीज़ में लाखों रुपये की आमदनी होती हो तो भले हो, भले अण्डे डालो, अण्डे का व्यापार करो, फलाना करो (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : होटल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : होटल में नाम आया था। होटल उतरे उसमें बहुत पैदा हो। गोरे (अंग्रेज) लोग आवे और उन्हें सब ऐसा....

मुमुक्षु : होटल में माल चले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : न चले तो उसके घर में रहा। ऐसा व्यापार हो कोई कसाई जैसा? बनिया को होता नहीं। साधारण आर्य मनुष्य को नहीं होता। सम्यग्दृष्टि और धर्मी की तो बात ही क्या? आहाहा! जिसका उज्ज्वल हृदय है, उसके ऐसे त्रस का भोजन नहीं होता और त्रस मरे, ऐसा धन्धा नहीं होता। ऐसी बातें हैं। आहाहा! ....भाव है। लो, यह स्थूल की व्याख्या आयी न?

इस प्रकार स्थूल पाप राजादिक के भय से न करे, वह व्रत नहीं है,.... राज के भय से पाप न करे, वह कहीं व्रत नहीं। आहाहा! अपने ऐसा करेंगे तो राज में दण्डित किया जाऊँगा, इसलिए नहीं करना, ऐसा नहीं। अन्तर शान्ति की वृत्ति की सँभाल में ऐसे विकल्प उसे इस जाति के होते हैं। आहाहा! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : राज के भय से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। भय से व्रत कैसे हो? वह तो पर के भय के कारण।

मोटे अन्यायरूप पापकार्य जानने। इस प्रकार स्थूल पाप राजादिक के.... अथवा बड़े बुजुर्ग अपने कुटुम्बी हों बड़े। उनके कारण न करे, वह कहीं व्रत नहीं है। बड़े भाई ऐसे हैं, पिताजी ऐसे कड़क हैं।

मुमुक्षु : अपनी इज्जत जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इज्जत के कारण से करे, इसका अर्थ क्या? वह व्रत कहाँ थे? आहाहा! यह तो आत्मा के हित की बातें हैं, भाई! आहाहा! जिसे आत्मा में शान्ति....

मुमुक्षु : महत्ता जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : महत्ता जाये। संघ का यह फलाना हो, इसलिए अपने ऐसा करना। वह कहीं व्रत होगा? भय से करे, उसे मोक्षमार्गप्रकाशक में....

तीव्र कर्मबन्ध के निमित्त जानकर.... लो! **इनको तीव्र कषाय के निमित्त से....** देखो! **तीव्र कषाय के निमित्त से तीव्र कर्मबन्ध के निमित्त जानकर स्वयमेव न करने के भावरूप त्याग हो....** ऐसा। राजा का भय और परिवार का भय और फलाने हमारे पिताजी कठोर हैं, इसलिए ऐसा नहीं करना पड़ता, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....अच्छा लगता है, यह सब रुचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ऐसा होता ही नहीं। इतनी अस्थिरता उसे होती नहीं, ऐसा कहते हैं।

स्वयमेव न करने के भावरूप त्याग हो, वह व्रत है। इसके ग्यारह स्थानक कहे, इनमें ऊपर-ऊपर.... ग्यारह यह कही न भूमिका? दर्शन प्रतिमा और यह। **ऊपर-ऊपर त्याग बढ़ता जाता है....** दर्शनप्रतिमा में जो कोई पाँच अणुव्रत हैं, अतिचारसहित, वे भी आगे जाकर उसमें शुद्धि बढ़ती जाती है। दूसरी प्रतिमा में व्रत में शुद्धि बढ़े, तीसरी में सामायिक में शुद्धि बढ़े और प्रौषध में भी शुद्धि बढ़े। पहले जो नियम है, वह नियम रखकर शुद्धि की वृद्धि क्षण-क्षण में बढ़े। आहाहा! गजब ऐसा।

मुमुक्षु : दवा में न आ जाये शहद?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। दवा में आ नहीं जाये। निश्चित करना चाहिए।

मुमुक्षु : बनावट में आ ही गया हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया हुआ हो तो वह बँधी हुई वस्तु लेना ही नहीं।

मुमुक्षु : अतिचार....

पूज्य गुरुदेवश्री : लेना ही नहीं, परन्तु फिर अतिचार.... अतिचार छोड़नेयोग्य है या रखनेयोग्य है? बस तो इतना प्रश्न पहले से लेना। उसके ख्याल में आवे कि इस बनावट में यह माँस है और शहद है और मदिरा है, तो वह न ले। बात तो ऐसी है। आहाहा! आचरण में भी ऐसा होना चाहिए। सम्यग्दर्शनसहित जब आगे बढ़ा है....

मुमुक्षु : दवा में एल्कोहल तो प्रयोग करते ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ एल्कोहल प्रयोग करते हैं। क्या? ऐई! डॉक्टर!

मुमुक्षु : सबमें नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें नहीं आता, ऐसा कहते हैं। देशी में किसी में आता हो। सब दवा में नहीं आता।

मुमुक्षु : अमुक बिगड़ न जाये, इसलिए डालना ही पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : डालना पड़े। परन्तु वह किसी में होगा। परन्तु ऐसी जिसे शंका, वहम पड़े, ऐसी वस्तु ही किसलिए लेना चाहिए?

मुमुक्षु : बीमार हो तो क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : बीमार हो तो मिट जाये ऐसा है उससे? आहाहा! उसकी स्थिति होगी, उस प्रमाण होगी।

इसकी उत्कृष्टता तक ऐसा है.... अर्थात् कि दर्शनप्रतिमा में जितना त्याग है, उससे आगे में त्याग बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते पहले जो लिया हुआ है, वह ठेठ तक रहता है, ऐसा कहते हैं। पहला छोड़ दे और उत्तम दूसरे में जाये, ऐसा नहीं हो सकता। **जिन कार्यों में त्रस जीवों को बाधा हो....** त्रस जीव मरे **इस प्रकार के सब ही कार्य छूट जाते हैं....** आहाहा! जिसमें त्रस मरे, वह सब व्यापार-धन्धा आदि छूट जाता है।

इसलिए सामान्य ऐसा नाम कहा है कि त्रसहिंसा का त्यागी देशव्रती होता है। लो! **इसका विशेष कथन अन्य ग्रन्थों से जानना।** लो! यह जानना हो तो दूसरे ग्रन्थ में देशव्रत का जहाँ अधिकार हो (वहाँ से जानना चाहिए)।

★ ★ ★

गाथा - २५

आगे तीन गुणव्रतों को कहते हैं:—

दिसिविदिसिमाण पढमं, अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा, इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥२५॥

अर्थ:—दिशा-विदिशा में गमन का परिमाण वह प्रथम गुणव्रत है,.... गुणव्रत। नियम में विशेष लाभ हो, ऐसे गुणव्रत हों। **अनर्थदण्ड का वर्जना द्वितीय गुणव्रत है, और भोगोपभोग का परिमाण तीसरा गुणव्रत है,—इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।**

भावार्थ:—यहाँ गुण शब्द तो उपकार का वाचक है,.... सम्यग्दर्शनसहित जहाँ पंच अणुव्रत है, उसमें यह गुण, तीन गुण यह उपकार करते हैं उसे—अणुव्रत को। समझ में आया? **अणुव्रतों का उपकार करते हैं।** क्या कहते हैं? दिशा-विदिशा में गमन का परिमाण, अनर्थदण्ड का त्याग, भोगोपभोग का माप, वे पाँच अणुव्रत को गुण करते हैं—लाभ करते हैं, ऐसा। राग का अभाव इतना होता है, इतना वहाँ लाभ होता है। अणुव्रत को ही लाभ करते हैं।

दिशा-विदिशा अर्थात् पूर्व दिशादिक में गमन करने की मर्यादा करे। पूर्व दिशा आदिक। समझे? पूर्व-पश्चिम आदि अमुक ही दिशा में गमन करना, (इससे) ममता घटे, ऐसा कहते हैं। **अनर्थदण्ड अर्थात् जिन कार्यों में अपना प्रयोजन न सधे, इस प्रकार पापकार्यों को न करे।**

अब यहाँ प्रश्न उठा। **यहाँ कोई पूछे—प्रयोजन के बिना तो कोई भी जीव कार्य नहीं करता है,....** क्या कहते हैं समझ में आया? अनर्थदण्ड। सम्यग्दृष्टि अनर्थदण्ड न करे। इसलिए प्रश्न उठा कि भाई! **प्रयोजन के बिना तो कोई भी जीव कार्य नहीं**

करता है, कुछ प्रयोजन विचार करके ही करता है, फिर अनर्थदण्ड क्या? और अनर्थदण्ड कहना किसे?

इसका समाधान—सम्यग्दृष्टि श्रावक होता है, वह प्रयोजन अपने पद के योग्य विचारता है,.... यह वस्तु। अपनी भूमिका जो चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ आदि हो, उसके प्रमाण में उसकी भूमिका प्रमाण प्रयोजन विचारे। **पद के सिवाय सब अनर्थ है।** उस भूमिका के प्रमाण में पद से दूसरे प्रकार से कहलाये वह सब अनर्थ कहलाता है। समझ में आया? **पापी पुरुषों के तो सब ही पाप प्रयोजन हैं।** पापी को तो सब पाप का ही प्रयोजन है। उसमें प्रयोजन-अप्रयोजन का उपचार है नहीं। सब पाप का ही प्रयोजन है। चौथे-पाँचवें-छठवें में आदि तो अपनी भूमिका के प्रमाण में उसे पाप का ख्याल होता है, ऐसा। उसका प्रयोजन इतना है, ऐसा कहते हैं। इससे विशेष उसका प्रयोजन होता नहीं।

भोग कहने से भोजनादिक.... भोग का परिमाण करे। भोजन अर्थात् आहार, पानी, दवा इत्यादि। **उपभोग कहने से स्त्री, वस्त्र, आभूषण,....** उनका परिमाण करे। वस्त्र, आभूषण बारम्बार भोगे जाते हैं न इसलिए। वाहन, मकान का परिमाण करे। **इस प्रकार जानना।** लो! यह ऐसे दर्शनप्रतिमा के उपरान्त अणुव्रत और उसमें इस प्रकार का निर्मलता का गुण करे, उसे निर्मलता बढ़ती है, ऐसा कहते हैं। विकल्प है, परन्तु अन्दर की शुद्धता बढ़ती है न अन्दर?

★ ★ ★

गाथा - २६

आगे चार शिक्षाव्रतों को कहते हैं:—लो! पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत।

सामाइयं च पढमं, बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं, चउत्थ सल्लेहणा अंते॥२६॥

अर्थः—सामायिक तो पहिला शिक्षाव्रत है,.... शिक्षाव्रत क्यों कहते हैं, यह

कहेंगे। **वैसे ही दूसरा प्रौषध व्रत है, तीसरा अतिथि का पूजन है, चौथा अंतसमय संल्लेखना व्रत है।**

भावार्थ:—शिक्षा शब्द से तो ऐसा अर्थ सूचित होता है कि आगामी मुनिव्रत की शिक्षा इनमें है,.... मुनिपना हो, तब ऐसा इसे पालना पड़ेगा और ऐसी दशा हो, इसके लिये इसे शिक्षाव्रत कहा जाता है। आहाहा! **जब मुनि होगा, तब इस प्रकार रहना होगा। सामायिक कहने से तो राग-द्वेष का त्याग कर,....** लो, यह सामायिक। परन्तु जिसे अभी राग-द्वेष रहित चैतन्य की दृष्टि की खबर ही नहीं, उसे दृष्टिसहित में स्थिरता आवे कहाँ से? समझ में आया? राग-द्वेष का त्याग। राग-द्वेष मेरे नहीं और वस्तु का स्वरूप वह मैं हूँ, ऐसी दृष्टि विवेक जगा नहीं, वहाँ आगे राग-द्वेष की अस्थिरता का त्याग हो कैसे? क्या कहा, समझ में आया?

सामायिक कही न? सामायिक अर्थात् राग-द्वेष का त्याग। राग-द्वेष का त्याग कब होगा? पहले राग-द्वेषरहित मेरी चीज़ है, ऐसी दृष्टि हुई है, उसे अस्थिरता में जो राग-द्वेष है, उसका उसे त्याग होता है। सामायिक में समता—वीतरागभाव का लाभ होता है। आहाहा! सामायिक में तो व्यक्ति को किसी समय शुद्ध उपयोग भी आ जाता है। सामायिक उसे कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शन अन्तर का शुद्ध उपयोग जिसे प्रगट हुआ है और उसमें शुद्ध उपयोग अर्थात् रागरहित जिसकी स्थिरता हुई है, ऐसी सामायिक में बैठे तो उसे किसी समय शुद्ध उपयोग भी आ जाता है। शुद्ध उपयोग। कोई कहता है न कि चौथे, पाँचवें में शुद्ध उपयोग नहीं होता। चौथे से शुद्ध उपयोग शुरु होता है। आहाहा! क्योंकि जीव का शुभभाव, वह स्वभाव ही नहीं। दया, दान, व्रत के परिणाम हैं, वे कहीं जीव का स्वभाव नहीं। इससे वह वस्तु का स्वरूप नहीं। वस्तु का स्वभाव तो शुद्ध उपयोग है। आहाहा! समझ में आया?

अलिंगग्रहण में आया है न यह? सूर्य में जैसे उपराग नहीं, मैल नहीं, उसी प्रकार उपयोग में शुभरागरूपी मैल नहीं। उसे उपयोग कहा जाता है। आहाहा! सूर्य में जैसे उपराग नहीं। उपराग अर्थात् मैल नहीं। उसका स्वभाव ही सफेद—उज्ज्वल है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में शुभ-अशुभ परिणाम का मैल है ही नहीं, उसे आत्मा

कहते हैं। आहाहा! यह शुद्ध उपयोग, यह उसका (-आत्मा का) स्वभाव है। लो, अलिंगग्रहण में ऐसा अर्थ है।

अब यह शुद्ध उपयोग तो, कहे, यहाँ होता नहीं। यहाँ कहते हैं शुद्ध उपयोग तो इसका स्वरूप है, स्वभाव है। स्वभाव पकड़ने से शुद्ध उपयोग वही पकड़ सकता है। आहाहा! ऐसे शुभराग विकल्प है, वह तो उसका स्वरूप ही नहीं, स्वभाव ही नहीं। वह तो मैल है। आहाहा! गजब बातें की हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रयोजन की बात नहीं अभी। अभी यह मुख्य चलती है, यह बात सुनो न! यह प्रयोजन की बात गयी। अभी तो यहाँ शुद्ध उपयोग जो है, वह जीव का स्वभाव है। यह बात चलती है यहाँ। समझ में आया? शुभभाव जो है, वह जीव का स्वभाव नहीं। वह जीव का उपयोग ही नहीं। आहाहा! वह तो राग का उपयोग है, अजीव का उपयोग है। समझ में आया?

भगवान आत्मा उसे कहते हैं। अलिंगग्रहण अर्थात् कि शुद्ध उपयोग से पकड़ा जा सकता है। राग से—शुभराग से नहीं पकड़ा जा सकता। क्योंकि शुभराग उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है। तो कहे, नहीं, चौथे गुणस्थान से सातवें तक शुभयोग ही होता है। और एक जगह कहा है कि सातवें से शुद्ध होता है। और एक जगह कहा है। दो बातें की हैं।

मुमुक्षु : एक बार आठवें में शुद्ध, एक बार सातवें में।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार सातवें तक शुद्ध कहा, फिर आठवें से शुद्ध कहा। आहाहा! अरे! भाई! सत्य है, उसे सत्य को सत्यरूप से रहने दे। गड़बड़ न हो।

यहाँ तो कहते हैं कि जो शुद्ध उपयोग है आत्मा की सामायिक। वास्तव में तो शुद्ध उपयोगरूपी परिणमे, उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! उसे आगे बढ़कर प्रौषध होता है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक-०४-१२-१९७३
गाथा- ३०, ३१, प्रवचन-५८

(नोट : यह प्रवचन 19 मिनिट, 25 सेकेण्ड का उपलब्ध है।)

उस समय वीतरागता को बनाये रखता है। समझ में आया? अन्तर में खेद नहीं होता, अन्तर में विषमता नहीं होती। वह शरीर के रोग को ज्ञेयरूप से जानता है। वह वास्तव में तो अपने को उस ज्ञेय का ज्ञान हुआ, उसे वह जानता है। आहाहा! ऐसा तो कहा नहीं कि बहुत उपसर्ग आवे। क्या न जाने? आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? भाई! विकल्प हो तो जानने में आवे। निर्विकल्प अन्दर में हो, निर्विकल्प में तो ख्याल न रहे। परन्तु विकल्प में आवे तो ख्याल हो कि कुछ होता है। यह काटता है, ऐसा जाने। आहाहा! समझ में आया? मुनियों को पानी में डाल दे समुद्र में। आहाहा! उपयोग को खींच ले पर से (और) अपने में जमा दे। आहाहा!

मुमुक्षु : बहु उपसर्ग करता के प्रति भी क्रोध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रोध नहीं... समुद्र में चले जाये, पानी में डाला हो। अन्दर शरीर चला जाये गहरे-गहरे। स्वयं अन्दर गहरे-गहरे अपने में जाये। आहाहा! जैसे बाहर पानी में गहरे जाता जाये, वैसे अन्दर में गहरे-गहरे जम जाये अन्दर। आहाहा! धन्य अवसर और धन्य काल। उसके भव का अन्त आया। उसे ऐसी दशा होती है, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ३०

आगे पाँच व्रतों का स्वरूप कहते हैं:—

हिंसाविरई अहिंसा, असच्चविरई अदत्तविरई य।
तुरियं अबंभाविरई, पंचम संगम्मि विरई य॥३०॥

अर्थ:—प्रथम तो हिंसा से विरति अहिंसा है,.... रागादि के परिणाम जो हिंसा, उससे निवृत्तकर... आहाहा! अहिंसा स्थिरता हुई है और यह अहिंसा शुभ विकल्परूप होती है। वास्तविक अहिंसा तो राग की उत्पत्ति न होना, वह अहिंसा है। वह निश्चयव्रत है। आहाहा! दया, दान के परिणाम उत्पन्न हों, वह भी हिंसा है। आहाहा! वह राग की उत्पत्ति न हो, ऐसी जो आत्मा के आश्रय की दशा, उसे अहिंसा कहते हैं। उस अहिंसा की भूमिका में राग की निवृत्ति है। व्यवहार के अशुभराग की निवृत्ति है और शुभराग की प्रवृत्ति है। आहाहा! परन्तु ऐसा निश्चयसहित हो, उसकी बात है। आहाहा! बापू! वीतराग का कोई भी मार्ग दर्शन का, ज्ञान का, चारित्र का, देश (व्रत का) अलौकिक होता है। वीतराग के अतिरिक्त यह बात कहीं अन्यत्र होती नहीं। आहाहा! परन्तु यह दरकार कब इसे आतमा की हो तब... अरे! मैं कहाँ रहूँगा? मेरा स्वभाव है, ऐसा जिसे भान नहीं तो कहाँ रहूँगा, ऐसी उसे शंका रहा करे। कहाँ जाऊँगा? जिसके स्वरूप की खबर नहीं कि मैं कहाँ जाऊँगा? राग में कितनी जगह? आहाहा! परन्तु जहाँ मैं आत्मा राग से रहित हूँ, वहाँ मैं जाऊँगा और वहाँ मैं रहूँगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी जिसे अन्दर में अहिंसा प्रगट हुई है, उसे हिंसा से निवृत्ति है, ऐसा कहते हैं।

दूसरा असत्यविरति है,.... झूठ से निवृत्ति है। सत्य स्वरूप भगवान आत्मा की अन्दर परिणतिरूपी निश्चय सत्य व्रत है, उसे सत्य व्रत (के) विकल्प होते हैं। परन्तु वह असत्य से निवृत्त हुआ होता है। आहाहा! **अदत्तविरति है....** जिसे चोरी नहीं। आहाहा! परचीज़ को लेना, वह चोरी ही जिसे नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप को जहाँ ग्रहण करता है, उसे पर का लेना वहाँ रहता नहीं। आहाहा! मार्ग कठिन, भाई! वीतराग का एक भी मार्ग एक समझे न तो उसका सब पूरा प्रत्येक वस्तु का स्वरूप उसके ख्याल में आ जाये। एक भाव जाने तो सब भाव जाने। आहाहा!

मुमुक्षु : एक....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कोई भी लो न! शुभभाव एक ही जानता है शुभभावरूप से, तो भी सब भाव को जानता है। यह शुभभाव है। यह शुद्ध नहीं। उसका एक भाव भी बराबर जाने तो वह शुभ से रहित शुद्ध को जाने, शुभ को जाने, अशुभ को जाने और आगम के जो भेद हैं, उन सबको जाने। जानना है न उसका? आहाहा! समझ में आया? जानना कब कहलाता है कि जिस रूप से जो है, उसे जाना हो, तब जानना कहलाये न? आहाहा!

चौथा **अब्रह्मविरति है,...** विषय—मैथुन निवृत्ति अब्रह्म (निवृत्ति)। भगवान ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा में रमना, वह ब्रह्मचर्य है। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप है, ब्रह्मानन्द प्रभु आत्मा में जिसकी परिणति रमती है, वह अब्रह्म से निवृत्तता है। आहाहा! और व्यवहार का अब्रह्म से निवर्तना, ऐसा शुभभाव होता है। **पाँचवाँ परिग्रहविरति है।** मुनि को परिग्रह—वस्त्र का धागा भी नहीं होता। आहाहा! वस्त्र और पात्र मुनि को होते नहीं। क्योंकि वह परिग्रह है। और उनकी ममता का राग भी उन्हें नहीं होता। आहाहा! जैनदर्शन की श्रद्धासहित बात है न यह सब? इससे जैनदर्शन की बात की है न आठवें में? उस पहले में। आठ में पहला वह दर्शनपाहुड़।

स्थिति होयं। स्थिति अर्थात् खड़े-खड़े ऐसा? स्थिति शब्द आया है वहाँ आगे। १४वीं गाथा में। खड़े-खड़े आहार आता है न **'उब्भसणे' 'उब्भसणे'** खड़े-खड़े। ऐसे यह स्थिति शब्द आया है। अपने गुजराती में आया है कल।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, १४वीं गाथा में। स्थिति आया है वहाँ। अर्थ किया है नीचे। कहीं नीचे अर्थ किया है। खड़े-खड़े आहार। खड़े-खड़े। सज्झाय में कल आया था।

भावार्थः—इन पाँच पापों का सर्वथा त्याग जिनमें होता है, वे पाँच महाव्रत कहलाते हैं। आहाहा! जिसमें पाँचों ही पाप की निवृत्ति है। सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की स्थिरता की भूमिका में ऐसे पाँच पाप से निवृत्तिरूप भाव को महाव्रत कहा जाता है। आहाहा! महाव्रत के भी दो प्रकार—एक निश्चय महाव्रत, एक व्यवहार। यहाँ व्यवहार

की बातें की हैं, परन्तु निश्चय में ऐसी दशा हो, उसमें साथ में समझाते हैं। समझ में आया? अकेले व्यवहार महाव्रत हों, उसे निश्चय न हो तो वह महाव्रत ही नहीं है। आहाहा! वर्णन ऐसा किया कि जो सागार धर्म और अणगार। वर्णन तो क्या करे? भेदवाला वर्णन किये बिना समझाना कैसे? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३१

आगे इनको महाव्रत क्यों कहते हैं, वह बताते हैं:—

साहंति जं महल्ला, आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।
जं च महल्लाणि, तदो महव्वया इत्तहे याइं॥३१॥

अर्थः—महल्ला अर्थात् महन्त पुरुष जिनको साधते हैं.... लो! महाव्रत महापुरुष साधते हैं और उसे कहते हैं कि महाव्रत वह पुण्य है, हेय है, जहर है। ऐसा यह कहना कैसे शोभे? ऐसा (वे) कहते हैं। किस अपेक्षा से प्रभु तू कहता है? यह तो पाँच महाव्रत ऐसे विकल्प उसकी भूमिका में ऐसी स्थिरता साधता है। उसका साधन महाव्रत का निमित्त गिनकर वह साधता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! लो, ऐसी महिमा की और तुम कहते हो कि महाव्रत छोड़नेयोग्य है, हेय है, आस्रव है। परन्तु तब तो उसे महाव्रत कहा जाता है। जिसे सम्यग्दर्शन में रागमात्र का हेयपना है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसका भी हेयपना है। सम्यग्दर्शन में तो रागमात्र का हेयपना है। तब यहाँ तो हेयपना तो जाना है, स्थिर हुआ है अन्दर, तथापि ऐसा विकल्प आता है, उसे यहाँ महाव्रत कहा जाता है।

इसमें क्लेश करे, कितने ही। बापू! महाव्रत के विकल्प किसे होते हैं? जिसे महापुरुष सम्यक् निश्चय प्रगट हुआ है। आनन्द का दाता प्रभु है, वह राग का दाता नहीं, ऐसा आत्मा जिसे अन्तर में अनुभव में आया है। आहाहा! उसे ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प स्वरूप की स्थिरतासहित होते हैं। इसलिए उसे कहा कि '**साहंति महल्ला**' कथन आया इसलिए यह निश्चय का हो गया? भगवान ने कहा है न? परन्तु भगवान ने किस नय से कहा है?

मुमुक्षु : प्रमाणज्ञान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहलाता है। अपने आ गया है, नहीं ? दो भेद करना व्यवहार, अपने आया है। अष्टपाहुड़ में। पंचाध्यायी की शैली में। द्रव्य और पर्याय दो भेद करना, वही व्यवहार है। आया था ? खबर है न! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो उसे सामान्य की बात की, अकेला सामान्य, वे तो भेद पड़े दर्शन, ज्ञान। ऐसा कि सामान्य अकेला, उसे व्यवहार कहा जाता है या नहीं ? ऐसा। सामान्य निश्चय है। परन्तु एक अपेक्षा से पूरी चीज़ के भेद किये न, इस अपेक्षा से व्यवहार कहते हैं। अष्टपाहुड़ में आया था। द्रव्य और पर्याय दोनों व्यवहार कहना। द्रव्य कहना और पर्याय, वह दोनों व्यवहार। किस अपेक्षा से ? वे भेद करने की (अपेक्षा से)। भेद से उसे कहना। इस अपेक्षा से बात है। इस अपेक्षा से वहाँ लिया था पण्डित जयचन्दजी ने। भेद से। यहाँ तो जितना कहे, उसका निषेध करे निश्चय से। कहे नहीं। एक द्रव्य के दो भाग में यह सामान्य, वह विकल्प है। अकेला सामान्य का त्रिकाल का आश्रय लेना, वह अलग बात है। यह तो 'निश्चयनय आश्रित मुनिवरो...' देखो! यह कहा न। सामान्य के आश्रय से वहाँ। वह सामान्य विकल्प नहीं। बहुत अपेक्षायें लागू पड़ती हैं, भाई! जो-जो अपेक्षा हो, वह-वह वहाँ जानना चाहिए। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है, बापू!

महन्त पुरुष जिनको साधते हैं—आचरण करते हैं.... ऐसा। **'आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं' और पहिले भी जिनका महन्त पुरुषों ने आचरण किया है....** लो! महा कुन्दकुन्दाचार्य आदि, अरे! तीर्थंकर ने छद्मस्थपने में भी, लो! महाव्रत का आचरण किया था। व्यवहार से आचरण किया था। निश्चय महाव्रत तो स्थिरता, वह आचरण है। आहाहा! आनन्द में लीनता विशेष होना, वह वास्तव में तो महाव्रत है। निश्चय महाव्रत वह है परन्तु उस भूमिका में ऐसे महाव्रत की विकल्प की मर्यादा होती है।

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश में तो उसे अणुव्रत कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अणुव्रत कहा इतना अपूर्ण है न। पूर्ण नहीं।

पहिले भी जिनका महन्त पुरुषों ने आचरण किया है.... ओहोहो! यहाँ से ऐसा लेते हैं कि महाव्रत के विकल्प और आचरण ज्ञानियों ने किये। परन्तु वह यहाँ बतलाना है कि ऐसा जिसे आचरण व्यवहार है, उसे निश्चय का आचरण वहाँ है ही। ऐसी... बात यहाँ है। आहाहा! भारी बैठना कठिन। **ये व्रत आप ही महान हैं....** लो! दूसरा। महान पुरुषों ने पालन किये, साधे। पूर्व के महापुरुषों ने किये। स्वयं बड़े हैं। महा शब्द है न? महाव्रत, ऐसा शब्द है न, इसलिए उसकी बात करते हैं। महाव्रत क्यों? कि स्वयं बड़े हैं। और क्यों महाव्रत? कि बड़े पुरुषों ने जिन्हें आचरण किया है। पूर्व में भी बड़े पुरुष आचरण कर गये हैं। महाव्रत का अर्थ करना है न यहाँ तो। **क्योंकि इनमें पाप का लेश भी नहीं है....** श्रावक का पाप जरा भी नहीं। **इस प्रकार ये पाँच महाव्रत हैं।** लो!

भावार्थः—जिनका बड़े पुरुष आचरण करें और आप निर्दोष हों, वे ही बड़े कहाते हैं,.... लो! उसे महान व्रत कहा जाता है। ओहोहो! **इस प्रकार इन पाँच व्रतों को महाव्रत संज्ञा है।** लो! अब उसकी पच्चीस क्रिया आयी थी न उसमें? पंचेन्द्रिय... आ गया। .... आ गया। पंचमी.... यह अट्ठाईसवीं गाथा। इस तीसरे बोल की व्याख्या आयेगी अब। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक-०५-१२-१९७३
गाथा- ३२ से ३९, प्रवचन-५९

अष्टपाहुड़ में चारित्रपाहुड़ है। वह यह चारित्र संयमचरण चारित्र की ऐसी बात। चारित्र के दो भेद हैं—एक सम्यक्त्वचरण चारित्र, दूसरा यह संयमचरण चारित्र। उसके भी दो भेद हुए। एक सागार संयमचरण चारित्र और अनगार संयमचरण चारित्र। यह अनगार संयमचरण चारित्र की व्याख्या चलती है।

★ ★ ★

गाथा - ३२

आगे इन पाँच व्रतों की पच्चीस भावना.... जिसे क्रिया कही थी न? २८वीं गाथा में क्रिया कही थी। व्रत की क्रिया। उसे यहाँ भावना में लिया है। पाठ में क्रिया है। '**पंच वया पंचविंसकिरियासु**' इसीलिए तो फिर स्पष्टीकरण किया न? पाँच व्रत कैसे हैं कि '**पंचविंसकिरियासु**' सहित है, ऐसा। एक-एक की पाँच-पाँच भावनायें हैं।

वयगुत्ती मणगुत्ती, इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए, अहिंसए भावणा होंति॥३२॥

मुनिव्रत कैसा होता है और उसमें अहिंसा के भाव कैसे होते हैं, उसका वर्णन है। उसे पहले जानना तो चाहिए न कि क्या अहिंसा महाव्रत कहलाता है? पंच महाव्रत। जिसे अन्तर स्वरूप में बहुत ही लीनता होती है, उसे यह पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं। उसे यह पच्चीस भावना होती है।

अर्थः—वचनगुप्ति और मनोगुप्ति ऐसे दो तो गुप्तियाँ,.... है। यह भावना की बात है। अहिंसा व्रत में यह भावना। जिसमें मन और वचन की गुप्ति। **ईर्यासमिति....** देखकर चलना। अहिंसा की भावना है न? **भले प्रकार कमण्डलु आदि का ग्रहण-निक्षेप....** आदाननिक्षेपण है न? वस्त्र, पात्र इसमें नहीं कुछ लेना या रखने का। **कमण्डलु**

आदिक.... लेना पुस्तक आदि लेने—रखने में, उसे समिति आदान। **अच्छी तरह देखकर विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करना....** आहार भोजन करने में निर्दोष है, उसमें कोई चींटी-मकोड़ा न हो, हरितकाय सचेत न हो, ऐसे आहार को देखकर विधिपूर्वक, जो विधि है, उस प्रकार से शुद्ध भोजन करना। **यह ऐषणा समिति—इस प्रकार ये पाँच अहिंसा महाव्रत की भावना हैं।** ओहोहो! मुनिमार्ग—मुनिव्रत अलौकिक बात है न! वह कहीं लोग अभी मानते हैं, वह कहीं मुनिपना नहीं है। अन्तर में सम्यक्चरण स्वरूप प्रगट का अनुभव होकर फिर वस्तु के स्वरूप में स्थिरता उग्र आश्रय करके शान्ति... शान्ति... शान्ति... विशेष, अतीन्द्रिय आनन्दसहित की शान्ति प्रकट हो, उसे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। वह व्यवहार... है न! उसकी भावना, वह भी एक विकल्प है। परन्तु उसे उस स्थान में ऐसा होता है।

भावार्थः—भावना अर्थात् बारम्बार उस ही के अभ्यास करने का है,.... लो! उसका बारम्बार अभ्यास करना। मुनि को देखकर चलना, विचारकर बोलना। यह बाद में आयेगा। यहाँ तो देखकर चलना, आहार-पानी निर्दोष लेना, रखना-लेना... ध्यान रखना, उसे यहाँ समिति कहा जाता है। है तो यह विकल्प, हों! परन्तु उस भूमिका में वह होता है। आहाहा! **यहाँ प्रवृत्ति-निवृत्ति में हिंसा लगती है, उसका निरन्तर यत्न रखे, तब अहिंसाव्रत का पालन हो, इसलिए यहाँ योगों की निवृत्ति करनी तो भले प्रकार गुप्तिरूप करनी....** गुप्तिरूप मन-वचन को गोपना।

प्रवृत्ति करनी तो समितिरूप करनी,.... व्यवहार। **ऐसे निरन्तर अभ्यास से अहिंसा महाव्रत दृढ़ रहता है, इसी आशय से इनको भावना कहते हैं।** आहाहा! एक ओर कहना कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भावना भाना नहीं। वह राग है। व्यवहारनय का अधिकार जहाँ हो, यह बात होती है। वह तो अहिंसा, व्रत है, वह विकल्प है और उसे रखने के लिये पाँच भावना, वह भी उस प्रकार का विकल्प है। होता है न व्यवहार से। उसकी भूमिका में निश्चय शान्ति, निश्चय आनन्द अन्दर जमी है अन्दर में जमावट, उसकी भूमिका (पूर्ण) वीतरागता की न हो, इससे ऐसे विकल्प उसे होते हैं। न्याय की बात है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ३३

आगे सत्य महाव्रत की भावना कहते हैं:—

कोहभयहासलोहा, मोहा विवरीयभावणा चेव।
विदियस्स भावणाए, ए पंचेव य तहा होंति॥३३॥

अर्थ:—क्रोध, भय, हास्य, लोभ और मोह इनसे विपरीत अर्थात् उल्टा इनका अभाव ये द्वितीय व्रत सत्य महाव्रत की भावना है।

भावार्थ:—असत्य वचन की प्रवृत्ति क्रोध से.... होती है। **क्रोध से, भय से, हास्य से, लोभ से और परद्रव्य के मोहरूप मिथ्यात्व से होती है,....** लो! आहाहा! **इनका त्याग हो जाने पर सत्य महाव्रत दृढ़ रहता है।** मिथ्या परद्रव्य में प्रीति-रुचि हो जाना, उसे तो मिथ्यात्व कहते हैं। उसका जहाँ त्याग हुआ, वहाँ आगे यह सत्य महाव्रत होता है। ओहोहो!

तत्त्वार्थसूत्र में पाँचवीं भावना अनुवीचीभाषण कही है,.... विचारकर बोलना। **इसका अर्थ यह है कि—जिनसूत्र के अनुसार वचन बोले....** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिस प्रकार से कहा है, उस प्रकार से बोले। आहाहा! कम, अधिक, विपरीत, आगे-पीछे न बोले। आहाहा! कठोर मार्ग है। आहाहा! **और यहाँ मोह का अभाव कहा। वह मिथ्यात्व के निमित्त से सूत्रविरोध बोलता है....** सिद्धान्त ने कहा, उससे उल्टा कहना, उसका यहाँ त्याग है। **मिथ्यात्व का अभाव होने पर सूत्रविरोध नहीं बोलता है,....** आहाहा! व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र होता है। निश्चयचारित्र हो, वहाँ व्यवहारचारित्र उसे मदद करता है—यह सब सूत्र के वाक्य नहीं हैं। यह विचारकर सिद्धान्त को अनुसरकर बोले नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग।

वीतराग प्रभु आत्मा। आत्मा वीतरागमूर्ति ही आत्मा तो है। उसका स्वभाव वीतरागस्वरूप ही है। उसमें वीतरागपने की परिणति प्रगट करके ऐसे विकल्प अन्दर आवे उसे। उसे यहाँ भावना कहा है। भगवान के सूत्र से विरुद्ध एक वचन भी कहे। कहो, समझ में आया? भाई! मुनि को इस काल में निर्बल शरीर है... इसलिए वस्त्र से ही चारित्र निभता है, उसके बिना नहीं निभता—ऐसे वचन सम्यग्दृष्टि मुनि हो, (वह)

बोले नहीं। यह पंचम काल है, शिथिल शरीर संहनन है, उसके प्रमाण में कुछ वस्त्र हो तो सर्दी में निर्वाह हो, चारित्र निर्वाह। वह मार्ग वीतराग का नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र कहना किसे? भाई! आहाहा! जिसे एक वस्त्र का धागा रखे तो भी मुनिपना नहीं। उसे ऐसा कहना कि इतने वस्त्र रखकर भी मुनिपना रहे, वह वीतराग के वचन नहीं हैं। वे सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे सूत्र को अनुसरकर वे वचन नहीं हैं।

सूत्रविरुद्ध नहीं बोलता है,.... अपने से पालन न हो सके, इसलिए उसका बचाव करके सूत्र से विरुद्ध कहना, यह मार्ग नहीं है। आहाहा! **अनुवीचीभाषण का भी यही अर्थ हुआ,....** मिथ्यात्व के अभाव में विचारकर बोलना, यही विचारकर बोलना, ऐसी भावना में ऐसी बात आ गयी, ऐसा कहते हैं। भले उसमें अनुवीची नहीं आया परन्तु मोह का अभाव करके बोलना, उसमें यह बात आ जाती है।

★ ★ ★

गाथा - ३४

आगे अचौर्य महाव्रत की भावना कहते हैं:— मुनिपने की वस्तु अलौकिक है बापू! उसे पहले जानना चाहिए। मुनिमार्ग क्या है? साधुपद क्या है? चारित्रपद क्या है? आहाहा!

सुण्णायारणिवासो, विमोचियावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं, साहम्मीसंविसंवादो ॥३४॥

अर्थ:—शून्यागार अर्थात् गिरि, गुफा, तरु, कोटरादि में निवास करना,.... साधु तो। आहाहा! यहाँ बड़े पाँच-पाँच लाख के बँगले, कमरे। मुनि किसे कहना? जिसे सुनना कठिन पड़ा है अभी। आहाहा! समझ में आया? वीतराग परमेश्वर जिसे मुनि कहते हैं, वे तो शून्यागार। शून्य आगार अर्थात् गिरि में रहे, गुफा में रहे, जंगल में

रहे। आहाहा! ऐसा मार्ग है। गुफा में रहे, वृक्ष के नीचे कोठर, बड़ा वृक्ष हो उसकी पोलाण हो, पोलाण, उसमें निवास करे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मार्ग यह है।

विमोचितावास अर्थात्.... लोगों ने प्रयोग करना छोड़ दिया हो, ऐसा मकान हो **जिसको लोगों ने किसी कारण से छोड़ दिया....** यह खण्डहर हो.... मकान हो। भूत-बूत का वहम पड़कर भी अच्छे मकान छोड़े हों। जंगल में मकान बनाये हो, फिर पड़ा हो भूत का वहम (तो) छोड़ दे। खाली पड़ा हो, वहाँ मुनि रहे। आहाहा! **गृह ग्रामादिक में निवास करना,.... किसी कारण से छोड़ दिया हो इस प्रकार के गृह ग्रामादिक में निवास करना,....** ऐसा कहते हैं। गाँव भी छोड़ दिया हो, कोई छोटा गाँव हो। वहम पड़े तो गाँव भी छोड़ दे। २५-५० घर खाली पड़े हों। वहाँ बसे। आहाहा!

परोपरोध अर्थात् जहाँ दूसरे की रुकावट न हो,.... उसमें दूसरे उसे रुकावट न करे कि इस स्थान में तुम आ नहीं सकते। ऐसे दूसरे रुकावट करे कि इसमें नहीं रहना, (तो) उसमें भी नहीं रहते। **वस्तिकादिक को अपनाकर दूसरे को रोकना,....** इतना यह भाग हमारा ही है, यहाँ नहीं आ सकते तुम। ऐसा मुनि को नहीं होता। **इस प्रकार नहीं करना, ऐषणाशुद्धि अर्थात् आहार शुद्धि लेना,....** निर्दोष आहार। उसके लिये बनाया हुआ हो नहीं। आहार, पानी कोई भी चीज़। ऐसा लेना। **और साधर्मियों से विसंवाद नहीं करना।** यह स्थान मेरा है और यह स्थान तेरा है। ऐसा विसंवाद न हो उसे साधु के साथ। समझ में आया? जिस स्थान में उतरे हो तो यह स्थान मेरा है, इस स्थान में तुम नहीं आ सकते—ऐसा झगड़ा न हो। आहाहा! कहाँ मार्ग वीतराग का! **ये पाँच भावना तृतीय महाव्रत की हैं।**

भावार्थः—मुनियों की वस्तिका में रहना और आहार लेना ये दो प्रवृत्तियाँ अवश्य होती हैं। गाँव में आहार लेने आवे न! **लोक में इन्हीं के निमित्त अदत्त का आदान होता है। मुनियों को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ अदत्त का दोष न लगे और आहार भी इस प्रकार लें जिसमें अदत्त का दोष न लगे तथा दोनों की प्रवृत्ति में साधर्मी आदिक से विसंवाद न उत्पन्न हो।** आहाहा! **ये पाँच भावना कही हैं, इनके होने**

से अचौर्य महाव्रत दृढ़ रहता है। जाननेयोग्य बात है। यह तो अभी कहाँ मुनिपना ऐसा है नहीं और मुनिपना ऐसा पल सकता नहीं। यह तो जानने के लिये है कि मार्ग ऐसा है, ऐसा। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ३५

आगे ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावना कहते हैं:—

महिलालोयणपुव्वइसरणसंसत्तवसहिविकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ, भावण पंचावि तुरियम्मि॥३५॥

अर्थः—स्त्रियों का अवलोकन अर्थात् रागभावसहित देखना,.... स्त्री का अवलोकन रागभाव से नहीं करना, ऐसा। ऐसे अवलोकन हो जाये, वह नहीं। प्रेमभाव से अवलोकन नहीं करना, यह महाव्रत की भावना है। आहाहा! जिसे ब्रह्म का रंग लगा है आत्मा का, अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे रस लगा है, वह ऐसे प्रेम से कैसे देखे पर को? आहाहा! **पूर्व काल में भोगे हुए भोगों का स्मरण करना,....** पूर्व की स्त्री आदि के साथ विषय लिये हों, उन्हें याद नहीं करना। वह तो जहर है।

स्त्रियों से संसक्त वस्तिका में रहना,.... जहाँ स्त्री बसती हो, वहाँ उस मकान में मुनि नहीं रहते। **स्त्रियों की कथा करना,....** रागभाव से कथा न करे। **पौष्टिक रसों का सेवन करना,....** न करे, ऐसा। पौष्टिक रस ऐसे दूधपाक, मालमलिंदा उड़ाना, उसमें से विकृति हो, जिसमें विषय की वासना वक्र हो, ऐसी चीज़—भोजन न ले। यह आती है न सब भस्म। भस्म नहीं आती? ताँबा की भस्म, सोना की भस्म, वह सब विषय को अन्ध की भाँति वक्रित करती है। ऐसी चीज़ें मुनि को नहीं हो सकती। **इसलिए इनसे विरक्त रहना, ये पाँच ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावना हैं।** लो!

भावार्थः—कामविकार के निमित्तों से ब्रह्मचर्यव्रत भंग होता है, इसलिए स्त्रियों को रागभाव से देखना इत्यादि निमित्त कहे, इनसे विरक्त रहना, प्रसंग नहीं करना इससे ब्रह्मचर्य महाव्रत दृढ़ होता है। लो!

★ ★ ★

गाथा - ३६

आगे पाँच अपरिग्रह महाव्रत की भावना कहते हैं:—

अपरिग्गह समपुण्णेसु, सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति॥३६॥

धर्मात्मा को.... नग्नमुनि दिगम्बर होते हैं। सच्चे सन्त को तो दिगम्बरपना होता है। दूसरे को मुनिपना होता नहीं। ऐसे जंगल में बसते हों। ओहोहो! भगवान का मार्ग तो यह था। यह सब नोंच डाला फिर। वीतरागमार्ग से सब विपरीत कर डाला। ऐसे मुनि जंगल में बसे, वहाँ **शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध ये पाँच इन्द्रियों के विषय समनोज्ञ अर्थात् मन को अच्छे लगनेवाले और अमनोज्ञ अर्थात् मन को बुरे लगनेवाले हों तो इन दोनों में ही राग-द्वेष आदि न करना....** ओहोहो! अणीन्द्रिय आत्मा जिसने अणीन्द्रिय आनन्द का रस चखा है। धर्मी ने तो अणीन्द्रिय आत्मा है, उसका रस चखा है। यह धर्म। समझ में आया?

भगवान आत्मा अणीन्द्रिय स्वरूप है अन्दर और अणीन्द्रिय अनन्त आनन्दस्वरूप है वह। आहाहा! जिसे अणीन्द्रिय आनन्द के रस का भोगी हुआ, उसे ऐसे भाव में राग-द्वेष कैसे हों? ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के, कहा न? परन्तु अणीन्द्रिय का जहाँ आनन्द रस आया है। आहाहा! जहाँ अपने आनन्द में—अतीन्द्रिय आनन्द में मुनि तो लवलीन होते हैं। उन्हें ऐसे अनुकूलता, प्रतिकूलता में राग-द्वेष होता नहीं। आहाहा! वीतरागी बिम्ब है। वीतरागी आनन्द में लहर करते हैं। सुखी हो तो वह जगत में सन्त है। 'सुखिया जगत में संत, दुरिजन दुखिया।' यह सुखिया का अर्थ कहीं यहाँ बाहर की सुविधा की बात नहीं। आहाहा! अन्तर आनन्द के भान में प्रभु विराजता है, वहाँ जिसका वास हो गया है। आहाहा!

जिसका निवास। 'नि' उपसर्ग है न? 'नि' क्या है? नहीं, नहीं; उसमें यह बात नहीं। मैं तो ऊपर से कहता हूँ। निवास-निवास। नि क्या है? 'नि' उपसर्ग है। नि-वास। जैसे उप उपसर्ग है वैसे। निवास। आता है निवास आता है बहुत जगह। नि-विशेष वास है। अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी जमवट वास हो गया है, ऐसा कहते हैं। उसे ऐसी

वासना कैसे हो उसे? आहाहा! ऐसा मुनिपना, जिसे गणधर नमस्कार करें। ऐसे मुनि ने पाँच मनोज्ञ में राग-द्वेष छोड़ा।

इनमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष नहीं करे, तब अपरिग्रहव्रत.... वरना राग में पकड़ जाये, तब तो परिग्रह हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए पाँच भावना अपरिग्रह महाव्रत की कही गई है।** लो! यह पच्चीस क्रिया कही।

★ ★ ★

गाथा - ३७

आगे पाँच समितियों को कहते हैं:— मुनि सम्यग्दर्शनसहित आनन्द के अनुभव की भूमिका में विराजमान होते हैं। उस मुनि को ऐसी पाँच एषणा आदि समिति होती है। आहाहा!

इरिया भासा एसण, जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्तं खंति जिणा पंच समिदीओ ॥३७॥

अर्थः—ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना ये पाँच समितियाँ संयम की शुद्धता के लिये कारण हैं, इस प्रकार जिनदेव कहते हैं। '**खंति**' है न? '**खंति**' अर्थात् कहते हैं।

भावार्थः—मुनि पंच महाव्रतरूप संयम का साधन करते हैं, उस संयम की शुद्धता के लिये पाँच समितिरूप प्रवर्तते हैं, इसी से इसका नाम सार्थक है—'सं'.... समिति, ऐसा। **सम्यक् प्रकार इति अर्थात् प्रवृत्ति जिसमें हो, सो समिति है। चलते समय जूड़ा प्रमाण (चार हाथ) पृथ्वी देखता हुआ चलता है,....** आहाहा! चलना पड़े तो नजर करके (चले)। कहीं जीवांत न हो। नीची नजर से चले। ऊँची नजर अन्तर में है और बाहर में नीची नजर से चले, ऐसा कहा। आहाहा! ऐसा मुनिपना—चारित्र होगा, तब उसे मुक्ति होगी। अकेले सम्यग्दर्शन से भी मुक्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा चारित्र होगा, तब उसकी मुक्ति होगी। तो उसे चारित्र ऐसा होता है, ऐसा इसे पहले जानना तो चाहिए न? आहाहा!

पृथ्वी देखता हुआ चलता है, बोले तब हितमितरूप वचन बोलता है,.... हितकारी और मित अर्थात् मर्यादित वचन। ऐसा बोले। **आहार लेवे तो छियालिस दोष,....** रहित। छियालीस दोष रहित। आहाहा! मुनि को वस्त्र तो होते नहीं, पात्र होते नहीं। उन्हें आहार होता है छियालीस दोषरहित। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग अनादि का चला आता है। समझ में आया? **बत्तीस अन्तराय टालकर,....** ले। आहाहा! भिक्षार्थ जाते हुए कोई लड़का-बालक रोया, आहार छोड़ दे। अरे! मैं निर्विघ्न अप्रतिहत भाव से निकला हुआ मोक्ष के पंथ में, उसमें यह रुदन कहाँ? आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द में रमता हुआ, ऐसे अन्तराय को टालता। ऊपर से पक्षी का कोई, बाहर जाते हुए पक्षी का चरक (वीट) पड़ गया शरीर में, तो आहार छोड़ दे। अमृत के झरने झरें, उसमें यह क्या? आहाहा! ऐसे बत्तीस अन्तराय हैं। जिस घर में जाये वहाँ कोई मर गया हो तो वापस मुड़ जायें, रोता हो, बाहर तिष्ठ तिष्ठ ऐसा कहा, जहाँ अन्दर घुसते हैं वहाँ लड़का मर गया। तुरन्त का मर गया हो। आहाहा! मैं ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के रस्ते चढ़ा, उसमें यह क्या? यहाँ तो हर्ष और सन्तोष हो। ऐसे अन्तराय टाले। आहाहा!

चौदह मलदोष रहित.... चौदह मल हैं। **शुद्ध आहार लेता है,....** आहाहा! निर्दोष-निर्दोष हाथ में आहार ले। हाथ में आहार हो, उसे करपात्र है। यह मुनि का मार्ग वीतराग का यह है। इसके अतिरिक्त सब कल्पित मार्ग निकले, वह वीतराग का मार्ग नहीं। कहो, समझ में आया? **धर्मोपकरणों को उठाकर ग्रहण करे, सो यत्नपूर्वक लेते हैं;....** धर्मोपकरण का अर्थ मोरपिच्छी। मोरपिच्छी और क्या कहलाये? पुस्तक। है कमण्डल। ऐसा उसे **उठाकर ग्रहण करे सो यत्नपूर्वक लेते हैं;....** इसके अर्थ में कहा। उन श्रीमद् के पत्र में है। आज्ञा प्रमाण वस्त्र-पात्र ले। परन्तु वस्त्र था कब मुनि को? उसमें पहले इनकार किया, उसमें यहाँ वापस अर्थ में यह डाला।

आये थे न... पत्र... पत्र है न वह? मार्ग ऐसा नहीं होता। भगवान की आज्ञा वस्त्र की है ही नहीं। वह तो अज्ञानी ने शास्त्र कल्पित किये, उसमें आज्ञा दी है। भगवान के मार्ग में नहीं। कहो, सेठ! ऐसा मार्ग है। आहाहा! धर्मोपकरण शब्द आया न? उसमें डाला उसमें। **ऐसे ही कुछ क्षेपण करें....** कफ आदि। **यत्नपूर्वक क्षेपण करे।** पेशाब....

निष्प्रमाद वर्ते तब संयम का शुद्ध पालन होता है, इसलिए पंच समितिरूप प्रवृत्ति कही है। इस प्रकार संयमचरण चारित्र की प्रवृत्ति का वर्णन किया। लो! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३८

अब आचार्य निश्चयचारित्र को मन में धारण कर ज्ञान का स्वरूप कहते हैं:—देखो! यह व्यवहार की बात की। अब निश्चय के साथ .... यह ....

भव्वजणबोहणत्थं, जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं, अप्पाणं तं वियाणेहि॥३८॥

आहाहा! ऐसा आया। **जिनमार्ग में...** वीतराग परमेश्वर ने—त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने **भव्य जीवों के सम्बोधने के लिये जैसा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है....** आहाहा! कहते हैं कि, तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका अनुभव कर। आहाहा! वह चारित्र है। आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्य ब्रह्म है, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह आत्मा। आहाहा! वह तो ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसे **जैसा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है, उस ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसको हे भव्य जीव!** आहाहा! वह विकल्प आदि की बात की व्यवहार की। परन्तु वस्तु यह है। चिद्ब्रह्म भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप उसे जान, उसे अनुभव कर। इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

यह देह तो मिट्टी यह जड़ है। अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प भाव होते हैं, वह तो आस्रव विकार है। उससे रहित ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा प्रज्ञाब्रह्म, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसे जान और अनुभव, इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! यह योगफल यह लाये सब बात करके। समझ में आया?

'**णाणं णाणसरूवं, अप्पाणं तं वियाणेहि**' विशेष जान अर्थात् अनुभव, ऐसा। जानने का अर्थ यह कि जानकर.... उसे जानना कहा जाता है। ज्ञानस्वरूपी भगवान प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप में लीन होना, उसे आत्मा को जाना और आत्मा को अनुभव किया, ऐसा

कहा जाता है। उसे चारित्र होता है। अकेले पंच महाव्रत और उसकी क्रिया और भावना, वह कहीं चारित्र नहीं है। वह तो बीच में ऐसा भाव मुनिपना होता है। आहाहा! '**णाणं णाणसरूवं**' ऐसा। ज्ञानस्वरूप कहा, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ऐसा कहते हैं। **ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप कहा है....** तो ज्ञानस्वरूप तो आत्मा है। यह राग, विकल्पस्वरूप आत्मा नहीं। आहाहा! आवे सही ऐसा विकल्प। परन्तु वह कहीं आत्मा नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प है, वह तो आस्रव है। आहाहा!

'**णाणं णाणसरूवं**' ज्ञान, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा। यह ज्ञान, वह ज्ञानस्वरूप, वह आत्मा, ऐसा। अब ज्ञान ऐसा जाने, ज्ञान, वह ज्ञानस्वरूप, वह आत्मा। दो बोल लिये हैं न? '**णाणं णाणसरूवं**' ज्ञान का स्वरूप वह आत्मा। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। महाव्रत आदि के परिणाम हैं, वे भी एक विकल्प और राग आस्रव है। होता है। छठवाँ गुणस्थान। परन्तु वस्तु तो यह है। यह ज्ञान जो है, वह ज्ञानस्वरूप वह प्रभु आत्मा है, ऐसा। रागादि है, वे कहीं आत्मस्वरूप नहीं। आहाहा! उसे '**तं वियोणहि**' हे भव्य! आहाहा! भगवान का आदेश है। उपदेश तो है परन्तु यह तो आदेश है। आहाहा!

हे भव्य! तुझे धर्म करना हो तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसे अनुभव, वह धर्म है। आहाहा! केवलीपण्णत्तो धम्मो। यह केवलीपण्णत्तो धर्म है। आहाहा! सत्य ऐसा ज्ञानस्वरूप, वह स्वयं आत्मा है। ऐसे आत्मा को ज्ञानस्वरूप से अनुभव करना, उसे अनुसरकर, वीतरागस्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसे अनुसरकर वीतरागदशा प्रगट हो, वह आत्मा का विशेष जानना अनुभव है। आहाहा! उसका नाम चारित्र है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

'**भव्वजणबोहणत्थं**' भव्य जीव के बोधन के लिये-सम्बोधन के लिये।....लायक प्राणी योग्य जीव है, उसके सम्बोधन के लिये भगवान की वाणी.... ऐसा कहे, प्रभु! तू ज्ञानस्वरूप है, उसका अनुभव कर न भाई! आहाहा! तेरा स्वभाव, स्व-भाव। जानन... जानन... जानन... जानन... वह तेरा स्वभाव और वह तेरा स्वरूप है। आहाहा! भव्य जीव को भगवान का सम्बोधन है। प्रभु! तेरा स्वरूप तो ज्ञान-प्रज्ञास्वरूप। उस ज्ञान के तेज, ज्ञान के तेज, ज्ञान का प्रकाश, वह तेरा स्वरूप है। उसे अन्तर में अनुभव, वही मोक्ष का मार्ग और चारित्र है। ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ:—ज्ञान को और ज्ञान के स्वरूप को अन्यमतवाले अनेक प्रकार से कहते हैं, वैसा ज्ञान और वैसा स्वरूप ज्ञान का नहीं है। अन्यमति बहुत प्रकार से कहे। अन्दर तेज दिखता है, फलाना होता है और ढींकणा होता है। **सर्वज्ञ वीतरागदेव भाषित ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप है, वही निर्बाध सत्यार्थ है....** केवलज्ञानी परमेश्वर वीतराग तीर्थंकरदेव जिनके केवलज्ञान में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए, ऐसे परमात्मा की वाणी में जो आत्मा आया, वह तो ज्ञान है और वह ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! वीतरागदेव ने कहा हुआ ऐसा ज्ञान। ऐसे ज्ञान का स्वरूप पूरा वह आत्मा।

वही निर्बाध सत्यार्थ है.... विरोधरहित, त्रिगुप्तिरहित, बाधा बिना वह निर्बाध चैतन्यब्रह्म प्रभु वह आत्मा है। ज्ञान वह आत्मा। और ज्ञान पृथक् तथा आत्मा पृथक्, ऐसा है नहीं। ज्ञानस्वरूप है, वह ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आत्मज्ञान कहा, इसलिए कहीं ज्ञान और आत्मा भिन्न है, ऐसा नहीं है। **ज्ञान है, वही आत्मा है तथा आत्मा का स्वरूप है,....** ऐसा कहा। अन्तर में जो ज्ञान... यह (शरीर) तो हड्डियाँ, जड़, मिट्टी है। और पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव होते हैं वह तो पुण्यभाव, रागभाव है। वह कोई आत्मा नहीं। आहाहा! आत्मा तो अन्दर राग के भाव से भिन्न चैतन्यमूर्ति, ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा है। उस ज्ञानस्वरूपी आत्मा को अनुभवते हैं। उस ज्ञानस्वरूपी का आश्रय करके सम्यग्दर्शन, उस ज्ञानस्वरूपी आत्मा का आश्रय करके सम्यग्ज्ञान, उसके स्वरूप में स्थिरता, वह चारित्र। आहाहा! पाँच महाव्रत की बातें करे, पच्चीस भावना।

उसको जानकर उसमें स्थिरता भाव करे,.... ऐसा। ...है न? यह भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञान ही जिसका स्वभाव, ज्ञान ही जिसका स्वरूप। ज्ञान अर्थात् वह जानना, वह, हों! यह पुस्तक-बुस्तक वह कोई ज्ञान नहीं। ऐसे ज्ञानस्वरूप को जानकर उसमें स्थिरता कर। बात तो चारित्र की है न! उस ज्ञान में क्रीड़ा, ज्ञान में रमना। शुद्ध ज्ञानस्वभाव में लीन होना। है न? **उसको जानकर उसमें स्थिरता भाव करे, परद्रव्यों से राग-द्वेष नहीं करे....** स्वद्रव्य में लीनता और परद्रव्य से राग-द्वेष नहीं करे, **वही निश्चयचारित्र है,....** आहाहा!

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। उसमें लीनता, वह वर्तमानदशा है, वह चारित्र है। और पर से राग-द्वेष का अभाव, स्व के स्वरूप में स्थिरता का नाम चारित्र है। आहाहा! कहो, यह चारित्र की व्याख्या है। लोग वस्त्र बदलकर और महाव्रत के परिणाम लिये और चारित्र (मानते हैं), वह चारित्र नहीं है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम भी स्वयं राग का भाग है। ज्ञान में लीनता हुई वह चारित्र है। आहाहा! अब यह चारित्र की तो खबर भी नहीं होती।

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष। (संवत्) १९९० में बात हुई थी, नहीं? रामभाई। गुलाबचन्द। गुलाबचन्दजी। लींबडी संघाडा के थे। ९० के वर्ष की बात है। तब ५५ वर्ष की दीक्षा, हों! बात होने पर उन्होंने कहा। मैंने कहा, देखो! भाई! तब तो सम्प्रदाय में थे न। चोटीला। यह रतनचन्दजी शतावधानी थे लींबडी के, उनके गुरु थे। इकट्ठे हो गये उपाश्रय में। बातचीत निकली कि यह क्रिया... कहा, ज्ञान और क्रिया अर्थात् क्या? तो कहे जानने का ज्ञान और यह क्रिया। यह नहीं (हमने) कहा, क्रिया। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा ज्ञान और ज्ञान में स्थिरता, वह क्रिया। बात सच्ची लगती है। ऐसा अर्थ कहाँ करते होंगे? न करे तो क्या हो? बेचारे सुनते थे। ... आत्मा बापू! क्रिया यह नहीं। ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष। ज्ञान अर्थात् समझण का स्वरूप, समझण का स्वरूप, उसका ज्ञान, और उसमें स्थिरता। यह ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष। बात तो सच्ची लगती है। दो बातें हुई थीं। एक मूर्ति की। ९० के वर्ष। मूर्ति-मूर्ति। मूर्ति शास्त्र में है सही। स्थानकवासी में रहे, आचार्य नाम धरावे, अब करना क्या? हमारे एकान्त में बात हुई थी। शास्त्र में मूर्ति है। पूरी जिन्दगी हमको तो भय में गयी। शिष्य समझेंगे कि यह मूर्ति... कि हमको गुरु नहीं माने। हमको भय... गुरु नहीं मानेंगे, ऐसा नहीं कहा। भय में गयी, ऐसा कहा। इतनी बात। बात है भाई! शास्त्र में मूर्ति है, मूर्ति की पूजा है। वह भाव है।

मुमुक्षु : भय....

पूज्य गुरुदेवश्री : भय। भय लगा। भय ऐसा कि यह शास्त्र में मूर्ति है और शिष्य पढ़ेंगे। मूर्ति है और हम तो स्थानकवासी कहलाते हैं। भय। व्यक्ति ऐसे नरम थे बेचारे। और जिन्दगी में इकट्ठे नहीं होते थे। इकट्ठे होकर बहुत प्रसन्न हुए, बहुत प्रसन्न। यह कुछ... तुम तुम्हारा... नीचे। छाप ऐसी थी न। ... आम के टुकड़े दिये। क्या कहलाता

है यह ? पापड़। ... फिर गये वे। सुना। प्रसन्न हुए। छाप थी न ऐसी हमारी ऐसी। कोई साधन साधु इकट्ठे रहते नहीं। उतरते नहीं। वहाँ तो उपाश्रय एक ही, इसलिए .... बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु यह सम्प्रदाय लोगों को मार डालता है। उस सम्प्रदाय में से निकलना...

दो बातें स्वीकार कीं। बराबर स्वीकार की। यह... सुना हुआ नहीं था। ... तुम थे नहीं ? जीवराजजी थे। सिद्धान्त में मूर्ति और मूर्तिपूजा बत्तीस सूत्र में है। परन्तु अर्थ उल्टे करके, अब यह सब बदल डाला। इसलिए कहे, अब हमारे करना क्या ? और ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। उस ज्ञानस्वरूप में स्थिरता होना, वह क्रिया है। यह पंच महाव्रत के परिणाम और हिलना, चलना फलाना, यह क्रिया नहीं। स्वीकार किया, हों! स्वीकार किया। मार्ग तो यह है, बापू! वीतराग का कहना तो यह है। उसमें खोटा कुछ भी बात फेरफार होगी तो पूरा संसार गहरा जायेगा। देखो न, यहाँ क्या कहते हैं ?

'**भव्वजणबोहणत्थं**' भव्य अर्थात् योग्य जीव को सम्बोधन के लिये। भाई! तू ज्ञानस्वरूप है न, यह ज्ञान, वह आत्मस्वरूप है। ऐसा और दूसरा कुछ नहीं वापस। ज्ञान से पकड़ने में आता है। यह जाननस्वभाव है, वह पकड़ने में आता है। परन्तु यह जाननस्वभाव, वही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा का अनुभव... आहाहा! उसे अनुसरकर सम्यग्दर्शन, अनुसरकर सम्यग्ज्ञान, अनुसरकर स्थिरता, इसका नाम भगवान ने चारित्र कहा है। आहाहा! अब इसे यह चारित्र की खबर नहीं होती। ऐसे बोले उस पच्चीस मिथ्यात्व में। साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व, कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व। परन्तु किसे कहना साधु, इसकी खबर नहीं होती। कहो, बाबूभाई ? आता था या नहीं प्रतिक्रमण में ? आहाहा!

कहते हैं, **परद्रव्यों से राग-द्वेष नहीं करे, वही निश्चयचारित्र है,....** देखो भाषा! यह सच्चा चारित्र तो यह है। चरना, रमना, इस ज्ञानस्वरूपी प्रभु को पकड़कर इसमें रमना, इसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प और देह की क्रिया, वह पर है, जड़ है। पंच महाव्रत के परिणाम, वे वास्तव में जड़ हैं। उनमें ज्ञान का अंश कहाँ है ? यह ज्ञान की अपेक्षा से बात है न! चैतन्यमूर्ति ज्ञानस्वभाव उसमें नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे तो राग हैं। उनमे चैतन्य नहीं। उसमें नहीं, उसमें स्थिर होना, वह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के आड़तिया हैं। भगवान ने यह मार्ग कहा है। शान्तिभाई! आहाहा! वस्त्र बदल डाले, नग्न हो गये और पंच महाव्रत के परिणाम, वे भी व्यवस्थित न हो और व्यवस्थित हो कदाचित्, लो न, परन्तु वह कहीं चारित्र नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। पच्चीस भावना वह कहीं चारित्र नहीं। उस भूमिका में ऐसा एक भाव होता है। आहाहा! हे भव्य जीव! है न? '**भव्वजणबोहणत्थं**' है न? पहला ही शब्द है। '**भव्वजणबोहणत्थं**' आहाहा! योग्य जीव को हम सम्बोधन करते हैं, कहते हैं। प्रभु! तेरा स्वरूप तो आनन्द और ज्ञान है। आनन्द नहीं लिया, इसका अर्थ कि प्रगट ज्ञान है, आनन्द प्रगट नहीं है। वह तो जब ज्ञानस्वरूप है, उसके अन्दर में जाये, तब आनन्द प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा! इससे विरुद्ध कहे (वह) सब सूत्र से विरुद्ध है। कहा न इसमें कि सूत्र से विरुद्ध है।

उसमें नहीं आया? सूत्र विरुद्ध का आया था। ३३ में। सूत्र विरुद्ध नहीं बोलना। ३३ गाथा। मोहरहित है न इसलिए। मिथ्यात्वरहित यह कहा। सूत्र विरुद्ध। आहाहा! भगवान ने उसे निश्चयचारित्र कहा, कोई राग को चारित्र माने तो सूत्र विरुद्ध है, ऐसा कहते हैं। भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त, त्रिलोकनाथ की वाणी में जो आया, उससे कोई चारित्र राग को, क्रिया को कहे, तो सिद्धान्त से विरुद्ध है। वह प्ररूपणा झूठी है। आहाहा!

इसलिए पूर्वोक्त महाव्रतादि की प्रवृत्ति करके.... यह तो ऐसा विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं। **इस ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन होना,....** लो, ठीक! महाव्रतादि के परिणाम हों। पश्चात् भावना की न सब? परन्तु वह प्रवृत्ति हो, परन्तु उस **ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन होना,....** वस्तु तो यह है। समझ में आया? उस ज्ञानस्वरूप आत्मा में लीन... क्या कहते हैं ज्ञान अर्थात्? ज्ञान, वह यह जाने... जाने... जाने... जाने... वह ज्ञान। यह जानता है वह आत्मा। जानना वह ज्ञान और जानता है वह आत्मा। ज्ञान अर्थात् यह कोई पुस्तक-पृष्ठ का ज्ञान, उसे यहाँ ज्ञान नहीं कहते। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा में **लीन होना...** देखो, यह भाषा है न? '**वियाणेहि**' ऐसा कहा है न? जानकर लीन होना। इसका नाम '**वियाणेहि**' है।

इस प्रकार उपदेश है। भगवान का यह उपदेश है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के उपदेश में यह वाणी है। बहुत सरस बात है। यह श्लोक आया पूरा सार। ऐसी बात है।

शरीर की क्रिया तो जड़। दया, दान, व्रत के परिणाम, वह राग-पुण्य। उससे भिन्न ज्ञानस्वरूप में स्थिर होना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। उस ज्ञानस्वभावी वस्तु की अन्तर प्रतीति, उसका ज्ञान और रमणता, वह मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं। भगवान की आज्ञा में तो यह आया है। अब ऐसा उसका ठिकाना नहीं होता, उसे भगवन्त कहलाये, आचार्य भगवन्त। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी।

'**णाणं णाणसरूवं**' ज्ञान में तत्पर होकर वह ज्ञान और उसका स्वरूप वह आत्मा। उसमें अन्तर में लीन, ऐसे स्वरूप में अन्तर वीतरागपने लीनता, उसका नाम चारित्र है। इस प्रकार का उपदेश है। लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु पर्याय में पूरा नहीं आया न, इसलिए ऐसा कहा कि पर्याय जो पकड़ में आयी, वह पर्याय आत्मा की है, ऐसा वह आत्मस्वरूप है, ऐसा कहा। वहाँ गया। ऐसा कि अकेला ज्ञान, वह नहीं, परन्तु ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। ज्ञानस्वरूप तो गुण हुआ और गुणस्वरूप ही आत्मा है, ऐसा। वहाँ लिया है अभेदपना। गुण-गुणी का अभेदपना। आहाहा! कहो, यह वीतराग का मार्ग यह और चारित्र यह कहलाता है, बापू! इस चारित्रवन्त को देखना, वह भी महापुण्य हो और योग हो तो (मिलता है)। आहाहा! ऐसी बात है।

यह सब वस्त्र-पात्र रखकर साधु, साधु है—ऐसा मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। साधु, साधु तो नहीं, परन्तु समकिती भी नहीं। और वे गृहीत मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बहुत कठिन बात है। समझ में आया? और अकेला नग्नपना, पंच महाव्रत के परिणामवाले भी माने, वह भी चारित्र नहीं। चारित्र नहीं, उसे चारित्र माने, (वह) दृष्टि विपरीत है।

★ ★ ★

गाथा - ३९

अब ज्ञान में जानने की बात करते हैं। **आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार ज्ञान से ऐसे जानता है.... ज्ञान से ऐसे जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी है:—**

जीवाजीवविभत्ती, जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ, जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति॥३९॥

बहुत संक्षिप्त किया है।

अर्थः—जो पुरुष जीव और अजीव का भेद जानता है.... इसका नाम ज्ञान। शरीर, वाणी, कर्म सब जड़ अजीव हैं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप जीव है। दो बातें ली हैं। अब फिर आस्रव लेंगे। आहाहा! **जो पुरुष जीव और अजीव का भेद जानता है....** जीव-अजीव को एक जाने, वह तो अनादि से है, कहते हैं। परन्तु उनकी भिन्नता है, ऐसा जाने। शरीर, कर्म, वाणी से भी आत्मा भिन्न है। शरीर, कर्म आत्मा में नहीं तथा शरीर और कर्म में आत्मा नहीं। **वह सम्यग्ज्ञानी होता है और रागादि दोषों से रहित होता है,....** अब आस्रव की बात की। कैसा है भगवान? कि राग के दोषरहित है। जीव, अजीव का भेदज्ञान करने से अजीवरहित है और उन रागादि दोषरहित है। पुण्य और पाप के भाव से रहित है। अर्थात् अजीव और आस्रव से रहित है, ऐसा '**जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति**' जिनशासन में मोक्ष का मार्ग, अजीव से भिन्न, आस्रव से भिन्न, ऐसे आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता को जैन शासन में मोक्ष का मार्ग कहा है। कहो, समझ में आया? आचार्य को भी आधार देना पड़ता है, देखो न! आहाहा!

'**जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति**' जैनशासन में तो यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? यह जीव, वह शरीर, वाणी, अजीव से भिन्न, कर्म से भिन्न है। कर्म अजीव है। अब बाकी रह गये राग-द्वेष। वे राग-द्वेष के परिणाम शुभ-अशुभभाव, उनसे भिन्न है। वे सब दोष हैं। देखो! महाव्रतादि लिये। परन्तु वे महाव्रत के परिणाम दोषरूप है। आहाहा! होते हैं, उस भूमिका में इतनी बात बतायी। परन्तु वस्तु जो है मोक्ष का मार्ग, वह तो पुण्य और पाप के विकल्परहित अन्तर में स्वरूप में एकाग्रता, ऐसे जैनशासन को मोक्षमार्ग कहा है। इसकी विशेष व्याख्या करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक-०६-१२-१९७३
गाथा- ३९ से ४२, प्रवचन-६०

चारित्रपाहुड़, अष्टपाहुड़ में। ३९ गाथा का भावार्थ है। **जो जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप भेदरूप जानकर स्व-पर का भेद जानता है, वह सम्यग्ज्ञानी होता है....** क्या कहते हैं? जीव और अजीव का विभाग—भेद अन्दर जाने, वह सम्यग्ज्ञानी होता है। ३९ गाथा। जीव ज्ञानस्वरूप है और अजीव, वे सब ज्ञानस्वरूप रहित चीज़ है। ऐसा जो दो के बीच विभाग करे, भेदज्ञान करे, उसकी भिन्नता के कारण अन्दर जाने, वह सम्यग्ज्ञानी होता है। स्व-पर का भेद हो गया न? स्वस्वरूप तो भगवान आनन्द ज्ञानस्वरूप है और दूसरा सब अजीव शरीर, वाणी, मन, कर्म, अरे! पुण्य और पाप के भाव भी वास्तव में तो अजीव है। उनमें जीवपना नहीं।

ऐसे जीव स्वभाव और अजीव स्वभाव की भिन्नता—विभाग—भेद करके भिन्न भेदज्ञान करे, उसे सच्चा ज्ञान होता है। शास्त्र को जानो कि यह बात इसमें नहीं ली। दोनों को भिन्न जानना, वह ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप है और रागादि सब अजीव (अर्थात्) चैतन्यस्वरूप से खाली है, इन दोनों के बीच का विभाग करके और सम्यग्ज्ञान स्वसन्मुख होकर करे, उसे सम्यग्ज्ञानी कहा जाता है कि जो मोक्ष के मार्ग में वह ज्ञान और श्रद्धा पहले होते हैं। फिर चारित्र की व्याख्या है न? चारित्रपाहुड़ है सही न?

परद्रव्यों से राग-द्वेष छोड़ने से.... पश्चात् जो राग-द्वेष से भेदज्ञान किया था कि आत्मा पुण्य और पाप से भिन्न है। ऐसा ज्ञान और श्रद्धा की थी। पश्चात् वे पुण्य-पाप के भाव को उत्पन्न हुए नहीं, ऐसे स्वरूप में स्थिरता करे, उसे चारित्र होता है। कहो, समझ में आया? **परद्रव्यों से राग-द्वेष छोड़ने से ज्ञान में स्थिरता होने पर....** ज्ञान अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसा जो श्रद्धा और ज्ञान हुआ था, उसमें स्थिरता करने से राग-द्वेष छूट जाते हैं, उसे यहाँ चारित्र कहा जाता है। कहो, चारित्रपाहुड़ है न इसलिए चारित्र। परन्तु सम्यग्ज्ञानसहित, राग-द्वेषरहित होकर स्थिरता करे, उसे चारित्र होता है। तब

कहे, पंच महाव्रत के परिणाम और... यह व्यवहार पहले वर्णन किया था कि ऐसा वहाँ होता है। परन्तु उसे निश्चयचारित्र तो इससे भिन्न होकर स्थिर हो, तब कहलाता है।

वस्तु जो ज्ञानस्वरूप सुखधाम है, उसमें स्थिर हो, लीन हो, स्वरूप में रमे, उसे यहाँ चारित्र कहा जाता है। **वही जिनमत में मोक्षमार्ग का स्वरूप कहा है।** लो! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में जीव-अजीव का भेदज्ञान करके राग से रहित होकर स्थिर हो, उसे यहाँ मोक्षमार्ग कहा है। समझ में आया? **जिनमत में मोक्षमार्ग का स्वरूप....** तो ऐसा कहा है। आहाहा! राग और शरीर से भिन्न भगवान आत्मा का ज्ञान करके, पश्चात् राग से रहित होकर स्थिर हो, ऐसा वीतरागमार्ग में मोक्ष का मार्ग कहा है। समझ में आया? **अन्यमतवालों ने अनेक प्रकार से कल्पना करके कहा है....** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यमतों ने जहाँ अनेक प्रकार से कल्पना की है, **वह मोक्षमार्ग नहीं है।**

★ ★ ★

गाथा - ४०

आगे इस प्रकार मोक्षमार्ग को जानकर श्रद्धासहित इसमें प्रवृत्ति करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है, इस प्रकार कहते हैंः—तीनों ... लिये।

दंसणणाणचरित्तर, तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई, अइरेण लहंति णिव्वाणं॥४०॥

अर्थः—हे भव्य (जीव)! तू दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों को परमश्रद्धा से जान,.... समकित को भी परम श्रद्धा से जान, ऐसा कहते हैं। आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्यघन की श्रद्धा, उसे भी परम श्रद्धा से जान, ऐसा। उत्साह से जान। **परम श्रद्धा से जान,....** समकित को परम श्रद्धा से जान, सम्यग्ज्ञान को परम श्रद्धा से जान, चारित्र को **परम श्रद्धा से जान,....** ऐसा कहते हैं। यह स्वरूप का यह चैतन्य का अवलम्बन लेकर जो प्रगट दशा सम्यग्दर्शन, उसे परम प्रेम, परम श्रद्धा, ऐसा। उससे उसका ज्ञान कर। और सम्यग्ज्ञान चैतन्य के स्वसंवेदनरूप ज्ञान, उसे भी परम श्रद्धा से जान, परम प्रेम से जान,

परम रुचि से जान—ऐसा कहते हैं।

जगत के पदार्थों में उत्साह होता है न जगत को जानने का? आहाहा! यहाँ उत्साह कर, कहते हैं, प्रेम कर यहाँ। वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वस्तु तू ऐसी चीज़ है। उसकी श्रद्धा को परम श्रद्धा से जान, ऐसा कहते हैं वापस। ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी, उसका ज्ञान, परम श्रद्धा से उसका ज्ञान कर। विश्वास... विश्वास... ऐसा कहते हैं। परम श्रद्धा, परम विश्वास, परम रुचि, परम प्रीति, परम प्रेम। आहाहा!

जिनको जानकर योगी.... भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध की श्रद्धा, उसका ज्ञान परम श्रद्धा से कर, उसका ज्ञान, उसे परम श्रद्धा से कर और स्वरूप में रमणता, परम प्रेम से, श्रद्धा से उसका ज्ञान कर। अर्थात् ये तीनों आ गये। ऐसे तीन से मुनि—योगी **जानकर योगी थोड़े ही काल में निर्वाण को प्राप्त करता है। 'अचिरेण'** लो! उसकी मुक्ति अल्पकाल में होगी। कहो, समझ में आया? मोक्ष का मार्ग और उसका फल मोक्ष। दोनों बातें साथ की हैं। आहाहा! बीच में यह व्रत, तप, और यह सब मोक्ष का मार्ग नहीं कहा। होता है, ऐसा व्यवहार पहले बतलाया। जानने में यह बतलाया, परन्तु आदरने के लिये निश्चित तो मोक्ष का मार्ग तो यह एक है। आहाहा! यह तो श्रद्धापूर्वक....

भावार्थः—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रयात्मक मोक्षमार्ग है.... इन तीन स्वरूप मोक्ष का मार्ग है। '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र है। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को **श्रद्धापूर्वक जानने का उपदेश है,....** विश्वास... विश्वास ला। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप, पुण्य और पाप के विकल्प-रागरहित ऐसा आत्मा चिदानन्द प्रभु की श्रद्धा परम प्रेम से श्रद्धा कर। कहो, यह पैसा-बैसा मिले, वहाँ कितना इसे उत्साह आ जाता है या नहीं? दो-पाँच लाख रुपये हों। ऐई! शान्तिभाई! लड़के कमाये पचास हजार, लाख, वहाँ कितना प्रेम हो जाता है? धूल में कुछ नहीं होता। हैरान है। यहाँ तो कहते हैं कि हैरानगति का नाश हो और शान्ति की उत्पत्ति हो। आहाहा!

मुमुक्षु : इस हैरानगति की व्याख्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हैरानगति यह राग, द्वेष और पर मेरे हैं, यह सब हैरानगति

है। यह स्त्री, पुत्र मेरे, परिवार मेरा, पुण्य-पाप के भाव मेरे। सब हैरानगति है। हैरानगति अर्थात्? आहाहा! शरीर, वाणी, मन, वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। पैसा मिट्टी-धूल है। उसका जिसे प्रेम है (कि) यह मेरे हैं, मैं इनका।

मुमुक्षु : इसके बिना चलता नहीं, उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना ही चलता है अनादि से। कहा था तब, नहीं? समढियाळे।

मुमुक्षु : वह तो गाँव।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गाँव में भी कहा था न। हरजीवनभाई थे न। ...भाई के भाई। यह बोटाद की बात है। (संवत्) २०१० के वर्ष। उसके पहले म्युनिसिपलटी में... कि महाराज! परन्तु पैसा बिना कहीं चलता है? तुम पैसा पैसा का ऐसा कहते हो। समढियाळावाले थे। नागरभाई के भाई। वे थे न वहाँ थे? नागरभाई है न! वे थे न। ... कहाँ... व्यक्ति नरम। हमेशा सुनने आवे। कहा, पैसे बिना चलता है, ऐसा नहीं, ऐसा कौन कहता है। परद्रव्य से आत्मा परद्रव्य के अभावस्वरूप है, इसलिए पैसे बिना का वह आत्मा है, तब तो वह टिक रहा है।

मुमुक्षु : पैसा क्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता करता है न कि यह मेरे हैं।

मुमुक्षु : वे तो तिजोरी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : तिजोरी कहाँ इसके बाप की थी? तिजोरी जड़ है। कहो, चिमनभाई! लो, शान्तिभाई के बाप की थी तिजोरी वहाँ? तिजोरी जड़। आहाहा! देखो न कितना कहा! परम श्रद्धा से। भाई! तेरा स्वरूप तो ज्ञान और आनन्द है। उसकी श्रद्धा, परम श्रद्धा से जान। आहाहा! तुझे अन्दर उत्साह और हर्ष आता है, ऐसा कहते हैं। दुनिया में तो सब दु:ख है, अकेला दु:ख। यह पैसा कमाना, कमाना, भोग, वासना अकेला जहर का प्याला है।

मुमुक्षु : वह आकुलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है, लो! आहाहा! अनाकुलस्वरूप भगवान आत्मा तो आनन्द वस्तु है। उसमें अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर यह भगवान आत्मा है। उसकी इसे खबर नहीं होती।

कहते हैं, यह कैसी बातें हैं! श्रद्धा को भी परम श्रद्धा से जान, ऐसा। आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप उसकी जो सम्यक्श्रद्धा उसे भी परम श्रद्धा से जान। आहाहा! परम प्रेम से जान। वहाँ प्रेम कर, भाई! प्रेम करनेयोग्य वहाँ है। आहाहा! समझ में आया? उसमें हैरान होने का रास्ता है बाकी तो। भगवानजीभाई! आहाहा! रात्रि में तुम्हारा लड़का आया था। लड़के का लड़का आया था रात्रि में। चला गया। दोपहर में आयेगा। यह वीरचन्दभाई का दामाद आया था न। तुम्हारा लड़का था बड़े का। एक था सही। पैर छूए। ... कल आयेगा। प्रिय कैसा लगे लड़के का लड़का। कहीं चीज़ पर की, जिसे कुछ सम्बन्ध नहीं होता आत्मा के (साथ)। वह भटकता-भटकता कहीं आया, यह भटकता-भटकता कहीं आया। आहाहा!

यहाँ तो पहले कहा न कि जीव, अजीव का तो भेद कर। वे सब अजीव पर हैं। आहाहा! वह जीव नहीं, इसलिए सब अजीव हैं। आहाहा! अनात्मा आता है न कलश में, नहीं आता? पहले शुरुआत के कलश में आता है। अनात्मा। आत्मा और अनात्मा। वे सब अनात्मा। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, स्त्री-पुत्र, परिवार-चीज़ भगवान आदि इस आत्मा की अपेक्षा से वे अनात्मा हैं। यह तो कलश में आता है। ... कहा था नहीं?

मुमुक्षु : आतम-अनात्म के ज्ञानहीन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। वह तो छहढाला में। यह तो कलश आता है। समयसार। यह कहा था एक बार। इस ओर कलश है। सब कहीं याद रहता है? कहो, समझ में आया?

यह एक ही आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, इसके अतिरिक्त दूसरी सब चीजें मेरे तो अवस्तु है। उस अवस्तु और वस्तु का भेदज्ञान करना, वह प्रेम परम श्रद्धा और परम रुचि से ज्ञान कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उत्साहित वीर्य से। उत्साहित वीर्य से उसका ज्ञान कर। आहाहा! वीर्य को अन्दर में जोड़ दे आत्मा के साथ। ऐसी श्रद्धा, उसका ज्ञान

और आत्मा की रमणता। उसे परमश्रद्धा से तो पहले तीन को जान, ऐसा कहा। यह है, उसे जान—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

त्रयात्मक मोक्षमार्ग है, इसको श्रद्धापूर्वक जानने का उपदेश है,.... आहाहा! **क्योंकि इसको जानने से मुनियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।** इसके अतिरिक्त बाहर के किसी क्रियाकाण्ड और वेश और व्रत से कोई मुक्ति-बुक्ति नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने यह आत्मा, पुण्य और पाप के दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव से भिन्न देखा है और भिन्न है। आहाहा! ऐसा जो भिन्न देखे और भासित हो और भिन्न की श्रद्धा परम प्रेम से करे और परम प्रेम से स्वरूप में रमणता करे। आहाहा! उसे मोक्ष होता है। बाहर की प्रवृत्ति से या क्रियाकाण्ड से हो हा... हो हा... सब। आहाहा! **मुनियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।** लो!

★ ★ ★

गाथा - ४१

आगे कहते हैं कि इस प्रकार निश्चयचारित्ररूप ज्ञान का स्वरूप कहा.... देखा! निश्चय चारित्ररूप ज्ञान बतलाया। निश्चय चारित्र किसे कहना? यह निश्चय अर्थात् सच्चा चारित्र। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप में रमणता अन्तर लीनता, वह निश्चय स्वरूप चारित्र, उसका ज्ञान कराया। है न? **निश्चयचारित्ररूप ज्ञान का स्वरूप कहा....** ऐसा कहा। **जो इसको पाते हैं, वे शिवरूप मन्दिर में....** उसे जो इस प्रकार से दर्शन, ज्ञान, चारित्र अन्तर में ज्ञान करके प्राप्त करता है, वह अल्पकाल में शिवमन्दिर में प्रवेश करता है। शिवरूप मन्दिर अर्थात् मोक्षदशा, उसे प्राप्त होती है। आहाहा!

वे शिवमन्दिर में रहनेवाले होते हैं:—४१।

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा॥४१॥

आहाहा! **अर्थः—जो पुरुष इस जिनभाषित....** है न? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव ने **ज्ञानरूप जल को प्राप्त कर.... जिनभाषित ज्ञानरूप जल को....** ऐसा। वीतरागी ज्ञानरूपी जल उसे कहा कि शुद्धज्ञानस्वभावी का ज्ञान , उसे ज्ञानरूप जल कहा। आहाहा! वीतरागदेव **ज्ञानरूप जल को प्राप्त कर अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं, वे पुरुष तीन भुवन के चूड़ामणि....** होता है, ऐसा कहते हैं। **जो पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जल को प्राप्त कर....** ऐसा अज्ञानियों ने कहा, वह नहीं। असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण का धाम यह भगवान आत्मा अन्दर है। सिद्धस्वरूपी आत्मा है। आहाहा! ऐसा वीतराग परमेश्वर ने कहा है। समझ में आया?

ऐसा **ज्ञानरूपी जल को प्राप्त कर....** यह ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा का ज्ञान अन्दर में प्राप्त करके, **अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त होते हैं....** यह चारित्र लिया। **अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव....** पश्चात् रागरहित... दया, दान, व्रत के विकल्प हैं, वे तो सब राग हैं। वे कहीं आत्मा नहीं तथा धर्म नहीं। आहाहा! **विशुद्ध भाव...** पुण्य और पुण्य के परिणाम के भाव से भी रहित शुद्ध चैतन्य की अन्दर में निर्मल परिणाम से रमणता करना, रमना, उसका नाम चारित्र है। कहो, समझ में आया?

भले प्रकार.... अपने निर्मल भले प्रकार विशुद्धभाव संयुक्त.... भले प्रकार अर्थात् स्वरूप के भानसहित में स्थिरता, रमणता, आनन्द में रमणता करना, अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता करना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! अभी चारित्र कहना किसे, उसकी खबर नहीं होती। कहो, समझ में आया? भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु का ज्ञान और श्रद्धा परम प्रेम से करके परम विशुद्धभाव परिणति की, उसे अल्प काल में शिवपना-मोक्षपना प्रगट होता है। आहाहा!

तीन भुवन के चूड़ामणि.... तीन लोक के चूड़ामणि। सिद्ध भगवान ऊपर विराजते हैं न लोकाग्र में। वह सिद्धालय है। निश्चय सिद्धालय तो स्वयं है। अपने में पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति, उस सिद्धालय का नाम मुक्ति है। आहाहा! 'मोक्ष कहा निज शुद्धता वह पावे सो पंथ, समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' निर्ग्रन्थ सन्त भगवान मुनियों ने, केवलियों ने यह मार्ग कहा। आहाहा! जो स्वआश्रय चिदानन्द प्रभु आत्मा के आश्रय

से हुआ जो समकित, उसके आश्रय से हुआ ज्ञान और उसके आश्रय में रमना, निर्मल शुद्ध परिणाम प्रगट करना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

वह **तीन भुवन के चूड़ामणि और शिवालय अर्थात् मोक्षरूपी मन्दिर में रहनेवाले सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।** परमानन्दरूपी महल अपना मकान—अपना स्वरूप, उसमें वे रहते हैं। वह अनादि से पुण्य और पाप, राग और आकुलता में बसा हुआ है, उसका निवास अनादि से विकार में है। उस विकाररहित स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र से निर्विकारी पूर्ण शान्ति, निर्मल आनन्द, उसमें उसका वास होगा। कहो, बात समझ में आयी? यों ही कहीं शरीर में, मकान में रहता नहीं। अनादि से अज्ञानी पुण्य और पाप, राग और द्वेष मुझमें रहते हैं, ऐसा मानकर विकार में रहा हुआ है। उस विकाररहित अपने स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करने से निर्विकारी पूर्ण मोक्षमन्दिर अपनी पूर्ण आनन्ददशा में रहेगा। आहाहा! इसका नाम सिद्ध भगवान कहा जाता है। णमो सिद्धाणं।

एक व्यक्ति कहता था नहीं वह था सी.जी. शाह वढवाणवाला। बहुत वर्ष की बात है (संवत्) ९२ की। कि यह सिद्ध भगवान वहाँ क्या करते हैं? कहा, किसी का कुछ नहीं करते। वे तो परम आनन्द में लीन, उन्हें परमात्मा सिद्ध कहते हैं। तो हम यहाँ कुछ करें दो, पाँच, दस लोगों का परिवार का या जाति का। कुछ करे नहीं किसी का? हराम किसी का करे तो। यहाँ किसका करता है अज्ञानी? अज्ञानी को अभिमान होता है राग का। तो कहे, ऐसा सिद्धपद हमको नहीं चाहिए। कहाँ था अब सुन न अब। आहाहा! यहाँ हम कुछ परिवार का करते हैं, गाँव का करते हैं, जाति का करते हैं। धूल भी करता नहीं। अभिमान मिथ्यात्व करता है। आहाहा! मिथ्याभ्रम के पाप को करता है वह। समझ में आया? वह भ्रम जिसने टाला, भगवान को जिसने आत्मा भगवानस्वरूप है, उसमें पहिचाना और उसमें स्थिर हुआ, उसे पूर्ण आनन्द की दशा में अब वह रहेगा। यह शिवमन्दिर।

शिवालय अर्थात् मोक्षरूपी मन्दिर में.... पूर्ण आनन्दरूपी दशा में वह रहनेवाला है। वह शिवमन्दिर है। आहाहा! सिवमलय में आता है। णमोत्थुणम् आता है? ....भाई! अर्थ नहीं आता अर्थ? सिवमलयमरु नहीं आता? णमोत्थुणम् में आता है। शिव अर्थात्

यहाँ कहीं शंकर नहीं। शिव अर्थात् कल्याणमय आनन्द की दशा, उसमें रहना, इसका नाम मोक्ष का मन्दिर है। आहाहा! यहाँ दो, पाँच, दस लाख का मन्दिर हो और वास्तु करे तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, लो! राजा को बुलावे, बड़े सेठिया को बुलावे। लापसी का आंधड़ करे। फिर पाँच-पच्चीस हजार खर्च करे। मात्र पाप का पोटला है। आहाहा! दु:ख का सरदार दु:ख से जल गया है। आहाहा!

यह तो आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र किया तो पूर्ण आनन्द की पर्याय में बसनेवाला होगा वह। आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन-ज्ञान सहित...' मोक्ष कहीं दूसरी चीज़ नहीं। मोक्ष कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न दशा नहीं। मोक्ष, वह आत्मा की पर्याय है अवस्था से भिन्न दशा नहीं। मोक्ष तो परमानन्द की पूर्ण आत्मा की अवस्था, उसका नाम मोक्ष। आहाहा! उसकी खबर नहीं होती। मोक्ष किसे कहना? जय भगवान! कहो, शामजीभाई! मोक्ष हो तो कोई सिद्धशिला के ऊपर जायेगा वहाँ। सिद्धशिला के ऊपर लटके, उसका नाम मोक्ष है। यह तो क्षेत्र की बातें हैं। भाव भी कहाँ है? और वह भी परक्षेत्र की। यह तो स्वक्षेत्र में। जिसे असंख्य प्रदेशी पूर्णानन्द का नाथ जिसने श्रद्धा और ज्ञान में लिया है। और उसमें जिसकी क्रीड़ा, रमणता चारित्र की दशा हुई है, उसे सादि-अनन्त अपनी शिवदशा-मोक्षदशा-निरुपद्रव दशा नहीं, उसका वास रहेगा। कहो, समझ में आया? बात-बात में अन्तर है। वीतराग कहते हैं कि तेरी मान्यता और हमारे भाव में बात-बात में अन्तर है। सेठ! वह आता है न? 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे अने एक त्राम्बिया ने तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तेरी श्रद्धा और हमारे मार्ग के बीच बड़ा अन्तर है। पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। वे व्रत करना, अपवास करना, उसे धर्म माने और उससे मोक्ष होगा, सिद्धशिला के ऊपर जाना। वह सब झूठी बात है। समझ में आया? आहाहा! **तीन भुवन के चूड़ामणि और शिवालय अर्थात् मोक्षरूपी मन्दिर में रहनेवाले सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।** लो! आहाहा!

भावार्थ:—जैसे जल से स्नान करके शुद्ध होकर.... जैसे पानी में स्नान करके शुद्ध होकर। यह बाहर की। **उत्तम पुरुष महल में निवास करते हैं....** महल में जाये ऐसे नहा-धोकर। कीमती वस्त्र पहने। नहा-धोकर रेशम के कपड़े बराबर सिर पर.... महल

में प्रवेश करता है। **वैसे ही यह ज्ञान, जल के समान है....** ज्ञान, जल के समान है—ऐसा कहते हैं। यह भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का ज्ञान, वह उसका ज्ञान, वह जल समान है। **और आत्मा के रागादिक मैल लगने से मलिनता होती है,....** आत्मा में जो कुछ पुण्य और पाप के भाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना, वह पापभाव; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तपस्या, वह पुण्यभाव। वह सब विकल्प राग, पुण्यभाव सब मैल है। आहाहा!

रागादिक मैल लगने से मलिनता होती है, इसलिए इस ज्ञानरूप जल से रागादिक मल को धोकर.... देखा! क्रियाकाण्ड से नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वभाव, ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा, उसका ज्ञान वह जल है। राग-द्वेष का मैल उससे टलता है। आहाहा! **ज्ञानरूप जल से रागादिक मल को धोकर....** यह ज्ञान की क्रिया कही। ज्ञानस्वरूप भगवान की क्रिया, वह तो एकाग्र आनन्द में। यह ज्ञान की क्रिया, वह जल। उससे पुण्य और पाप का मैल धुल जाता है। समझ में आया? यह ज्ञानरूप जल की वर्तमान पर्याय की बात है। त्रिकाली आत्मा ज्ञानस्वरूप है, परन्तु उसका ज्ञान किया, अन्तर में स्वसंवेद्य प्रभु आत्मा का ज्ञान किया, उसे यहाँ ज्ञान जल कहा जाता है। आहाहा! बीच में रागादि क्रिया का वर्णन किया। ऐसी भूमिका जिसे प्रगट हुई हो, उसे महाव्रतादि के विकल्प होते हैं, निमित्तरूप से। परन्तु वह कोई मूल मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा!

मोक्षमार्ग तो प्रभु आत्मा आनन्द का ज्ञान, वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा है यह, उसका ज्ञान, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? इस जीव के इतने भेद हैं और ६५ भेद हैं, ५६३ और फलाना और ढींकणा। यह ज्ञान, वह तो सब भटकने की बातें विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! परन्तु यह निवृत्ति कहाँ से मिले इन हीरा-माणिक के धन्धे से? ऐसा इसे समझना कहाँ? चैतन्य हीरा अन्दर भगवानस्वरूप विराजमान आत्मा है। उसकी इसे खबर नहीं। यह तो पर की दया पाले और सत्य बोले, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे—वह सब आत्मा, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! इसलिए कहा न कि वस्तुस्वरूप है, वह समझण का पिण्ड है, ज्ञानस्वभाववाला तत्त्व है। **'णाणं णाणसरुवे'**

वहाँ उस टीका में भाई ने ऐसा डाला वह। आया था न। '**णाणं णाणसरुवे**' टीका करे '**णाणं**' अर्थात् व्यवहार ज्ञान, ऐसे के ऐसे। यहाँ तो उसका ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप वह आत्मा, ऐसा कहना है। टीका में ऐसा लिया। संस्कृत (में)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह टीका ऐसी। टीका में यह देखा। व्यवहारज्ञान नहीं, यहाँ तो आत्मा ज्ञानस्वरूप, समझणस्वरूप का जो ज्ञान। स्वज्ञेय को बनाकर ज्ञान हुआ, वह ज्ञान, वह आत्मा है, ऐसा। ज्ञान, वह आत्मा है। बीच में दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह तो राग है, अनात्मा है, जड़ है। आहाहा! यह.... ऐसे अर्थ !यह बड़े में, हों! तब उस ३७ गाथा में उन्होंने अर्थ ऐसा किया, आज्ञा, वस्त्र की आज्ञा दे। परन्तु यहाँ उसका क्या काम है? उसके साथ भले उनकी पुस्तक में लिखा हुआ हो, वह अपेक्षा से। उसमें... वहाँ रहने देना। उसमें एक वस्त्र का धागा रखे, वीतरागदेव तो ऐसा कहते हैं कि वस्त्र का एक धागा रखकर, हम साधु हैं, ऐसे माननेवाले निगोद में जानेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। वीतरागदेव का कथन तो यह है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने तो यह वस्त्र का टुकड़ा रखकर हम साधु हैं, ऐसा साधु माने और मनावे और उसे माने, उसे भला जाने, सब निगोदगामी-एकेन्द्रिय में जानेवाले हैं। आहाहा! ऐसा वीतरागदेव कहते हैं। उसमें वापस डालना आज्ञा प्रमाण वस्त्र। उसमें नहीं डालना चाहिए। त्रिलोकनाथ का पुकार अनादि का तो यह है। यह पंथ निकला, वह तो फिर इसमें से भ्रष्ट होकर निकले हैं सब। समझ में आया? श्वेताम्बर निकले, उसमें से यह स्थानकवासी निकले। वे तो सब भ्रष्ट होकर निकले हुए हैं। वे जैन नहीं हैं। जैन की श्रद्धा ही नहीं और वे जैन है ही नहीं। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं वीतराग के घर की, बापू! आहाहा! यह तो आ गया। उसमें नहीं डालना चाहिए। आहाहा!

तीर्थंकर हों परन्तु वस्त्रधारण जब तक है, तब तक साधु नहीं। तीर्थंकरपना। तब तक तो आ गया है। जिसमें डाला कि भगवान की आज्ञा तत्प्रमाण वस्त्र रखना, वस्त्र आदि। भगवान ही वह नहीं। भगवान के नाम से वे शास्त्र भगवान के नाम से चढ़ा दिये

हैं। भगवान के शास्त्र ही नहीं हैं। ३२ सूत्र और ४५ सूत्र, वे भगवान के कहे हुए ही नहीं हैं। आहाहा! अज्ञानियों ने सूत्र रचे और भगवान का नाम दिया है। आहाहा! ऐसी बात है। सुनते हैं। सुधर्म कहते हैं और गणधर सुनते हैं। यह नहीं, बापू! मार्ग में बड़ा अन्तर है, भाई! उसे बेचारे को सुनने को मिला नहीं। जैन में-वाडा में जम्बे, परन्तु जैनपना क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : अनादि के भ्रम में रहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से ऐसा का ऐसा भ्रम में रहा। सच्चा मार्ग क्या है, उसकी खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, ऐसा जो आत्मस्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, असंख्य प्रदेशी अनन्तगुण का धाम। उसका ज्ञान पर्याय में, हों! वह सम्यग्ज्ञानरूपी जल, उससे रागादि मैल धो डालता है। आहाहा! **मलिनता होती है, इसलिए इस ज्ञानरूप जल से रागादिक मल को धोकर....** इस ज्ञानस्वरूप का ज्ञान करके अन्तर राग को धो डालकर। आहाहा! वस्त्र का मैल हो, उसे पानी में धोते हैं न? उसी प्रकार रागादि के पुण्य-पाप के भाव सब मैल और राग है।

अपनी आत्मा को शुद्ध करते हैं.... आहाहा! जिसने आत्मा के ज्ञान में रमणता करके जो शुद्ध करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहा नहीं था? कल नहीं? कहा था चोटीला का। उसने बेचारे ने स्वीकार किया था, हों! आहाहा! मार्ग तो भाई ऐसा है। अन्दर बराबर बैठना चाहिए। आत्मा का ज्ञान और ज्ञान में एकाग्रता, वह क्रिया। यह व्रतादि की क्रिया, वह तो शुभराग है, बन्ध का कारण है, मैल है। गुलाबचन्दजी है न। रतनचन्दजी के गुरु। शतावधानी लींबडी (वाले)। (संवत्) १९९० में इकट्ठे हुए थे। सम्प्रदाय में इकट्ठे हुए थे। यह तुम्हारे.... ...आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान, आत्मा का ज्ञान और इस ज्ञान में... रमणता। मोक्षमार्ग वीतरागमार्ग में नहीं और .... मार्ग नहीं। जैन है। वह जैन है ही नहीं। उसको जैन की खबर नहीं। चन्दूभाई! ...शंका हो ... जयन्तीभाई! ऐसा सब भ्रम मानते हैं। आहाहा! इसलिए कहते हैं। ज्ञान जल में रमना.... जिसे अभी आत्मज्ञान ही हुआ नहीं, वह रमे कहाँ से? आहाहा! आत्मा कैसा है, उसकी अभी खबर नहीं।

आत्मा को शुद्ध करते हैं, वे मुक्तिरूप महल में रहकर आनन्द भोगते हैं,.... लो! यह भगवान तो अपने अतीन्द्रिय आनन्द को भोगता है। क्योंकि अतीन्द्रिय आनन्दमय ध्रुव की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र कहा। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा तो है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन किया, अतीन्द्रिय का ज्ञान किया और अतीन्द्रिय आनन्द में रमा तो उसे पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द में एकाग्र होता है। **उनको तीन भुवन के शिरोमणि सिद्ध करते हैं।** णमो सिद्धाणं। तीन लोक के ऊपर है और भाव से भी तीन लोक के ऊपर जिन हैं। आहाहा! उन्हें सिद्ध भगवान कहते हैं। अरिहन्त परमेश्वर ने ऐसा स्वरूप कहा है। ऐसी बात अन्यत्र किसी स्थान में वीतराग अरिहन्त के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं है नहीं। अज्ञानी ने कल्पना करके बातें की हैं....

★ ★ ★

गाथा - ४२

आगे कहते हैं कि जो ज्ञानगुण से रहित हैं.... आता है न? **ज्ञानगुण से रहित हैं, वे इष्ट वस्तु को नहीं पाते हैं,....** जिसे अभी सम्यग्ज्ञान ही नहीं, आत्मा का ज्ञान नहीं उसे... प्राप्ति नहीं होती। **इसलिए गुण-दोष को जानने के लिये ज्ञान को भले प्रकार से जानना:—**

णाणगुणेहिं विहीणा, ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं, तं सण्णाणं वियाणेहि॥४२॥

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। संवत् ४९, आठ दिन रहे थे। सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं, उनके पास आठ दिन रहे थे। आकर शास्त्र बनाये थे। दिगम्बर मुनि थे। वनवास में रहते थे। दो हजार वर्ष पहले। संवत् ४९। भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ लाखों, करोड़ों, अरबों वर्षों का आयुष्य उनका तो (होता है)। वहाँ आठ दिन रहे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये। भगवान त्रिलोकनाथ का हुकम यह है। कहो, ...भाई! ....भाई!

अर्थः—ज्ञानगुण से हीन पुरुष.... आत्मा अनन्तगुण का धनी प्रभु, उसका जिसे

अन्दर ज्ञान हुआ नहीं, वह ज्ञानगुण बिना... **अपनी इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते,....** ... आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है। **ज्ञानगुण से हीन...** अर्थात् जिसे आत्मा का ज्ञान क्या है, उसकी खबर नहीं। वह आत्मा का ज्ञान उसने किया नहीं। वह .... वस्तु को माना है मोक्ष होगा उसे ... नहीं होगा। आहाहा! **इच्छित वस्तु के लाभ को नहीं प्राप्त करते, इस प्रकार जानकर हे भव्य!** आहाहा! '**वियाणेहि**' है न? यह आया न बाद में। किसी को कहते हैं, ऐसा आया न इसका अर्थ? '**वियाणेहि**' अर्थात् हे भव्य! ऐसा। तू ऐसा जान, प्रभु! आहाहा! दया, दान, व्रत, परिणाम से भिन्न चीज़ है अन्दर। आहाहा!

हे भव्य! उसे तू जान। **तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान को गुण-दोष के जानने के लिये जान।** आहाहा! रागादि भाव, वह दोष है और परमात्मा स्वयं निर्दोष है। दो के बीच का ज्ञान होने पर तुझे यथार्थ गुण-दोष का भान होगा। आहाहा! कहो, समझ में आया? **पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान को गुण-दोष के जानने के लिये जान।** आत्मा पवित्र आनन्द धाम, उसका ज्ञान वह पवित्र है, निर्दोष है। और रागादि भाव, वे सदोष और मैल तथा दुःखरूप है। इन दोनों का विभाजन का सम्यग्ज्ञान से उसका भान होगा। यहाँ तो जो दोष है, उसे अभी गुण माने। समझ में आया? और गुणवाली चीज़ क्या है, उसकी इसे खबर नहीं होती। ऐसे गुण-दोष को जानने के लिये सम्यग्ज्ञान को जान, भाई! आहाहा!

भावार्थः—ज्ञान के बिना गुण-दोष का ज्ञान नहीं होता है.... यह ज्ञान क्या? पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर आत्मा का ज्ञान, उसे यहाँ ज्ञान कहते हैं। मात्र शास्त्र के पन्ने फिरावे और वाँचा करे, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! शास्त्र का पठन पढ़ा ग्यारह अंग। ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ा।

मुमुक्षु : सहकारी तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। वह तो परसन्मुख के झुकाव का विकल्प है। ग्यारह अंग, एक अंग में, ५१ करोड़ से अधिक श्लोक एक-एक पद में। ऐसे-ऐसे अठारह हजार पद का एक आचारांग। भगवान ने कहा था वह। अभी है, वह तो

कल्पित आचारांग है। वह कहीं भगवान का कहा हुआ नहीं है। पहले के भगवान के कहे हुए आचारांग सूत्र जो था, उसमें अठारह हजार पद थे और एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक थे। उससे दुगना सूयगडांग, (उससे) दुगना ठाणांग और... ऐसे ग्यारह अंग कण्ठस्थ किये हुए अनन्त बार। कण्ठस्थ किये हुए, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : है तो.... थोड़ा बहुत तो ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा-बहुत वह आत्मा से हो, वह थोड़ा-बहुत। धूल में से कुछ नहीं होता। पर से कुछ नहीं होता।

मुमुक्षु : क्या करना अब?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना आत्मा में अन्दर जाना। जहाँ है वहाँ जाना, यह (करना)। परन्तु उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! भगवान आत्मा तो पुण्य और पाप के विकल्प से, राग से भिन्न अन्दर है। आहाहा!

ज्ञान के बिना गुण-दोष का ज्ञान नहीं होता है, तब अपनी इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु को नहीं जानता है.... इष्ट तो परमात्मदशा मोक्ष है अथवा शुद्धदशा, वह इष्ट है और पुण्य-पाप के भाव, वे अनिष्ट है। आहाहा! समझ में आया? **इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु को नहीं जानता है, तब इष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता है....** इष्टपना तो परमात्मदशा और या मोक्ष का मार्ग, वह इष्ट है। आहाहा! प्रवचनसार में आता है। अनिष्ट का नाश हुआ और इष्ट की प्राप्ति हुई। आहाहा! इष्ट अर्थात् शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह इष्ट है। उससे विरुद्ध जितने विकल्प उठें राग के, चाहे तो व्रत का हो, तप का हो या भक्ति का हो या भगवान के नामस्मरण का हो, सब राग, वह अनिष्ट है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग है। यह कोई रागमार्ग नहीं (कि) उस राग से लाभ हो। आहाहा!

इष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता है.... जिसे परमानन्दस्वरूप का श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वह इष्ट है, ऐसी उसे अभी खबर नहीं। उसे इष्टफल मोक्ष तो नहीं होता। इष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता अर्थात् मुक्ति नहीं होती। अनिष्ट जो वस्तु राग है, उससे वह लाभ मानता है। संसार में भटकने का लाभ मिलेगा। आहाहा! नरक और निगोद

अवतार धारण करेगा। **इसलिए सम्यग्ज्ञान ही से गुण-दोष जाने जाते हैं।** यह बड़े अक्षर हैं। सच्चा ज्ञान विवेकी राग से भिन्न पड़ा ज्ञान—इस ज्ञान से दोष और गुण का सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा!

क्योंकि सम्यग्ज्ञान के बिना हेय-उपादेय वस्तुओं का जानना नहीं होता.... अन्तर सच्चे ज्ञान बिना हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य वस्तु, उपादेय अर्थात् आदरणीय, उसका उसे सच्चा ज्ञान नहीं होता। आहाहा! बहुत अच्छी अन्तिम गाथायें डाली हैं। **सम्यग्ज्ञान के बिना हेय....** वह शुभराग है दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा हो, परन्तु है हेय। छोड़नेयोग्य है; वह धर्म नहीं। आहाहा! अब उसमें जगत ने धर्म माना और मनाया। पुण्य के भाव हेय हैं। उपादेय है भगवान आत्मा अथवा उपादेय है आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। उन **वस्तुओं का जानना नहीं होता....** अज्ञानी को।

हेय-उपादेय को जाने बिना सम्यक्चारित्र नहीं होता है,.... यह सिद्ध करना है न यहाँ तो? जिसे अभी दया, दान का विकल्प है, वह राग है और हेय है और आत्मा शुद्ध चैतनयमूर्ति, वह उपादेय है और उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वह उपादेय है—ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, उसे चारित्र नहीं होता।

मुमुक्षु : चारित्र नहीं तो धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र, कहाँ से आया चारित्र? आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठा, हो महाव्रत, दीक्षा ली, वह चारित्र? दख्या है। चारित्र कहाँ था वहाँ? दीक्षा कहाँ थी वहाँ? यह सब टोला इकट्ठे होते हैं या नहीं? दख्या है दख्या यह। यह दुःख को अंगीकार किया है। आत्मा क्या है राग से भिन्न, उसका तो भान नहीं।

इसलिए ज्ञान ही को चारित्र से प्रधान कहा है। लो! ज्ञान को चारित्र से प्रधान कहा। आत्मा का ज्ञान राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, वह हो तो चारित्र हो, ऐसा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक-०७-१२-१९७३
गाथा- ४३ से ४५, प्रवचन-६१

गाथा - ४३

अष्टपाहुड़ में चारित्रपाहुड़ है। गाथा ४३ है। **आगे कहते हैं कि जो सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र धारण करता है, वह थोड़े ही काल में अनुपम सुख को पाता है:**—जिसे प्रथम सम्यग्ज्ञान हो हेय—उपादेय का। यह कहते हैं। रागादि हेय है और स्वभाव उपादेय है, ऐसा जिसे अन्तर में सम्यग्ज्ञान हुआ हो, वह चारित्र प्राप्त कर सकता है। जिसे सम्यग्ज्ञान ही नहीं, वह चारित्र अर्थात् स्वरूप में आना और राग को छोड़ना, उसे नहीं हो सकता।

चारित्तसमारूढो, अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं, अणोवमं जाण णिच्छयदो॥४३॥

अर्थ:—जो पुरुष ज्ञानी है.... अर्थात् कि जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है। पुण्य और पाप के रागरहित आत्मज्ञान वीतरागस्वरूप है, उसका अन्तर सम्यग्ज्ञान हुआ है, वह **चारित्रसहित है....** वह चारित्रसहित है। वह स्वरूप की रमणता करता है। **वह अपनी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करता है,....** परद्रव्य को हेय जाना है, राग को हेय जाना है। आहाहा! उससे वह धर्मी जीव अपना आत्मा पूर्ण आनन्द शुद्ध, उसके भान में स्वरूप में आरूढ़ होता है, वह चारित्र। वह राग को (चारित्र नहीं कहते) है। आहाहा! व्यवहारनय है नहीं, ऐसा कहते हैं।

परद्रव्य में राग-द्वेष-मोह नहीं करता है। परद्रव्य की इच्छा नहीं करता अर्थात् कि स्वद्रव्य की जहाँ भावना है। ज्ञानानन्दस्वरूप राग से भिन्न ऐसे आत्मा का जहाँ ज्ञान और सम्यग्दर्शन है, वहाँ तो आत्मा सन्मुख की ही भावना धर्मी को होती है। कहो, समझ में आया? इसलिए उसे परद्रव्य में राग-द्वेष-मोह नहीं होते। **वह ज्ञानी जिसकी उपमा नहीं है....** ऐसे सुख को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन, तदुपरान्त अन्दर स्वरूप की रमणतारूप चारित्र। वह जीव जिसकी उपमा नहीं, ऐसे **अविनाशी**

मुक्ति के सुख को पाता है। नाश न हो, ऐसे आनन्द की दशा को प्राप्त करता है।

हे भव्य! 'जाण' शब्द है न? **'जानीहि'** शब्द है इसलिए.... **हे भव्य! तू निश्चय से इस प्रकार जान।** वास्तव में तू राग से रहित भगवान आत्मा का ज्ञान कर और उसमें स्थिर होकर वीतरागता का आनन्द प्राप्त कर। आहाहा! **यहाँ ज्ञानी होकर हेय-उपादेय को जानकर,....** देखो! है न? यह जितना शुभरागादि है....

मुमुक्षु : हेय-उपादेय का ज्ञान तो राग उत्पन्न करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय-उपादेय का ज्ञान व्यवहार ज्ञान है। यह आया नहीं था नियमसार में? हेय-उपादेय का ज्ञान, वह व्यवहार का ज्ञान है। यहाँ तो निश्चय की बात है। व्यवहार से लेते हैं पहले। ५३ गाथा में।

मुमुक्षु : व्यवहार, वह छोड़नेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात्? ऐसे भेद करते हैं न, इसलिए ऐसा। राग और यह मैं नहीं, इतना। बाकी यह तो यहाँ निश्चय है। स्वभाव का आश्रय लेना और राग को छोड़ना। यह उपदेश में तो क्या आवे?

मुमुक्षु : ....भाव में क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में स्वभाव का आश्रय लेने से राग हेय अर्थात् उत्पन्न नहीं होता, उसे हेय कहा है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! दुःखी, चार गति में दुःखी है। चार गति में दुःखी प्राणी है। यह राग और द्वेष और मिथ्यात्व के भँवर में, चक्कर में पड़ा है। वह आनन्द से उल्टी दशा में दुःखी पड़ा है, दुःखी है वह। उसे दुःख का भाव और आत्मस्वभाव दो के बीच विवेक-भेदज्ञान करके स्वरूप शुद्ध, वही आदरणीय और उपादेय है, रागादि चाहे तो भगवान की भक्ति का, पूजा का हो, परन्तु वह हेय है। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ? स्वभावसन्मुख होने से वह छूट जाता है। यह हेय है, हेय है—ऐसा करने का नहीं है वहाँ।

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा जिसने वर्तमान पर्याय में स्वभाव-सन्मुख होकर आदर किया, उसे राग, वह हेयरूप हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? एक ओर राम परमात्मा स्वयं आनन्दस्वरूप, उसे ही आदरणीय करके जहाँ

पड़ा है, उसे राग का हेयपना उसमें सहज हो गया। समझ में आया? इस शुभराग को आदरणीय माने, ऐसा कहते हैं न, उसका यह निषेध है। कि रागमात्र हेय है। चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, वह भी हेय है। और भगवान शुद्ध चिदानन्द आत्मा सुखधाम अनन्त आनन्द का धाम, ऐसा जो ध्रुव स्वभाव उसका जिसने आश्रय लिया, उसे वह उपादेय है। राग उपादेय नहीं रहा, साथ में राग नहीं आया, इसलिए उपादेय नहीं रहा। समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, प्रभु! तू ऐसा जाना। तेरा आत्मा आनन्द से भरपूर भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। तू वहाँ देख। तू वहाँ शोध। तू वहाँ एकाग्र हो। इसका नाम उपादेय कहा। राग अन्दर आया नहीं, उसे हेय कहा। आहाहा! राग का व्यवहार मात्र हेय है।

मुमुक्षु : ....रीति से परिणमे या न परिणमे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमता है, तब तक तो राग है, परन्तु हेयपने परिणमता है। परिणमता है न राग। राग जब तक टलता नहीं, तब तक परिणमता है। यहाँ तो चारित्रसहित की बात ली है न! वह ज्ञान हेय-उपादेय का करके स्वरूप में स्थिर हो, तब राग है ही नहीं पश्चात् तो। राग का परिणमन ही नहीं। भेदज्ञान के समय राग का परिणमन है और स्वभाव का भान भी है। परन्तु वह परिणमन है, उस राग का, ज्ञान जानता है कि मेरी दशा में है। दृष्टि और दृष्टि का स्वभाव जानता है कि वह मेरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ज्ञान पहले कहा कि हेय-उपादेय का ज्ञान। चिदानन्द प्रभु आनन्द का नाथ, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द भरचक भरा है। आहाहा! उसका उसे अन्तर विश्वास आकर परिणमन होना, उसका नाम स्व का उपादेयभाव और राग साथ में आया नहीं, इसलिए राग का हेयरूपभाव।

ऐसा जानकर **यहाँ ज्ञानी होकर हेय-उपादेय को जानकर,....** लो! **संयमी बनकर....** महाव्रत का विकल्प होता है, वह भी हेय है। आस्रव है, दुःखरूप है न? आहाहा! समय-समय में धर्मी को विवेक होता है। कहते हैं, **हेय-उपादेय को जानकर,....** समय-समय में उसका भान होता है। **संयमी बनकर....** पश्चात् स्वरूप में स्थिरता आनन्द की लहर

(उठे), वह संयमी। **संयमी बनकर परद्रव्य को अपने में नहीं मिलाता है....** वह राग को अपने स्वभाव में एकता में उसे लाता नहीं। आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र, मुक्ति का कारण कहते हैं।

वह परम सुख पाता है,—उसे परम आनन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा! जिसने स्वभाव के आनन्द का आश्रय लिया, उसे स्वभाव की पूर्ण आनन्द की दशा प्राप्त होती है, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार बताया है।** लो! अर्थकार कहते हैं, ऐसा यहाँ बताया गया है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ४४

आगे इष्ट चारित्र के कथन का संकोच करते हैं:—संयम और सम्यक्‌चरण चारित्र दो प्रकार का वर्णन किया। समकितचरण चारित्र और संयमचरण चारित्र। अब इसका संक्षिप्त करते हैं।

एवं संखेवेण य, भणियं णाणेण वीयराएण।
सम्मत्तसंजमासय, दुण्हं पि उदेसियं चरणं॥४४॥

अर्थ:—एवं अर्थात् ऐसे पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप से श्री वीतरागदेव ने.... अर्थात् वीतराग देव ने **ज्ञान के द्वारा कहे....** परमेश्वर परमात्मा वीतराग परमात्मा ने जो ज्ञान द्वारा कहा **इस प्रकार सम्यक्त्व और संयम दोनों के आश्रय....** इस प्रकार से समकितचरण शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान का समकित का चरण अर्थात् उसमें एकाग्रता। पहला सम्यक्‌चरण चारित्र नहीं हो, उसे संयमचरण चारित्र नहीं होता। समझ में आया? यह पहला **सम्यक्त्व और संयम इन दोनों के आश्रय चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप और संयमचरणस्वरूप दो प्रकार से उपदेश किया है,....** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वीतरागदेव को तीन काल का ज्ञान हुआ तो ज्ञान द्वारा उन्होंने दो प्रकार का चारित्र वर्णन किया है। यह मैंने संक्षेप से कहा है।

स्वरूप शुद्ध चैतन्य परमात्मा की दृष्टि में, उसके ज्ञान में एकाग्रता का अंश साथ

में हो, उसे सम्यक्त्वचरण चारित्र कहते हैं। साथ में स्वरूपाचरण होता है। स्वरूप की प्रतीति और ज्ञान हुआ, ऐसा स्वरूप में आचरण अर्थात् स्थिरता का अंश भी होता है। आहाहा! उसे यहाँ सम्यक्त्वचरण चारित्र कहते हैं। यह आया न.... इसलिए ज्ञानादि अनन्त गुण का एकदेश... हुआ है। चौथे गुणस्थान में है। सम्यग्दर्शन तो है वह है, परन्तु सम्यग्दर्शन में सम्यग्दर्शन के काल में जितने गुण हैं, उन सबका अंश प्रगट हुआ है। सम्यग्दर्शन तो है वह है। समझ में आया? उसे यहाँ सम्यक्त्वचरण चारित्र कहा जाता है। लो! जितने गुण हैं अनन्त संख्या से, उन सबको जहाँ स्वस्वरूप का एकता की प्रतीति द्वारा जहाँ अनन्त गुण आंशिक प्रगट हुए, उस अंश में तो चारित्र का अंश आया, आनन्द का अंश आया, वीर्य का अंश आया। पर्याय को रचे, वह वीर्य आया, शान्ति आयी, स्वच्छता आयी, प्रभुता आयी। ऐसे अनन्त गुणों का स्वरूप आया, उसे यहाँ स्वरूपाचरणचारित्र कहा जाता है।

और दूसरा संयमचरण चारित्र। स्वरूप में स्थिरता। आनन्दस्वरूप को दृष्टि में अनुभव में लेकर उसमें स्थिरता, रमणता। आहाहा! वह कहा न, परद्रव्य की रमणता शीघ्रता से तजो। स्वद्रव्य की रमणता शीघ्रता से प्रगट कर। स्वद्रव्य। आहाहा! द्रव्य अर्थात् क्या? अनन्त गुण का पिण्ड है वह। उसकी उसे धारणा कर, उसे ग्रहण कर, उसमें रमणता कर। कठिन बातें! उसे यहाँ संयमचरण चारित्र कहते हैं। यह दो प्रकार का उपदेश किया है।

आचार्य ने चारित्र के कथन को संक्षेपरूप से.... चारित्र का कथन अब संक्षिप्त करते हैं। **संक्षेपरूप से कहकर संकोच किया है।** ऐसा। कहा न? '**संखेवेण**' पहला शब्द है। '**संखेवेण**' संक्षेप से कहा है, ऐसा कहते हैं। विस्तार का तो पार नहीं। ....

★ ★ ★

गाथा - ४५

आगे इस चारित्रपाहुड को भाने का उपदेश और इसका फल कहते हैं:—लो! कहते हैं कि यह चारित्रपाहुड़ कहा, उसे सुनना, वाँचना, धारण करना, बारम्बार भावना करना। आहाहा!

भावेह भावसुद्धं, फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं, अइरेणऽपुणब्भवा होई॥४५॥

अर्थ:—यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवों! 'भावेह' कहा है न? अर्थात् हो गया न, हे भव्य जीव, ऐसा। **हे भव्यजीवों!** आहाहा! **यह चरण अर्थात् चारित्रपाहुड़ हमने स्फुट प्रगट करके बनाया है....** चारित्र का स्वरूप प्रगट करके, व्यक्त करके बतलाया है कि यह स्वरूप है। **उसको तुम अपने शुद्धभाव से भाओ।** उसे तुम शुद्धभाव से भावो, ऐसा कहा। देखा! भाव कहा न! शुद्धभाव उपयोग, शुद्ध उपयोग से उसकी भावना करो। आहाहा! **अपने शुद्धभाव से भाओ।** जो शुद्ध उपयोग आनन्ददायक है। आहाहा! उसे पहले समझकर फिर भावो—भावना करो, ऐसा कहते हैं।

अपने भावों में बारम्बार अभ्यास करो,.... 'भावेह' ऐसा है न? उसकी व्याख्या की। **बारम्बार अभ्यास करो, इससे शीघ्र ही चार गतियों को छोड़कर....** चार गति परिभ्रमण का दु:खरूप जो भाव और गति, उसे छोड़कर **अपुनर्भव मोक्ष....** फिर से भव न हो, ऐसा मोक्ष। **तुम्हें होगा।** तुम्हें मोक्ष होगा। अरे! भगवान! परन्तु पंचम काल में इतनी सब बात! ....मोक्ष। पंचम काल में ऐसा करता था न! **'अइरेणऽपुणब्भवा होई'** ऐसा है न? **'अइरेणऽपुणब्भवा होई'** अल्प काल में तुझे अपुनर्भव—मोक्षदशा होगी। भाई! जितनी अन्तर भावना भायी, उतना मोक्ष हो गया अन्दर। और अल्पभव बाकी रहेंगे, वे हुए बिना रहेंगे नहीं। थोड़े से भव एकाध हों। यहाँ तो तुरन्त मोक्ष होगा, ऐसा ही कहते हैं यहाँ। आहाहा! खबर नहीं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को कि मोक्ष तो अभी है नहीं। है, किस अपेक्षा से? सुन न! राग से भिन्न पड़कर मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा में आत्मा मुक्त है, ऐसा आया, ज्ञान में मुक्त है ऐसा आया और स्वरूप में स्थिर होता है, उतनी मुक्ति पर्याय में भी आयी। समझ में आया? थोड़ा बाकी हो तो एकाध

भव करेगा। अल्प काल में ही उसे मुक्ति है। उसे लम्बा काल नहीं हो सकता। जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र प्रगट किया, उसे तो अल्प काल में अपुनर्भव प्राप्ति होगी। फिर से अवतरित नहीं होना, ऐसा भाव—गति (प्राप्त होगी)।

फिर संसार में जन्म नहीं पाओगे। चौरासी के अवतार—जन्म। आहाहा! मात के गर्भ में नौ महीने, सवा नौ महीने रहे। निकले तब टुकड़े करके निकाले। आहाहा! गजब है न। और मरकर जाये अन्यत्र। पेट चीरकर निकाले, वह न निकले तो टुकड़े करे। देखो, यह जन्म और यह मरण। इनसे छूटना हो तो आत्मा आनन्दस्वरूप राग से भिन्न, उसका ज्ञान करके उसमें स्थिर हो। फिर से भव होंगे नहीं। आहाहा! यहाँ तो भव नहीं होंगे, उसकी बातें हैं। जिससे भव मिले, वह वस्तु क्या? धूल है। आहाहा!

आहाहा! '**अपुनर्भवाः**' 'तो भी अरे! भवचक्र का...' आया नहीं श्रीमद् का? १६ वर्ष में कहा। 'भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' भवचक्र का फेरा नहीं टला तो तूने क्या किया? आहाहा! यह सब दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के भाव, वे तो संसार हैं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण अतीन्द्रिय अमृत का सागर, उसके आश्रय में जाकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान करे और उसके आश्रय में जाकर स्थिरता करे। अल्पकाल में उसे परमानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति होगी। आहाहा! यह चौरासी के अवतार में जन्मदुःख, जरादुःख रोग, मरण, अहो! दुःखी संसार... वहाँ जीव दुःखी होता है। उस दुःख से मुक्त होने का यह उपाय है। जिसमें भव और भव के भाव नहीं, ऐसा जो आत्मस्वरूप।

श्रीमद् में भी आया न, पहले कहा 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।' वह स्वयं आनन्दस्वरूप है। उसके स्वरूप को अन्तर में वास्तविक रीति से स्व को स्पर्श कर ज्ञान किया नहीं, इसलिए इसे दुःख से मुक्त हुआ नहीं। आहाहा! आचार्य कहते हैं, **इस चारित्रपाहुड़ को वाँचना,....** है भावार्थ? चारित्रपाहुड़ को पढ़ना। '**भावेह**' है न, '**भावेह**' में से सब निकाला। '**भावेह**' '**भावेह भावसुद्धं, फुडु, रइयं चरणपाहुडं**' **पढ़ना,....** चारित्रपाहुड़ को भी पढ़ना, पढ़ना। **धारण करना,...** क्या कहते हैं, उसे लक्ष्य में लेकर धारण करना। **बारम्बार भाना,....** आहाहा! चारित्र का हमारे क्या काम? बापू! परन्तु चारित्र क्या है, उसका ज्ञान तो करना पड़ेगा न। आहाहा! **अभ्यास करना, यह**

उपदेश है,.... इस चारित्रपाहुड़ का अभ्यास करना। हम गृहस्थाश्रम में हैं, हमारे क्या? ऐसा नहीं करना, कहते हैं। इसे चारित्रपाहुड़ को वाँचना, विचारना, पढ़ना, बारम्बार भावना करना, इसका अभ्यास करना। आहाहा!

इसमें चारित्र का स्वरूप जानकर धारण करने की रुचि हो,.... जो बारम्बार इस चारित्र को समझे, वाँचे, पढ़े, विचारे तो चारित्र के स्वरूप को जानकर, स्वरूप की रमणता, वह चारित्र—ऐसा जानकर **धारण करने की रुचि हो,....** चारित्र को प्रगट करने की और चारित्र में रमने की उसे रुचि हो। **अंगीकार करे....** तो उस चारित्र की रुचि हो तो अंगीकार करके स्वरूप में रमे। **तब चार गतिरूप संसार के दुःख से रहित होकर निर्वाण को प्राप्त हो, फिर संसार में जन्म धारण नहीं करे....** आहाहा! **इसलिए जो कल्याण को चाहते हों, वे इस प्रकार करो।** जिन्हें कल्याण की भावना हो, उन्हें ऐसा करना चाहिए। कल्याण की भावना न हो, उसे तो यह अनादि से है, उसकी बात यह है नहीं। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप को अनुभव कर, जानकर उसमें स्थिर होना, यह सम्यक्‌चरण, संयमचरण चारित्र है—ऐसा कहते हैं। उसे बारम्बार विचारना। देखो सब आया न! सम्यक्त्वचरण चारित्र का पहले ज्ञान करना। संयमचरण चारित्र का भी जैसा है, वैसा अभ्यास करना।

मुमुक्षु : वह तो सब राग और विकल्प उठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कहाँ था वह? वह राग कहाँ था? स्वरूप अन्दर में सन्मुख होकर एकाग्र होना, वह सम्यक्त्वचरण चारित्र है। अब उसमें राग कहाँ आया?

मुमुक्षु : पढ़े उसमें राग तो होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़े, वह विकल्प होता है, इसलिए भी उसे वाँचन में वापस निर्णय क्या है उसे? कि यह वाँचन का विकल्प उठता है, उससे भी रहित हूँ, ऐसा इसमें निर्णय है।

मुमुक्षु : ....निर्विकल्प हुआ जाये ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्विकल्प। चेतनजी! एक क्षण में निर्विकल्प हो, ऐसी शक्ति है। एक क्षण। परन्तु जिसे इतना न हो, उसे पहले सम्यक्त्वचरण क्या है?

सम्यक्त्वचरण चारित्र क्या है? संयमचरण चारित्र क्या है? उसका अभ्यास करना, वाँचना, विचारना, विकल्प होता है बीच में। परन्तु आये बिना रहेगा? परन्तु उसमें निर्णय तो यह है। यह मेरी चीज़ विकल्परहित है। विकल्प के निर्णय में भी विकल्प बिना की मेरी चीज़ है, ऐसा निर्णय है इसमें। **बारम्बार भाना....** भावना करना। वस्तु है न! आहाहा! मुनि भी शास्त्र अभ्यास करते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार आता है न! नहीं आता? अन्दर ध्यान में न हो—स्थिर न हो सके, तब क्या करे उसे? यह व्यवहार नहीं। यह तो निश्चयसहित का व्यवहार है।

मुमुक्षु : यह नौ अंग....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नौ अंग वे नहीं। नौ अंग वे नहीं। यह तो आत्मा तो राग से भिन्न पड़कर ज्ञानदर्शन का भान हुआ, उसे ऐसा वाँचन आदि होता है, उसे व्यवहार और विकल्प कहा जाता है। आहाहा!

कल्याण को चाहते हों, वे इस प्रकार करो।

(छप्पय)

चारित दोय प्रकार देव जिनवरने भाख्या।
समकित संयम चरण ज्ञानपूरव तिस राख्या॥
जे नर सरधावान याहि धारैं विधि सेती।
निश्चय अर व्यवहार रीति आगममें जेती॥
जब जगधंधा सब मेटिकैं निजस्वरूपमें थिर रहै।
तब अष्टकर्मकूं नाशिकै अविनाशी शिवकूं लहै॥१॥

आहाहा! '**चारित दोय प्रकार देव जिनवर ने भाख्या।**' त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ने चारित्र के दो प्रकार कहे। एक समकितचरण चारित्र, दूसरा संयमचरण। '**ज्ञानपूरव तिस राख्या।**' परन्तु उसके पहले यह ज्ञान का भेदज्ञानसहित चारित्र की व्याख्या की है।

मुमुक्षु : ज्ञान तो अनन्त बार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ज्ञान की यहाँ कहाँ बात है ? राग से भिन्न का स्व का ज्ञान, इस ज्ञान की यहाँ बात है। दूसरे ज्ञान की बात कहाँ है ? उसका ज्ञान किया, ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान, उसे यहाँ ज्ञान कहते हैं। यह समकितचरण चारित्र और संयमचरण चारित्र में ऐसा ज्ञान साथ में होता है, ऐसा कहते हैं। है न **ज्ञानपूरव....** आहाहा! तीनों निर्विकल्प वीतरागी पर्याय है, ये तीनों। सम्यक्त्वचरण चारित्र और संयमचरण चारित्र में ज्ञानपूर्वक बात होती है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... यही होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही होता है न। दूसरा क्या हो वहाँ ? सम्यग्ज्ञान राग से भिन्न और आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान पहले होता है। उस ज्ञानसहित सम्यक्त्वचरण चारित्र और ज्ञान और समकितसहित संयमचरण चारित्र, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेला अन्तर आत्मा आनन्द में घुले, यह तो उसकी बात है, भाई! भले विकल्प हो, परन्तु विकल्प में से भी निकालना तो यह है। विकल्प के पीछे। आहाहा!

कहते हैं कि समकितचरण चारित्र और संयमचरण चारित्र, यह ज्ञानपूर्वक होता है, ऐसा कहते हैं। तीनों डाल दिये। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। '**ज्ञानपूरव तिस राख्या**' पूर्व में ज्ञान हो, उसे यह समकितचरण और संयमचरण चारित्र होता है। '**जे नर सरधावान**' आहाहा! विश्वास बैठना, बापू! अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण हैं यह ... भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं। एक-एक गुण अनन्त शक्तिवाला प्रभुत्व सामर्थ्यवाला गुण है। इतने क्षेत्र में इतने सामर्थ्यवाला तत्त्व है, उसका उसे विश्वास बैठना चाहिए। ऐसा जो भगवान शरीरप्रमाण जिसकी अवगाहना, परन्तु शरीर से भिन्न है, उसमें अनन्त गुण और एक-एक गुण की प्रभुता की सामर्थ्यता से पड़ा हुआ गुण। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण, यह कैसे बैठे ? बापू! आहाहा! यह कोई बातें नहीं, भाई! ऐसे जो अनन्त गुणों का धाम, उसकी श्रद्धा कर।

'**जे नर सरधावान याहि धारैं विधि सेती।**' आहाहा! वह श्रद्धावान जीव इस विधि से आत्मा को धारता है। आहाहा! यह सब बारह अंग का ज्ञान जाना परन्तु करने

का तो यह है। दूसरे को समझाना आवे, न आवे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। स्वयं भगवान... आहाहा! एक वस्तु और गुण अनन्त। जिसकी संख्या का पार नहीं होता। आहाहा! ऐसे गुण की श्रद्धावान श्रद्धा करता है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **'जे नर सरधावान याहि धारैं विधि सेती।'** विधि से धारे। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की विधि से उसे धारे। आहाहा! लो, यह विधि आयी। विधि से किया, अविधि से किया, ऐसा नहीं? यह विधि है। आहाहा! सम्यग्ज्ञानसहित, सम्यक्श्रद्धासहित, स्वरूपाचरणचारित्र सहित और संयमचरण चारित्र। आहाहा! ऐसा कहते हैं। यह उसकी विधि की रीति है। इस विधि से धार।

'निश्चय अर व्यवहार रीति आगममें जेती।' निश्चय का स्वरूप जो कहा, उसे और उस भूमिका में पंच महाव्रतादि का विकल्प भी होता है। यह आया है न अन्दर। पंच महाव्रत की व्याख्या आ गयी न पहली? यह वापस मिलायी इन्होंने। ग्यारह प्रतिम आदि है न? निश्चय स्व के आश्रय से हुई दशासहित इसे अभी पूर्ण न हो, उसे पराश्रय का भाव—व्यवहार हो, उसे बराबर जान। आहाहा! दुनिया मान बैठेगी कि तुझे ऐसा है, इससे कहीं वहाँ शरण नहीं होगा। दुनिया में बाहर में प्रसिद्ध हुआ और दुनिया ने कहा, ओहोहो! इससे कहीं वहाँ तुझे शरण नहीं मिलेगी। आहाहा! शरण तो वस्तु अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी श्रद्धा से स्थिर हो अन्दर से। विश्वास ला। विश्वास ला। विश्वास से जहाज तिरेगा। आहाहा! अनन्त गुण का धाम भगवान, अनन्त... अनन्त। ओहोहो! ऐसे आत्मा को निश्चय और साथ में पंच महाव्रतादि का व्यवहार होता है। श्रावक को ग्यारह प्रतिमा आदि विकल्प आगम, जैसा आगम में कहा है, उस प्रकार से जान, कहते हैं।

'जब जगधंधा सब मेटिकैं' आहाहा! जगधन्धा। यह विकल्प संसार का धन्धा हो गया। आहाहा! **'जब जगधंधा सब मेटिकैं'** विकल्प की वृत्ति सब छोड़कर। आहाहा! **'निजस्वरूपमें थिर रहै।'** जगधन्धा अर्थात्? यह पंच महाव्रतादि भी यह जगधन्धा है, व्यवहार धन्धा है। आहाहा! समझ में आया? बात तो चारित्रपाहुड़ है तो चारित्र की व्याख्या करे न! **'जब जगधंधा सब मेटिकैं निजस्वरूपमें थिर रहै।'** भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप में स्थिर रहे।

'तब अष्टकर्मकूं नाशिकै' आठ कर्म का नाश करके **'अविनाशी शिवकूं लहै।'** अविनाशी शिवपद मोक्षपद को प्राप्त करे। आहाहा! यह तो मोक्ष की बातें हैं। पाँचवें काल में मोक्ष नहीं होता, तो कहे—मोक्ष है मोक्ष। आहाहा! **ऐसे सम्यक्त्वचरण चारित्र...** मुनि की व्याख्या यहाँ है, ऐसी व्याख्या श्वेताम्बर में कहीं है ही नहीं। सम्यक्त्वचरण चारित्र की, संयमचरण चारित्र की। **दो प्रकार के चारित्र का स्वरूप इस प्राभृत में कहा।** लो! चारित्र का सार प्राभृत में यह बात की है, कहते हैं।

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराज।
तिनिके चरण नमूं सदा पाऊं तिनि गुणसाज॥२॥

'जिनभाषित चारित्रकूं' वीतराग ने कहा वह चारित्र। भाषा देखो! सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो चारित्र का स्वरूप कहा है। **'जे पालैं मुनिराज।'** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित जिसकी चारित्र की रमणता जिन्हें प्रगट हुई है। जो अपने आनन्द के झूले में झूलते हैं, वह चारित्रपना मुनिराज पालन करते हैं। **'तिनिके चरण नमूं'** वचनिकाकार कहते हैं, अहो! ऐसे धर्मात्मा के चरण को मैं नमता हूँ। लो! स्वयं वन्दन करते हैं मुनिराज। धन्य अवतार, बापू! आहाहा! जिसने आत्मा को उभारा। संसार में गिरने से उद्धार किया, उभारा जिन्होंने। ऐसी दशा में सम्यग्दर्शनसहित जिन्हें चारित्र की रमणता है। धन्य प्रभु तेरा अवतार! तेरे चरण को मैं नमता हूँ। लो, ऐसा मुनिपना। पूनमचन्दजी! आहाहा!

अभी तो यह श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता और महाव्रत का भी ठिकाना नहीं होता। उसे... क्या होगा? भाई! यह पंचम काल, इसलिए गुड़ के बदले मिट्टी खायी जाती होगी पंचम काल में? आहाहा! बापू! मार्ग कठिन है, परन्तु मार्ग तो इसके घर का इसके पास है, हों! आहाहा! जिसे किसी की आवश्यकता नहीं। आहाहा! मार्ग समझने के, प्राप्त करने के लिये विकल्प की भी आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह तो स्वयं अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा पृथक् ज्ञाता है। शास्त्र में मति और श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है, वह तो पर के जानने की अपेक्षा से। आहाहा! अपने को जानने के लिये तो मति और श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है। ऐसा जो स्वरूप जानकर जो (स्वरूप में) स्थिर होता है, उसके चरणकमल को नमस्कार है। आहाहा! लो, इन सन्तों को गणधर नमस्कार करे, तो वचनीकाकार कहते हैं कि मैं तो गृहस्थ हूँ। आहाहा!

'तिनिके चरण नमूं सदा पाऊँ तिनि गुणसाज।' जो उनमें गुण का समुदाय प्रगट हुआ है, वह हमको मिले, यह हमारी भावना है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! सन्त को जो गुण का साज स्वाद प्रगट हुआ है। आहाहा! अनन्त... चौथे गुणस्थान में एकदेश, छठवें में भी एकदेश होता है। तेरहवें में... ऐसे गुण का साज—समुदाय जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे गुण समुदाय को प्रगटने के लिये प्रभु तुझे नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। **'सदा पाऊँ तिनि गुणसाज।'** सन्तों के गुण का.... जो प्रगट हुआ है, उस गुण को प्राप्त करता हूँ। यह मेरी भावना है। भले मैं गृहस्थाश्रम में होऊँ, परन्तु मेरी भावना तो यह है। समझ में आया?

चारित्र की भावना भाते हैं। छहढाला में आता है न? छहढाला में आता है। सम्यग्दर्शन को चारित्र की भावना होती है। भले चारित्र नहीं है, इसलिए वह उसकी भावना होती है। स्वरूप की रमणता कब करूँ? ऐसी भावना होती है। आता है.... भावना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो....

मुमुक्षु : श्रद्धा-ज्ञानगुण....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। .... ऐसा आता है। छहढाला में।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यस्वामी विरचित चारित्रप्राभृत की.... आहाहा! भगवान के ट्रेडमार्क की यह सब वाणी है। आहाहा! जैनशासन में सिद्ध हुई यह वाणी है। आहाहा! **पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत देशभाषामय वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद समाप्त।** लो! तीन हुए तीन—दर्शनपाहुड़, सूत्रपाहुड़ और चारित्र (पाहुड़)।

अब बोधपाहुड़ है। कल तो लोग आयेंगे, इसलिए दोपहर में वहाँ रखेंगे। यहाँ नहीं समायेंगे। भाई कहते थे। ५०-६० गुजरात में से आनेवाले हैं। ५०-६० मुम्बई से, ये भाई कहते थे। दोपहर में वहाँ रखेंगे। रविवार को। ... वहाँ रखेंगे। और यह तो बोधपाहुड़ है। **'जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं'** ऐसा पाठ है इसमें। जिनमार्ग में जिनवर ने यह कथन किया है। सब निश्चय देखे इसलिए। प्रतिमा, आत्मा। समझ में आया? यह भगवान आत्मा की मूर्ति अनन्त आनन्द स्वरूप यह प्रतिमा। वह व्यवहार

बाहर का कहा है व्यवहार भगवान ने। परन्तु वह व्यवहार है। यह निश्चय है।

यह कहने का आशय तो ऐसा है। लिखा है इस प्रकार से। जैनमत में भेद हुए हैं न! अर्थ में है—भावार्थ में। उस ओर भावार्थ में है। ३-४ में। **अनेक मत हो गये हैं तथा जैनमत में भी भेद हो गये हैं,....** बाहर की प्रतिमा और मन्दिर और फलाना, फलाना मनवा लिया। परन्तु निश्चयनय प्रतिमा और निश्चय आत्मज्ञान बिना वह सब थोथा है।

देव जिनेश्वर सर्वगुरु, बंदूं मन-वचन-काय।
जा प्रसाद भवि बोध ले, पालैं जीव निकाय॥१॥

छह काय के.... दो बात। आहाहा! बाह्य में मन्दिरों में तो... छह काय के जीव की.... होती है। सावद्य लेशा बहु पुण्य राशि। होता है न वहाँ। यह निश्चय जो है, वह तो छह काय की हितकर वस्तु है। वापस यह निश्चय समझकर वह व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। जैसा निश्चय है, वैसा व्यवहार भी प्रतिमा, मन्दिर साथ में होता है। अनादि का होता है। भगवान ने निश्चय यह कहा। वह बाहर में व्यवहार में करे, वह भी हम धर्मी हैं। मन्दिर करे,... करे, ऐसे सब भेद पड़ गये थे न श्वेताम्बर में? उनके सामने यह बात है। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में श्वेताम्बर मत पृथक् पड़ गया। सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह जैनदर्शन से विरुद्ध दर्शन है वह सब। जैनदर्शन तो यह दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन है। इसके अतिरिक्त का जैनदर्शन एक भी नहीं कहा भगवान ने। आहाहा! उसमें भी यह जिनवाणी... वह हमारी वाणी है, हमारे मन्दिर हैं, हमारे गुरु हैं, हमारे मन्दिर हैं। उसमें जो लगे थे, उनकी अति विशेषता समझावे, बापू! यह आत्मा वह यह है। यह जानने के पश्चात् उसे यह सब व्यवहार होता है। यह भी कहते हैं, वह व्यवहार नहीं। भगवान की मूर्ति में गहने और वस्त्र यह बिल्कुल नहीं होता। व्यवहार भी ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो जिसका पक्ष लेकर बोलूँ वह मन में महासुख माने। जिसका पक्ष लेकर छोड़कर बोलूँ, वह मन में... अरे! यह तुम्हारा खोटा। बापू! यह वस्तु ऐसी है, भाई!

यह तो पहले कह गये हैं अष्टपाहुड़-दर्शनपाहुड़ की १४वीं गाथा। अन्दर १४वीं है न? जैनदर्शन किसे कहते हैं? १४वीं गाथा है दर्शनपाहुड़ की। समझ में आया? १४वीं है।

दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥

१४-१४। **जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो....** जैनदर्शन किसे कहते हैं? मोक्षमार्ग तीनों इकट्ठे होकर, हों! दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों। जिसे बाह्य का वस्त्र का धागा न हो, अभ्यन्तर में राग का कण न हो। आहाहा! **परिग्रह का त्याग हो और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो....** जिसे अन्तर में स्वरूप में रमणता हो। आहाहा! **कृत-कारित-अनुमोदन, ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हो, वह ज्ञान हो,....** यह कल्पित जो ज्ञान बनाया शास्त्र में, वह ज्ञान करण, कराना, अनुमोदन न हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र कल्पित बनाये ४५-३२ (सूत्र)। उस सम्बन्धी के ज्ञान का मन, वचन और काया, करण, करावण से नहीं। अर्थात् उनका अनुमोदन होता नहीं। वजुभाई! ऐसी बातें हैं। दुनिया से तो अनमेल रहे।

एक अभी पूछता था। कौन पूछता था? मुम्बई। कौन आया नहीं था? पूछता था। साथ में कोई हो तो चरण-वन्दन करने जायें तो। वह प्रवीणभाई के भाई। हिम्मतभाई के भाई। वहाँ बैंगलोर रहते हैं न बैंगलोर। हिम्मतभाई नहीं वे भावनगरवाले? वह प्रवीणभाई और उनका बड़ा भाई। बड़ा वहाँ है। वे आये थे। महाराज! हम किसी के साथ हों, ऐसे मन्दिर के... हम साथ में हों वहाँ वन्दन करे तो क्या दिक्कत आवे? वरना बाहर वे हो जायेंगे। भाई मार्ग बापू! यह मार्ग ऐसा नहीं है। ऐसा कि साथ में बहुत लोग हों और यदि हम इकट्ठे न जायें, वन्दन न करें तो वह (अलग-थलग) हो जाये। यह मार्ग ऐसा नहीं है, बापू!

जिनमुद्रा, वीतरागमुद्रा, जिसके ऊपर कुछ न हो। वस्त्र नहीं, कुछ नहीं, कपड़ा नहीं। ऐसी जिनमुद्रा वीतराग ने जैसी कही है, वैसी हो, उसे वन्दन करने का व्यवहार से होता है। उसने... प्रवीणभाई साथ में थे अन्दर। वे प्रवीणभाई से बड़े हैं। ...वहाँ ऐसा कि बैंगलोर आओ तो मेरे यहाँ आवास रखना। भाई! यह मुझसे नहीं कहा जाता। वहाँ के संघ को ठीक पड़े, वैसा करे। बैंगलोर है न।

मुमुक्षु : अनन्तराय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तराय... ८-९ लाख डाले हैं। मन्दिर में दो व्यक्तियों ने। दो व्यक्तियों ने। जुगराजजी और भभूतमल। दो होकर नौ लाख तो डाले हैं, कहे। मन्दिर में। तैयार हो गया है। यह कहे, मेरे यहाँ आवास रखना। तब तो अपने यहाँ रखा था न प्रवीणभाई के यहाँ। प्रवीणभाई के घर में। चन्द्रकान्तभाई का छोटा भाई वहाँ है न। ...वह कहे, परन्तु ऐसा करें, तब साथ में सब व्यक्ति हो, क्या करना? बापू! मैं ऐसा कैसे कहूँ? लालजीभाई! लोकलाज से भी करने का निषेध किया है भगवान ने। लोक की लाज से, लोक के डर से, लोक के भय से ऐसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को वन्दन करना नहीं होता। दुनिया चाहे जो माने। उसके साथ कहीं सत्य को वैसा (सम्बन्ध) नहीं है। आहाहा! गृहस्थाश्रम में रहे। साथ में गृहस्थ हो, मन्दिर में जायें तो वहाँ खड़े रहें? ऐसी दलील की है। बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई!

मुमुक्षु : आपने हाँ किया या ना किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : ना (किया) सुनते थे बेचारे। सुनते थे सब। क्या करे? वहाँ कहाँ उसे खबर है? कमाने के कारण कहाँ धन्धे में? ....हिम्मतभाई पक्ष में आ गये हैं, इसलिए उसे... आहाहा! थोड़ी बात सब लगायी। भाई! मार्ग तो बापू ऐसा है, भाई! वीतरागी सन्त मुनि निर्ग्रन्थ, जिन्हें वस्त्र का धागा न हो, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे मुनि को मुनिरूप से मानना, वन्दन करना मिथ्यात्व का पोषण है। पण्डितजी! बात तो ऐसी है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर वहाँ कहाँ.... स्त्री, पुत्र और धन्धा है? व्यापार वहाँ है वहाँ? कपड़े का व्यापार करना है उनके साथ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इनकार करते हैं यहाँ। यह यहाँ कहा, देखो न! **अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा, खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे,...** उसे मुनि कहते हैं। उसे जैनदर्शन कहते हैं। दूसरे को जैनदर्शन है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

:प्रकाशक:
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबइ
www.vitragvani.com

अष्टपाहुड अमृत